Registered No. L. 1424 रजिस्टर्ड नं० एल १४२४

ओ३म्

भाग ७
अङ्क १

जनवरी १६२६
माघ १६८२

2

आर्य्य

आर्य्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का मासिक पत्र

सम्पादक—चमूपति

प्रार्थना

ओ३म् इन्द्रं वर्धन्तोऽप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्। अपघ्नन्तोऽराव्णः
ऋग्वेद।

हे प्रभु ! हम तुम से वर पावें।
विश्व जगत् को आर्य्य बनावें॥
फैलें, सुख सम्पत् फैलावें।
आप बढ़ें, तव राज्य बढ़ावें॥
वैर-विघ्न को मार मिटावें।
प्रीति-नीति की रीति चलावें॥

वार्षिक मूल्य ३) रु० पेशगी

जगत्नारायण प्रिन्टर व पब्लिशर के अधिकार से विरजानन्द प्रेस लाहौर में छप कर प्रकाशित हुआ।

विषय सूची

"आर्य्य" के नियम ।

१—यह पत्र अंग्रेज़ी मास की १५ तारीख़ को प्रकाशित होता है । (ड... कख़ाना में चूंकि अंग्रेज़ी तारीख़ देनी होती है, इसलिये अंग्रेज़ी तारीख़ ... हिसाब रक्खा गया है) ।

२—इसका वार्षिक मूल्य ३) है । सभा ने वैदिक धर्म तथा नागरी प्रच... के लिये इसे जारी किया है ।

३—इस पत्र में धर्मोपदेश, धर्म-जिज्ञासा, प्रतिनिधि सभा की सूचनाएं दर्ज होती हैं ।

४—पत्र में प्रकाशित होने के लिये समाचार तथा लेख प्रत्येक अंग्रेज़ी मास की १ तारीख़ के पूर्व आजाने चाहियें ।

५—यदि डाक की ग़लती से कोई अङ्क न पहुंचे, तो १५ दिन के भीतर सूचना देने से वह अङ्क भेज दिया जायगा, लेकिन इस अवधि के पश्चात् मंगवाने पर प्रति अङ्क ।=) देने पड़ेंगे ।

* ओ३म् *

आर्य्य

भाग ७] लाहौर—पौष १९८२ जनवरी १९२६ [अंक ९

[दयानन्दाब्द १०१]

विनय

(श्री० धर्मदत्त सिद्धान्तालङ्कार)

इतनी नाथ विनय है मोरी !

चरणों से मत दूर हटाओ विनय करूं कर जोरी ॥

राजसिंहासन से भी चाहे मुझ को नाथ गिराओ ।
पर अपने इन चरणों पर से अब मत दूर हटाओ ॥

राज-छत्र भी मेरे सिर से चाहे नाथ उठाओ ।
पर अपने हाथों की छाया मुझ पर से न हटाओ ॥

दीनानाथ ! अनाथ बना कर मुझ से भीख मंगाओ ।
पर नाथों के नाथ ! न मेरे सिर से हाथ उठाओ ॥

पढ़ा लिखा भी मेरा सारा मुझ से नाथ भुलाओ ।
ओ३म् नाम पर अपना प्यारा पल पल याद रखाओ ॥

दुःख के गहरे कूप में चाहे तुम मुझ को ठुकराओ ।
अपनी प्रेम की डोरी को पर मुझ से नहीं छुड़ाओ ॥

संज्ञपन और अवदान ।

(ले० श्री पं० बुद्धदेव विद्यालङ्कार, ' आर्य सेवक ')

आलम्भन, संज्ञपन और अवदान इन तीन शब्दों ने मीमांसा के साहित्य में जितना अनर्थ मचाया है उतना कदाचित् ही किन्हीं अन्य शब्दों ने मचाया हो। इन्हीं शब्दों के कारण श्रौत यज्ञों की यज्ञशाला यज्ञशाला नहीं प्रतीत होती किन्तु एक अच्छा खासा सैनिकागार दीख पड़ती है। समय समय पर भवभूति कालिदासादि कवि "मया पुनर्ज्ञातं कोऽपि व्याघ्र इति" "पशु मारण कर्म्म दारुणोऽप्यनुकम्पा मृदुरेव श्रोत्रियः" आदि शब्दों में इस बात पर दबी चोट भी करते रहते हैं। चार्वाक तो बिलकुल स्पष्ट ही बोल उठा:—

पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति ।
स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हन्यते ॥

पर यदि गम्भीर दृष्टि से देखें तो बहुत अंशों तक इस नृशंस काण्ड का आधार इन्हीं तीन शब्दों पर है। आज हमारा विचार इन में से 'संज्ञपन' और 'अवदान' पर कुछ प्रकाश डालने का है।

पहिले संज्ञपन को लीजिये। यह शब्द सं पूर्वक णिजन्त ज्ञा धातु से ल्युट् प्रत्यय करने पर बनता है। 'देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते' आदि शतशः प्रमाणों से सिद्ध है कि संपूर्वक ज्ञा धातु का अर्थ परिचय, प्रेम, सम्भूयज्ञान आदि हैं, कहीं भी हिंसा नहीं। फिर पता नहीं चलता कि णिच् तथा ल्युट् प्रत्ययों ने इस में क्या वैचित्र्य उत्पन्न कर दिया जो इस का अर्थ एक दम हिंसा हो गया? अस्तु। अब देखना चाहिए कि वेद तथा वैदिक साहित्य में णिच् तथा ल्युट् प्रत्ययान्त प्रयोग भी किस अर्थ में आया है।

विचित्र बात है कि प्रयोग भी मांसलोलुप, मांसल प्रज्ञ मीमांसकापसदों के पक्ष को समर्थन नहीं करता। लीजिये, चारों वेदों में संज्ञपन शब्द णिजन्त तथा ल्युट् प्रत्ययान्त रूप में केवल एक स्थान पर अथर्व वेद में आया है। मन्त्र यों हैं:—

सं वः पृच्यन्तां तन्वः सं मनांसि समु व्रता
सं वोऽयम्ब्रह्मणस्पतिर्भगः संवो अजीगमत्

संज्ञपनं वो मनसोथो संज्ञपनं हृदः
अथो भगस्य यच्छ्रान्तं तेन संज्ञपयामि वः
यथादित्या वसुभिः संबभूवुर्मरुद्भिरुग्रा अहृणीयमानाः
एवा त्रिणामन्नहृणीयमान इमान् जनान् संमनसस्कृधीह ॥

अथर्व ६ काण्ड ७४ सू० १-३ मन्त्र

इस प्रकरण में "संपृच्यन्तां" "समजीगमत्" "संबभूवु:" "संमनसस्कृधि" यह संगठन की सुहावनी प्रबल साहचर्य्य के बल से संज्ञपन के अर्थ पर क्या प्रकाश डाल रही है इसे सहृदय लोग अनुभव करें । संस्कृतानभिज्ञ पाठकों के लिये हम केवल तीन मंत्रों का अनुवाद और देते हैं ।

विद्वान् उपदेश करता है:—

" तुम्हारे शरीर सम्पृक्त (आपस में खूब मिले हुए) हों । मन सम्पृक्त हों व्रत सम्पृक्त हों । उस ब्रह्मणस्पति कल्याण स्वरूप प्रभु ने तुम्हें इकट्ठा किया है । तुम्हारे मनों में मिलकर ज्ञान उत्पन्न हो । हृदयों में प्रेम हो । उस प्रभु के नाम पर किये श्रम से मैं तुम्हें उत्तम ज्ञान प्राप्त कराता हूं " फिर वही विद्वान् प्रभु से प्रार्थना करता है:—

" जिस प्रकार आदित्य (ब्रह्मचारी) वसुओं से, जिस प्रकार क्षत्रिय वैश्यों से निस्संकोच मिलते हैं उसी प्रकार हे भूर्भुवः स्वः अथवा अ उ म तीन नाम वाले प्रभो! आप इन सब मनुष्यों को एक मन कर दीजिये । " यह हुआ एक संज्ञपन ।

अब शतपथ का भी उदाहरण लीजिये -

"अथातो मनसश्चैव वाचश्च । अहम्भद्र उदितं मनश्च ह वै वाक्चाहम्भद्र ऊहाते । तद्ध मन उवाच अहमेव त्वच्छ्रेयोऽस्मि न वै त्वया त्वं किञ्चनान-भिगतं वदसि । सा यन्मम त्वं कृतानुकरानुवर्त्मा स्यहमेव त्वच्छ्रेयोऽस्मीति । ९ । अथ ह वागुवाच अहमेव त्वच्छ्रेयस्यस्मि यद्वै त्वं वेत्थाह तद्विज्ञपयाम्यहं संज्ञपयामीति ॥ "

शतपथ कां० १ अ० ४ ।

अब मन वाणी के झगड़े का हाल सुनो । एक वार मन और वाणी में "मैं बड़ा" "मैं बड़ी" हो पड़ी । सो मन बोला—मैं बड़ा । भला तू कौनसी बात बोलती है जो मैं नहीं जानता । बस तू मेरा कहा करने वाली मेरी अनुचरी है,

मैं तुझ से बड़ा हूं। वाणी बोली बड़ी तो मैं ही हूँ। तुझे तो केवल ज्ञान ही ज्ञान है पर वह ज्ञान किस काम का। 'आप को कुछ ज्ञान है' यह ज्ञान लोगों को तो मेरे द्वारा ही होता है। जो आप को ज्ञान है वह मैंही प्रकाशित करती हूं और हृदयङ्गम कराती हूं।

क्या यहां भी संज्ञापयामि के अर्थ के विषय में किसी दिवान्ध को सन्देह हो सकता है?

अब ज़रा उन प्रकरणों को लीजिये जहाँ संज्ञपन का अर्थ काटना लिया जाता है। उदाहरणार्थ अग्नीषोम के प्रकरण में संज्ञपन का अर्थ बकरे को काटना किया जाता है। प्रथम तो संज्ञपन का अर्थ हिंसा है ही नहीं; और यदि कथञ्चित् दुर्जन तोष न्याय से यह अर्थ स्वीकार भी कर लें तो भी कम से कम इतना तो हम ऊपर व्याकरण तथा प्रकरण के बल से निर्विवाद रूपेण सिद्ध कर ही चुके हैं कि संज्ञपन का अर्थ सम्यग्ज्ञान कराना भी है। ऐसी अवस्था में यदि यह भी मान लें कि इस शब्द के हिंसा तथा सम्यक् ज्ञान कराना दोनों अर्थ हैं तो भी 'सैन्धवमानय' की तरह जो अर्थ प्रकरण सङ्गत होगा वही मानना पड़ेगा। अब अग्नीषोम में पशु संज्ञपन के पश्चात् 'वाचं ते शुन्धामि ... चरित्राँस्ते शुन्धामि यजु० ६ .... वाक्त आप्यायताम्' आदि जितने शब्द पड़े हैं सब सम्यग्ज्ञान के अधिक अनुकूल हैं और हिंसार्थ के सर्व्वथा प्रतिकूल हैं। चरित्राँस्ते शुन्धामि (तेरे चरित्र सुधारता हूं) की संगति पशु प्रकृति मूढ़, बालकादि को सम्यग्ज्ञान कराने में ही हो सकती है न कि छाग वध में।

इसी प्रकार अश्वमेध प्रकारण में वाक्य आता है—'एष वा स्वर्गो लोको यत्र पशुं संज्ञपयन्ति'। इसका अर्थ पौराणिक लोग करते हैं कि अश्वमेध में जिस स्थान पर अश्व का वध करते हैं उस स्थान का नाम स्वर्ग लोक है। क्यों न हो? वहीं उसी स्वर्ग लोक में कपड़ा तान कर फिर घोड़े और राज महिषी का समागम कराया जाता है। इन निर्लज्जों को इस प्रकार वेद की हत्या करने में तनिक भी सङ्कोच नहीं होता।

अब इस शब्द का दूसरा (हमारी सम्मति में एक मात्र) अर्थ लीजिये तो कितना सुसंगत है। 'वही स्थान स्वर्ग लोक है जहां मूढ़ पशु भाव के लोगों को सुशिक्षित किया जाता है। अश्वमेध के लिये स्पष्ट ही कहा है 'राष्ट्रं वा अश्वमेधः'।

यही वाक्य उद्धृत करके यही अर्थ ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में ऋषि दयानन्द ने किया है। धन्य है उस वेदोद्धार ऋषि को जिसने इन पामरों के अविद्याजाल को इस प्रकार छिन्न भिन्न कर दिया।

अब कहा जा सकता है कि विधि वाक्य के बलवान् होने के कारण 'शुन्धामि' यह मंत्र लिंग कुछ काम नहीं दे सकता। सो यह बात भी उपहसनीय है। क्योंकि यहां विधिवाक्य तथा मंत्र लिंग का विरोध नहीं किन्तु विधिवाक्य के अर्थ निर्णय में विवाद है। ऐसे समय में मन्त्रलिंग के प्राबल्य को कोई पण्डित पुंगव दुर्बल कहने का अधिकार नहीं रखता। हां, यदि विधि वाक्य का अर्थ अन्यथा निर्णीत हो जाता तो मन्त्र लिंग अवश्य कुछ दुर्बल हो जाता। किन्तु इस समय तो वह वज्र की भांति प्रतिवादियों के दुर्ग को भूमिसात् कर रहा है। अब लीजिये अवदान को। यह शब्द 'डुदाञ् दाने' 'दो अवखण्डने' 'देङ् रक्षणे' आदि अनेक धातुओं से सिद्ध होता है तथा यज्ञ में भिन्न २ देवता निमित्तक हवि के लिये प्रयुक्त होता है। अब इसको वर्तमान मीमांसक लोग 'दो अवखण्डने' से सिद्ध करते हैं। अर्थात् पशु के हृदय पाद नासिका जिह्वादि वह भाग जो भिन्न २ देवताओं के लिये खण्डित करके (काटकर) रखे जाते हैं'। हविः के लिये बार २ शब्द भी आता है "अवद्यति" और यह निस्सन्देह दो अवखण्डने का रूप है क्योंकि इस में श्यन् विकरण पड़ा है जो दैवादिक दो अवखण्डने का निर्धारक है। किन्तु यह मीमांसक भद्र पुरुष इस वाक्य को न मालूम क्यों भूल जाते हैं? शतपथ ब्राह्मण ने इस समान रूपता मूलक भ्रम के निवारणार्थ ही लिखा है:—

"ऋणꣳ ह वै जायते योऽस्ति। स जायमान एव देवेभ्य ऋषिभ्यः पितृभ्यो मनुष्येभ्यो। स यदेव यजेत तेन देवेभ्य ऋणं जायते। तद्ध्येभ्य एतत् करोति यदेनान्यजते यदेभ्यो जुहोति ॥२॥ अथ यदेवानुब्रवीत तेनर्षिभ्य ऋणं जायते तद्ध्येभ्य एतत् करोत्यृषीणान्निधि गोप इत्यनूचानमाहुः ॥ ३ ॥ अथ यदेव प्रजामिच्छेत। तेन पितृभ्य ऋणं जायते तद्ध्येभ्य एतत् करोति यदेषाꣳ सन्नताव्यवच्छिन्ना प्रजा भवति। अथ यदेव वासयेत। तेन मनुष्येभ्य ऋणं जायते तद्ध्येभ्य एतत् करोति यदेनान्वासयते यदेभ्योऽशनं ददाति स य एतानि सर्व्वाणि करोति स कृत कर्म्मा तस्य सर्व्वमाप्तꣳ सर्व्वं जितꣳ।

स येन देवेभ्य ऋणं जायते । तदेनांस्तदवदयते यद्यजतेऽथ यदग्नौ जुहोति तदेनांस्तदवदयते तस्माद्यत्किंचनाग्नौ जुह्वति तदवदानं नाम ”

(शतपथ कां १ अध्याय ७)

इस सन्दर्भ में ‘ तदेनाँस्तदवदयते” यह भाग अत्यन्त ध्यान देने योग्य है। यह प्रयोग देङ् रक्षणे धातु का है, जिस से स्पष्ट है कि अवदान शब्द में दो अवखण्डने का भ्रम न हो। इसलिये महर्षि याज्ञवल्क्य स्पष्ट कह रहे हैं कि आहुतियों का नाम अवदान इस लिये है क्यों कि वह रक्षा करती हैं (ऋण के बन्धन से बचाती हैं)। फिर न मालूम मीमांसक लोग यहां दो अवखण्डने का प्रयोग क्यों बताते रहे ?

अब तो केवल इतना कर्त्तव्य शेष है कि इस सन्दर्भ का अनुवाद कर दिया जाय। सो यों है :—

“पुरुष जन्म लेते ही ऋणी पैदा होता है। वह जन्म लेते ही चार का ऋणी होता है देवताओं का, ऋषियों का, पितरों का और मनुष्यों का। सो मनुष्य जो यज्ञ करता है सो देवताओं से ऋणी होता है। सो जो यज्ञ करता है जो आहुति देता है सो उन के निमित्त। जो दूसरों को पढ़ाता है सो ऋषियों का ऋणी होता है सो उन के निमित्त पढ़ाता है। इसी लिये अध्यापक को ऋषियों का निधि रक्षक कहते हैं। और जो सन्तान की इच्छा करे, सो पितरों का ऋणी होता है जो उन के निमित्त करता है जिस से उन की सन्तान-परम्परा टूटने नहीं पाती। जो घर में अतिथियों को बसाता है सो मनुष्य मात्र का ऋणी होता है सो यह उन के निमित्त करता है जो उन को घर में विश्राम देता है उन्हें भोजन कराता है। सो जो यह सब कर्म करता हो वही कृतकर्म्मा है। उसने सब कुछ पा लिया, सब कुछ जीत लिया सो क्योंकि देवों का ऋणी होता है। सो जो यज्ञ करता है वह यज्ञ (सङ्गठन) और आहुति उस की रक्षा करते हैं। इस लिये इस रक्षा करने के कारण जो कुछ आहुतियें अग्नि में की जाती हैं उन सब का नाम अवदान है।”

नहीं मालूम कि इस से अधिक स्पष्ट प्रमाण और क्या उपस्थित किया जा सकता है ?

" भूत का उपदेश "

(श्री० पं० मुक्तिराम उपाध्याय)

भूतों के उपदेश में नहीं कर्तव्य अपार।
सुखसाधन गुरु एक है, कर दे बेड़ा पार ॥ १ ॥

बात सुनो अब भूत की, मेल सेल सब भूठ।
पराधीनता बेचती, मन भर खाओ फूट ॥ २ ॥

कैसा अच्छा फल है यार, लेलो पका पकाया खालो। (ध्रुव०)

जो कोई इस फल को खाय, उस की चिन्ता सब मिट जाय,
सुख की सोवे नींद अघाय, जाग न आवे कोई जगालो ॥ १ ॥

इस को खा रावण लङ्केश, दुर्योधन जयचन्द्र नरेश,
पहुंचे स्वर्ग छोड़ निज देश, तुम भी प्रण उन के को पालो ॥ २ ॥

अंग्रेज़ों ने इस को त्याग, भोगे दुःख देश से भाग,
तज घर अपने का अनुराग, करना पड़ा प्रबन्ध यहां लौ ॥ ३ ॥

था यह राजों का आहार, अब तो घर घर हुआ प्रचार,
लागत थोड़ी, लाभ अपार, दे सर्वस्व कोई मंगवा लो ॥ ४ ॥

इस में गुण है एक अनूप, खाने वाला हो तद्रूप,
लो दृष्टान्त सुनो अनुरूप, जो विश्वास नहीं द्विज लालो ॥ ५ ॥

फूटे हिन्दु मुस्लिम खाय, हिन्दु सिक्ख गये अलगाय,
अब दो कोई इन्हें मिलाय, चाहे बल भी सभी लगा लो ॥ ६ ॥

खाओ हिन्दू इसे सुजान, गाओ मथुरा जी का गान,
बनते शेष रहे मुलतान, जो अब वे भी भ.ट बनवालो ॥ ७ ॥

खाओ वैदिक वीर विचार, पीछे करना जाति सुधार,
छोड़ो मांस न अध्वर धार, यह है छिद्र न मिटे संभालो ॥ ८ ॥

छुड़वाओ तुम मांसाहार, कर आक्षेपों की बौछार,
जिस से हो हठ का अवतार, अब मत प्रेम पूत को पालो ॥ ९ ॥

अङ्कुर देख दासता एक, देगी भरा टोकरा टेक,
जो मिल जावें छिद्र अनेक, फिर तो गड्डी भर मंगवालो ॥ १० ॥

बो दो अब सब बीज अमेल, घर २ उगे फूट की बेल,
अधिकारों का तीर उड़ेल, अच्छी खाद स्वार्थ की डालो ॥ ११ ॥

बस फिर सब ही इस को खांय, रोगी सहित रोग उड़ जांय,
हम ने ठीक कहा समझाय, मानो और सब को मनवालो ॥ १२ ॥

हम हैं दूर देश के भूत, शम को मारें सौ सौ जूत,
दम और भेद हमारे दूत, जब चाहो इन से बुलवालो ॥ १३ ॥

* प्रार्थना *

(श्री० गणेशदत्त शर्म्मा 'ध्रुव")

सुधि लो हरे! हत भाग्य भाराक्रान्त भारत वर्ष की,
कीजे शमन सन्ताप स्वामिन्! लाय सुघड़ी हर्ष की।
उबरे, अधोगति सिन्धु से, परतंत्रता बेड़ी कटे;
भाजन बने सुख शान्ति का विपदापदा रजनी मिटे। १ ॥
भोगे किसी भी भांति की मत यातना अब यह कभी,
विश्राम लें उन्नति विरोधी विघ्न बाधायें सभी।
बहु, बाल, वृद्ध विवाह पशु, कन्या, बधन की कुप्रथा,
नाना मतों की वृद्धि दुखदा घोर द्वेषानल तथा ॥ २ ॥
धारण करे प्राचीन मुनिजन वन्द्य वैदिक सभ्यता;
दुर्दिन भगाये दूर तजि आलस्य और असभ्यता।
अवकाश पावे वेगि दारुण दीनता के फन्द से;
भरदे हिमालय की गुफायें फिर तपोधन वृन्द से ॥ ३ ॥

वर्ण-सङ्कर किसे कहते हैं ?

(लेखक श्री पं० विश्वनाथ आर्योपदेशक)

आर्य जाति को वर्ण सङ्कर शब्द से ऐसी ही घृणा रही है, जैसे आजकल मुसलमानों को काफ़िर शब्द से है । अर्जुन ने श्री कृष्ण को युद्ध से अपने उपराम होने का एक हेतु यह भी बताया था कि इस युद्ध का परिणाम यह होगा किः—

स्त्रीषुदुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्ण सङ्करः ।

दुष्ट स्त्रियों से वर्ण सङ्कर उत्पन्न होंगे । वास्तव में जिस जाति में वर्ण सङ्करों का बाहुल्य होजाता है । वह निर्बल निस्तेज तथा खण्ड २ होकर कुछ काल में ही नष्ट भ्रष्ट होजाती है । अत एव प्रत्येक स्वजाति तथा स्वधर्म के प्रेमी का यह एक कर्तव्य होजाता है कि वह प्रयत्न से इस रोग की रोक थाम करता रहे ।

वर्ण सङ्कर शब्द का अर्थ है "वर्णतः सङ्करः" वर्ण का मेल । किसी व्यक्ति में जब किसी वर्ण का निश्चय न होसके तो वह वर्ण सङ्कर कहलाता है । मनु जी ने वर्ण सङ्करता के तीन हेतु बताये हैं । यथाः —

व्यभिचारेण वर्णानामवेद्या वेदनेन च ।

स्वकर्मणाश्च त्यागेन जायन्ते वर्ण सङ्करः ॥ १०१ ॥

अर्थ—वर्णों के व्यभिचार अर्थात् वर्णांतर सम्बन्ध अथवा स्त्री पुरुषों के व्यभिचार दोष और अवेद्यावेदन शास्त्र निषिद्ध विवाहों तथा वर्णों के अपने २ कर्म के त्याग देने से वर्ण सङ्कर उत्पन्न होते हैं । इन तीन प्रकार के पुरुषों के वर्ण का निश्चय नहीं होसकता । क्योंकि किसी एक वर्ण के गुण कर्म स्वभाव उन में दृष्टि-गोचर नहीं होते ॥

सदाचार का महत्व

उपर्युक्त तीन प्रकार के वर्ण सङ्करों में पहले दो प्रकार के अपने माता पिता के दोष से उत्पन्न होते हैं । इस प्रकार के अधर्म से उत्पन्न हुई सन्तान के वैदिक संस्कार क्या हो सकते हैं । दुराचार की सन्तान का झुकाव दुराचार की ओर ही होगा । ऐसी सन्तान देश, धर्म और जाति के लिये अत्यन्त हानिकारक होती है । उन के माता को राजा अथवा जाति की ओर से जितना भी दण्ड दिया जावे

थोड़ा है। परन्तु सन्तान का क्या दोष है? यद्यपि अपने माता पिता के व्यभिचार दोष से उन में धार्मिक वृत्ति की अधिक संभावना नहीं की जा सकती, परन्तु यदि कोई उन में से धर्म की ओर प्रवृत्त हो तो उसकी सहायता न करना भी अन्याय होगा। अत एव यदि ऐसी सन्तान अपनी वर्ण सङ्करता को दूर करना चाहे तो अपने सदाचार के प्रताप से इस में सफलता प्राप्त कर सकती हैं। और इस विषय में उनकी सहायता करना धर्म है। प्राचीन समय में ऐसे बहुत से दृष्टान्त मिलते हैं। जिन में सत्यकाम का बहुत प्रसिद्ध है। जब वह विद्याध्ययनार्थ गुरु के पास गया तो उस ने इस का गोत्र पूछा। इस ने कहा मुझे ज्ञात नहीं मेरी माता जानती होगी। उस से पूछ कर कह सकूंगा। गुरु आज्ञा से सत्यकाम माता के पास आया और उस ने सारा वृत्तान्त सुना कर अपना गोत्र पूछा। तब माता ने जो बताया था। सत्य काम उसे गुरु के पास आकर इस तरह कहने लगा:—

सा मां प्रत्यब्रवीदह चरन्ती परि चारिणी यौवने त्वामालभे।
साहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि।
जाबाला तु नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसि॥ छांदोग्य०

अर्थ—मेरी माता ने यह उत्तर दिया है कि मैंने यौवन अवस्था में सेवा का काम करती हुई ने तुझे प्राप्त किया था। मैं यह नहीं जानती कि तेरा क्या गोत्र है। केवल इतना जानती हूं कि मेरा नाम जाबाला है और तेरा नाम सत्यकाम। इस से पाया जाता है कि सत्यकाम की माता का किसी पुरुष से नियम पूर्वक विवाह नहीं हुआ था। यदि ऐसा न होता तो उस को गोत्र बताने में क्या कठिनाई थी। इस अवस्था में सत्यकाम को वर्ण सङ्कर ही मानना पड़ेगा। परन्तु उस में धर्म के लिये सच्ची लग्न थी। सुसंगति से उसका मन इतना शुद्ध हो चुका था कि उस ने सत्य २ कह दिया। तब गुरु ने कहा—

त ँ होवा च नैतद ब्राह्मणो वक्तुमर्हति
समिध ँ सौम्य हरेति॥

अर्थ—गुरु ने सत्यकाम से कहा। कि इस प्रकार सत्य बात ब्राह्मण ही कह सकता है। हे सौम्य (उपदेश ग्रहणार्थ) समिधा लेआ।

इस कथा से यह सर्वथा स्पष्ट है। कि जन्म से वर्ण सङ्कर अपने सदाचार

तथा तप से अपने कलङ्क को दूर करके ब्राह्मण जैसे उच्च वर्ण को भी प्राप्त कर सकते हैं।

अब अवेधा वेदन का भी एक दृष्टान्त रखना है। धर्म शास्त्र में अपने वर्ण में ही पिता के गोत्र तथा माता के पिण्ड को छोड़ कर विवाह करना लिखा है। मनु जो ने अनुलोम विवाह अर्थात् उच्च वर्ण के पुरुष के निचले वर्ण की कन्या के साथ विवाह को भी उचित ही समझा है। और इस के शतशः दृष्टान्त इतिहास में मिलते हैं। परन्तु प्रतिलोम विवाह अर्थात् निकृष्ट वर्ण के पुरुष के उच्च वर्ण की कन्या के साथ विवाह की सब धर्मशास्त्रों ने निन्दा की है। और ऐसे विवाहों की सन्तान को वर्णसंकर माना है। यथा—

ब्राह्मण्यां क्षत्रियात्सूतो वैश्या द्वैदेहिकस्तथा।
शूद्राज्जातस्तु चाण्डालः सर्वधर्मवहिष्कृतः॥ याज्ञ०

(अर्थ) ब्राह्मणी में क्षत्रिय से उत्पन्न सूत वैश्य से वैदेहिक शूद्र से चाण्डाल नाम का सब धर्मों से बाहर किया गया वर्णसङ्कर उत्पन्न होता है।

परन्तु इतिहास हमें बतलाता है कि ऐसी सन्तान भी सदाचार तथा तप के प्रभाव से उच्च वर्ण में गिनी गई। यादवों के क्षत्रिय वंश की कथा महाभारत तथा भागवतादि में इस प्रकार है।

नाहुषाय सुतां दत्वा सह शर्मिष्ठयो शमना।
तमाह राजन् शर्मिष्ठा माधास्तल्पेन कर्हिचित्॥भागवत् ९-१८-३०
यदुंतुर्वसुं चैव देव यानी व्यजायत।
द्रुह्युश्चानुश्च पुरुं शर्मिष्ठा वार्ष पर्वणी॥
यदोर्वंशं नरः श्रुत्वा सर्व पापैः प्रमुच्यते।
यत्रावतीर्णो भगवान् परमात्मा नराकृतिः॥ ९-२३-१९॥

अर्थ—शुक्राचार्य ब्राह्मण ने अपनी देवयानी नाम की कन्या को क्षत्रिय राजा ययाति से विवाह दिया। और वृषपर्वा राजा की कन्या को जिस ने देवयानी का अनादर किया था दण्डार्थ दासी के रूप में दिया। शुक्र ने राजा को बाधित किया कि शर्मिष्ठा से रतिकार्य न करे। ययाति के देवयानी ब्राह्मणी से यदु और तुर्वसु नाम के दो लड़के तथा शर्मिष्ठा से द्रुह्यु अनु और पुरु नाम के तीन

लड़के उत्पन्न हुए। उन में से यदु यादववंश के क्षत्रियों का पूर्वज हुआ। इस वंश की कथा से पुरुष पापों से छूट जाता है। क्योंकि इस में कृष्ण अवतार हुए॥

देखिए ! धर्म शास्त्र के अनुसार यादव वंश सूत नाम का वर्ण सङ्कर वंश होना चाहिये था। परन्तु वह उच्च क्षत्रिय वंश कहलाता है। और पौराणिक सिद्धान्त के अनुकूल इस में कृष्ण ने अवतार ले कर मानों उस के शुद्ध वंश होने की मुहर कर दी।

इन दो दृष्टान्तों से पाठकों को निश्चय हो गया होगा कि प्राचीन समय में वर्ण सङ्कर सन्तान को भी उन्नति करने में कोई बाधा नहीं थी। अतएव अब भी नहीं होनी चाहिये। परन्तु तृतीय प्रकार के वर्णसंकर जो मनु जी ने स्वकर्म त्याग के कारण बतलाये हैं वह वस्तुतः वर्ण सङ्कर हैं। वह जब तक स्वकर्म में दृढ़ न हों अन्य किसी उपाय से इस कलङ्क से छूट नहीं सकते। ऐसे स्वकर्म त्याग से उत्पन्न वर्णसंकरों का श्री कृष्ण जी ने भी गीता में उल्लेख किया है। यथा—

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
सङ्करस्य च कर्त्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः॥ गीता

अर्थ—हे अर्जुन ! यदि मैं स्वकर्म को छोड़ दूं तो मेरे पीछे सब लोग स्वकर्म त्याग से वर्ण संकर बन नष्ट भ्रष्ट हो जावेंगे।

क्या नियोग से उत्पन्न सन्तान वर्ण संकर होती है ?

आज कल हमारे पौराणिक भाई धर्म शास्त्र से विमुख हो कर मस्तिष्क को ताला लगा पक्षपात और हट धर्मी से नियोग की सन्तान को वर्ण सङ्कर का नाम देते हैं। और इस में दो प्रमाण उपस्थित किये जाते हैं। प्रथम यह कि मनु में लिखा है कि राजा वेन ने नियोग की प्रथा चला कर वर्ण सङ्करता फैलाई। द्वितीय पराशर स्मृति का यह प्रमाण है—

तद्वत्परस्त्रिया पुत्रौ द्वौ सुतौ कुण्ड गोलकौ।
पत्यौ जीवति कुंडस्तु मृते भर्तरि गोलकः॥ पराशर स्मृति ४-२२

अर्थ—पर स्त्री में किसी पुरुष से उस के पति के जीते हुए कुण्ड और मृत्यु पर गोलक नाम के वर्ण सङ्कर पुत्र उत्पन्न होते हैं। नियोग चूंकि पर स्त्री से होता है, अतएव नियोगज सन्तान भी वर्ण सङ्कर होगी।

समीक्षाः—यदि नियोगज सन्तान को वर्णसंकर मानोगे तो प्राचीन कौरव-

पाण्डवादि सब उच्च कुल इसी गणना में आजायेंगे। पराशर का कथन नियोग के अतिरिक्त पर स्त्री से व्यभिचार सम्बन्ध से उत्पन्न सन्तति के लिये है। यथा धर्म शास्त्र संगृहकर्ता ने इस के अर्थ में लिखा है। वेन राजा वाले श्लोकों को आर्य्य के किसी गताङ्क में हम मिलावटी सिद्ध कर चुके हैं। परन्तु आज हम इस विषय में मनु के कुछ और प्रमाण उपस्थित करते हैं जिन से स्पष्ट सिद्ध हो जावेगा कि नियोगज सन्तान वर्ण सङ्कर नहीं होती। साथ ही वेन वाले श्लोकों की प्रक्षिप्तता भी स्वयं सिद्ध हो जावेगी॥

अनियुक्ता सुतश्चैव पुत्रिण्याप्तश्च देवरात्।
उभौ तौ नार्हतो भागं जार जातक कामजौ॥ मनु ९-१४३
नियुक्तायामपि पुमान्नार्यां जातोऽविधानतः।
नैवार्हः पैतृकं रिकूथं पतितोपादितोहि सः॥ १४४
याऽनियुक्ताऽन्यतः पुत्रं देवराद्वाप्यवाप्नुयात्।
तं कामज रिकूथीयं वृथोत्पन्नं प्रचक्षते॥ १४७

अर्थ—जो स्त्री विना नियोग के पुत्र उत्पन्न करती है, अथवा सन्तान होने पर देवर से सन्तान उत्पन्न करती है वह दोनों पुत्र जारज तथा कामज कहलाते हैं। इन को भाग नहीं मिलना चाहिये। १४३। नियुक्त स्त्री में भी विधि का उल्लंघन कर के जो सन्तति उत्पन्न होती है वह पतितोत्पादित भी पितृ भाग की भागी नहीं होती। १४४। जो स्त्री विना नियोग के देवर अथवा अन्य से सन्तान उत्पन्न करती है वह कामज वृथोत्पन्न पिता के रिक्थ की भागी नहीं होती।

इन श्लोकों में मनु जी ने स्पष्ट रूप से विना नियोग अथवा नियोग की विधि का उल्लंघन करके उत्पन्न की हुई सन्तति को ही जारज, कामज आदि वर्ण-संकर तथा अरिकूथीय सन्तान माना है और—

सोऽसौ क्षेत्रजौ पुत्रौ पितृ रिकूथस्थ भागिनौ। मनु ९-१६५

औरस तथा क्षेत्रज (नियोगज) पुत्र पिता के धन के भागी हैं। यह कह कर यहां नियोग की सन्तान को वर्ण संकर कहने वालों का मुख पहले ही बन्द कर दिया हुआ है। इस से नियोग की सन्तति को वर्ण संकर कहने वालों को कुछ लज्जा आनी चाहिये।

हमने उपर्युक्त धर्मशास्त्र तथा इतिहास के प्रमाणों से सिद्ध कर दिया है कि वर्ण संकरता के कारण व्यभिचार दोष अवेद्यावेदन तथा स्वकर्म त्याग हैं। इस में प्रथम के दो सदाचार तथा तप से उच्च वर्ण को प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु स्वकर्म त्यागी का कोई ठिकाना नहीं। यदि इस वर्ण संकरता के तीसरे नियम को चरितार्थ करने लगें तो आज कल के प्राय सभी वर्णाभिमानी वर्ण सङ्कर ही सिद्ध होंगे। हम शोक से देख रहे हैं कि पौराणिक प्लेट फार्म पर वर्ण संकरता की दुहाई दे कर वर्ण के झूठे अभिमान के विरुद्ध आर्य समाज में जो अन्दोलन हो रहा है, तथा जातिपाति के झूठे बन्धनों को तोड़ कर गुण कर्म स्वभावानुसार सच्ची वर्ण व्यवस्था की स्थापना के लिए जो यत्न किया जा रहा है इस का विरोध किया जाता है। परन्तु जन्म से वर्ण व्यवस्था मानने पर जो स्वकर्म त्याग से वर्ण संकरता उत्पन्न हो गई है उस की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया जाता। परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि हमारे पौराणिक भाई आर्य समाज पर आक्षेप करनेकी बजाय अपने घर की वर्णसंकरता को दूर करें। स्मरण रखना चाहिये कि जब तक शास्त्रोक्त गुण कर्म स्वभावानुसार वर्ण व्यवस्था के सिद्धान्त को नहीं माना जावेगा यह वर्ण सङ्करता कभी दूर नहीं हो सकेगी॥

क्रान्ति

(श्री० पण्डित जनमेजय विद्यालंकार, कानपुर)

बहुत विचार करने पर भी पहिले यह नहीं मालूम होता था कि इस्लाम, कुरान, मसजिद या मुहम्मद के नाम पर क्यों हज़ारों मुसल्मान एकत्रित होकर हिन्दुओं के विरुद्ध मरने मारने को तैयार हो जाते हैं तथा मन्दिरों शिवालयों को तोड़ा जाता देखते हुए भी क्यों हिन्दू लोग जमा होकर अपने देवस्थानों की रक्षा नहीं करते। जहां मुसल्मानों को यह पढ़ाया जाता है कि इस्लाम की बेइज्जती देखने से मर जाना अच्छा है वहां हिन्दुओं के धर्म ग्रन्थों में भी ऐसी बातें भरी पड़ी हैं कि धर्म की तबाही और अधर्म की उन्नति को जो खड़ा २ देखा करता है वह मुर्दे के समान है। परन्तु अनुभव इससे उलटा क्यों सिद्ध होता है? क्या कारण है कि गत दो तीन वर्षों में इस्लाम का प्रश्न आने पर मुसल्मानों ने मरना मारना स्वीकार कर लिया परन्तु हिन्दूधर्म के वास्ते गत दो तीन वर्षों के झगड़ों

में किसी भी हिन्दू को मरने के लिये तैयार न पाया। आखिर क्या वजह है कि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी की आज्ञा से गुरु के बाग में सैकड़ों बहादुर सिक्ख शहीद हो गये परन्तु वर्तमान हिन्दूधर्म के लिए मरने को तैयार लोगों की संख्या प्राय नही के ही बराबर है। महाशय मुहम्मदअली तो कांग्रेस के सभापति की हैसियत से आधे अछूतों (भूल से अछूत समझने वालों) को हड़प कर जाने की सलाह मुसलमानों को देते हैं परन्तु अनेक राजनैतिक हिन्दू नेता क्यों शुद्धि और संगठन के कट्टर विरोधी बन गये हैं। यह कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनका उत्तर सोचना ही पड़ेगा, क्योंकि इन प्रश्नों को हल किए बिना हिन्दू जाति इस भीषण कशमकश वाले जीवन संग्राम में चिरकाल तक नहीं ठहर सकती। "हिन्दुओं में धर्म प्रेम नहीं है" "हिन्दू लोग डरपोक और कमज़ोर हैं" "हिन्दू नेतागण धर्मद्रोही व जातिद्रोही हैं" इस प्रकार की तमाम बातें कह देने ही से हम कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकते। हमको असली कारण को जानना ही पड़ेगा कि क्यों हिन्दू जनता तथा हिन्दू नेतागण भी हिन्दू धर्म के लिये—मरना तो दूर रहा—किसी प्रकार का कष्ट तक उठाने को भी तैयार नहीं होते।

अभी थोड़े दिन हुए हमें संयुक्त प्रान्त के एक बहुत बड़े सुप्रतिष्ठित राजनैतिक नेता महाशय से, जोकि हिन्दू थे, मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। जब उनसे इसी विषय पर बातचीत छिड़ी तो कुछ देर के पश्चात् वे लम्बी सांस लेकर बड़े दुःख से यह बोले कि "भाई! तुम चाहे कुछ भी कहो परन्तु आज कल का जो हिन्दू धर्म है उसमें तो कोई भलामानस सुख से रह नहीं सकता। जब तक हिन्दूमहासभा अपने प्रस्ताव द्वारा, और हिन्दू जनता अपने आचरण द्वारा यह सिद्ध नहीं कर देती कि सब हिन्दू भाई—मेहतर से ब्राह्मण तक—बराबर हैं, कोई भी छोटा, या बड़ा नहीं है, तथा जब तक हिन्दु जाति से छूत छात दूर नहीं होती, और जब तक मेहतर से ब्राह्मण तक सबको एक साथ रहने,एक साथ पढ़ने,एक साथ खाने पीने आदि के सब अधिकार पूरी तरह से प्राप्त नहीं हो जाते, तब तक कोई भी समझदार आदमी हिन्दु धर्म के लिये कुछ भी कष्ट कभी नहीं उठा सकता। कम से कम मैं तो वर्तमान हिन्दू धर्म के लिये अपनी जान नहीं दे सकता"।

कितनी सच्ची स्पष्ट बेधड़क और निष्कपट उक्ति है! एक सच्चे हृदय की सच्ची आवाज़ है। एक पवित्रात्मा का हार्दिक उद्गार है। परन्तु जब वर्तमान हिन्दू धर्म के ठेकेदार बनने वाले धूर्त पण्डे पुरोहितों का ध्यान भी कभी ऐसी

उक्तियों पर जावे तब न! परन्तु जब तक उनके खाने के लिये हलवा, पूड़ी, घी दूध पहुंचता रहेगा तब तक उनको इन बातों से क्या मतलब कि हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए कोई भी व्यक्ति कुछ करता है कि नहीं। सच तो यह है कि आज कल का हिन्दू धर्म न तो हिन्दू है और न धर्म ही। कई सौ साल हुए जब कि किसी नास्तिक विद्वान् ने कहा था कि हिन्दूधर्म "बुद्धि पौरुष हीनानां जीविका" अर्थात् बेवकूफ़ और कमज़ोर आदमियों की रोटी कमाने का एक तरीका मात्र है। हमें नहीं मालूम कि उस समय का हिन्दूधर्म कैसा था, परन्तु आज कल का हिन्दूधर्म तो वास्तव में ही पेटुओं निकम्मों ढोंगियों और मिथ्याभिमानी धूर्तों के लिए रोटी कमाने का एक तरीका मात्र ही है और कुछ नहीं। लोगों को बहका रक्खा है कि हमें महाराज, पण्डित, गुरू जी कहा करो चाहे हम घर घर रोटी बनाते फिरते हों, और चाहे हम चपरासी हों। हमारे पैर छुआ करो चाहे हम निरक्षर मूर्ख डरपोक भी हों। परन्तु चमार भङ्गी को मत छूना चाहे वह हम से हरेक ही बात में बढ़ा चढ़ा क्यों न हो। हमें दान दो, हमें खिलाओ, हम ब्राह्मण हैं, हमारी छुई हुई हरेक वस्तु पवित्र है तथा अन्य लोग छोटी जात के हैं, फलाने के हाथ का मत खाओ, फलानी बिरादरी वालों को मत छुओ, फलानों को लिखने पढ़ने का कोई अधिकार नहीं है, ऐसी ऐसी अनेक बेहूदा बातें बना बना कर कुछ थोड़े से स्वार्थी लोगों ने तमाम दुनियां में हिंदूधर्म की मट्टी खराब करदी है। सच मुच ही कोई समझदार आदमी आज कल के हिन्दूधर्म के लिए अपने प्राण नहीं दे सकता। आजकल के हिन्दूधर्म को सिर्फ वही लोग प्रतिष्ठा की नजर से देख सकते हैं जिन को इस की ओट में किसी प्रकार का लाभ कमाने का मौका है। जनता के दिल में ऐसे हिन्दूधर्म के लिए प्रतिष्ठा कभी नहीं हो सकती जिस के अनुयायी होने पर उन्हें एक खास छोटे से जनसमुदाय के प्रति जन्मभर के लिए गुलाम बन जाना पड़ता हो। इस बीसवीं सदी में जनता योग्यता और समानता को पूजने वाली होगई है। अतः जो धर्म जनता को किसी खास जनसमुदाय की गुलामी करना सिखायेगा उस धर्म को जनता कभी भी प्रतिष्ठा की नज़र से नहीं देख सकती। फिर उस धर्म के लिए जान देना तो बहुत ही दूर की बात है।

इसलिए हिन्दू नेता सचमुच हिन्दू धर्म को संसार में यदि प्रतिष्ठित धर्म बनाना चाहते हैं तो इस धर्म की मौजूदा हालत को उन्हें बिलकुल ही बदल

देना होगा। एक बहुत बड़ी क्रान्ति की आवश्यकता है जो इस धर्म में शीघ्र होनी चाहिए। एक बहुत ज़ोरदार हलचल और बेढब उथल पुथल की आवश्यकता है ताकि हिन्दूधर्म में जो बातें कूड़ा करकट और घास फूंस की तरह व्यर्थ की आगई हैं वे सब नष्ट भ्रष्ट होकर ख़ाक में मिल जाएं। ताकि यह धर्म अपने असली रूप "वैदिक धर्म" की शकल में ही जनता के सामने आवे। यह निश्चय है कि उस वैदिक धर्म के लिए समझदार लोग अवश्य ही सब प्रकार के कष्ट उठाने और अपने प्राण तक न्योछावर करने को तैयार होंगे। उस वैदिक धर्म में ढोंगी, निकम्मे, पेटू और तिलकधारियों के चुंगल से निकलकर जनता अपना भला बुरा स्वयं सोचने की आज़ादी हासिल करेगी। उस समय जनता की बागडोर सच्चे ब्राह्मणों—जन्म के ब्राह्मण नहीं किन्तु गुणकर्मानुसार बने हुए महात्मा त्यागी महानुभावों—के हाथ में होगी। उस क्रान्ति के बाद कोई अछूत न होगा, सब बराबर हो जावेंगे। भोजन, निवास, विद्या, शिक्षा आदि में सब को समानता-बिलकुल समानता-होगी। कोई भी व्यक्ति बिना विशेष योग्यता प्राप्त किए ही, केवल जन्म के आधार पर, ब्राह्मण, पुरोहित, पण्डित या महन्त आदि कभी न बन सकेगा। परन्तु योग्यता प्राप्त करने पर हरेक मनुष्य उच्च से उच्च स्थान पा सकेगा। वह आर्य धर्म, वह वेदोक्त, मुक्तिप्रद, सच्चा, कल्याणकारी, समानतामय, उत्तम आर्यधर्म तभी दिखाई देगा जब वर्तमान हिन्दूधर्म में बड़ी भारी सामाजिक क्रान्ति हो जावे। हरेक बालक, नवयुवक, वृद्ध, स्त्री पुरुष सबका कर्तव्य होना चाहिए कि वह इस उथल पुथल और क्रान्ति के करने में यथाशक्ति अधिक से अधिक भाग लेकर पुण्य के भागी बनें॥

———

चितावनी।

(लेखक कविवर्य श्री पं० भगवानदीन जी मिश्र " दीन कवि ")

ऐसो फेरि समय नहिं रहि है।

आकर राज-समाज-साज-सुख काज कछू नहिं ऐहै॥ ध्रुव॥
तजि देहैं वनिता, सुत, बान्धव अङ्ग न सङ्ग लगै है।
कठिन कराल काल वश ह्वै खल! तू पल में छलि जै है॥ १॥
होत न कन्त१ वसन्त१ कन्त२ बिन कौन बसन्त२ बनै है।
जो करिहै सनेह प्रियतम-पद " दीन " कवौं तरि जै है॥ २॥

१ कन्त-सुन्दर। २ कन्त-प्रियतम। १ वसन्त-वसन्त महोत्सव। २ वसन्त-चिकनी चुपड़ी बातें।

" जातपात तोड़क मण्डल "

[ले० श्री बृहद्‌द्रुड संयमी, साहित्याचार्य, आर्योपदेशक]

आर्य्यसमाजी तो उक्त मण्डल को वर्ण व्यवस्थान्तर्गत मान कर सन्तुष्ट हैं, परन्तु मनचले पौराणिक भाईयों के हृदयों में मण्डल का नाम कांटे के समान खटक रहा है। मैं नहीं समझता, कि इतनी बेसमझी क्यों है जब कि प्राचीन काल में भी मण्डल का काम बड़े वेग से हो रहा था। आप के समस्त पुराण साक्षीभूत हैं। ज़रा विचारिये, (१) शुक्राचार्य्य ब्राह्मण ने अपना विवाह राजा प्रियव्रत क्षत्रिय की उर्जस्वती नाम्नी कन्या से किया, (२) शृङ्गी ब्राह्मण ने मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी क्षत्री की बहिन शान्ता से विवाह किया (३) यमदग्नि ब्राह्मण ने सूर्य वंशी राजा रेणुका की कन्या से विवाह किया, ऋचीक ब्राह्मण ने राजा गाधी क्षत्रिय की कन्या सत्यवती से विवाह किया, ( ) पिप्पलाद ब्राह्मण ने क्षत्रिया पद्मा से विवाह किया, ६) अगस्त ब्राह्मण ने क्षत्रिया मुद्रालोपा से विवाह किया, ७) रयिक्क ब्राह्मण ने जान श्रुति क्षत्रिया राजा की कन्या से विवाह किया, (८) सौभरि ब्राह्मण ने मान्धाता क्षत्रिय की कन्याओं से विवाह किया! इत्यादि। इन उदाहरणों में ब्राह्मणों ने क्षत्रिय कन्याओं से विवाह किया है। अब देखिये (१) राजा प्रियव्रत क्षत्रिय ने विश्वकर्मा ब्राह्मण की पुत्री बर्हिष्मती से विवाह किया, (२) राजा नीप क्षत्रिय ने शुक्र ब्राह्मण की कन्या कृत्वी से विवाह किया, (३) राजा ययाति क्षत्रिय ने शुक्र ब्राह्मण की पुत्रि देवयानी से विवाह किया, इत्यादि। यहां क्षत्रियों ने ब्राह्मण कन्याओं के साथ विवाह किया है! यह सुतरां स्पष्ट हो गया। अब ज़रा आगे बढ़िये, ब्राह्मण दीर्घतमा और शूद्र कन्या के संबन्ध से कक्षीवान् पैदा हुए, और कक्षीवान् ने क्षत्रिय राजा की पुत्री से विवाह किया। अब आप ही विचारें कि कक्षीवान् को हम ब्राह्मण कहें या शूद्र? यदि ब्राह्मण कहें, तो वर्तमान शब्दों में जातपात तोड़ के इस ने क्षत्रिय कन्या से विवाह किया। और अगर शूद्र कहें? तो सचमुच क्षत्रियों ने अपनी पुत्रियों का शूद्रों के साथ संबन्ध कर के हमारे मण्डल का चिरस्थायी प्रचार किया है! और प्रमत्ता ब्राह्मणी का संबन्ध चाण्डाल नाई के साथ हुआ, और मातङ्ग की उत्पत्ति हुई। अब आप

मातंग को ब्राह्मण कहें या नाई कहें, यह आप की इच्छा परन्तु सभ्य जगत् मातंग को ब्राह्मणों से भी उच्च ऋषि मानता है। कर्दम क्षत्रिय की कन्या अरुन्धती वशिष्ट (वेश्या पुत्र) की शादी हुई, इस संबन्ध से शक्ति नामक पुत्र पैदा हुआ, जिस का विवाह अदृश्यन्ती से हुआ, इस संबन्ध से पराशर की उत्पत्ति हुई! अब भला बतलाओ हम शक्ति को क्षत्रिय कहें या वर्णसंकर? यदि क्षत्रिय कहें, तो साफ़ तौर से जात पात को तोड़ कर शक्ति ने चाण्डालिनी कन्या अदृश्यन्ती से विवाह किया, और अगर अदृश्यन्ती को चाण्डाल कन्या नहीं मानते तो फिर क्षत्रिय शक्ति और अदृश्यन्ती के सुपुत्र पराशर को चाण्डाल क्यों बताते हो?

और यदि शक्ति को वर्णसंकर मानते हो, तो तपस्या तथा विज्ञान से ब्राह्मण बने हुए वशिष्ट और क्षत्रिया अरुन्धती के सुपुत्र को वर्ण संकर के नाम से पुकारना आप का ही अपमान है। अपमान परिहार पक्ष में आप शक्ति को ब्राह्मण या क्षत्रिय कहेंगे, अब तो और भी जात पात तोड़क मण्डल की सिद्धि हो गई, क्योंकि ब्राह्मण या क्षत्रिय शक्ति ने अदृश्यन्ती चाण्डाल कन्या से शादी की है।

मैंने अनेक उदाहरणों से सिद्ध किया है, कि जात पात तोड़क मण्डल का कार्य प्राचीन काल में पूर्ण यौवन पर था, और गुण, कर्म, स्वभावानुसार तथा नीत्यनुसार होना चाहिये। हां इतना संशोधन अवश्य चाहता हूं, कि इस का नाम "जात पात तोड़क मण्डल" न रख कर "वर्ण विभेदक मण्डल अथवा वर्ण विद्रावक मण्डल" होना चाहिये।

पौराणिक भाइयो! जब तक उक्त उदाहरण संसार में उपस्थित हैं, तब तक आप इस के विरोध में आन्दोलन नहीं कर सकते। मुझे अच्छी तरह मालूम है कि संसार परोक्ष में वर्ण विभेदक संबन्ध का प्रमाण बना हुआ है। और प्रत्यक्ष में इस का विरोधी है। मुझे पूर्णाशा है कि समय आप को ऐसे संबन्ध से सम्मत कर देगा, जैसे विधवोद्वाह, स्त्री शिक्षा, अछूतोद्धार, आदि से सहमत कर दिया। हिन्दू जाति (आर्य जाति) की अवस्था वर्तमान में डांवाडोल है। भला इसी में है कि आप इस मण्डल के प्रत्यक्ष में हामी बनें, अन्यथा समय ने आप के मुख से "हां" कहलवा दिया, तो इस में आप की वीरता नहीं। मुझे आशा है, कि आप हिन्दु जाति को सुन्दर, संगठित, और सर्व शिरोमणि बनाने के लिये ऐसे वर्ण विभेदक संबन्ध को अपनाने का प्रयत्न करेंगे॥

'स्वर्ग की घड़ी'
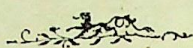
[ले० — दर्शक]

(१)

ऊर्मिला का विवाह करने को कर दिया गया। बलदेव आए, डोला ले गए परन्तु उन्हें तो दूसरे दिन विदेश जाना था और पत्नी को साथ रखने की संभावना न थी। उन के पिता का धन्धा भी विदेश ही में था। वह भी सपरिवार उन के साथ गए। श्वसुर ने भी घर विदेश ही में बनाया था। यह वहां नौकर थे परन्तु इन की छुट्टी लंबी थी। यह रह गए। ऊर्मिला इन की इकली सन्तान थी समधी को समझा बुझा कर उसे भी अपने पास रख लिया।

ऊर्मिला के पिता को इंडिया के कार्य रोकते गए। एक के पीछे दूसरी, दूसरी के पीछे तीसरी आवश्यकता आती गई। यह अपना अवकाश बढ़ाते चले गए। यहां तक कि चार वर्ष इन्हें भारत में रहते हो गए। इस के पीछे यह आफ़्रिका को चले और ऊर्मिला को साथ ले गए।

(२)

इस समय तक बलदेव एक कमाऊ व्यापारी बन चुका था। रूई के व्यापार में उस ने अच्छा नाम पैदा किया था। एक कार्यालय का व्यवस्थापक और वहां बड़े अमन चैन से रहता था। ऊर्मिला के आफ़्रिका पहुंचने पर उस ने उस का और उस के परिवार का सज धज से स्वागत किया।

ऊर्मिला ने बहुत शीघ्र पति गृह को जा संभाला। सच पूछो तो विवाह अब हुआ था। वह भी कब तक? एक दिन एक रात पति पत्नी इकट्ठे रहे, दूसरे दिन बलदेव को मैलेरिया हुआ। ऊर्मिला ने रात दिन जाग २ कर सेवा की। मैलेरिया काला ज्वर बन गया यहां तक की ठीक चार मास ज्वरित रह कर बलदेव ने प्राण देदिये। ऊर्मिला का पतिलोक में प्रवेश वास्तव में वैधव्य-लोक में प्रवेश था।

अब वह ससुराल में रहने लगी। ससुर आते तो घूंघट कर लेती। देवर आवे तो घूंघट कर लेती। कोई भी पुरुष आता, घूंघट कर लेती। भला

आर्यों के घर में घूंघट क्या? ऊर्मिला का पुरुष-संसार अब समाप्त हो चुका था। वह उस पर दृष्टि न डालना चाहती थी।

पांच मास पश्चात् ऊर्मिला के लड़की हुई। वह उस के मन परचाव का अच्छा साधन थी। ऊर्मिला दिन रात उस के साथ खेलती रहती। उसकी सास उसे इस खिलौने में रत देख मन ही मन खुश होती।

(३)

पिता माता को ममता ने ज़ोर दिया। ऊर्मिला पुत्री सहित मायके में आ गई। लड़की को उस को मां ने संभाल लिया। यहां घूंघट का क्या काम? बड़े छोटे उसे अपनी पुत्री समझते थे। वह बिना संकोच सब से अपने कौमार-काल की तरह हिल मिल गई। उसे स्वयं यह भूल गया कि वह एक लड़की की मां है। वह और उस की लड़की अब मानो उसकी मां की सहोदर लड़कियां थीं। उसका भोला भाला बचपन कोई दिन में फिर लौट आया।

पिता ने सोचा था समय काटना कठिन होगा। उसे एक अलग कमरा दे दिया और उस में एक अच्छा पुस्तकालय लगा दिया। एक सितार लादी और एक गानाध्यापक नियत किया जो ऊर्मिला की माता का साथ बैठ कर ऊर्मिला को सितार सिखलाता।

पहिले कुछ रोज़ प्रभु-भक्ति के भजन चलते रहे। जब सूक्ष्म और संकीर्ण रागणियां चलीं तो प्रेम की गीतियों के बिना काम न चल सक्ता था। वही गीतियां ही तो गन्धर्वाचार्यों ने स्वर और ताल के यन्त्रों में से निकाल छोड़ी थीं। नवीन गीतियां न उस प्रकार की बनती ही हैं, न गान विद्या विशारद उन को लय आदि की सान चढ़ाने में उतना कष्ट उठाते हैं। आज कल के कवि गायक नहीं, और गायक कवि नहीं। वेदान्त के अन्ध और लूले का दृष्टान्त इन्हीं पर घटता है। लूला अन्धे की पीठ पर सवार होने में नहीं आता।

ऊर्मिला का परिवार ऐसे शुष्क आर्य समाजियों का न था जो प्रेम का नाम सुनते ही नाक भौं चढ़ा लेते। वह प्रेम को एक पवित्र वेदना मानते थे जो आत्मा के उत्कर्ष का कारण होता है। ऊर्मिला को यह गीत बहुत ही प्यारा हो गया:—

डाल न गल में माल, सखी साँवर को।
बाँह गले में डाल, सखी साँवर को॥

आँखे तरस रहीं दर्शन को।
चेत रही निशि दिन चितवन को।
भाल भाल दिशि भाल, सखी साँवर की॥

(४)

ऊर्मिला के कमरे में एक बड़ा दर्पण लटकता था। साधारण बनाव सिंगार की भी मनाई न थी। यौवन दिन प्रतिदिन विकसित होरहा था। एक दिन बाल कन्धों पर डाले दर्पण के आगे खड़ी थी। दृष्टि अपने गोरे गुलाबी गालों पर गई, श्वेत गले पर गई, उभरी छाती पर गई, सारे शरीर की उठान पर गई। मुख से ठंडी सांस निकली। यह रूपराशि हवा में उड़ जाने के लिये है? इस गले के लिये बाहु नहीं बने? किसी भुज-पाश में इस कटि को लचकना नहीं तो इसे लचकीलापन दिया क्यों गया है?

सितार उठाई और गाने बैठी:—

डाल न गल में माल, सखी साँवर की।
बांह गले में डाल, सखी साँवर की॥

उर्मिला की उस समय की चेष्टाएं, अंग-भंगियां अत्यन्त आतुर, अत्यन्त विह्वल, अत्यन्त वेदनाजनक, अत्यन्त मनोहारक थीं। और किसी का मन रीझा या न रीझा, ऊर्मिला ने उन भाव भंगियों की प्रतिकृति दर्पण में देखी और स्वयं उन पर आसक्त हो गई। उसे आज अपने गुप्त सौंदर्य का ज्ञान हुआ था, अपने अमोघ मोहन-मन्त्र का पता लगा था।

पिता ने गीत के आध्यात्मिक अर्थ बताए "पुत्रि! यहां सांवर परमात्मा हैं। उनका बाहु उनका व्यापक प्रेमपाश है। वेद ने ही उन्हें सहस्रबाहु कहा है। इन बाहुओं का आकार कविकल्पित है।" इत्यादि। परन्तु ऊर्मिला तो आज अनङ्ग प्रभु की नहीं, साकार अङ्गवान् प्रेम भगवान् की की पुजारिन हो रही थी। उस की रोमाञ्चित कटिवल्ली साकार है तो उसे आश्रय देने को भी साकार रोमाञ्चित बाहुबेल चाहिये।

उर्मिला अब से अधिक बन ठन के रहने लगी। माता पिता को इस से आश्चर्य होने के स्थान में आनन्द था। उन्होंने अंग्रेज़ी में पढ़ा था, सौन्दर्य स्थायि प्रसाद है।

A thing of beauty is a joy for ever.

उन्होंने अपनी लड़की को विधवा कभी समझा ही न था। और फिर विधवा भी सदा रोती धोती रहे, यह कहां का न्याय, कहां का सामाजिक सदाचार है? यदि ऊर्मिला की इच्छा हो तो उन्हें पुनर्विवाह में भी कोई आनाकानी न थी। वह समाज-सुधार का केवल नाम ही न रटते थे, प्रत्येक नियम को क्रिया में लाने को तैयार थे।

(५)

कमलनयन एक नवयुवक था। उस की स्त्री का देहान्त हुए वर्षभर होगया था। वह गुरुकुल का स्नातक था, धर्म से पूरा अभिज्ञ। उस ने प्रण किया था कि फिर विवाह नहीं करना। वह अपना जीवन आर्यसमाज के अर्पण कर चुका था। व्याख्याता उत्तम श्रेणी का, वक्ता अद्वितीय, सदाचारी, सद्विचारी और फिर सुरूप। उस की बात २ पर लोगों को विश्वास था। पुत्री पाठशाला में पग न धरता मृतस्त्रीक पुरुष का यह काम नहीं। लोगों के घर में जाना पत्नी के देहान्त-दिवस से बन्द कर दिया था।

ऊर्मिला के पिता समाज के प्रधान थे और उन से इस का विशेष प्रेम था। कमल का उन के हां आव जाव था परन्तु ऊर्मिला से वह सदा बचता था। ऊर्मिला के पिता स्वयं भी इस विषय में पूरे सावधान थे।

एक दिन ऊर्मिला की मां बैठक ही में आ गईं। वहीं दूध आदि मँगाया गया और वह लाई ऊर्मिला। दोपहर ढल रही थी, कमलनयन ने जाने की आज्ञा चाही।

ऊर्मिला के पिता ने ठहरने का आग्रह किया और कहाः—पण्डितजी! आप को ऊर्मिला का गाना सुनवाएं?

कमलनयन जाने को और उत्सुक होगया परन्तु हृदय में न जाने, क्या गुद्गुदी सी हुई, थोड़ी देर के लिये बैठ गया। कमलनयन को गान सुनने की चाह थी परन्तु विमला (उस की मृतपत्नी का नाम था) के देहान्त के अनन्तर उस ने राग का नाम नहीं लिया। आज गान की बात सुनी तो विमला आँखों के आगे आ गई। आँखें झुकाकर मौन धारे बैठ रहा।

ऊर्मिला सितार लाई और गाने लगीः—

डाल न गल में माल सखी सांवर की।

पिताः—बाहु तथा माल आदि यहां औपचारिक हैं। कवि का अभिप्राय प्रभु-भक्ति से है। शुद्ध निराकार की उपासना कहीं है।

इन वृद्ध महात्मा को क्या पता कि युवावस्था साकार की उपासक होती है, निराकार का ध्यान बुढ़ापे में आता है जब आँखें आकार-प्रत्यय से हार चुकती हैं।

कमलनयन ने यही गीत विमला से सुना था। समाप्त होते ही रो दिया। और फिर महीनों ऊर्मिला के घर में पाँव नहीं रखा।

(६)

ऊर्मिला के पिता के अनुरोध पर भी जब कमलनयन ने इन के घर पधारना स्वीकार न किया तो यह उसके पास कुछ समय स्वयं बैठ रहे।

पिता—भला इतना तो बताइये कि आप उस दिन रो क्यों पड़े थे?

कमल - बस यों ही।

पिता—तो भी। क्या वह गाना अच्छा नहीं लगा? या आप का विचार है कि इस प्रकार के प्रेम के गीत लड़कियों को गाने न देने चाहियें? यदि ऐसा हो तो हम ऊर्मिला का गाना आज ही से बन्द करा देंगे।

कमल—(बहुत समय चुप रहकर) प्रधान जी! आप मुझे पितृवत् हैं। आप से परदा क्या? न केवल वह गीति ही विमला की थी, किन्तु वही लय, वही राग, वही स्वर-भंगी, वही तान, वही लपेट सुनते ही मुझे विमला की उपस्थिति का भ्रम हुआ। आँख उठाकर देखा तो बहिन ऊर्मिला थी। विवश रो दिया। तब से विकल रहता हूं। विमला की स्मृति अब पीछा नहीं छोड़ती! आप के घर अब क्या आऊं? स्वयं बुद्धिमान् हो, समझ सकते हो।

'कुछ ऐसी बात तो नहीं' कहते २ वृद्ध प्रधान महोदय वहां से चल दिये। उन के हृदय में विचारों का एक नया प्रवाह उठाः—यदि इनका विवाह हो जाए? यह मृतपत्नीक है, वह विधवा है। यह एक वर्ष विवाहित रहा है, वह एक रात। इस के सन्तान नहीं, उस की एक लड़की है जिसे वह स्वयं भूल चुकी है। लड़की तो अब हमारी है। मैं ऊर्मिला को अक्षतयोनि ही कहूंगा, यह भी अक्षत वीर्य सा है इस का प्रण है अविवाहित रहने का सो यौवन का आवेशमात्र समझो। रही समाज की सेवा सो यह चाहे अवैतनिक करे, परमात्मा ने सब कुछ दे रखा है।

इन विचारों में घर आ गया। सीधे बैठक में गये और झट ऊर्मिला और उसकी माता को बुलाया। थोड़ी देर चुप रहे, फिर हंसकर कहने लगे 'पता है कमलनयन उस दिन क्यों रोया था? उसे विमला का स्मरण आ गया। ऊर्मिला का स्वर, ताल, लय, सब विमला का सा था। कहता है, मैंने विमला को देखा और फिर खो दिया।

ऊर्मिला की माता मुस्करा दी।

पिताः—यदि ऊर्मिला दूसरी विमला ही हो जाय तो?

ऊर्मिला एकाएक उठ कर बाहर चली गई।

(७)

ऊर्मिला को अब कमल नयन से ईर्षा हो गई कि इनके तो ध्यान मात्र से ही किसी का हृदय खिंच आता है। कोई इनकी आंखों के आगे खड़ा तो होता है, फिर चाहे रुला जाता ही सही। यहां महीनों यह गीत गाते हो गए, किसी ने ध्यान धर कर सुना ही नहीं। कोई रुलाने वाली स्मृति ही सही, आए, अपना पाद्य ले, अर्घ ले, मधुपर्क ले, ले भी। यह यौवन, यह सौंदर्य, यह आलाप किसी के अर्पण हो!

ऊर्मिला आज इन्हीं विचारों में सोई। आहा! हा! उस का मनभावना स्वप्न हुआ। बलदेव और वह उसकी बैठक में इकट्ठे गए हैं। ऊर्मिला सितार लेकर सोफ़े पर बैठ गई है। बलदेव उसके गले में हाथ डाले खड़े हैं! वही राग था पर शब्द बदल गए थे।

गीति थीः—

माल न गल में डाल, सखी सांवर की।
बाँह बनी गल-माल सखी साँवर की॥
आंखें रोक न लें दर्शन को।
चेत चेत चित लख चितवन को।
भाल भाल दिशि माल सखी साँवर की॥

प्रातः काल ऊर्मिला की आंखों में माधुरी थी, भाव भंगि में माधुरी रस था, हाव भाव में आह्लाद था। मां ज्यों देखती दंग रह जाती।

ऊर्मिला आंखें धोते झिझकती थी कि कहीं वह सुवर्ण-छबि पानी के छींटों

से मैली न हो। नहाते हुए हिचकती थी कि कहीं कपड़ों के साथ वह बाहुपाश ही गले से खिसक न जाय।

अब तो जब भी आंखें मीची हैं और सितार पर उंगलियां चली हैं, वही यौवन मदमाती ऊर्मिला है और उसके गोरे गले को बाहुलता में लपेटे बलदेव।

ऊर्मिला ने ऐसे समयों का नाम स्वर्ग की घड़ी रखा है।

(८)

पिता ने अवसर पाकर विवाह की बात फिर चलाई। ऊर्मिला को अब एक नया अनुपम आनन्द प्राप्त हो चुका था। यह सुहाग अनोखा था। 'स्वर्ग की घड़ी' के आगे फिर नरक में जाने का प्रस्ताव ? सहसा हृदय से नकार निकला परन्तु गले तक आकर रुक गया। मुख की आकृति ने अस्वीकृति का सन्देश स्पष्ट कह दिया परन्तु पिता भ्रान्त होने पर उधार खाए बैठे थे। समझे, लजाती है।

कमलनयन से बात की तो उसने भी प्रथम तो इनके शब्दों पर ध्यान ही नहीं दिया परन्तु जब समझाया कि 'देखो, तुम्हारा सेवा का व्रत इससे टूटता नहीं, बना रहता है। यही नहीं, सामाजिक कार्य में और सहायता मिलती है। वह उपदेश क्या जो घरों में प्रवेश न पाए ? वह प्रचार क्या जो मन्दिर की चारदीवारी तक रहे ? जैसे विमला के जीते कहीं आने जाने में संकोच न था, वही अवस्था अब ऊर्मिला के पाणिग्रहण मात्र से हो जायगी। अब तो आधे प्रचारक हो फिर पूरे होगे। यह उपदेश सुना तो वह भी चुप रहे।

मनुष्य का मन संकीर्णतम गुत्थी है। क्या जाने, प्रचार की उत्सुकता थी, धर्म की लगन थी, या यौवन की और उसके साथ रतिपति पंचसायक की स्वाभाविक, अदम्य उमड़ थी। एक बार फिर 'प्रेम के हेम हिंडूरन में' 'रस रंग अगाधा' 'बरसाने सरसाने' की इच्छा थी ? कमलनयन और ऊर्मिला दोनों ने मौन-भाषा में विवाह की स्वीकृति दे दी।

कमलनयन के घर में एक कमरा पति पत्नी का साझा है, दो अलग २ हैं। साझे कमरे में दम्पती बैठे हैं। पुनः प्राप्त किये सुहाग का पहिला अवसर है। ऊर्मिला ने सितार गोद में रखी है। कमलनयन ने गले में हाथ डाला है। कहता है:—प्रिये ! वही गीत गाओ।

ऊर्मिला—(आंखें झुकाकर) कौन सा ?

कमल—' डाल न गल में माल सखी सांवर की । '

ऊर्मिला—सांवर ! अब उसके शब्द बदल गए ।

गाना आरम्भ हुआः—

माल न गल में डाल सखी साँवर की ।
बाँह बनी गलमाल सखी साँवर की ॥

पति पत्नी की आंखे सहसा भिच गईं । वहां और दृश्य समा न सक्ता था । प्रेम के एकान्त में स्वयं एकान्त बाधक होता है, प्रेम की सामग्री बाधक होती है, स्वयं प्रेमी और प्रिय बाधक हैं । अपने आप से अलग होकर प्रेम-रूप हो दो से एक हो जाने की इच्छा है । नयन-निमेष उसकी पहिली भूमिका है ।

ऐसा करना था कि इधर कमल, उधर ऊर्मिला दोनों एकाएक चौंक उठे । जो शरीर प्रेम-रस में सन रहा था वह तुरन्त भौंचक सा रह गया । दोनों शीघ्र एक दूसरे से अलग हुए और कमरे से बाहर चले गए ।

(६)

कमलनयन के घर का वह कमरा अब मानो भूतों का कमरा है । सदा बन्द रहता है । उसका सामान तक नहीं उठाया गया । कमल और ऊर्मिला प्रचार-कार्य में एक दूसरे को सहयोग देते हैं । समाज इन्हें पति पत्नी ही जानता है । ऊर्मिला की लड़की भी अब ऊर्मिला के पास रहती है । एक बात आर्य समाजी नहीं समझ सकते कि वह कमलनयन को पण्डित जी कहती है, पिता जी नहीं । ऊर्मिला उन्हें कमलनयन जी बुलाती है और कमल उसे ऊर्मिला जी ।

कभी २ ऊर्मिला बलदेव के चित्र के सम्मुख बुड़बुड़ाती दिखाई दी हैः—' परकीया ? नहीं । ' यह कहते ही उसके मुख पर हवाइयां उड़ने लगती हैं परन्तु वह अपनी कान्ति संभाल लेती है । यही क्रिया कभी २ कमलनयन विमला के चित्र के सम्मुख करता दीखा है । वह 'परकीया' की जगह 'पारजायिक ? नहीं' कहता है, और सहम जाता है ।

कमलनयन और ऊर्मिला वास्तव में संसार के लिये पति पत्नी हैं, पर घर में वही भाई बहिन । ऊर्मिला कभो २ अकेली बैठी ठंडी सांस खेंचती और कह उठती हैः—"हाय ! मेरी स्वर्ग की घड़ी फिर छिन गई" ।

वेदार्थ दीपक निरुक्त भाष्य

(समालोचना)

श्री पं० चमूपति 'आर्य-सेवक' (अफ्रीका)

(४)

वेद में इतिहास है वा नहीं? यह समस्या बहुत पुरानी है। वेद को नित्य मानने वाले उस में अस्थायि आगमापायि इतिहास नहीं मानते। हां! जो प्राकृतिक घटनाएं सृष्टि क्रम का भाग होने से फिर २ घटित होती हैं और जिन का नाम वेदपाठियों ने नित्य इतिहास रख लिया है, यथा आकाश से वायु, वायु से अग्नि आदि की उत्पत्ति, उन का वर्णन वेद में आया है।

यास्क ने किसी २ वेद मन्त्र का ऐतिहासिक अर्थ किया है। परन्तु वहां इतिहास का ढंग नित्य इतिहास का सा नहीं किन्तु अनित्य का सा है। किसी किसी स्थान पर ऐतिहासिक पक्ष से अपने पक्ष को भिन्न बताया है। यथा वृत्र का अर्थ करते हुए लिखा है:—

"मेघ इति नैरुक्ताः। त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः। २. १६." ऐतिहासिक पक्ष यास्क को स्वीकार हो या न हो, यह स्पष्ट है कि ऐतिहासिक अर्थ नैरुक्त अर्थ से भिन्न है। और निरुक्त में प्रधान अर्थ नैरुक्त ही रहेगा। निरुक्त के भाष्य कार भी हमें इसी सम्मति के प्रतीत होते हैं, यथा निरुक्त २. ११ देवापि और शन्तनु आदि की कथा आई है। यास्क ने 'आर्ष्टिषेणः' तथा 'यद्देवापिः' इत्यादि मन्त्रों का अर्थ केवल इतिहासपरक किया है दुर्गाचार्य अपनी वृत्ति में लिखता है:—

निरुक्त पक्षे-ऋष्टिषेणो मध्यमः, तदपत्यमयमग्निः पार्थिव आर्ष्टिषेणो देवापिः स शन्तनवे सर्वस्मै यजमानायेति योज्यम्। बृहस्पतिर्वाचस्पतिरिति मध्यमः। स्तनयित्नुलक्षणां वाचमित्यर्थः।

अर्थात् निरुक्त पक्ष में इस मंत्र का अर्थ इस प्रकार होगा कि ऋष्टिषेण मध्यम देव वायु का नाम है (राजा का नहीं जैसे ऐतिहासिक पक्ष में है) उस का पुत्र अर्थात् उस से उत्पन्न हुआ पार्थिव अग्नि आर्ष्टिषेण देवापि है। शन्तनु

प्रत्येक यजमान को कहते हैं (किसी भूपतिविशेष को नहीं)। बृहस्पति फिर मध्यम देवता वायु का नाम है। उस की वाणी गरज है।

इस से सिद्ध है कि दुर्गाचार्य यास्क के किये ऐतिहासिक अर्थ को नैरुक्त अर्थ नहीं मानता। शेषोक्त पक्ष में इसे स्वतन्त्र कल्पना करनी पड़ी है। यही अवस्था कई और स्थलों पर भी है। विस्तार भय से हम यही उदाहरण पर्याप्त समझते हैं।

श्री चन्द्रमणि जी ने इस स्थल पर निरुक्त के ऐतिहासिक अर्थों के विषय में अपना विचार विस्तार से प्रकट किया है। आप का पक्ष भी यही है कि अनित्य इतिहास वेद में नहीं। लिखा है:—

'-नित्य इतिहास का तो खण्डन यास्क स्वयं २ ५. १६ में करेंगे।' पृ० १२८। २ ५. १६ वही वृत्र का प्रकरण है जिस का उद्धरण हमने ऊपर किया है। उस का अर्थ करते हुए श्री चन्द्रमणि जी लिखते हैं:—

'परन्तु ऐतिहासकों का पक्ष ठीक नहीं'। पृ० १४२

इस अध्याहार से स्पष्ट हुआ कि श्री चन्द्रमणि जी की सम्मति में यास्क जहां ऐतिहासिक अर्थ का उल्लेख करेगा वह उस का अपना न होगा। हां! नित्य इतिहास की बात इस से भिन्न है।

हमारी समझ में नहीं आता कि यह सम्मति रखते हुए आप ने देवापि और शन्तनु की कथा को यास्क के स्वाभिमत सिद्धांत के अन्तर्गत कैसे मान लिया? आप का कहना है कि:—

"आख्यायिका रूप से जहां भूत काल में वर्णण किया जावे वह नित्य इतिहास है"। पृ० १२८

देवापि और शन्तनु को बड़ा और छोटा कौरव भाई कहा गया है। छोटे के राज्यभिषेक का वर्णन किया गया है, इत्यादि। भला यह इतिहास नित्य कैसे हुआ? आप स्वयं मानते हैं:-"यहां वेद के उपर्युक्त सूक्त में कुरुवंशीय होना, शन्तनु का राज्य ग्रहण करना, बारह वर्ष तक वृष्टि न होना .... इत्यादि विषयक कोई शब्द नहीं।" पृ० १२६

इस स्थिति में यास्क कथित कथा तो कल्पित ही माननी होगी। आपने भी उसे ऐसा ही स्वीकार किया है। यथा—

'जैसे व्याख्यानों में .... कल्पित कथा द्वारा अपने अभिप्राय.............. को स्पष्ट किया जाता है, वह ही नियम यहां वेद में कार्य करता है' पृ. १२८

यह वाक्य पाठकों के लिये भ्रान्तिजनक हो सक्ता है। कल्पित कथा स्वयं 'वेद' में होती है या उस के व्याख्यान मात्र में? जिस ऐतिहासिक अर्थ को आपने निरुक्त. २. ५, १६. में अशुद्ध ठहराया, यहां उसी का फिर पक्ष क्यों लेते हैं? वहां भी तो इतिहास को आख्यायिका का आलंकारिक रूप देने में कोई बाधा नहीं।

प्रकृत आख्यायिका में १२ वर्ष की अनावृष्टि का वर्णन है, बड़े भाई के पुरोहित होने का वर्णन है। यह विशेष गणितज्ञों तथा घटनाओं से युक्त इतिहास नित्य नहीं होसकता। यास्काचार्य ने जहां २ इतिहास शब्द का प्रयोग किया है, वह अनित्य इतिहास है। श्री चन्द्रमणि जी का यह नया पक्ष हो सकता है कि वेद में कल्पित आख्यायिकाएं भी हैं परन्तु उन्हें नित्य इतिहास कहकर इस पक्ष को नित्य इतिहास परक पक्ष में समाविष्ट करना भ्रान्ति जनक है। इस सम्बन्ध में दुर्गाचार्य की शैली अधिक सरल तथा युक्तियुक्त है। वह निरुक्तकार के ऐतिहासिक अर्थ को नैरुक्त न मान नए अर्थ की कल्पना करता है।

इसी स्थल पर 'वेदार्थदीपक भाष्य' में मूल का 'आर्ष्टिषेण .... प्रतिषिद्धा' पाठ छपने से रह गया है, दूसरे संस्करण में उसे पूरा कर देना चाहिये।

यास्क ने आर्ष्टिषेण का अर्थ किया है 'ऋष्टिषेणस्य पुत्रः' अर्थात् ऋष्टिषेण का पुत्र। श्री चन्द्रमणि जी लिखते हैं:—

यहां 'पुत्र' शब्द का अभिप्राय 'संबन्धी' से है। पृ. १३०। यह किस नियम से? निरुक्त २. ७. २४ में फिर विश्वामित्र की कथा दी गई है उसे पैजवन का पुरोहित कहा गया है। 'पैजवन' का अर्थ किया है—'पिजवनस्य पुत्रः' श्री चन्द्रमणि जी का लेख है कि "ऐसे स्थलों में सर्वत्र 'पुत्र' शब्द 'अत्यन्त' का द्योतक होता है। क्योंकि पिता के शुभ या अशुभ गुण पुत्र में पिता से अधिक आ जाया करते हैं" पृ. १५४। इस युक्ति में कितना सार है, पाठक स्वयं समझ सकते हैं—फिर अर्थ करने में तो साहित्य या व्याकरण का प्रमाण चाहिये। लो! वह भी दिया है:—'वेद में अग्नि को बल का पुत्र कहा है (ऋ. २. ७६) यहां उस का अर्थ अत्यन्त बलवान् है, उदाहरण 'बल का पुत्र' का नहीं चाहिये,

'बलवान् का पुत्र' का चाहिये क्योंकि विचारास्पद यह 'पिजवन का पुत्र' है और 'पिजवन' श्रेष्ठ कर्म नहीं, किन्तु 'श्रेष्ठतम कर्म' है।

वास्तव में 'पैजवन' वेद मन्त्र में नहीं आया किन्तु यास्क कथित इतिहास ही में आया है। यदि वह इतिहास आख्यायिका है तो उस में किसी व्यक्ति विशेष का नाम आने में हानि क्या? और यदि यह अर्थ ही (अनित्य) ऐतिहासिक पक्ष का है तो आप के अपने लेखानुसार वह पक्ष ही ठीक नहीं। यहां पुत्र का अर्थ 'अत्यन्त' करने की आवश्यकता?

निरुक्त ३, ३, १७, में 'प्रस्कण्व' शब्द आया है। उस का अर्थ किया है 'कण्वस्य पुत्रः, कण्व प्रभवः'। इस पर भी श्री चन्द्रमणि जी का टिप्पण है:— यहां 'पुत्र' शब्द 'प्रकृष्ट' अर्थ का द्योतक है। पृ० २१६। हमारी सम्मति में यास्क ने 'प्रस्कण्व' के दो भिन्न अर्थ किये हैं— (१) कण्वस्य पुत्रः। जो प्रसिद्ध अर्थ है परन्तु यहां लगता नहीं। प्रसिद्धि के कारण पहिले दिया है। (२ कण्व प्रभवः, जो श्री चन्द्रमणि जी के अभिप्राय का द्योतन करता है। ऋषि दयानन्द ने इसी मन्त्र (ऋ० १, ४५, ३) में 'प्रस्कण्व' का अर्थ किया है 'प्रकृष्टश्च कण्वश्च'। ऋषि का अर्थ यास्क कृत दूसरे अर्थ का पर्याय प्रतीत होता है।

निरुक्त २, ७, २५ में 'कुशिकस्य सूनुः' वेद का पाठ दिया है। वेदार्थ दीपक भाष्य में इसका अर्थ किया है:— 'प्रजा के लिये हितकर बातों का प्रकाश करने वाला' पृष्ट १५६। फिर पृष्ट १५७ पर 'कुशिक' का अर्थ करते हैं— (क) उत्तम वाणी वाला ... (ख) विद्या से प्रकाशित ..... (ग) हितकर बातों का करने हारा' तो क्या 'कुशिक' और 'कुशिकस्य सूनुः' का एक ही अर्थ है? 'सूनुः' का अर्थ 'अत्यन्त' भी तो नहीं किया। कुछ लिखने से रह गया है।

इन सारे उद्धरणों से प्रतीत यह होता है कि श्री चन्द्रमणि जी वेद में इतिहास नहीं मानते परन्तु यास्क ने ऐतिहासिक अर्थ किये हैं। इस का समाधान या तो इस प्रकार से हो सकता था कि ऐतिहासिक अर्थ नैरुक्त अर्थ नहीं जैसे नि० १, ५, १६, में स्वयं इन दो अर्थों का स्पष्ट भेद दिखा दिया गया है। जहां निरुक्तकार केवल ऐतिहासिक अर्थ लिखता है वहां नैरुक्त अर्थ की कल्पना यास्क द्वारा अन्यत्र प्रदर्शित शैली से स्वयं करनी चाहिये जैसे दुर्गाचार्य कतिपय स्थला पर करता ही है। प्रश्न हो सकता है कि यास्क ने इन स्थानों पर अपने से विरुद्ध पक्ष के ही अर्थ क्यों दिये? हमारा उत्तर स्पष्ट है कि यह या तो उस का

भ्रम है या वह अपने समय के प्रसिद्ध अर्थ बतला कर उन में दी हुई निरुक्तियों द्वारा ठीक अर्थ लगाने का बोझ पाठक पर डालता है।

दूसरा समाधान यह हो सकता है कि यह इतिहास अर्थ को रोचक तथा सुगम बनाने के लिये केवल आख्यायिकाएं हैं। इन आख्यायिकाओं को नित्य इतिहास कहना तो भूल है। जहां आख्यायिका मात्र में-जो व्याख्या ही का भाग हो वेद का नहीं— किसी को किसी का पुत्र बना लिया गया हो, वहां पुत्र को पुत्र रहने देने में हानि नहीं, यथा पैजवन पिजवन का लड़का रहे, इस में किसी का कुछ नहीं बिगड़ता। हां! जहां वेद के किसी ताद्धित शब्द का अर्थ अपत्यवाची किया हो, वहां उस अर्थ को केवल आख्यायिका परक समझना चाहिये जो कल्पित होने से वेदार्थ करने में आदरणीय नहीं। नैरुक्त अर्थ में उस का वाच्य 'संबन्धी' भी हो सकता है, 'प्रकृष्ट' आदि भी। ताद्धित शब्दों का ऐसा अर्थ व्याकरणानुमोदित है। हां, यास्क के ही 'पुत्र' शब्द का अर्थ 'प्रकृष्ट' करना अर्थ का 'दीपक' नहीं, भ्रामक है। यास्क ने ताद्धित का मुख्य 'अपत्य' वाची अर्थ कर दूसरे अर्थों की ओर संकेत किया हो तो किया हो, स्पष्टतया वह दूसरा अर्थ प्रतिपादन नहीं किया।

श्री चन्द्रमणि जी को यास्क का पक्ष लेते हुए हुए व्याकरण तथा साहित्यपर भी बलात्कार न करना चाहिये। पण्डित लोग समदृष्टि होते हैं, यही उन का पाण्डित्य है॥

* निरुक्तकार यास्कादि का और ऐतिहासिकों का मतभेद *

(श्री० दलपति शास्त्री सिद्धान्त शिरोमणि)

पाठक वृन्द ! कई भोले पौराणिक भाई यह कहते हैं कि "नैरुक्त पक्षानुयायी यास्क मुनि ने भी वेदों में इतिहास स्वीकृत किया है। तदनुसार निघण्टु कोष के शब्दों के निर्वचन समय में स्थल स्थल पर इतिहास दिये हैं जो कि लोक में प्रसिद्ध तथा वेदों में इतिहास मानने वाले सायणादि को अभीष्ट हैं। और अतएव कतिपय स्थलों पर मन्त्रों का अर्थ भी ऐतिहासिक मतानुसार किया है। अतः प्रतीत होता है कि ऐतिहासिकों और नैरुक्तों में कुछ भेद नहीं है"।

इस के उत्तर में हम अपना पक्ष जो कि वैदिक धर्मावलम्बियों का है स्थापन करते हैं कि मुनि यास्कादि वेद में इतिहास स्वीकार नहीं करते थे और उसी प्रसङ्ग में यह भी सिद्ध करेंगे कि यास्क मुनि ने जो यत्र तत्र इतिहास दिया है वह ऐतिहासिक पक्ष मन्त्रार्थ की अभिव्यक्ति के लिये है जिस को दुर्गाचार्य निरुक्त भाष्यकार अपने भाष्य में स्वीकार करते हैं। उदाहरणार्थ ले लीजियेः—

"इन्द्राणी । इन्द्रस्य पत्नी ॥ 'इन्द्रस्य विभूतिः, पृथक्त्वेन निर्ज्ञाता पौराणिकैः" ११ । ३७ । २ ।

अर्थात् दुर्गाचार्य कहते हैं कि 'इन्द्राणी' शब्द का अर्थ है इन्द्र की विभूति। परन्तु पौराणिकों (ऐतिहासिकों) ने इन्द्र की स्त्री समझा है।

यहां स्पष्ट दुर्गाचार्य नैरुक्त और ऐतिहासिक पक्ष में भेद मानते हैं। और लीजियेः—

निरुक्त ११ । ३९ खण्ड की समाप्ति पर वृषाकपि के निर्वचन पर भाष्य करते हुए दुर्गाचार्य लिखते हैंः—

'ऋषिरेव वृषाकपिः प्रसिद्धः स पुनरादित्योऽभिप्रेतो मनुष्याणाम् ।'

अर्थात् ऐतिहासिक प्रसिद्धि के अनुसार 'वृषाकपि' ऋषि का नाम है

परन्तु इतिहास के न मानने वाले नैरुक्त 'वृषाकपि' का 'आदित्य' अर्थ करते हैं। एक और प्रमाण लीजिये: -

निरुक्त अ० ११। खण्ड २४। सरमा। सरणात्।

इस पर दुर्गाचार्य लिखते हैं:—

'सरमा' देवशुनीत्यैतिहासिक पक्षेण, माध्यमिका वाक् नैरुक्त पक्षेण।

अर्थात् ऐतिहासिक लोग सरमा को देवशुनि का नामान्तर मानते हैं। परन्तु नैरुक्त सरमा का अर्थ अन्तरिक्ष में मेघ का गर्जन मानते हैं। परन्तु यहां वादी कह सकता है कि निरुक्तकार भी लिखते हैं:—

'देवशुनीन्द्रेण प्रहिता पणिभिरसुरै समूद इत्याख्यानम्'

इत्यादि से विदित है कि यास्क भी यहां इतिहास अङ्गीकार करते हैं?

तो इसका उत्तर दुर्गाचार्य स्वयमेव इसी वाक्य का अर्थ करते हुए लिखते हैं कि:—

'देवशुनीन्द्रेण प्रहिता' इति निदान ख्यापनं मन्त्रार्थाभिव्यक्तये।

अर्थात् निरुक्तकार ने देवशुनी वाला इतिहास मन्त्रार्थ को स्पष्ट करने के लिये दिया है। और आगे दुर्गाचार्य लिखते हैं कि 'इत्याख्यान विद एवं मन्यन्ते' अर्थात् ऐतिहासिक उपरि लिखित इतिहास को मानते हैं।

बस, इन प्रमाणों से पौराणिकों के सिद्धान्ती किले की नींव जर्जर हो जाती है। और हमको इस एक कसौटी से सत्य और असत्य का ज्ञान हो जाता है कि निरुक्तकार यास्कादि स्वयं तो ऐतिहासिकों के विरुद्ध आध्यात्मिकादि अर्थ मानते हैं। और यत्र तत्र मन्त्रार्थ के वैशद्य के लिये अख्यान भी दे देते हैं। इसीलिये दुर्गाचार्य निरुक्तकार का पक्ष लेकर अर्थ करते हैं:—

'वाक्पक्षे तु चिरकाल वृष्ट्युपरमे कदाचिदभिनव मेघ संप्लवे सहसैव स्तनायित्नुमुपश्रुत्य कुत इयं माध्यमिका वाक्।' इत्यादि

अब इस कसौटी को लेकर नैरुक्त और ऐतिहासिकों का भेद देखिये और इतिहास को मन्त्रार्थ का पोषक मात्र समझिये तो नैरुक्तों के ऐतिहासिकों के विरुद्ध आध्यात्मिकादि अर्थ ही प्रतीत होंगे। निरुक्तकार मुनिवर यास्क कई स्थानों पर स्वयमेव अपना भेद प्रकट करते हैं। जैसे:—

'अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो,—

इत्यादि मन्त्र पर ये अङ्गिरसः अर्थर्वाणः इत्यादि क्या वस्तु हैं इस शङ्का पर यास्क लिखते हैं:—

'माध्यमिको देवगण इति नैरुक्ताः। पितर इत्याख्यानम्। ११।४।१९॥

अर्थात् हम नैरुक्त अङ्गिरस इत्यादि शब्दों से माध्यमिक देवगण अर्थ लेते हैं परन्तु ऐतिहासिक पितरों की विशेष योनि मानते हैं। और लीजियेः—

अश्विनौ १२।१ पर यास्क लिखते हैं:—

तत्कावश्विनौ द्यावापृथिव्यावित्येके, अहोरात्रावित्येके, सूर्याचन्द्रमसावित्येके॥

अर्थात् 'अश्विनौ' शब्द का अर्थ कई नैरुक्त 'द्यावा पृथिवी' लेते हैं। कई नैरुक्त 'चन्द्रसूर्य' लेते हैं। कई 'दिन रात' लेते हैं। परन्तु ऐतिहासिक लोग 'अश्विनौ से दो पुण्यकारी राजाओं का नाम समझते हैं। इसी प्रकार

'तत्को वृत्रः? मेघ इति नैरुक्ताः त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः।'

इत्यादि स्थलों पर भेद दिखाया है। इन प्रमाणों की विद्यमानता में कोई भी नैरुक्तों को ऐतिहासिक सिद्ध नहीं कर सकता। और उपरि लिखित कसौटी से 'विश्वामित्र—भौवन—त्रित—सुदास इत्यादि के इतिहास भी सहज सुलझ जाते हैं॥

चोर चुराते हैं धन तेरा!

जो तेरे घर के ही अन्दर निस दिन करत बसेरा।

बाहर के चोरों पर तूने हाय! बिठाया पहरा।
जो घर के ही अन्दर रहते उन को क्या नहीं घेरा॥

तेरे घर के अन्दर छाया कितना हाय अंधेरा?
उसमें ही छिप कर निस दिन ये हरते सर्वस तेरा॥

चोरों की चिंता में मूरख! जागत करत सवेरा।
चोर ही चोर छिपे हैं घर में उनको क्यों नही हेरा॥

चतुर्थ-सर्ग

* महात्मा का महत्व *

(दिसम्बर मास से आगे)

"धन्याः खलु महात्मानो मुनयः सत्यसंमताः ।
जितात्मानो महाभागा येषां न स्तः प्रियाऽप्रिये ॥
प्रियान्नसंभवेद्दुःखमप्रियादाधिकं भवेत् ।
ताभ्यां हिते वियुज्यन्ते, नमस्तेषां महात्मनाम् ॥"

[वाल्मीकि-रामायण सुन्द० कां०]

इषु-(५)-इन्दु-(१)-अङ्क-(९)-मयङ्क-(*) वत्सर १ विक्रमी जब आगया,
श्रीमान ने अपने यहां तब पाठ्य-क्रम बदला नया ।
नव-शिष्य-पञ्चक (२) से हुआ नव-पाठ्य-क्रम आरम्भ था,
क्यों हो न ?-उस के जब हुआ आर्षत्व का उपलम्भ ३ था ॥१॥

महाराज की मङ्गलमयी यह कामना थी बढ़ रहीः—
"अब हो पठन-पाठन-प्रथा इन चार ग्रन्थों की वही !
फिर वेद-वैभव का वही सब ओर शुभ-विस्तार हो !
औ, वेद-ध्वनि का फिर वही घर घर प्रगुण-गुञ्जार हो !! २॥

"जो सह रहे हैं सम्प्रदायों की विकट टक्कर, अहो !
म्रियमाण-से हैं जो विविध-मत-अन्ध-कूप-निमग्न हो !,
केवल जिन्होंने अब विधर्मी-भेक-दल-ध्वनि है सुनी,
जिन को अविद्या की बहाले जा रही धुन में धुनी (१)!, ३॥

---

* सं० १९१५ वि०; (२) नवीन शिष्य-पञ्चकः—१ युगलकिशोर २ चिरञ्जीलाल; ३ गोपाल ब्रह्मचारी ४ सोहनलाल तथा ५ नन्दन जी चौबे; १ ३ उपलम्भ—साक्षात्कार;

१ धुनी—नदी ।

"जिस यत्न से अब शीघ्र उन का हो सके निस्तार है—
वह यत्न—'केवल वेद का ही एक पुण्य-प्रचार' है!
कीजे अनुग्रह हे अनघ! अघ-वृद्धि की अब रोक हो,
अब सन्तमस२-हरणार्थ विस्तृत वेद का आलोक हो!" ॥४॥

पाठक! मनोरञ्जक सुनायें एक घटना आप को,
ब्रह्मर्षि के वरती विजय-श्री आप पुण्य-प्रताप को!
कैसे स्वयं ही पापियों का पाप कम्पित हो चला?
अभिमानियों का मान कैसे छोड़ अब उन को चला? ॥५॥

"अनुमान से, छः मास जब उस बीत घटना को गए,
तब रुग्ण 'लक्ष्मण-ज्योति' मरणासन्न सहसा हो गए!
तब पाप-कम्पित-सा हृदय गिरने लगा उन का अहो!
सोचा—'कहीं अभिचार (१) दण्डी ने किया मुझ पर न हो?' ॥६॥

"उस सेठ के भी बात यह ही ध्यान में जब आ गई,
श्रीपाद-पद्मों में तभी यह प्रार्थना पहुंचा दई:—
'महाराज स्वामिन्! अब कृपा करके क्षमा कर दीजिए,
उन पांच-सौ के स्थान आप सहस्र रूप्यक लीजिए!' ॥७॥

"भगवान ने उस प्रार्थी को उस समय जो था कहा—
पढ़ लीजिए, अङ्कित उसी शब्दावली में कर रहा:—
'तुम भूल करते हो, हमारा धर्म ही यह है नहीं!
नर के किए से जान लो—'नर को न कुछ होता कहीं!' ॥८॥

"बच जाय जो वह मृत्यु से उद्योग मेरे ही किए—
तो हूं सहस्र निजी समुद्यत आप देने के लिए!"
परलोक 'लक्ष्मण ज्योति ने यात्रा करी दिन दूसरे!"
रोता स्वयं था कंपकंपी का पाप अन्त, हरे! हरे!! ॥९॥

क्यों अन्त में—सोते हुए, सब भांति भय खाते हुए—
उस दीखते पोलस्त्य को थे 'राम' ही आते हुए?

(१) अभिचार—मारण प्रयोग; २ सन्तमस—व्यापकतम;

'रथ' 'रण' रकारादिक किसी भी नाम का करके श्रवण—
क्यों 'राम' ही को देखता मारीच भी पाता मरण ? १०॥

दिन रात में, हर बात में, जब प्राप्त—सा विध्वंस था—
तब 'कृष्ण' ही को देखता सब ओर वह क्यों कंस था ?
है ठीक, जो है जन्मता, वह मृत्यु पाएगा सदा,
पर त्रास इस विध 'पाप से ही' मर्त्य खाएगा सदा ॥ ११॥

क्षण के लिए अन्याय जो पाता विजय भी है कहीं—
तो, अन्त में गिर, दांत तुड़वाए विना रहता नहीं !
अब छोड़िए इस वृत्त को, पाठक ! चलो-आगे चलें,
कुछ और घटना एक-दो गौरव-गुंथी भी देखलें ! १२ ॥

आ-मरण तक को कर चुके निश्चय यही महाराज भी—
आगे न पुस्तक कौमुदी—सी हम पढ़ाएंगे कभी !
जीवन लगा दें—आर्ष-ग्रन्थों के पुनीत-प्रचार में —
जिससे बने 'गुरु' वृद्ध-भारत वर्ष फिर संसार में ! १३ ॥

जो उन अशुद्ध पुस्तकों को छात्र पढ़ना चाहता—
तब दोष उनके खोल कर, महाराज देते थे बता !
उन आर्ष-ग्रन्थों में लगाते छात्र का वे चित्त थे,
बस, तत्वतः सब कार्य वैदिक-धर्म-वृद्धि-निमित्त थे ! १४॥

श्रीमान् को विश्वास था—वह सूर्य उनके पास है-
जिसके न सम्मुख ठहर सकता तुच्छ दीप-प्रकाश है !
ज्यों पूर्णिमा बिन, चन्द्र पूर्ण—प्रकाश पा सकता नहीं,
प्राची विना, क्या नाश तम का सूर्य आ करता कहीं ? १५ ॥

खेंचा हुआ जल, अभ्र बिन, रवि आप बरसाता न है,
ज्यों मेदिनी बिन, बीज उग कर, आप फल लाता न है।
ज्यों जीत रण में वीरवर बिन शस्त्र के जाता न है,
सम्राट भी जैसे विजय सेना बिना पाता न है ॥ १६॥

त्यों कर रहे महाराज सच्-छास्त्राऽऽप्ति-हेतु विचार थे।

वे चाहते करना विविध-विध विघ्न-गण—संहार थे!
उस शिष्य—गण की शुद्धि हृत्तल—भूमि उपजाऊ न थी,
महाराज की वह कर्म—धी फिर हार भी खाऊ न थी! १७॥

महाराज थे यों सोचते—अब शिष्य ऐसा चाहिए—
जो वीर सू का वीर—सुत वर—वीरता को हो लिए!
सांसारिकी सब वासनाओं से पृथक मन हो किये!
'औ' देश-हित हो जा मरे 'औ' देश—हित ही जो जिये!! १८॥

"जो एषणात्रय त्याग, करता धर्म की हो एषणा,
जो कर रहा हो प्रेम से परमात्म—तत्व—गवेषणा!
पापाऽन्ध—रजनी में बने जो वेद—विधु—सु-गभस्ति—सा!
जो पाप—पङ्क—प्रणाश-हित हो वेद—रविशुचि—रश्मि—सा!! १९॥

यों सोचते रहते रहे श्रीमान हो कर्तव्य—रत,
वह छात्र-गण भी था उधर कुछ श्रवण-रत कुछ श्रव्य-रत!
यों तीसरी संवत्सरी सङ्कल्प धारे आ गई,
सुनिए, सुनाएं हैं हुई इस बीच जो घटना नईः—२०॥

महाराज के ऋषि—भाव का जिस से पता चल जायगा,
औ, जानने में पाठको! आनन्द भी कुछ आयगाः—
"मुनि-(७)-इन्दु-(१)-अङ्क-(९)-मयङ्क-(१) विक्रम-वर्ष[1] के मधु[2] मास में
दर्बार होता था नृपों का आगरे उल्लास में। २१॥

"उस में पधारे जयपुरेश्वर 'रामसिंह' नरेश भी,
जयशील[3] को भी जयपुरेश्वर ने बुलाया था तभी!
श्रीमान[3] भी जा कर वहीं श्रीमान के ठहरे यहां,
श्रीमान ने श्रीमान को आतिथ्य कर, पूजा वहां! २२॥

"दिन तीसरे, श्रद्धा-सहित, अपने निकट बुलवा लिये,
औ, भक्ति से फिर भूप ने भगवान[3] के दर्शन किये,

---

१ सं १९१७ वि० २ मधु—चैत्र; ३ ·····श्री विरजानन्दजी;

'केदारनाथ' ४ तथा 'पुरन्दर', ५ 'राजजीवन' ६ तीन थे—
पण्डित-प्रवर उस काल, नृप के जो निकट आसीन थे ! २३॥

"नरराज ने देखा—'तपस्वी द्वार पर हैं आ रहे !'
तज शीघ्र सिंहासन, नृपति ने द्वार पर जा कर गहे !
धीरे उन्हें निज-संग लाये द्वार से सम्मान कर,
कर दान सिंहासन उन्हें बैठे तले भूपति प्रवर ॥ २४ ॥

"स्वामी" उन्हें जब नृप कहें, तब क्यों तले बैठे नहीं ?
'सेवक' सजे भी 'स्वामियों के' हैं समानासन कहीं ?
उस त्याग—श्री से श्री-बहुल सम्राट के 'सम्राट' थे !
भ्राजिष्णुओं में ब्रह्मवर्चोमय अहो ! 'विभ्राट' थे ॥ २५ ॥

"तज राज-सिंहासन" 'तले नरराज का वह बैठना'-
उन को 'महत्ता' का न होगा क्या सदा द्योतक घना ?
जो भेंट दशरथ की हुई थी पूर्व विश्वामित्र से—
फिर आपने उस का दिखाया दृश्य चारु-चरित्र से ! २६ ॥

"उस काल श्री महाराज के दो-शिष्य(१) आए साथ थे,
'उपवीत, पेड़े और श्रीफल ' भेंट लाए साथ थे,
वह भेंट गुरु की शिष्य-द्वय ने भूप के आगे धरी,
औ वह प्रसाद समझ, खुशी से भूप ने स्वीकृत करी ? २७ ॥

"ब्रह्मर्षि" से आरम्भ वार्तालाप नृप ने फिर करी,
औ, बीच में यह प्रार्थना की भूप ने अनुनय भरीः—
'महाराज ? कैसे भी पढ़ा 'व्याकरण' हम को दीजिए,
जिससे हमें वेदार्थ का हो ज्ञान ऐसा कीजिए ॥२८ ॥

———

४ पं० केदारनाथ जी शास्त्री, बून्दी के; ५ रीवा के पं० पुरन्दरसिंहजी; ६ त्रिहुत के नैयायिक श्री राजजीवनसिंहजी शास्त्री;

१ दो शिष्यः—(१) चौबे जगन्नाथ; (२) युगलकिशोर।

गया है वह "अनवाय" है अर्थात् दण्ड देने की अवस्था में वह दण्ड Capital Punishment ('प्राण दण्ड') ही होना चाहिये (द्वेषस् = घृणा, देखो Apte's Sanskrit English Dictionary).

इस मन्त्र में मांस भक्षण के साथ २ तीन और अपराधों को भी गिन दिया गया है यह सब एक ही कोटि के अपराध हैं। इन में से किसी को भी क्षमा नहीं किया जा सकता। इन के लिए तो वह सन्यास्यनुमोदित प्राणदण्ड है। और यदि द्वेष की आज्ञा है तो वह द्वेष ऐसा है जिस में कोई कसर नहीं अर्थात् जिस के लिये काल आदि की कोई सीमा नहीं मांसभक्षक उतना ही बड़ा अपराधी है जितना कि ब्राह्मण द्वेषी। और राजा और न्यायाधीश उसे प्राणदण्ड ही दे सकते हैं अथवा नं० १० के भद्र पुरुषों में उस का नाम लिख लेना चाहिये, यह Criminal tribe के लोग हैं। एक इतिहास की साक्षि भी इस विषय में रुचिकर होगी। फ़ाहियान महाशय लिखते हैं:—

"Through out the whole country the people do not kill any living creature nor drink any intoxicating liquor nor eat onion or garlic. In the markets there are no butcher's shops.........Chandals are fishermen and sell fish meat, are held to be wicked men and live apart from others, away from the cities.

स्यात् क्रव्याद शब्द पर ही कोई विप्रतिपत्ति हो अतः निरुक्तकार ने स्पष्ट कर दिया है कि 'क्रव्यं विकृताज्जायते' अर्थात् मांस काटने से उत्पन्न होता है। इस विषय में मनु का निम्न श्लोक द्रष्टव्य है—

नाकृत्वा प्राणिनां हिंसा मांसमुत्पद्यते क्वचित्।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत्॥

अर्थात् प्राणियों की हिंसा किये बिना मांस की उत्पत्ति नहीं और प्राणिवध पुण्य कार्य नहीं अतः मांस का त्याग कर देना चाहिये।

पाप के लिये इस मंत्र में अघ शब्द आया है जिसका अर्थ निरुक्त कार के मत में वह बात है जो मनुष्य का पूर्णतया नाश कर देती है—आहन्ति। आर्यसन्तान! वेद की आज्ञा आपके सामने है! आप सोच लें कि यदि राजा और न्यायाधीश ऐसे पापियों के प्रति द्वेष धारण न करें तो क्या आपका कोई कर्त्तव्य नहीं? आप बेशक और अपराधोंके अपराधियोंके लिये दण्ड या द्वेष की अनुमति दें पर यह कहकर पल्ला न छुड़ाईये कि यही एक त्रुटी तो नहीं!।

आज लगभग ४ वर्ष होते हैं कि कालिज दल के एक विचारक और नेताके साथ लेखक को लालामूसा आर्यसमाज मन्दिर में विचार करने का अवसर प्राप्त हुआ था विचारक महोदय ने साफ़ शब्दों में कहा था कि महात्मा दल के लोग कांग्रेस में भी अहिंसात्मक असहयोग की आड़ में मास भक्षण के प्रश्न पर दो पार्टियां करा देंगे। और आपने बड़े विश्वास पूर्वक यह चैलेञ्ज दिया था कि मुझे यजुर्वेद का स्वामी दयानन्द कृत भाष्य पढ़ने का अभी अवसर हुआ है उस में अस्तबलों की बनावट और उन के वर्णन से अध्यायों के अध्याय भरे पड़े हैं परन्तु मांस के निषेध का कोई स्पष्ट मंत्र नहीं। यदि मांसभक्षण इतनाही बड़ा पाप होता जैसा महात्मा पार्टी उसे कहती है तो उस पर कम से कम १५० मंत्र तो वेद में होते। यदि महात्मा पार्टी ५० भी स्पष्ट मंत्र पुस्तकाकार में छपवादे तो मैं मानने को तैय्यार हूं। इत्यादि लेखक ने निवेदन किया था कि मांसभक्षण इतना अमानुषी कार्य है जिस के लिये वेद बार २ क्या लिखता ?। पं बुद्धदेव जी के शब्दों में Criminal Procedure code में भी murder (मनुष्यबध) के लिये कोई एक आधा विधान होता है परन्तु उसके लिये Capital punishment (मृत्युदण्ड) ही दिया जाता है।

प्रस्तुत मंत्र इतना स्पष्ट है कि इस पर किसी टीका टिप्पणी की आवश्यकता नहीं। कम से कम महर्षि को महात्मा पार्टी से कोई रिश्वत नहीं मिली। इतना ही नहीं, किन्तु वह सारे नैरुक्तों को अपने साथ अपने मत में सम्मिलित करता है। परन्तु यदि यजुर्वेद का ही मन्त्र चाहिये तो लीजिये यजुर्वेद २३. २१. और उस पर वही स्वामी दयानन्द जी का भाष्य। स्वामी स्पष्ट कहते हैं कि जो मांसाहारी और व्यभिचारी स्त्री पुरुष हों उन्हें उल्टा लटका देना चाहिये। इसी प्रकार 'यः पौरुषेयेण क्रविषा समंक्ते' इत्यादि मन्त्र पर सायण का स्पष्ट भाष्य है कि राजा ऐसे हत्यारे का सिर काटदे 'यो नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषं । तन्त्वा सीसेन विध्यामो यथा.... "इसका अर्थ बिल्कुल स्पष्ट है। जो मनुष्य हमारी गौओं घोड़ी और मनुष्यों का घात करता है उसे तोप के मुंह से उड़ा देना चाहिये । इत्यादि। आर्यपुरुषो ! मांसभक्षकों के साथ द्वेष करना न राजा के लिये बुरा है न प्रजा के लिये। यह द्वेष 'अनवाय' होना चाहिये इसे कभी मत भूलो। और जबतक किसी मनुष्य में यह दुर्गुण है उससे द्वेष जारी रक्खो। कम से कम मन्त्रोक्त ४ अपराधों के लिये द्वेष करना बुरा नहीं॥

भूल सुधार

कार्त्तिक मास के 'आर्य' में 'वेदार्थ दीपक निरुक्त भाष्य' पर मेरी समालोचना छपी है। उस में श्री पं० चन्द्रमणि जी की इस कल्पना को कि 'साक्षात्कृतधर्माणः' आदि वाक्य में आए 'बिल्म' शब्द की यास्क द्वारा व्याख्या किये जाने के कारण यह वाक्य यास्क का नहीं, मैंने श्री पण्डित जी की मौलिक कल्पना समझा है। इस से पूर्व यही कल्पना पं० सत्यव्रत सामाश्रमी कर चुके हैं उन की कल्पना का हेतु पं० चन्द्रमणि जी के हेतु से अधिक सूक्ष्म है। वह 'भिल्मं भासनमिति वा' में आए 'वा' को संशयात्मक समझते हैं। उन का विचार है कि यास्क को अपने प्रयोग किये 'बिल्म' शब्द के अर्थ में संशय नहीं हो सक्ता। अतः यह वाक्य किसी और का होना चाहिये वास्तव में यहां 'वा' संशयप्रदर्शक नहीं किन्तु समुच्चयार्थक है जिस का अभिप्राय 'बिल्म' शब्द के दो अर्थ दर्शाना है। 'समाम्नासिषुः' क्रिया भूत काल में होने से सामाश्रमी जी निघन्टु को यास्क कृत नहीं मानते। मैं अपने लेख में दर्शा चुका हूं कि यहां 'इमं ग्रन्थं' का अभिप्राय निरुक्तिविद्या की परम्परा से है। निघन्टु सहित निरुक्त का समाम्नान कई वार हुआ है। अन्तिम समाम्नाता यास्क है।

मेरे लेख में कुछ छापे की अशुद्धियां हुई हैं यथा 'समाम्नान क्रिया' को कई वार समाम्नाय क्रिया लिखा गया है। 'प्रतिभा' का 'प्रतिमा' छपा है और instruction का inspection विज्ञ पाठक स्वयं ठीक कर लेंगे --चमूपति

मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल विश्व विद्यालय कांगड़ी लिखते हैं:—

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का २४वां वार्षिक महोत्सव गत वर्ष की भाँति ईस्टर की छुट्टियों में २ से ५ अप्रैल १९२६ तदनुसार २१ से २४ चैत्र सं० १९८२ वि० तक बड़े समारोह के साथ गुरुकुल वाटिका मायापुर (हरिद्वार) में मनाया जावेगा। उस समय ऋतु भी बड़ी सुहावनी होगी।

जो सज्जन मनोहर व्याख्यानों, उपदेशों और भजनों से आनन्द लाभ करने के अभिलाषी हों उन्हें अभी से परिवार सहित उत्सव पर पधारने की तय्यारियां शुरु कर देनी चाहियें। (२) नये बलकों का चुनाव उत्सव से दो दिन पूर्व ३१ मार्च और १अप्रैल को होगा। प्रार्थनापत्र ३१ जनवरी तक कार्यालय मेंआजाने चाहियें।

सम्पादकीय

टंकारा जन्म भूमि शताब्दिः—फर्वरी मास में मौरवी रियासत में टंकारा स्थान पर ऋषि दयानन्द की स्मृति में शताब्दि समारोह मनाया जायगा। आर्य समाज के इतिहास में पण्डितों की असावधानी से ऋषि दयानन्द के जन्म स्थान के सम्बन्ध में कई भ्रम फैल गए थे। इन भ्रमों को दूर करने के लिए गुरुकुल विश्व विद्यालय कांगड़ी के आचार्य श्रीयुत प्रो० रामदेव जी को विशेष रूप से नियुक्त किया गया। उन्हों ने इस सम्बन्ध में जो रिपोर्ट तय्यार की थी उस के अनुसार टंकारा ही ऋषि दयानन्द का जन्म स्थान निश्चित किया गया। इस ऐतिहासिक दृष्टि से यह समारोह बहुत महत्व का है। असम्भव नहीं कि समारोह में एकत्रित आर्य विद्वान ऋषि दयानन्द की बाल्यावस्था के अंधकारमय इतिहास को उज्वल करें। इस शताब्दि की दूसरी विशेषता यह है कि यह समारोह देशी रियासत में होगा। स्वामी दयानन्द ने अपने जीवन काल में भारत की देशी रियासतों में जागृति पैदा करने के लिए विशेष उद्योग किया था परन्तु उसमें सफलता नहीं हो सकी। हमें आशा है कि उत्साही आर्य भाई टंकारा जन्म भूमि शताब्दि के बाद भारत की देशी रियासतों में आर्य समाज के सन्देश को विशेष रूप से प्रचारित करने में संलग्न होंगे।

देशी रियासतें और आर्य समाजः—जिस प्रकार देश के अन्य उन्नतिशील आन्दोलन इस समय तक केवल मात्र ब्रिटिश भारत में ही फल फूल रहे हैं उनका देशी रियासतों में प्रवेश नहीं है उसी प्रकार आर्य समाज भी देशीरियासतों के अन्दर प्रवेश नहीं कर सका। राजपूताना की रियासतों की कुछेक आर्यसमाजों में हमें भ्रमण करने का मौका मिला है। उदयपुर और जयपुर जैसे बड़े शहरों की आर्य समाजों की दीन दशा को देख कर दुःख होता है। इसी प्रकार मोरवी रियासत जहां स्वामी दयानन्द का जन्म हुआ वहां आर्यसमाज का न होना इस बात को स्पष्ट कर रहा है कि हम लोगों ने रियासतों में वैदिक धर्म का विस्तार करने में कितनी उपेक्षा की है हम आशा करते हैं कि टंकारा जन्म भूमि शताब्दि के प्रबन्ध कर्ता अथवा आर्य सार्वदेशिक सभा के सभ्य टंकारा जन्म भूमि शताब्दि के समय भारत वर्ष की तमाम रियासतों में वैदिक धर्म प्रचार के कार्य को एक सूत्र में ग्रथित करने का यत्न करेंगे।

—राजेन्द्र

किस से द्वेष करना चाहिये ?

वेद और मांस भक्षण

(ले० श्री पं० परमानन्द बी० ए० गुरुकुल मुलतान)

किसी से द्वेष करना भी कभी उचित हो सकता है यह प्रश्न है जो पाठकों के हृदय में लेख के शीर्षक को पढ़कर उत्पन्न होगा। परन्तु आज यही अचम्भा "आर्य" के पाठकों के आगे धरना है और वह भी वेद के प्रमाण से। आर्य जनता ने समझ रक्खा है कि काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, अभिमान, रागद्वेषादि भाव हर एक अवस्था में बुरे हैं। परन्तु अधिक विचार पर यह मानना पड़ेगा कि इनमें से किसी के बिना गुज़ारा भी नहीं। केवल हमीं यह बात नहीं कहते। आइये, पहिले महर्षि मनु के चरणों में चलें और उन से व्यवस्था लें। "काम" के सम्बन्ध में उन की आज्ञा बड़ी स्पष्ट है। मनुस्मृति अ० २ श्लो० १ में आप लिखते हैं—

कामनाओं के अधीन हो जाना निन्दित कर्म है परन्तु संसार में 'अकाम' होना भी असम्भव है। वेद प्राप्ति और वैदिक कर्म्मयोग भी तो काम्य वस्तु ही हैं। काम तो इतना आवश्यक है कि उस के एक स्वरूप को मनुष्य-जीवन के चार उद्देश्यों में गिन लिया गया है।

अब आइये क्रोध की ओर। कौन वैदिकधर्मी है जो वेद भगवान् का यह मन्त्र नहीं जानता, 'मन्युरसि मन्युं मयि धेहि"। उत्तम प्रकार का क्रोध ही मन्यु कहाता है। आज कल जब कि चारों ओर से आर्यजाति पर अत्याचार हो रहे हैं वह आर्य ही नहीं जिसे धर्ममन्दिरों, धर्मपुस्तकों और देवियों पर अत्याचार होता देखकर विशुद्ध क्रोध नहीं आता।

जो बात काम और क्रोधके विषय में कही गई है वही लोभ, मोह, अहंकार आदि के विषय में भी समझनी चाहिये।

अब अन्त में 'राग' और 'द्वेष' शब्द रह जाते हैं। इन के भी अच्छे और बुरे दोनों पहलू हैं। इस सारे मामले को देखकर कई विचारकों का मत है कि संसार में न कोई निरपेक्ष (Absolute) भलाई है और न निरपेक्ष बुराई।

मानुषी जीवन में द्वेष का भी अपना एक स्थान है। अब यह विचारणीय है कि द्वेष के लिये समुचित स्थल कौन २ से हैं ॥ ऋ. ७. १०४. २ में परमात्मा की आज्ञा है:—

ओ३म् इन्द्रा सोमा समघशंसमभ्यघं तपुर्ययस्तु चरुरग्निवां इव ।
ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे द्वेषो धत्तमनवायं किमीदिने ॥

इस मन्त्र पर निरुक्त ६ ३. १२. ४५ में निम्नानुसार विचार किया गया है:—

"इन्द्रासोमावघस्य शंसितारम् । तस्पुतपते चरुर्मृच्चयो भवति ब्रह्मद्विषे ब्राह्मणद्वेष्ट्रे । क्रव्यादे क्रव्यमदते । घोरचक्षसे घोरख्यानाय । द्वेषो धत्त मनवायं अनवयवम् । यदन्ये न व्यवेयुर्द्वेषस इतिवा किमीदिने किमिदानी-मिति चरते किमिदं किमिदमितिवा पिशुनाय चरते क्रव्यं विकृताज्जायते इति नैरुक्ताः ॥"

भावार्थ—हे इन्द्र और हे सोम ! जो मनुष्य पाप का इकरार (अथवा किसी पाप कर्म की प्रशंसा) करता है वह तपनेवाली मट्टी की हंडिया की नाई जो अग्नि पर रखी हो प्रयत्नशील बन जावे। आप ब्राह्मणों से द्वेष रखने वाले, घृणित ख्यातिवाले, मांसभक्षक तथा चुगलखोर से द्वेष धारण करें। वह द्वेष भी ऐसा हो जिस में कोई त्रुटि न हो और राग द्वेषरहित पुरुष जिस को हटाने के लिये बीच में न आवें।

दण्ड और द्वेष का उद्देश क्या होना चाहिये यह भी यहां बड़ी सुन्दरता से बता दिया गया है। पापी को प्रयत्नशील बनाना है इसी से उन की आत्मा पाप से उपरत हो जाएगी. आलस्य शैतान की दुकान है। इस भाव को आजकल के सभ्यराष्ट्र भली भांति समझते हैं जो जेलों के कैदियों को मुक्ति फौजादि के प्रबन्ध द्वारा परिश्रमी बनाने का यत्न करते हैं। परिश्रमी पुरुष को पाप करने का विचार ही कम आता है। वह दण्ड अथवा द्वेष किन की सम्मति से धारण करना चाहिये इस का भी इसी मन्त्र में उपदेश है। जो लोग किसी के प्रति राग द्वेष नहीं रखते उन की दण्ड प्रणाली में सम्मति लेकर दण्ड देना चाहिये। अर्थात् राजा लोग सन्यासियों के परामर्शानुसार शासन करें। मन्त्रोक्त पापों अथवा पाप की प्रशंसा करनेवालों के लिये दण्ड या द्वेष का भी जो विधान किया

आर्यसमाज के उच्चकोटि के विद्वानों की पुस्तकें

सन्यासी महात्माओं की ओर से आत्मप्रसाद ।

(१) श्री स्वामी सत्यानन्द जी—दयानन्द प्रकाश १॥) संध्यायोग ।-) सामाजिक धर्म ॥) दयानन्द वचनामृत ॥=) ओंकार उपासना ≡) सत्योपदेश माला १)

(२) श्री नारायण स्वामी जी—आत्म दर्शन १॥) आर्य समाज क्या है ।-) प्राणायाम विधि =) वर्णव्यवस्था पर शंकासमाधान ≡)

(३) श्री स्वामी अच्युतानन्द जी—व्याख्यानमाला (संस्कृत में) संस्कृत में योग्यता प्राप्त करने के लिये ॥=) आर्याभिविनय द्वितीय भाग सजिल्द -)॥ एक ईश्वरवाद -) प्रार्थना पुस्तक

(४) श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी—आर्य पथिक लेखराम १।) मुक्ति सोपान ॥=)

(५) श्री स्वामी सर्वदानन्द जी—आनन्द संग्रह, परम आनन्द की प्राप्ति के सब साधन इस में दिये गये हैं १)

(६) श्री स्वामी अनुभवानन्द जी—भक्त की भावना, बहुत बढ़िया पुस्तक है मू०केवल॥)

भक्ति दर्पण अथवा आत्म प्रसाद ।

इस में भक्ति मार्ग के सभी साधन दे दिये गये हैं । प्रत्येक स्त्री, पुरुष, बच्चे, बूढ़े को हर समय जेब में रखनी चाहिये । पाकिट साईज सुनहरी जिल्द मू० ॥)

स्कूलों तथा पाठशालाओं में बच्चों को उपहार में देने योग्य उत्तम पुस्तक है । आर्य समाज के बड़े २ विद्वानों ने इसे बहुत पसन्द किया है ।

आर्यप्रतिनिधि सभा द्वारा स्वीकृत ।

—आर्य प्रतिनिधि सभा ने आर्य समाजों के लिये हिसाब किताब, मासिक चन्दा, संस्कार, पुस्तकालय, वस्तुभण्डार, साप्ताहिक सत्संग तथा वार्षिक वृत्तान्त के लिये १० प्रकार के रजिस्टर और फार्म स्वीकार किये हैं, जो प्रत्येक समाज को प्रयोग में लाने चाहियें । यह रजिस्टर सजिल्द तथा एक वर्ष से अधिक समय के लिये प्रर्याप्त हैं । मू० केवल ६)

—शुद्धि के प्रमाण पत्र—जो सभा द्वारा स्वीकृत हैं, अति सुन्दर रंगीन छपवाए गए हैं, प्रमाण पत्र का एक भाग समाज के पास रहेगा । और दूसरा भाग काट कर शुद्ध हुए व्यक्ति को दिया जाता है। १०० फार्मों की एक कापी का मू० १॥=), ५० फार्मों की कापी ।॥=)

—आर्यसमाज के प्रवेश पत्रों तथा नियमों की १०० फार्मों की सुन्दर कापी ॥=), रसीद बुक ॥) हिन्दी, अंग्रेज़ी, उर्दू नियम ।=) सैंकड़ा ॥

साप्ताहिक सत्संग के लिये सत्संग गुटका ≡) भजन संकीर्तन -)

राजपाल—अध्यक्ष, आर्य पुस्तकालय तथा सरस्वती आश्रम, लाहौर ।

आर्य समाज का इतिहास

(प्रथम भाग)

लेखक श्रीयुत इन्द्र विद्यावाचस्पति

आर्य समाज के क्रमबद्ध और विस्तृत इतिहास का अभाव था। उसे पूरा करने के लिये श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के आदेशानुसार यह इतिहास लिखा गया है इतिहास क्या है, एक मनोरंजक उपन्यास है भाषा ज़ोरदार और भाव पूर्ण है। अंग्रेज़ी का प्रसिद्ध पत्र माडर्न रिव्यू लिखता है कि इस इतिहास से एक बड़ा अभाव पूर्ण होगया है। पहले भाग में ऋषि दयानन्द के आश्चर्यजनक जीवन, आर्य समाज की स्थापना, डी. ए. वी. कालिज के प्रारम्भ और पं० गुरुदत्त एम. ए. के जीवन का वृत्तान्त है। हर एक आर्य के घर में इस का रहना आवश्यक है। सजिल्द का मूल्य २)

अर्जुन पुस्तकालय नई सड़क दिल्ली

"वीर मराठे"! "वीर मराठे"!

हिन्दी साहित्य में नया उपन्यास

ले० प्रो० भीमसेन विद्यालंकार

'अभ्युदय' लिखता है:—मराठों की वीरता का वृत्तान्त पढ़कर हृदय बल्लियों उछलने लगता है, दूसरी तरफ़ राघोबा की देशद्रोहिता को पढ़कर क्रोध के आंसू निकल पड़ते हैं। प्रत्येक हिन्दू को इसका अध्ययन अवश्य करना चाहिये।

'प्रभा' लिखती है:—राष्ट्रीय पाठशालाओं में इस पुस्तक को पाठ्य क्रम में रखना चाहिये।

'आर्य' लिखता है:—पुस्तक के कई ऐसे स्थल हैं जिन्हें पढ़ कर कलेजा फड़कने लगता है। नवयुवकों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। पुस्तक की पृष्ठ संख्या २०० से ऊपर है। मूल्य केवल १) रु०

सत्यवादी कार्यालय, हास्पिटल रोड, लाहौर।

आर्य्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब, गुरुदत्त भवन लाहौर।

आय व्यय मद्धे मास कार्तिक १९८२

निधि	बजट आय	इस मासकी आय	इस वर्ष की आय	बजट व्यय	इस मास का व्यय	इस वर्ष का व्यय
मुख्य कार्यालय सभा				६४१०)	४६२॥-,१	३६४५॥≡
दशान्श	२६००)	१७२॥≡)॥	१०८८)			
दायाद्य रक्षा				८६०)	७८॥)	४८२॥-)।
पंचार्थ			१५०)			
सत्यार्थप्रकाश आज्ञा			१२५)			
गिलेस्पसेज़ आफ् स्वामी दयानन्द			८३॥=)			
योग		१७२॥≡)॥	१४४६॥=)		५७१॥-)१	४१२८॥)१
कार्यालय वेदप्रचार				१५६०)	४८)	५१२॥)
वैदिक पुस्तकालय	५००)	२०)	२७८)	२५००)	२१७)	१७३२॥≡
आर्य	३०००)	६०॥)	६०४=)।	३०००)	२३३)	१३२६॥≡)
चाराना निधि	?000)	४८५॥≡)।॥	१२५९।=)।			
ट्रैक्ट	२००)		६०॥=)			
वेतन उपदेशक				१७०८०)	११६४॥-)।॥	८२७०॥-)
मार्ग व्यय				६४००)	६१७॥।)॥	४४६७॥=
बीमा जीवन				९०)	२३।)	६७।≡)
वैदिक कोष				१२००)	५०)	५१३॥=)।
सहायता माता गणपति				२४)		१२)
योग		५६६।≡)।॥	२२०२=)॥		२३५४=)।	१६६०४।-
वेद प्रचार		१५९३≡)८	९८३५॥)१०			
लेखराम स्मारक निधि	३००)		१५५॥≡)			
वेतन उपदेशक				२०००)	१६॥)	४६५।)
मार्ग व्यय				५००)		४७॥)
गुज़ारा विधवा पं०						
,, तुलसीराम				१२०)	१०)	८०)
,, ,, वज़ीरचन्द				९६)	≡)	६४)
योग			१५५॥≡)		३४॥।	६५६॥।)
सूद बैंक		१६३०=)७	२२१२०।)६		।)	६॥।)५
,, क़र्ज़ा		६९-)८	२१७६।≡)			
भूमि आय व्यय		५८॥)	४७८॥-)		६१=)	?४४॥=)
किराया मकान			४४)			
योग		१७५७॥)३	२४८१९।)॥		६१।=)	२५१।=)११
अमानत अन्य संस्थायें		३३)	६९४॥।)		१३९।≡)॥	६६३६॥≡)
,, आर्यसमाजें		४२२)	२७३०॥।)६		३६९)	१८६६॥≡)
,, वैदिक पुस्तकालय			५०)		१०)	२०)
,, विद्यार्थी आश्रम		४१७)	४६२)			५०४)
,, अम्बालाल दामोदरदास						५०॥)
योग		८७२)	३६३७॥)।॥		५१८।≡)॥	६०८८=)

निधि	बजट आय	इस मास की आय	इस वर्ष की आय	बजट व्यय	व्यय	[illegible]
ीयत निहाल देवी			४७६९।)		२१०)	४
ींदाराम						
० विद्यानंद जानकी			१०००)			१
ाई						
पूर्णानन्द जी					२४०)	५
ओचीराम जी					२५)	२०
मशरणदास जी			१०००)			
योग			६७६९।)	१००००	४७५)	११४
लतोद्धार	१००००)	१२७।	९८५।=)॥।		४१२।)५	५८४
जपूतोद्धार		११॥=)	४७॥=)		२६७=)	५७९
वीडेंट		६४॥-)॥।	१०३०-)२			२२५
दिशक विद्यालय	६०००)	६००)	१४६४८॥≡)॥।	६०००)	५२८।-)८	२३२
र्य विद्यार्थी आश्रम	४५००)	२३०॥)॥।	४०८७॥=`।	४५००)	५३८)॥	२१७
ज्ञात निधि		३१८५)	४८१२।)॥।		१५३)॥।	१५९
ाब्दी		४०)	४७९≡)			७५
ामृत			५४५१॥।≡)			
दिशक विद्यालय						
स्थिरकोष			२००००)			
देश प्रचार	२०००)		६५।=)।	१५००।		१
ास प्रचार		६०)	६०)			
भा के सेवकों की						
सहायता						६
क्षा समिति		१०)	१००)			१६
पदेशक विद्यालय			१६१०)			
ाला						
देवीहोमकरणभंडार				६०)		६०
ासाम प्रचार						५३
मचन्द्रस्मारकनिधि			३४५॥-)			१८
साधारण निधि		१।	२)			
बोनस			१२३॥-)॥।			
रुकुल मुलतान			॥=)			
रुदत्त भवन आ. शाला		२५०)	२५०)			
योग		४६१०)॥	५४४०९।-)८		१८९८॥।-)४	३८७
रुकुल महानिधि		१५३०१≡,८	७०२२५॥।≡)।		१०४६६-)।	६२८
स्थिर छात्रवृत्ति			१८१३४-)			
अस्थिर ,,		११४९॥)	४५०॥)			
उपाध्याय वृत्ति			५८४०५)॥			
शालानिधि		२५५५।=)	२५५५।=)			
न्यागुरुकुल इंद्रप्रस्थ			१३४९३।=)॥			
योग		१९००६-)८	१६२३६३।-)।		१०४६६-)।	११०
सर्वयोग		२८५७८॥-)४	२६५९३१।)॥		१६३७९॥।≡)५	१८१
गत शेष		११२८१९१।=)४	१०५६२७६॥।=)१०			
योग		११५६७७७॥≡)८	१३२२२१६≡)४			
व्यय		१६३७९॥।≡)५	१८१८१८≡)१			
वर्त्तमान शेष		११४०३९८)।	११४०३९८)।			

Registered No. L 1424 रजिस्टर्ड नं० एल १४२४

ओ३म्

भाग ७ फर्वरी १९२६
अङ्क ११ फाल्गुण १९८२

आर्य्य

आर्य्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का मासिक पत्र

सम्पादक—चमूपति

प्रार्थना

ओ३म् इन्द्रं वर्धन्तोऽप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ।
अपघ्नन्तोऽराव्णः ऋग्वेद ।

हे प्रभु ! हम तुम से वर पावें ।
विश्व जगत् को आर्य्य बनावें ॥
फैलें, सुख सम्पत् फैलावें ।
आप बढ़ें, तव राज्य बढ़ावें ॥
वैर-विघ्न को मार मिटावें ।
प्रीति-नीति की रीति चलावें ॥

वार्षिक मूल्य ३) रु० पेशगी

बाबू जगतनारायण प्रिन्टर व पब्लिशर के अधिकार से विरजानन्द प्रेस में छप कर प्रकाशित हुआ।

विषय सूची

सर्वयोग		११७५४।)७	३०६१४२≡)१		२५४५९.=)॥	२५५
गत शेष		११५१००९॥≡)११	१०५६२७६॥।=)१०			
योग		११६२७६४)॥	१३६२४१९-)११			
व्यय		२४४५९।=)॥	२२५११४।≡)११			
शेष		११३७३०४॥=)	११३७३०४॥=)			

* ओ३म् *

आर्य्य

भाग ७] लाहौर—फाल्गुण १९८२ मार्च १९२६ [अंक ११

[दयानन्दाब्द १०१]

प्रार्थना

हैं गाचुके और गारहे हैं न जाने कितना है गान बाकी ॥ ध्रुव ॥

कभी हो आकाश में फिराते, कभी जहां की हवा खिलाते।
कभी हंसाते कभी रुलाते, न जाने कितना घुमान बाकी ॥ १ ॥

ये देखो धूनी रमाए योगी, बनों में आसन जमा २ कर।
तुम्हीं में खुश मस्त हो रहे हैं, न जाने कितना है ध्यान बाकी ॥ २ ॥

हर एक गुल में हर एक चमन में। है तूने अपनी जमाई हस्ती।
जो देख आंखों से कह दिया है, न जाने कितना बयान बाकी ॥ ३ ॥

हज़ारों बन्दे शरण में आए। हज़ारों उस पार जा चुके हैं।
निशाने सारे खतम हुए हैं। रहा है तेरा निशान बाकी ॥ ४ ॥

चढ़ादे ऐसा नशा कि तुझ में, ही रात दिन मस्त होके गाऊं।
न ध्यान हो अपने देह तक का, रहा हो तेरा ही ध्यान बाकी ॥ ५ ॥

ये छोड़ दुनियां की सारी तानें, उड़ा रहा हूं मैं तेरी तानें।
ये चार आंखें तो हो चुकी हैं रहा है केवल मिलान बाकी ॥ ६ ॥

वैदिक सिद्धान्तमाला*

[पुष्प १]

वर्णव्यवस्था और पौराणिक मत।

(पुराणों के प्रकाश में वर्णव्यवस्था पर कुछ विचार)

(श्री० गुरुदत्त सिद्धान्तालङ्कार आर्योपदेशक)

ओ३म् ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः। ऊरूतदस्य यद्वैश्यः, पद्भ्याᳪ शूद्रोऽजायत।

देश तथा विदेश के समाजशास्त्रियों की राय में वर्तमान जात पात के कड़े बन्धन ही हिन्दू जाति की फूट तथा उस की अन्य सामाजिक बुराइयों की एक मात्र जड़ हैं।

गुण और कर्म को आधार न मान कर केवल जन्म मात्र को ही वर्णव्यवस्था का मूल आधार माना जावेगा, तथा जब तक जन्म का झूठा और अनुचित अभिमान हमारी वैयक्तिक और जातीय उन्नति के मार्ग में बाधक बना हुआ है, तबतक जातपात के कड़े बन्धनों का ढीला होना अत्यन्त असम्भव है। आज हम आर्य के पाठकों के सन्मुख इस बात को रखेंगे, कि स्वयं पुराणकार भी वर्णव्यवस्था के सम्बन्ध में उसी सचाई की पुष्टि करते हैं, जिस सचाई को वर्तमान युग में ऋषि दयानन्द ने भारतीय जनता के सन्मुख रखा है। यह और बात है, कि पौराणिक विद्वान् अपने स्वार्थ तथा हठधर्मिता की ख़ातिर जान बूझ कर सचाई का ख़ून करें।

* इस शीर्षक के नीचे हमारा विचार प्रति मास आर्ष सिद्धान्तों पर भिन्न २ सुयोग्य विद्वानों से लेख लिखवाने का है। इस से जहां वैदिक साहित्य की उन्नति होगी वहां पाठकों को मासिक स्वाध्याय में भी वृद्धि होकर उन का अपने धर्म ग्रन्थों से परिचय बढ़ेगा। आशा है कि पाठकों को यह अरुचिकर न होगा।—सं.

आर्यसमाज तथा सनातनधर्म दोनों की तरफ़ से वर्णव्यवस्था की पुष्टि में यजुर्वेद का निम्न मन्त्र पेश किया जाता है:—

"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः। ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत ॥" यजु० —३१ अ० ११ मं०।

आर्यसमाज की तरफ़ से इस मन्त्र के निम्न दो अर्थ पेश किये जाते हैं। इन में से एक अर्थ तो अभिधापरक है और दूसरा अर्थ लाक्षणिक है। दोनों प्रकार के अर्थों का भावाशय तो एक ही है, परन्तु अर्थ करने की शैली में भेद है। उक्त मन्त्र का अभिधापरक अर्थ निम्न है:—

इस विराट् पुरुष के आलङ्कारिक तथा काल्पनिक आधिभौतिक-देह का मुख ब्राह्मण है। राजन्य (क्षत्रिय) इस का बाहुरूप है। वैश्य इस का ऊरूरूप है। शूद्र पाओं के लिये (पांव का कार्य सेवा वा श्रम करने के लिये) पैदा हुआ।

इस मन्त्र का भावाशय यह है, कि सम्पूर्ण मानव समाज ही विराट् रूप परमात्मा का आलङ्कारिक आधिभौतिक देह है। इस मानवसमाज-रूपी देह (Organism) में ब्राह्मण शिरस्थानीय है। क्षत्रिय बाहुस्थानीय, वैश्य ऊरूस्थानीय तथा शूद्र पादस्थानीय है।

ऋषि दयानन्द ने अपनी ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका में उक्त मन्त्र का जो लाक्षणिक अर्थ किया है उस में उन्हों ने मुख बाहु आदि पदों का अभिधापरक अर्थ मुखादि शरीरावयव नहीं किया। अपितु इन पदों का लाक्षणिक अर्थ किया है मुख पद के लाक्षणिक अर्थ ऋषि ने विद्या, सत्य आदि मुख्य गुण किये हैं। बाहु शब्द के अर्थ बल, वीरता तथा पराक्रमादि गुण किये हैं। ऊरू शब्द के अर्थ कृषि व्यापार आदि धन सम्पादक मध्यम गुण किये हैं। पाद् शब्द के अर्थ मूर्खता तथा श्रम (मेहनत और मज़दूरी) आदि हीन गुण किये हैं। दूसरे शब्दों में हम इन उक्त गुणों को निम्न पारभाषिक शब्दों में भी कह सकते हैं, कि —सत्य, ज्ञान तथा तप आदि सात्विक गुण ब्राह्मण वृत्ति को, बल, वीर्य तथा पराक्रमादि राजस गुण क्षात्रवृत्ति को, खेती, व्यापार तथा कला कौशलादि साधनों द्वारा धन पैदा करने का राजस गुण वैश्यवृत्ति को तथा मूर्खता और श्रमादि हीन तामस गुण शूद्रवृत्ति को बोधित कराते हैं।

वर्णव्यवस्था विषयक उक्त मन्त्र के अभिधापरक अर्थ के द्वारा हमें समाज शास्त्र के आधार भूत विषय का ज्ञान होता है, और वह निम्न है:—"Society is

organism"। यह सूत्र सारे समाज शास्त्र का आधार भूत सूत्र है। समष्टि अथवा समाज को संगठित देह तथा उस में unity को कल्पित किये बिना उस का विभाग करना तथा उस के भिन्न २ अंगों का कार्य नियत करना अत्यन्त असंभव है। वर्णव्यवस्था विषयक उक्त मन्त्र में समाज विभाग तथा उसके आधारभूत विषय पर बड़े ही सुन्दर तथा वैज्ञानिक शब्दों में प्रकाश डाला गया है। उक्त मंत्र के ऊपर बताये गये दोनों अर्थों में शैली तथा भाव का भेद तो ज़रूर है ; परन्तु उक्त दोनों अर्थों में विरोध की किञ्चित् मात्र भी गन्ध नहीं है। क्योंकि इन दोनों अर्थों में समाज विभाग के दो भिन्न २ पहलुओं पर विचार किया गया है। पहिला अभिधापरक अर्थ तो समाज शास्त्र की दृष्टि से किया गया है। और दूसरा लाक्षणिक अर्थ मनो विज्ञान की दृष्टि से किया गया है।

प्रश्न उपस्थित होता है कि समाज विभाग किस आधार पर किया जाना चाहिये। क्या धन पर, रंगत पर, विविध २ प्रकारके पेशों पर, भिन्न २ सामाजिक पदों पर, अथवा किसी अन्य आधार पर इसे किया जाना चाहिये ? वेद भगवान् कहतेहैं कि, समाज विभागका आधार न धन होना चाहिये, न रंगत, न विविध २ प्रकारके पेशे और न भिन्न २ सामाजिक पद। अपितु यह विभाग भिन्न २ मानवीय मानसिक वृत्ति या प्रकृतियों के आधार पर किया जाना चाहिये। समाज विभाग का निम्न मनो वैज्ञानिक आधार ही स्थिर; व्यापक, क्रियात्मक तथा वैज्ञानिक है। ऋषि ने अपने लाक्षणिक अर्थ में समाज विभाग के इसी मनो वैज्ञानिक पहलू तथा उस के भिन्न २ अंगों के कार्य विभाग पर बड़ी ही सुन्दर रीति से प्रकाश डाला है। ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका कृत लाक्षणिक अर्थ ऋषि के अगाध ज्ञान तथा उस की प्रतिभाशालिता के मूर्तिमान् ज्वलन्त उदाहरण है। ऋषि के इस अगाध ज्ञान तथा उस की मौलिक प्रतिभा को देख कर लेखक का सिर तो श्रद्धा और भक्ति के आवेश में सहसा ऋषि के चरणों पर झुक जाता है। ऋषि ने मुख, बाहु, ऊरू, तथा पादशब्द का लाक्षणिक अर्थ मन माना नहीं किया, अपितु ब्राह्मण ग्रन्थ तथा स्वयं श्रीमद्भागवतकार भी मुक्तकण्ठ से ऋषि के इस लाक्षणिक अर्थ की पुष्टि कर रहे हैं।

वर्णव्यवस्था पर थोड़े से शब्दों में सामान्य विचार करके हम पुनः अपने प्रकृत विषय पर विचार प्रारम्भ करेंगे। वर्णव्यवस्था का मुख्य विधायक जन्म नहीं, अपितु गुण, कर्म और स्वभाव हैं। इनमें भी स्वभाव (व्यक्ति की मानसिक-वृति) मुख्य घटक (Chief factor) है कर्म (पेशा) तो किसी भी व्यक्ति की मानसिक वृत्ति का वाह्यद्योतक चिह्न मात्र है। इसे समाज विभाग अथवा वर्ण विभाग का

मुख्य घटक नहीं माना जा सकता क्योंकि पहिले तो दुनियां में पेशों की संख्या ही अनगिनत है और फिर इनका ठीक २ श्रेणी विभाग करना और भी कठिन है। इसके साथ २ पेशे अस्थिर हैं। मनुष्य एक ही जन्म में कई विविध २ प्रकार के पेशे अख़्तियार करता है अतः पेशों (कर्म) को वर्णविभाग का मुख्य घटक मानने पर अव्यवस्था तथा अनिश्चितता का दोष आता है। परन्तु स्वभाव को मुख्य घटक मानने पर उक्त दोषों का समावेश ही नहीं होता। क्यों कि वृत्तियों के निश्चित होने से इनका श्रेणी विभाग (Classification) करना सरल है। दूसरा मानवीय मानसिक वृत्तियां पेशों की तरह अस्थिर नहीं हैं। क्योंकि वंशानुक्रमिता के अटल नियम (Laws of Hreridity) तथा शिक्षा के द्वारा व्यक्ति की मानसिक वृत्तियां यौवनकाल के प्रारम्भ होने तक प्रायः निश्चित हो जाती हैं। आर्यसमाज के वर्णव्यवस्थाविषयक सिद्धान्त पर एक यह आक्षेप भी किया जाता है कि आर्यसमाज जन्म की उपेक्षा करके वंशानुक्रमिता के अटल नियमों का व्याघात करता है, अतः यह पक्ष वंशानुक्रमिता के सत्य नियम के विरुद्ध होने के कारण विज्ञान विरुद्ध है। इससे तो यह प्रतीत होता है, कि इस प्रकार के आक्षेप करने वाले सज्जनों ने अब तक आर्यसमाज के वर्णव्यवस्था विषयक वैदिक सिद्धान्त को ठीक तरह से समझने का कष्ट ही नहीं उठाया। आर्यसमाज आनुवंशिक संस्कारों की संक्रान्ति तथा इन की प्रबलता की उपेक्षा नहीं करता। वह तो इस वैज्ञानिक सचाई को स्वीकार करता है। आर्यसमाज का पक्ष तो यह है, कि वर्णव्यवस्था या वर्ण विभाग का मुख्य निर्णायक जन्म नहीं है, अपितु व्यक्तियों के गुण, कर्म और स्वभाव हैं। अर्थात् जिन उदाहरणों Cases में जन्म तथा व्यक्तियों के गुण, कर्म और स्वभाव में परस्पर विरोध या संघर्ष पाया जाय, वहां पर जन्म की अपेक्षा गुण, कर्म और स्वभाव की अधिक प्रधानता है। अर्थात् गुण कर्म और स्वभाव वर्णनिश्चय के मुख्य घटक (Chief foctors) तथा जन्म गौण घटक है। इन दोनों के विरोध तथा सङ्घर्ष में गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार ही वर्ण का निश्चय होना चाहिये, न कि जन्म के अनुसार। वंशानुक्रमिता विषय के समस्त विद्वान् इस सचाई से पूर्णतया सहमत हैं, कि आनुवंशिक संस्कारों की व्यक्ति के लिये परिस्थिति की अनुकूलता अत्यन्त आवश्यक है। कई वार परिस्थिति के प्रतिकूल होने के कारण अथवा बाधाओं के उपस्थित होने के कारण आनुवंशिक संस्कार सन्ततियों में व्यक्त नहीं होते। ऐसे cases में वर्ण का निश्चय जन्म से न हो कर व्यक्ति के गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार

ही होगा। वे बाधायें कौनसी हैं विषयान्तर होने के कारण इन का प्रतिपादन इस लेख में नहीं किया जा सकता। परन्तु यह एक अनुभूत और निरीक्षित सचाई (fact) है, इससे कोई भी इन्कार नहीं कर सकता। यह तो हुआ, आक्षेप का युक्ति युक्त और वैज्ञानिक उत्तर। परन्तु काला अक्षर भैंस बराबर की कहावत को अपने पर चरितार्थ करने वाले आजकल के सैंकड़ों निरक्षरभट्टाचार्य तथा भोजन भट्ट ब्राह्मण तो जन्म अथवा वंशानुक्रमिता के भौतिक नियम की भी शरण नहीं ले सकते। क्यों कि ये तथा इन के अनेकों पूर्वज सैंकड़ों वर्षों से प्रमाद, आलस्य, अविद्या—तथा सदाचारहीनता आदि दुर्गुणों के कारण अपने ब्राह्मणत्व के संस्कारों का समूल नाश करके अपने बीज को भी शूद्रत्व के संस्कारों से प्रभावित कर चुके हैं। अतः इन बेचारों को तो वंशानुक्रमिता का अटल नियम भी आर्यसमाज के फ़ौलादी पंजे की चोट से नहीं बचा सकता। इन निरक्षर भट्टाचार्य तथा भोजनभट्ट ब्राह्मणों की मुक्ति का एक मात्र सरल उपाय यही है, कि वे शीघ्र ही अपना नया नामकरण संस्कार करा के अपने सजातीय शूद्रों की बिरादरी में मिलजांय। इस विषय पर नवीन वैज्ञानिक दृष्टि से—जो कि लेखक को बहुत प्रिय है—विचार इस लेखमाला के अगले लेखों में किया जावेगा। इस लेख में तो इस विषय पर केवल शास्त्रीय दृष्टि से ही प्रकाश डाला जावेगा।

इस मंत्र की महत्ता तथा उक्त दोनों अर्थों के भावसौन्दर्य का दिग्दर्शन भी हम इस लेख माला के किसी अन्य लेख में ही करावेंगे। इस लेख में तो हमने केवल मात्र शब्द प्रमाण के आधार पर ही अपने पौराणिक भाईयों से इस बात का निपटारा करना है, कि वर्णव्यवस्था का शास्त्रीय आधार केवल मात्र जन्म है अथवा गुण कर्म और स्वभाव।

हम पाठकों के सन्मुख वर्णव्यवस्था के आधारभूत मन्त्र की आर्य समाज तथा ऋषि दयानन्द कृत व्याख्या को तो रख ही चुके हैं। अब आईये! ज़रा हम आप को पौराणिकों के घर की भी सैर करायें, फिर आप आर्यसमाज तथा ऋषि दयानन्द के चरणों में सिर झुकाये बिना न रह सकेंगे। पौराणिकों के परम माननीय ग्रन्थ 'श्रीमद्भागवत पुराण' ने उक्त मन्त्र की जो व्याख्या की है वह देखने लायक है। यह व्याख्या तो बड़े २ दिग्गज तथा हठी पौराणिक पण्डितों को भी ऋषि दयानन्द को विद्वता का सिक्का मनाने तथा उन्हें आर्यसमाज की शरण में आने के लिये वाधित करती है। अब हम पाठकों के सामने उक्त मन्त्र को भागवत

पुराणकृत अभिधा परक व्याख्या को रखते हैं। वह व्याख्या निम्न है:—

"ब्रह्माननं क्षत्रभुजो महात्मा विड्रूङ्घ्रिश्रित कृष्णवर्णाः।
नानाभिधाभीज्य गुणोपपन्नः द्रव्यात्मकः कर्म वितानयोगः॥

भागवत २ स्कन्ध, १ अध्याय, ३७ श्लो·

इस श्लोक का अर्थ बहुत ही स्पष्ट है, कि ब्राह्मण उस 'विराट्' पुरुष का मुख है। क्षत्रिय उस की भुजायें हैं वैश्य उसके उरू (जङ्घायें) हैं। शूद्र (कृष्णवर्ण) उस के (पादस्थानीय) हैं। यह स्थूल देह वास्तविक नहीं है, अपितु आलङ्कारिक है तथा यह प्रकृत आलङ्कारिक वर्णन विराट् रूप पुरुष का ही है। स्वयं पुराण ही इस बात को स्पष्ट शब्दों में निम्न प्रकार से कह रहा है—

१—जितासनो जितश्वासो जितसङ्गोजितेन्द्रियः।
स्थूलेभगवतोरूपे मन· संधारयेद्धिया॥ २३॥
२—विशेषस्तस्य देहोऽयं, स्थविष्ठश्च स्थवीयसाम्।
यत्रेदं दृश्यते विश्वं, भूतं भव्यंभवच्च यत्॥ २४॥
३—आण्डकोशे शरीरेऽस्मिन् सप्तावरणसंयुते।
वैराजः पुरुषो योऽसौ, भगवान्धारणाश्रय·॥ २५॥
४—पातालमेतस्यहि पादमूलं पठन्तिपार्ष्णि प्रपदे रसातलम्।
महातलं विश्वसृजोऽथगुल्फौ, तलातलं वै पुरुषस्य जङ्घे॥ २६॥
५—इयानसौईश्वरविग्रहस्य, य संनिवेशः कथितो मयाते।
संधायंतेऽस्मिन् वपुषि स्थविष्ठे, मनः स्वबुद्ध्यान यतोऽस्ति किंचित्॥ २७॥

श्री मद्भागवत २ स्क. १ अध्या. २३, २४, २५, २६, ६८ श्लोक

इन श्लोकों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है, कि भक्त के प्राथमिक ध्यान के लिये इस संपूर्ण प्रतीयमान स्थूल विश्व को विराट् पुरुष का कल्पनिक स्थूल देह मान कर उस की आलङ्कारिक व्याख्या की गई है। जैसे कि ३८ वे श्लोक के तृतीय और चतुर्थ पाद इस बात को स्पष्ट शब्दों में घोषित कर रहे हैं—"संधार्यतेऽस्मिन् वपुषि स्थविष्ठे, मनः स्वबुद्ध्यानयतोऽस्ति किंचित्" इस स्थूल देह में अपने मन को बुद्धि द्वारा लगाया जाता है। (शेष आगे)

दिव्य-रूप।

(श्री० शान्त शर्म्मा, 'देव' काठियावाड़ गुजरात)

(घनाक्षरी छन्द)

आनन उजास पर सूरज का तेज वारूँ
बाहुओं पै वारूँ वर वारणों के कर को।
लंगोटी की लीर पर राजसी लिबास वारूँ,
देह द्युति पर वारूँ तपे चामीकर को।
उन्नत विशाल डील डौल वाले देह के,—
सुमान पर वारूँ मान वाले महीधर को।
नाखूनों के नूर पर ताज की कतार वारूँ,
कन्ध पर वारूँ चारु कन्ध युगन्धर को ॥ १ ॥

परम पिता के प्रति शिशु से सरल और,—
तिरछे प्रसङ्ग में तरल मति वाला है।
पापियों के पुञ्ज में कुलिश से कठोर और,—
दुःखियों में फूल से नरम दिल वाला है।
जुल्मों को ज्वालाओं की माला में लपेटता है,
जाहिलों पै करुणा के आँसु को निकाला है।
विश्व की विभूति छोड़ी, वैभव विराट् पाया,
दंग दुनिया ने देखा व्योपार निराला है ॥ २ ॥

किसी से न दबा सदा 'स्वामी' सा समाज में,
जो बिना अभिषेक नेक शासन चलाता है।
आगे धरी 'दया' और बीच में 'आनन्द' भरा,
पीछे पड़ी 'सरस्वती' फुलाता फलाता है।
साधु-चित्त-चकोरों को चारु चन्द्रमा सा रहा,
रहम विछोही दूषणों का जी जलाता है।
गड़ी एक टक आंखें, नेक न अधाया मन,
ऐसा दिव्य-रूप टुक टाले न टलाता है ॥ ३ ॥

अफ्रीका देश में ईसाइयत और आर्य्य समाज

(श्री कृष्णदेव कपिल बी०ए० अफ्रीका)

(१)

आज संसार में ईसाइयत का बोलबाला है, इसका प्रचार है और इसकी धूम है। इसका कारण क्या है? क्या ईसाइयत परमात्मा का विशेष सन्देश है जिसका विस्तार स्वयं होता चला जा रहा है? नहीं। इसका प्रचार हज़रत ईसा के उन वीर और बहादुर शिष्यों के कारण हुआ है और हो रहा है जिन्होंने इसके लिए अपना जीवन न्योछावर कर दिया है।

अफ्रीका देश एक जङ्गली देश समझा जाता है। उनकी धार्मिक, सामाजिक और शिक्षा सम्बन्धी स्थिति अत्यन्त हीन है और उनमें जातीयता व अपने धर्म का नामोनिशान नहीं। इस दीन हीन दशा में रहने वालों के लिए ईसाइयत और अपनी सभ्यता के प्रचारार्थ ईसाई वीरों और प्रचारकों ने कितना काम किया है इसे जानकर कौन पुरुष है जो उनकी वीरता और धीरता की प्रशंसा न करे?

पचास वर्ष का समय हुआ कि एक अंग्रेज जिनका नाम H.M Stanley था, मध्य अफ्रीका के निर्जन देश में नील और कौंगो के दरियाओं के स्रोत का पता लगाने के लिए घूम रहे थे। इङ्गलिश साम्राज्य को विस्तृत करने के लिये यह वीर पुरुष घर से सिर पर कफ़न बांध कर बाहर निकला और आज इङ्गलिस्तान के पत्रों से जान पड़ता है कि इस वीर पुरुष के पुरुषार्थ और प्रयत्न का क्या फल प्राप्त हो रहा है। अंग्ल जाति के इस बहादुर पुरुष ने जो पत्र अफ्रीका देश के युगण्डा प्रान्त के राजा मुतेसा (Mutesa) की राजधानी से लिखा था उस की चर्चा आजकल इङ्गलैंड के पत्रों में चल रही है। इस वीर पुरुष ने पत्र के अन्त में अत्यन्त आशाभरे शब्दों में लिखा था:—

Where is there in the pagan world a more promising field for a Mission than Uganda?......Here, gentlemen, is your apportunity. Embrace it.

H. M. Stanley की इस अपील का इङ्गलैंड के Church ने किस प्रकार उत्तर दिया यह निम्न लिखित शब्दों से प्रतीत होता है:—

"It sounded more than a cry. It was a trumpet call which ran throughout the land............The churches rallying to the call sent out one mission after another in rapid succession and the Christianisation and civilisation of Uganda proceeded, and are still proceeding apace."

इस बहादुर का सन्देश सारे देश में विस्तृत हो गया और इङ्गलिस्तान के एक चर्च ने नहीं अपितु सब चर्चों ने इस अपील को सुना और अपने प्रचारक युगण्डा प्रान्त को भेज दिये। स्टैनले महोदय ने अपने उद्देश्य में प्राण न्योछावर करके दिये परन्तु इस वीर के प्रयत्न से अफ्रीका देश में ईसाइयत को जो आशातीत सुमधुर फल प्राप्त हुआ है उस का पता डाक्टर जे, जे विलिस (Dr. J. J. Willis) के हाल ही में प्रकाशितएक विशेष लेख से लगता है जो उन्हों ने "डेली-ली ग्राफ़" में मुद्रित कराया है। डाक्टर महोदय लिखते हैं:—

"Fifty years have elapsed, and we stand today by the banks of a broad and fast flowing stream. Uganda s no longer an unknown land remote from civilisation' Ai Railway connects with Mombasa and the outside world. The irresponsible despotism, the human sacrifices, the pitiless tortures are things of the past; slavery has disappeared; paganism, with its superstitions and its nameless terrors, is being fast left behind. A new day has dawned. Missions today occupy an acknowledged and honourable place in the life of the people; Christinity is in possession A Christian *Kabaka*, grandson of Mutesa, occupies the throne of Uganda. Christian cheifs form a large majority in the native Parliament. Great Christian Cathedorals, Anglican and Roman, crown the heights round the capital. Christian Churches and Schools in every village bear withess to the widespread influence of the faith. The tens of thousands of boys and girls

who crowd the schools are evidence of the intense keenness of the people for Christian education. Christianity has penetrated to the remotest borders of the Protectrate; it is slowly penetrating into every department of the lives of the people. A native Church is being built up, self governing, self-supporting, self-extending with its own Church Council and synod; its native ministry, its theological colleges and training institutions, its educational system, its diocesan and parochial organisation. Over 12000 adult baptisms in the year, in the Anglican Church alone, indicate the rapid progress of the Gospel in Uganda. Europeons and Africans, Roman Catholics and Anglicans, men and women, missionary statesmen' linguists, education is, to doctors and nurses, have all borne their part in the great movement. Already to a very large degree the dream of Stanley has come true; Uganda is fast becoming a Christian country."

यह है एक निडर व्रतधारी देशभक्त वीर पुरुष का यत्न और पुरुषार्थ जिसने समस्त युगण्डा देश की असभ्य और जंगली जन संख्या को प्रभु ईसा के चरणों में ला झुकाया है।

२

प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या आज आर्य्य समाज भी हज़रत ईसा के इन वीर प्राचारकों की भान्ति ऋषि दयानन्द के उस मिशन को पूरा करने के लिये कटिबद्ध है जिसके लिये कि उस महापुरुष का प्रदुर्भाव हुआ था? ऋषि दयानन्द के हृदय में वैदिक धर्म को समस्त संसार में फैलाने के लिए बड़ी उत्कण्ठा थी जिसका पता परोपकारिणी सभा के नाम लिखे उनके संस्कार पत्रसे लगता है।

ऋषि दयानन्द का दृष्टिकोण सँकुचित न था। उनके हृदयमें यह तड़प थी कि सारा संसार वेद के सन्देश से गूँज उठे और मत मतान्तरों का सर्वनाश हो कर समस्त मनुष्य जाति वैदिक धर्म के एक मात्र सत्य मार्ग का अवलम्बन करे। श्रीमद्दयानन्द वैदिक धर्म के सन्देश के विस्तार के लिए जीवन भर अपनी समस्त

शक्ति लगाते रहे और अपने पीछे अपने मिशन का बोझ आर्य समाज के कन्धों पर डाल गये।

आर्य समाज के लिए भारतवर्ष का कार्य्य क्षेत्र ही अभी इतना विस्तृत है कि वैदिक धर्मके प्रचारक वर्षों तक अपनी शक्ति लगाते रहें तो भी पर्याप्त न हो। देश विदेश की तो बात ही क्या अभी तो आर्यसमाज का प्रचार भारतवर्ष के उन असंख्य ग्रामों और नगरों में भी नहीं पहुंचा जहां आन्दोलन के लिए आज हर प्रकार से सुगमता के सामान उपस्थित हैं। ऐसी दशा में ऋषि के सन्देश को देश देशान्तरों और द्वीप द्वीपान्तरों में फैलाने का दावा करना केवल हंसी की बात मालूम होती है। आर्य्यसमाज में वह वीर कहां जो बुद्ध भगवान् के भिक्षुओं और ईसा के शिष्यों की भान्ति अपना सर्वस्व वैदिक धर्म के प्रचार में लगाने का व्रत धारण करके इसी के लिये दिन रात जीने और मरने के लिए तत्पर हों। इतिहास इस बात का साक्षी है कि वही धर्म विस्तृत हो पाते हैं जिनकी पताका को उठाकर देश २ में घूमने वाले स्टैनले जैसे वीर पुरुष विद्यमान् हों। आर्य्य समाज देश देशान्तरों में वैदिक धर्म की ध्वनि सुनाना चाहता है, पूर्व और पश्चिम में अपने धर्म का झण्डा गाड़ना चाहता है परन्तु क्या आर्य्य समाज की आधुनिक दशा में यह स्वप्न से बढ़कर नहीं है? आर्य्यसमाज तो आज घर की लड़ाई में निमग्न हुआ परस्पर सरफटोल के लिए उद्यत होरहा है। अफ्रीका देश में जहां कि ईसाइयत का इतना ज़ोर है आर्य्य समाज के प्रचार की अवस्था इस बात की सूचक है कि देश देशान्तरों में आर्य्य समाज के प्रचार को विस्तृत करने के लिए अभी वर्षों भगीरथ प्रयत्न की आवश्यकता है। निस्सन्देह अफ्रीका देश में आर्य्य समाज विद्यमान है। नैरोबी, मुम्बासा, किसुम्मु आदि नगरों में आर्य्य समाज बल पूर्वक कार्य्य कर रहा है। युगण्डा में भी इसका प्रचार है। दारासलाम, ज़ंजवार दक्षिणीय अफ्रीका के आर्य्य समाजी भाई भी वैदिक धर्म प्रचार में यत्न शील हैं और धन्य हैं वे पुरुष जिन्हों ने इस देश में आर्य्य समाज के प्रचारार्थ अनेक कठिनाइयों का मुकाबिला करके ऋषि के मिशन का कार्य्य आरम्भ किया। परन्तु ऋषि का उद्देश्य तो तभी पूरा होगा जब स्टैनले महोदय की भान्ति आर्य्यवीर अपनी धर्मध्वजा को उठाकर अपने जीवन इसी कार्य्य में समर्पण कर देंगे। क्या आज आर्य्य समाज के हृदय में भी वह उमंग है जो ऋषि के हृदय में विद्यमान थी? समय ही इसका उत्तर देगा।

महर्षि दयानन्द का ऋषित्व

(श्री विश्वनाथ आर्योपदेशक)

ऋषि एक विशेष पदवी है जो संसार में किसी विशिष्ट पुरुष को ही अपने तप के प्रभाव से प्राप्त होती है। वर्त्तमान समय में श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज इस के योग्य समझे गये। और वैदिक धर्म के पुनरुद्धार करने तथा अपनी विशेष प्रतिभा के कारण महर्षियों की श्रेणी में गिने गये। परन्तु स्वार्थी पुरुष जोकि आर्य्य जाति के रसातल पतन से ही अपनी स्वार्थ सिद्धि समझते हैं उन्हें महर्षि का यह सुधार जिससे संसार में वेदशास्त्र तथा ऋषि मुनि महात्माओं का अत्यन्त सन्मान हुआ है, और आर्य जाति का अपनी उन्नति की ओर ध्यान फिरा है, कैसे इष्ट हो सकता है? इस कारण वह महर्षि के शुभकार्य का विरोध करते हुए उनके ऋषि होने पर भी आक्षेप करते रहते हैं। अतएव शास्त्रोक्त रीति से इस प्रश्न पर विचार करते हुए स्वार्थियों के आक्षेपों का यथोचित सामाधान आवश्यक है।

निरुक्त में ऋषि पद पर निम्न विचार मिलते हैं—

ऋषिर्दर्शनात्स्तोमान्। २-३-२

साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः। तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान् संप्रादुः। १–६–५

मनुष्या वा ऋषिषूत्क्रामत्सु देवानब्रुवन् को न ऋषिर्भविष्यतीति तेभ्यरातं तर्कं ऋषिं प्रायच्छन् मन्त्रार्थचिन्ताम्यूहमभ्यूढम्। तस्माद्यदेव किंचानूचानोऽभ्यूहत्यार्षं तद्भवति। १-१६

(अर्थ) वेदमन्त्रों का तत्त्वार्थ जानने वाला ऋषि कहलाता है। वेदमन्त्रों से धर्म का तत्व स्वरूप जिन्हों ने जाना वह ऋषि हुए। उन्हों ने अनभिज्ञ पुरुषों को वेद मन्त्रों का तत्त्वार्थ समझाया। जब ऋषि लोग न रहे तो साधारण बुद्धि के मनुष्यों ने विद्वानों से पूछा, अब हमारा कौन ऋषि होगा। उन्होंने तर्क ऋषि को दिया। जो वेदमन्त्रों के अर्थ का युक्ति पूर्वक विचार है। अतएव वेद का विद्वान जो भी वेदाश्रित तर्क द्वारा निश्चय करता है वह आर्ष कहलाता है।

शतपथ में कहा है कि—

यो वै ज्ञातोऽनूचानः स ऋषिरार्षेयः। ४-३-४-१८

जो भी वेद के तत्वार्थ को जानने वाला सत्पुरुष है वह ऋषि है। वेद भगवा ऋषि का महत्व इस प्रकार वर्णन करते हैं।

सुब्राह्मणं देववन्तं बृहन्तं पुरुं गभीरं पृथुबुध्नमिन्द्र। श्रुतऋषि मुग्रमभि मातिषाहमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः। ऋ०-१०-४७-३

(अर्थ) हे ऐश्वर्य प्रधान प्रभो! हमें उत्तम ब्राह्मण ईश्वर, भक्त महापुरुष उदार गम्भीर दृढ़मूल तपस्वी अभिमान रहित, विचित्र, बलवान वेद के ऋषि रू धन को प्रदान कीजिये।

इन सब प्रमणों का भाव यही है, कि जो पूर्ण विद्वान् सत्पुरुष महात्म योग बल तथा प्रत्यक्षादि प्रमाणों द्वारा वेदार्थ करके वेद प्रचार से संसार क कल्याण करते हैं वे अनुपम ऋषि पदवि को प्राप्त करते हैं।

जब हम स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज के पवित्र जीवन पर दृ डालते हैं तो वह पूर्णतया ऋषि लक्षण युक्त प्रतीत होते हैं। आप के पूर्ण विद्वा होने में तो कुछ सन्देह ही नहीं। जहां आपने वेदों का सांगोपांग अध्ययन किय था वहां अन्यमतों का भी निरविशेष ज्ञान प्राप्त करके धर्म के तुलनात्मक विचा से वैदिक धर्म के गूढ़ रहस्य को जानकर समस्त संसार, विशेष कर आर्य जाति का ध्यान सत्य सनातन वैदिक ईश्वरीय धर्म की ओर आकर्षित किया। मानाप मान, पक्षपात रागद्वेष हठ ईर्षादि से रहित होकर आपने वैदिक धर्म का प्रचा किया। और अपने आप को ब्रह्मा से से लेकर जैमिनी पर्यन्त प्राचीन ऋषियों का अनुयायी बतलाते हुए अन्यमताधिकारियों के सदृश आर्य समाज में अपना कोई विशेष स्थान नहीं रखा। अतएव आप सत्पुरुष थे। आपसे पहले वेद का प्रचार तो कहां, वेद पुस्तक का मिलना भी कठिन था। और वेदानुयायी पुरुषों ने भी पुरा णादि अनार्ष ग्रन्थों का आश्रय कर लिया था। जिससे लोग वेद के नाम को भी भूले जा रहे थे। इस अवस्था में आपने ईश्वरीय नियम के अनुसार वेद के महत्व को संसार के सामने रखा। आप सच्चे ब्राह्मण, बाल ब्रह्मचारी विरक्त सन्यासी निरभिमानी तपस्वी उच्च आचर से युक्त सच्चे ईश्वर भक्त थे। अतएव आप निस्स देन्ह सर्व लक्षण सम्पन्न ऋषि थे।

पूज्य ऋषिवर के ऋषित्व पर विरोधी स्वार्थियों की ओर से प्राय तीन आक्षेप किये जाते हैं। प्रथम यह कि आप के उपदिष्ट सिद्धान्त और रचित ग्रन्थ वेद शास्त्र के विरुद्ध और अयुक्त हैं। यह आक्षेप स्वाभाविक है। क्योंकि यह भाव विरोध शब्द के भीतर स्वयमेव उपस्थित है। यदि विरोधी गुणों में भी दोषारोपण न करें तो उनका विरोध ही क्या हुआ। ऐसे मिथ्या आक्षेपों का आर्य विद्वानों ने प्रत्युत्तर के रूप में अपने ग्रथों में यद्यपि सर्वथा परिहार कर दिया है, तथापि संसार के अखिल मताभिमानियों विशेष कर पौराणिक धर्मावलम्बियों को आर्य समाज के पीछे २ चलाकर समय ने स्वयमेव उत्तर दे दिया है।

द्वितीय आक्षेप महर्षि के जीवन पर यह किया जाता है कि वह ब्राह्मण कुलोत्पन्न नहीं थे। प्रत्युत कापड़ी नाम की एक नीच जाति में उत्पन्न हुए थे। अतएव ऋषि पदवी के पात्र नहीं हो सकते। इस कल्पित आक्षेप से स्वार्थियों ने अपनी अत्यंत घृणित द्वेष और ईर्षा से पूर्ण प्रकृति का प्रमाण उपस्थित किया है। क्योंकि महर्षि ने यद्यपि यतिधर्म के अनुसार अपने स्थानादि का पूरा पता नहीं बताया था। परन्तु अपने प्रेमियों के अनुरोध से मोरवी देश और उदीच्य नाम की ब्राह्मणजाति में उत्पन्न होना बतला दिया था। विरोधियों की कल्पना है कि हमने मोरवी राज्य में जाकर ज्ञात किया है कि एक कापड़ी जाति का लड़का जिस के आचार अच्छे नहीं थे अपने घर से भाग गया था। स्वामी दयानन्द वही हो सकता है। यदि इस कापड़ी लड़के की घटना को सत्य भी मान लें। तो भी ऋषि के अपने शब्दों की उपस्थिति में उन के विरुद्ध इस अघटित घटना को गौरव देकर स्वामी जी से उस का सम्बन्ध करना नीचता नहीं तो और क्या है ? हर समय प्रत्येक देश से कई कारणों से नवयुवक अपने घरों से भागते रहते हैं और आज कल के साधु प्रायः इन्हीं से भरती होते हैं। ऐसे ही मोरवी राज्य के किसी कापड़ी लड़के की भी घटना हो सकती है। ऋषि दयानन्द से इस का क्या सम्बन्ध हो सकता है। इस के अतिरिक्त एक निष्पक्ष पुरुष को विचार करना चाहिये कि एक दुराचारी कापड़ी लड़के की विद्याध्ययन की ओर प्रवृत्ति होकर वेद वेदाङ्ग का धुरन्धर पण्डित बन वह वैदिक धर्म का उद्धार कर सकता है। महर्षि के जीवन को पढ़ कर तो यह निश्चय होता है कि न केवल कुमारावस्था से ही उन की धर्म की ओर प्रवृत्ति होनी चाहिये, प्रत्युत अनेक जन्मार्जित पुण्य प्रताप का परिणाम उन का यह शुभ जीवन था। इस पर भी आर्यसमाज के लिये महर्षि का ब्राह्मण कुलोत्पन्न होना कोई विशेष महत्व नहीं रखता क्योंकि महात्मा सत्पुरुषों का म-

हत्व अपने तप से होता है, न कि जन्म से। यथा महाभारत में पराशर जी ने जनक से कहा है।

> राजन् ते तद्भवेग्राह्य मपकृष्टेनापि जन्मना।
> महात्मनां समुत्पत्तिस्तपसा भावितात्मनाम् ॥शान्ति० २९६-१२

हे राजन्! नीचकुल में उत्पन्न भी महापुरुष ग्राह्य होते हैं। क्योंकि महात्मा पुरुषों की उत्पत्ति तप से मानी जाती है। इस अध्याय में मतङ्ग आदि बहुत से महात्माओं के दृष्टान्त भी दिये हैं इसीप्रकार 'वज्रसूचिकोनिषद्' और भविष्यपुराण में भी लिखा है ॥ तृतीय आक्षेप सनातनधर्मप्रचारक के ऋषि-अङ्क में मुन्शी राजनारायण की ओर से लिखा हुआ आश्चर्य से पढ़ा, कि वेद मन्त्रों के ऋषियों के अतिरिक्त कोई ऋषि नहीं कहला सकता। ऐसा लिखना आपकी शास्त्रानभिज्ञता को ही प्रकट करता है। न जाने यह विचार पौराणिक सिद्धान्त के विरुद्ध होने पर भी क्यों मुद्रित किया गया। क्योंकि पुराणों में अनेक स्थलों पर वैदिक ऋषियों के अतिरिक्त भी ऋषिपद का प्रयोग मिलता है। उपर्युक्त प्रमाणों से पाठकों को यह तो विदित हो ही गया है कि यह विचार वेद तथा ब्राह्मण ग्रन्थों के विरुद्ध है। और निरुक्तकार ने भी ऋषि पद को वैदिक ऋषियों के लिये ही विशेष्य नहीं किया। अब इस विषय में रामायण और महाभारत से एक २ ऐतिह्य प्रमाण उपस्थित किया जाता है। जिस से उपरिलिखित आक्षेप का सर्वथा परिहार हो जाता है। यथा—

> प्राप्तराज्यस्य रामस्य वाल्मीकिर्भगवानृषिः।
> चकार चरितं कृत्स्नं विचित्रं पदमर्थवत् ॥ रा. बाल. ४-१

(अर्थ) श्री रामचन्द्र जी के राज्य प्राप्त करने पर भगवान् बाल्मीकि ऋषि ने रामायण बनाया-यहां बाल्मीकि जी को ऋषि कहा है यद्यपि वह किसी वेदमन्त्र के ऋषि नहीं हैं, इसीप्रकार महाभारत में व्यासजी को भी ऋषि कहा है और वह भी किसी मन्त्र के ऋषि नहीं यथा—

> पाराशर्यो महायोगी स बभूव महानृषिः।
> कन्यापुत्रो मम पुरा द्वैपायन इति श्रुतः ॥ महा० आ० १०५-१४

(अर्थ) पराशर कहते हैं मेरे पुत्र महायोगी महर्षि व्यासजी हुए-इसी प्रकार अन्य भी शतशः प्रमाण मिल जाते हैं, जहां वैदिक ऋषियों के अतिरिक्त ऋषि शब्द का प्रयोग किया गया है। अतएव यह तृतीय आक्षेप भी निर्मूल है। अन्त में पाठकों से निवेदन है कि वे महर्षि के जीवन को आद्योपान्त एकबार अवश्य पढ़ें। इस से महर्षि दयानन्द के ऋषित्व का आप का हृदय ही साक्षी देने लगेगा।

गोरक्षक खिष्टान*

(लेखक—कविराज विद्याधर विद्यालंकार, आयुर्वेदशास्त्री)

(१म परिच्छेद)

"जल्दी किवाड़ बन्द करले। बड़ा अच्छा हुआ जो कोई जान न सका कठिनता से आंख बचाकर यहां तक पहुंचा हूं। देखना किसी को पता न लगे। मैं ....."

"क्या हुआ, क्या कह रहे हो, एकदम इतना बक गये। कहीं पागल तो नहीं हुए। ऐसा क्या किसी का खून कर आये हो जो छिपते फिरते हो। सच कहो क्या बात है?" कल्याणी ने घबराते हुए पति के पास जा कर पूछा।

"जा, जा, पहले किवाड़ बंद कर आ। समझती नहीं क्या हुआ है! अभी उठी नहीं। ओहो! औरतों की ज़ात भी कैसी हठी होती है।" ऐसा कहते २ पंडित राजनारायण ने उठ कर शीघ्रता से किवाड़ बंद कर दिया और कुण्डा लगा कर एक छोटीसी चारपाई पर बिस्तरे को खोल लेट गया और ऊपर से पुरानी रज़ाई लेकर मुहं सिर लपेट लिया।

रात का समय था। कल्याणी इस अपूर्व चरितको देखकर घबरा गई। देरतक सोचने पर भी वह न जान सकी कि मेरे पति ने ऐसा क्या कर दिया है जो इतना घबरा रहे हैं। मेरे बार २ पूछने पर भी कुछ उत्तर नहीं देते। 'हे महादेव! कुशल रखियो!' कल्याणी ऐसा सोचते २ व्याकुल हो गई न रहा गया तब फिर पति को जगा कर कहने लगी—

---

* यह लेख विशेष यत्न पूर्वक ऋष्यंक के लिये लिखा गया था किन्तु कई कारणों से हम इसे उस अंक में प्रकाशित न कर सके जिस का हमें खेद है।—सं०

'महाराज ! कोई दासी ने अपराध किया हो तो क्षमा करो । आज इतने उदास क्यों हो रहे हो ? क्या मुझसे कहनेमें भी कोई अनिष्ट होने की सम्भावना है ! कहते क्यों नहीं ?'

पण्डित राजनारायण ने रज़ाई और सिरपर खींच कर कहा, 'मुझ पर कम्बल डाल दे। बड़ी सरदी लग रही है। एक गिलास पानी लादे।'

कल्याणी ने शीघ्र ही पुराने फटे हुए कम्बल को रज़ाई पर डाल कर पानी का गिलास ला दिया। राजनारायण ज़रा उठकर एक बारगी ही सारा गिलास सटग गये। फिर लेट कर कहा 'और पानी ले आ।' कल्याणी ने हाथ लगा कर नाड़ी देखी तो पता लगा कि तेज़ ज्वर हो रहा है। कल्याणी फिर पानी न लाई। वह चारपाई के पाईंताने बैठकर पण्डित जी के चरण दबाने लगी। कुछ देर के बाद पण्डित जी को निद्रा आई समझ कल्याणी वहां से उठ कर जाने लगी। जाते समय एक बार उसने नाड़ी और देखनी चाही। कल्याणी ने अभी हाथ को पकड़ा ही था कि राजनारायण चौंक पड़े। बड़बड़ाते हुए बोलेः—

"पकड़ लिया। पकड़ लो खूनी को। मैंने खून ज़रुर किया है। पर तुम साबित शायद न कर सको। लाश पर कोई शस्त्र का चिन्ह तुम्हें न मिला होगा। पर मैंने खून अवश्य किया है! क्या कहते हो! कैसे किया है? हाः हाः भेद बता दूं! नहीं बताता। तुम आप पता क्यों नहीं लगा लेते? क्या कहते हो, हमने पता लगा लिया है? ठीक है तभी पकड़ने आये हो! पर मैंने तो किसी से भी अबतक यह भेद नहीं कहा था, तुम्हें कैसे पता लगा? क्या कहते हो ज़हर दिया था! हां, मैंने पान में ज़रूर ज़हर दिया था। पर तुम कैसे जान गये। तम्बोली को पता नहीं, किसी मित्र को पता नहीं, स्त्री को पता नहीं। अरे! मैंने तो किसी को भी पता नहीं दिया तुम ज़हर देने की बात कैसे जान गये। क्या कहते हो, महात्मा जी को पता लग गया था। हां, यह बात हो सकती है। क्योंकि पान लेते समय उन्होंने मुझे ऐसे ध्यान से देखा था जैसे वे सब कुछ जान गये हों पर फिर भी पान लेकर खागये थे। क्या पूछते हो महात्मा ने तब कुछ कहा भी था? हां, कहा था। कहने लगे, ब्राह्मण! ब्राह्मण की हत्या करने आया है! इस से क्या लाभ पहुंचेगा। मैं अभी मरूंगा नहीं। तू जल्दी ही ले आया है। अच्छा, तुझे निराश नहीं करता, ला, खालेता हूँ। देख, किसी को कहना मत, मैं भी नहीं कहा करता। जा, ईश्वर तेरे कुटुम्ब का कल्याण करे'। ओह! पानी दे पानी! कल्याणी दौड़ पानी लाई

राजनारायण ने पानी पिया। कल्याणी समझ गई कि जी महात्मा को पान में ज़हर देकर आये हैं। बेचारी घबराकर मनही मन महादेव जी से पति की कल्याण की कामना करने लगी। राजनारायण पानी पी कर फिर अचेत हो गये।

कल्याणी सारी रात पति के पास बैठी रही। बेचारी सोचती थी कि न जाने क्या होने वाला है। कौन से खोटे कर्म ऐसे कर चुकी हूं जिन से कभी सुख भोगना नसीब न हुआ। आठ बरस का बालक किशोर बिना कुछ खाये ज़मीन पर ही सो गया था। कल्याणी को उसका ध्यान तक न आया। बिना कुछ खाये पिये कल्याणी को वहां बैठे २ अगला दिन निकल आया। पर राजनारायण बेसुध पड़े थे। केवल 'पानी' 'पानी' कभी २ कह बैठते थे। उस रात में पानी के दस गिलास वे पी गये होंगे।

किशोर सवेरे उठकर माता से खाने को मांगने लगा। पिछले दिन के पड़े हुए ठाकुर जी के प्रसाद में से कल्याणी ने कुछ ले लेने को कहा। किशोर प्रसाद में से तेल की मठरी लेकर खाता २ खेलने चला गया।

अगले दिन कल्याणी वैद्य जी को बुला लाई। वैद्य जी ने राजनारायण की नाड़ी देखी।

वह सन्निपात कह कर दवा देने ही लगे थे कि राजनारायण ने फिर पानी मांगा। कल्याणी पानी देने लगी तो वैद्य जी ने ठण्डा पानी देने से बन्द किया। राजनारायण ने अकस्मात् उठकर कल्याणी के हाथ से पानी का गिलास छीन लिया पूरा गिलास चढ़ाकर राजनारायण कुछ स्वस्थ हो कर चारपाई पर बैठ गया। वैद्य जी को नमस्कार करके बोला,—

"महाराज! मैं बीमार नहीं हूं। दवाई बीमार को दी जाती है। मेरी बीमारी का कोई इलाज नहीं है। मैंने ब्रह्महत्या की है ब्राह्मण को, महात्मा को, ब्रह्मर्षि को ज़हर देकर मारा है। इस पाप का प्रायश्चित्त मृत्यु है। आप दवाई किसे देने आये हैं?"

वैद्य जी अवाक् रह गये बोले, तुमने किस ब्रह्मऋषि को मार डाला? आज कल ऋषि महात्मा कहां से आये! पागल हो गये हो। सन्निपात का प्रलाप है अभी दवा देते हैं ठीक हो जावेगे।'

वैद्य जी चट से दवा निकाल घिस कर देने लगे। रोगी ने दवा फेंक कर कहा—

'वैद्य जी ! मैं प्रलाप नहीं कर रहा सत्य कहता हूं उसी स्वामी दयानन्द सरस्वती को कल शाम पान में ज़हर देकर आया था । वह ब्राह्मण हैं, महात्मा हैं, ब्रह्मर्षि हैं । उनको मैं हत्या कर आया हूं । हाय ! ब्राह्मण ने ब्राह्मण को मारा है। इस का कोई प्रायश्चित्त नहीं । कोई दवा नहीं '

वैद्य जी मुस्करा कर बोले । 'अरे ! उस खिष्टान को तो मार डालने में पुण्य है वह तो वेद शास्त्र की निन्दा करता है, सबको ईसाई बनाता फिरता है। मन्दिर मूर्त्ति तुड़वा रहा है । क्या वह मर गया ? सच ! तब तो खुश होना चाहिये ।'

राजनारायण ने क्रोध से उछल कर वैद्य जी को एक चपत जमादी और बोला, 'धूर्त्त ! तेरे जैसे नास्तिकों ने तो मुझ से यह पाप करवा डाला है । मैं भी उस महात्मा को नास्तिक और वेद शास्त्र का विरोधी समझ अपनी जीविका जाने के भय से मारने गया था । पर उस के पास जितने क्षण भी रहा देखते ही वे भाव उड़ने लगे । उस की विशाल, निर्मल, सतेज आंखें, विकसित मुखारविन्द, महान् शरीर देख कर मुझे उधर कुछ २ आकर्षण होने लगा । मैंने झट उन के हाथ में पान का बीड़ा खाने को देदिया कि कहीं मैं भी उनकी ओर झुक कर तुझ से ब्रह्मणों का द्वेषी न बन जाऊं । साथ ही मैंने उस के साथ का दूसरा बोड़ा झट अपने मुंह में रख लिया ताकि महात्मा को कहीं सन्देह न हो जाय कि यह अपरिचित व्यक्ति पान क्यों ले आया है । परन्तु पान लेते ही महात्मा सब समझ गये । वह हंसते २ पान चबा गये । हाय ! मैंने पान उनके हाथ से क्यों न छीन लिया । मैं पान खाते ही वहां से घर को भागा । महात्मा ! क्षमा करना । बस क्षमा ही चाह.........।'

इतना कहते २ ही राजनारायण को एक भयंकर खून की वमन हुई । अभी पांच मिनिट ही गुज़रे थे कि दूसरी खून की वमन हुई । वैद्य जी और कल्याणी संभालते ही रहे कि राजनारायण के तीसरी वमन के साथ ही प्राण निकल गये।

कल्याणी सिर पीट कर रह गई । वैद्य जी ने हज़ार २ गालियां खिष्टान दयानन्द को दीं । किशोर को पता लगने पर वैद्य जी के अनुकरण में बालक भी खिष्टान दयानन्द को गालियां देते २ रोने लगा । घर में शोक छा गया ।

[य परिच्छेद]

आजकल काशी में जिधर देखो एक ही बात सुनाई पड़ती है। पण्डितों की मण्डलियों में, विद्यार्थियों की पाठशाला में, पण्डों के अखाड़ों में, पुजारियों के मन्दिरों में, गुण्डों के अड्डों में, ऊंची अट्टारियों में, दरिद्रों के घरों में सर्वत्र दयानन्द का नाम गूंज रहा है। सब लोग रातदिन देवता के आगे अपने हृदय से यही प्रर्थना करते हैं कि हे महादेव! यह खिष्टान शीघ्र नष्ट हो। इसका मानमर्दन करने वाला कोई तो निकले। कुछ दिन इसका इसी प्रकार अखण्ड प्रचार जारी रहा तो इस नगरी से त्रिशूलधारी महादेव का राज्य नष्ट हो जायगा। मन्दिर मूर्तियों से रहित हो जायेंगे। ब्राह्मणों की जीविका छूट जायेगी परम्परा प्राप्तधर्म की दुर्गति हो जावेगी। वैष्णव लोग विष्णु से विनम्र भावसे घण्टों प्रार्थना करते हैं "मधुसूदन! इस दयानन्द असुर का दलन कर। नहीं तो कृष्ण भक्ति संसार से उड़ जावेगी"। इसी प्रकार सब लोग प्रार्थना करते, मण्डलियां बनाते कुचक्र रचते हैं। यहां तक भी निश्चय किया गया कि जो मनुष्य उस नास्तिक का शिर उतार लायगा उसे कई सहस्र मुद्रा पुरस्कार दिया जायेगा। इतना सब कुछ होते हुए भी जो कोई उस नास्तिक के सामने जाता था उसी का हो कर रह जाता था। बड़े २ चक्र चलाने को वहां पहुंचे परन्तु दयानन्द की आंख से आंख मिलाते ही पूंछ हिलाते हुए कुत्ते की तरह वहीं दुबक कर बैठ गये। इसी प्रकार नित्य यत्न करने पर भी कुछ फल न निकला। प्रत्युत धीरे २ उन में से ही अनेक उसी के शिष्य होने लगे। अब वे ही उन्हें नास्तिक के स्थान में महात्मा, देवता, ऋषि कहते दिखाई दिये।

पाठक! धन का लालच बुरा होता है।

पण्डित राजनारायण एक दरिद्र ब्राह्मण था। कुछ थोड़ी संस्कृत भी पढ़ा था। घर की दशा बहुत ही हीन थी एक छोटी सी सालिग्राम की मूर्त्ति घर में रखकर घर को ठाकुरद्वार समझ कर वहां सन्तोष से बैठा रहता था। प्रातःकाल और सायंकाल देवता को स्नान करा, धूप, दीप, नैवेद्य से पूजा करके उसके सामने हाथ जोड़ बैठ कर कुछ श्लोक पढ़ा करता था पास में उसकी स्त्री कल्याणी और शिशु किशोर भी बैठ कर बिना अर्थ समझे ही उन श्लोकों को सुना करते थे। इसी प्रकार दोनों समय होता था। कुछ दिन से घंटे की टन टन और शंख की पूं पूं सुन कर दो चार पड़ोस की बड़ी बूढ़ी स्त्रियें भी पूजा करने आने लगी थीं। उस स्थान पर इलायचीदाना, पताशे, तेल की कठरी गेंदे के फूल वा

कभी २ कोई पैसा भी चढ़ावे में चढ़ता था। कभी २ पंडित जी पूजा पाठ के लिये भी यजमानों के जाते थे। कभी कोई यजमान आटा, दाल घी देजाते थे। इसी प्रकार बड़ी दीनता से पंडित जी के दिन गुज़र रहे थे। बड़ी बूढ़ी स्त्रियों के घर में आने से उन्हें कुछ आशा अवश्य हुई थी कि अब हमारा भग्य चमकने वाला है। बात भी सच थी दो सप्ताह से कुछ अधिक चढ़ावा चढ़ने लगा था। एक दिन तो पूरे आठ पैसे होगये थे। एक ब्राह्मण के लिये दो आने एक दिन में कमा लेना क्या थोड़ी बात थी? जिस दिन दो आने आये थे उसीदिन भावी समृद्धि की आशा से पण्डित जी बीस रुपये किसी से उधार लेकर एक गौ मोल ले आये थे। इसी प्रकार पंडित जी के दिन बीत रहे थे कि अचानक स्वामी दयानन्द सरस्वती का काशी में आगमन हुआ। स्वामी जी के उपदेश में नित्य भीड़ बढ़ती जाती थी लोग मन्दिरों से धीरे २ मन मोड़ते जाते थे और उनके स्थान में एक ईश्वर की पूजा करने लगे थे। पंडित राजनारायण की गली में भी स्वामी के उपदेशों की चर्चा चली। स्त्री पुरुष स्वामी जी की युक्तियों का जब घरों में विचार करते थे तो उनकी युक्तियां उन्हें सत्य प्रतीत होती थीं। धीरे २ अन्य मन्दिरों के समान राजनारायण के ठाकुरद्वारे में भी चढ़ावा चढ़ना बहुत कम हो गया। कभी २ एक पैसा भी न चढ़ता था।

राजनारायण यद्यपि अच्छे चरित्र के शान्त मनुष्य थे तो भी नित्य की बढ़ती दरिद्रता और स्त्री बच्चों के शोकातुर मुख को देख कर वह इस दरिद्रता का सारा दोष स्वामी दयानन्द पर मढ़ने लगे। एक दिन राजनारायण को पता लगा कि पण्डितों की गुप्त सभा ने यह घोषणा निकाल रखी है कि जो दयानन्द को मार डालेगा उसे कई सहस्र मुद्रा मिलेंगी"। बस "एकै साधै सब सधै" की नीति के अनुसार राजनारायण ने दयानन्द को मौत के घाट उतारने और इनाम पाकर अपनी दरिद्रता दूर करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। उपाय सोचने में कुछ देर लगी अवश्य। पर अन्त में उपाय भी निश्चय कर लिया गया। अर्थात् "पान में विष" देना।

'स्वामी जी को पहिले भी पान में किसी ने ज़हर दिया था' यह बात राजनारायण सुन चुका था। इसलिये स्वामी का संदेह दूर करने के लिये उसने तम्बोली से दो पान के बीड़े लगा कर एक ही कागज़ में लपेट लिये थे। कुछ दूर जाकर एक पान को खोलकर उस में ज़हर मिला दिया। उसे सावधानता से लपेट कर फिर

पहले पान के साथ रख एक ही कागज़ में दोनों को लपेट लिया। केवल ज़हर वाले पानको अपने अंगूठे के नीचे दबा रखा और दूसरे पान को उंगली की ओरसे पकड़ कर स्वामी जी के डेरेपर पहुंचा। वह स्वामी जीकी पीठ की ओर बैठगया।

स्वामी दयानन्द वहां अनेक मनुष्यों से घिरे हुए धर्म चर्चा कर रहे थे। उनकी बातें सुनते २ राजनारायण को निश्चय होगया कि वह भी स्वामीजीका भक्त होने लगा है। इसने पानों वाले कागज़ को भूमि पर रख कर तुरन्त दोनों हाथों से अपने कान बन्द कर लिये। 'दरिद्रता दूर करनेके लिये स्वामीको अवश्य मारना होगा' ऐसा समझ कर ही उस ने यह काम किया था कुछ काल के पीछे सूर्य के अस्त होने के साथ ही स्वामी जी ने सब को सन्ध्या वन्दन करने के लिये अपने पास से विदा कर दिया। सब के जाते ही ब्राह्मण ने झट पीछे से निकल स्वामी जी को पान का बीड़ा दिया। स्वामी ने हंसते २ बीड़ा उठा कर मुंह में रख लिया और उसे वे शब्द भी कहे जो पाठक राजनारायण के मुंह से प्रलाप की अवस्था में सुन चुके हैं।

पान देकर राजनारायण ने सन्देह दूर करने के लिये दूसरा पान स्वामीजी के सामने ही स्वयं खाना चाहा। स्वामी जी ने राजनारायण को पान खाने से रोकते हुए कहा। "ब्राह्मण! तुम्हारा संध्याबन्दन का समय है। पान मत खाओ इसे तो अब फैंक ही दो। खाना ही हो तो संध्या के पीछे अन्य पान खा लेना"। यह कह कर पान को उस के हाथ से स्वामी जी छीन कर फैंकने को ज्योंही बढ़े त्यों ही राजनारायण ने यह समझ कर कि मैं पकड़ा गया, स्वामी मुझ पर संदेह करके पकड़ने उठे हैं, एक दम पान को मुंह में डाल चबा कर निगल लिया और सिर पर पैर रख घर को भागा।

पाठक! कानों को बन्द करने के समय जैसे पानों वाला कागज़ राजनारायण ने पृथिवी पर रखा था, स्वामी जी को देने के समय ठीक उलटा कागज़ पकड़ा गया। जो स्वामी को नहीं देना था वह स्वामी को दिया गया। जो पान स्वामीको देना था वह आप खा गया। क्या करें! मनुष्य मनुष्य है, भगवान भगवान है। तभी कहा है—

"हमरे मन कछु और है विधिना के कछु और"

इस उलट फेर से राजनारायण की जो दशा हुई पाठक प्रथम परिच्छेद में पढ़ ही चुके हैं॥

(शेष अगले अङ्क में)

ऋषि दयानन्द का इतिहास में स्थान।

(प्रो० सत्यकेतु विद्यालंकार)

संसार के इतिहास में अब तक जितने सुधारक हुए हैं, उन्हें हम साधारणतया तीन श्रेणियों में बांट सकते हैं। पहली श्रेणी के सुधारक वे होते हैं जो इतिहास में एक नवीन युग का प्रारम्भ करते हैं । इन की शिक्षाओं से दुनियां के आचार विचार, आदर्श और अन्वीक्षण में बहुत बड़े परिवर्तन आ जाते हैं। ये एक इस प्रकार की शक्ति को उत्पन्न कर देते हैं, जो न केवल सदियों की सञ्चित बुराई को जड़ से उखाड़ देती है, अपितु लोगों में नवीन जीवन का सञ्चार कर देती है। ये संसार के सन्मुख एक नवीन सन्देश को लेकर आते हैं। इस का यह परिणाम होता है कि एक नवीन युग का प्रारम्भ होजाता है । जिस की प्रत्येक बात पर इन महापुरुषों का प्रभाव दिखलाई पड़ता है। इस श्रेणी के सुधारकों में हम भगवान् बुद्ध, जीसस क्राइस्ट और हज़रत मुहम्मद को रख सकते हैं।

भगवान् बुद्ध की शिक्षाओं से भारत के प्राचीन धर्म से अन्ध विश्वास दूर होगये, कुरीतियां हट गईं, जनता के सम्मुख धर्म अपने असली स्वरूप में प्रगट हुआ। परन्तु बुद्ध का महत्त्व केवल इसी बात से नहीं । भारतीय इतिहास में बुद्ध के बाद एक नवीन युग का प्रारम्भ हुआ, जिस की प्रत्येक बात पर बुद्ध की छाप स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ती है। इस काल की कला, संस्कृति, भाव, विचार, शासन-सब बौद्धधर्म के रङ्ग में रंगे हुए हैं। बुद्ध ने सार्वभौम संघ की नींव डाली। धार्मिक दृष्टि से सकल भारत में एक रूपता अनुभव होने पर राजनैतिक एकता का अनुभव अधिक सुगम होगया। यही कारण है कि कुछ ही समय बाद मौर्य साम्राज्य के रूप में सम्पूर्ण भारत राजनीतिक दृष्टि से एक होगया । इस साम्राज्य से पूर्ववर्त्ती विविध जनतन्त्र राष्ट्रों पर बुद्ध के जनतन्त्र संघ की पूरी छाप है। बुद्ध के प्रजासत्तात्मक राजनीतिक विचारों का ही यह प्रभाव हुआ, कि एक सदी बाद ही उत्तरीय भारत के राजनीतिक नकशों में आधे से अधिक राष्ट्र प्रजासत्तात्मक दिखलाई पड़ने लगे। मौर्य साम्राज्य में भी इन में से अनेक राष्ट्र अर्ध स्वतन्त्र रूप से प्रगट होगये। केवल भारत में ही नहीं, उस युग में अन्य विविध देशों पर भी बौद्ध धर्म का आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ा। बौद्धधर्म के कारण

भारत में जिस अपूर्व शक्ति का उदय हुआ, उस ने सकल संसार को चकित कर दिया। बुद्ध के अनुयायी विविध देशों में बिखर गये और अपने आचार्य के 'अहिंसा, भ्रातृभाव और निर्वाण' के सिद्धान्तों को सब जगह फैला दिया। इन देशों ने बौद्धधर्म का सभ्यता-प्रसारक और संस्कृति-शिक्षक के रूप में स्वागत किया। बुद्ध के नवीन सन्देशों को चीन, तुर्किस्तान, जापान, श्याम, तिब्बत आदि देशों ने अपने लिये एक मात्र उद्धारक समझा। यही कारण है कि बौद्ध धर्म शीघ्र ही संसार-व्यापी धर्म बन गया। यही बात क्रिश्चिएनिटी और इस्लाम के सम्बन्ध में कही जा सकती है, परन्तु विस्तार भय से इस का प्रदर्शन हम यहां पर नहीं करा सकते।

द्वितीय श्रेणी के सुधारक किसी नवीन युग का प्रारम्भ नहीं करते। वे प्राचीन धर्मों से कुरीतियों, अन्ध विश्वासों और खराबियों को दूर कर देते हैं, उन में नया जीवन फूंक देते हैं इस तरह के सुधारकों में हम लूथर, कैल्विन, शङ्कराचार्य आदि को रख सकते हैं। लूथर ने क्रिश्चिएनिटी की बुराइयों को दूर किया। रोमन कैथोलिक चर्च के अन्ध विश्वासों के विरुद्ध आवाज़ उठाई। लूथर ने सच्चे अर्थों में क्रिश्चिएनिटी को सुधार दिया बस, लूथर का यही कार्य है। उस की शिक्षाओं के अनुसार ही क्रिश्चिएनिटी ने 'प्रोटेस्टन्ट धर्म' का नवीन चोगा धारण किया। परन्तु यह प्रोटेस्टन्ट धर्म इतिहास में किसी नवीन युग को प्रारम्भ न कर सका। इस में शक नहीं कि १५ वीं शताब्दि में 'धार्मिक सुधारणा' नामक जिस महान् आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ, उस ने इतिहास में एक नवीन युग का प्रारम्भ किया, जिसे कि हम 'अर्वाचीन युग' के नाम से कहते हैं परन्तु इस 'सुधारणा' व उससे पूर्ववर्त्ती 'पुनर्जागृति' का प्रारम्भकर्त्ता लूथर न था। वह उसका परिणाम-मात्र था। शङ्कराचार्य आदि सुधारकों के सम्बन्ध में भी यही बात है। भारत में शङ्कर ने अनेक अंशों में वही कार्य किया, जो लूथर ने योरप में।

तीसरी श्रेणी के सुधारकों में हम नानक, दादू कबीर, रामदास, चैतन्य आदि को रख सकते हैं। ये सुधारक सन्त महात्माओं के रूप में प्रगट होते हैं। समाज की बुराइयों और अन्ध विश्वासों के विरुद्ध आवाज़ उठाते है, और अपने दायरे में बहुत कुछ उपयोगी कार्य कर जाते हैं। विविध समयों में प्रायः सभी देशों में इस प्रकार के महापुरुष उत्पन्न होते हैं, जो अपनी अमृतमयी वाणियों से धीरे २ समाज के मल को धोते हैं और सामाजिक जलन को शान्त करते हैं।

यह ऐतिहासिक विवेचन हमने इसलिये किया कि हम इतिहास में ऋषि दयानन्द का स्थान सुगमता पूर्वक निश्चित कर सकें। परन्तु इसे प्रारम्भ करने से पूर्व अभी कुछ बातों पर और ध्यान देना आवश्यक है। पहली बात यह है कि किसी भी महापुरुष का स्थान उस के देहावसान के कुछ समय बाद ही निश्चित नहीं किया जा सकता। उस के लिये समय चाहिये और समय भी थोड़ा नहीं, अपितु बहुत अधिक—इतना अधिक कि उस में उस के कार्यों व शिक्षाओं का परिणाम अच्छी तरह देखा जा सके। बुद्ध की शिक्षाओं का क्या प्रभाव होगा या उसका इतिहास में क्या स्थान होगा, यह उसकी मृत्यु के तीन सदी पीछे तक भी नहीं कहा जा सकता था। यदि कोई ऐतिहासिक सम्राट-अशोक से पूर्व भगवान बुद्ध का इतिहास में स्थान निश्चित करने लगता, तो सम्भवतः वह बहुत गल्ती करता। सम्राट अशोक के बाद भी नहीं, उसके पीछे कनिष्क और मीनान्दर के बाद भी नहीं, यहां तक कि सातवीं सदी ई. प. में सम्राट हर्ष के बाद भी नहीं। अपितु ११ वीं और १२ वीं सदियों में नालिन्दा और विक्रम शिला के विश्वविद्यालयों को देख कर ही भगवान् बुद्ध का स्थान इतिहास में निश्चित किया जा सकता है। ऋषि दयानन्द के जन्म को ही अभी एक शताब्दि बीती है, अतः अभी से उन का इतिहास में स्थान निश्चित कर सकना खतरे से खाली नहीं है।

इसी सम्बन्ध में दूसरी ध्यान देने योग्य बात यह है कि किसी सुधारक का व्यक्तित्व और शिक्षायें ही इतिहास में उसका स्थान निश्चित नहीं कर सकतीं। इस के लिये यह भी देखना आवश्यक है कि उस के अनुयायियों ने उसकी शिक्षाओं को किस रूप में लिया—उनका क्या बनाया। अभिप्राय यह कि किसी सुधारक का इतिहास पर क्या प्रभाव पड़ा—यही बात उस का स्थान निश्चित कर सकेगी। उदाहरण के लिये मुहम्मद और शङ्कराचार्य को लीजिये। शङ्कराचार्य का व्यक्तित्व बहुत ऊंचा था, उसकी शिक्षायें बहुत ही ऊंची थीं, उसकी फ़िलासफ़ी अद्वितीय थी। इसके विपरीत मुहम्मद का जीवन बहुत उच्च न था, उस की शिक्षाओं में कोई आदर्शवादिता न थी, उसकी फिलासफ़ी तो शायद कोई थी ही नहीं। पर फिर भी मुहम्मद को हम ने प्रथम श्रेणी के सुधारकों में रखा है और शङ्कराचार्य को द्वितीय श्रेणी में। इसका कारण है। शङ्कर के अनुयायियों ने जहां 'अहं ब्रह्मास्मि' के मायाजाल में फंस कर अपने को नीचे गिरा दिया, वहां अपने आचार्य को भी इतिहास के उच्च आसन पर नहीं बैठने दिया। इसके विपरीत मुहम्मद के

अनुयायी दुनिया में सभ्यता और शक्ति के उपासक बन कर गये । उन्होंने त्याग किया और अपने ईमानको दुनियो भर में फैलाने का बीड़ा उठाया। वे जहां भी गये एकेश्वर वाद का सन्देश लेगये । मनुष्यों की समानता, भ्रातृभाव और बलिदान के नाद से उन्हों ने विश्व को गुंजा दिया । क्या परिणाम हुवा ? जहां इस्लाम आज एक जीती जागती शक्ति है, वहां इस का पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद भी इतिहास में प्रथम श्रेणी के सुधारकों में विराजमान है।

इन विचारों के बाद हम अपने असली विषय पर आते हैं। ऋषि दयानन्द जिन परिस्थितियों में उत्पन्न हुए और जिन अवस्थाओं में उन्हों ने कार्य किया, उन को संक्षेप से इस प्रकार लिखा जासकता है—

(१) भारतवर्ष में प्राचीन धर्म बिगड़ी हुई अवस्था में था। हिन्दू धर्म कुछ रीती रिवाज़ों विधियों, और विश्वासों का निर्जीव ढेर मात्र रहा था। उस में जीवन शक्ति का अन्त होगया था ।

(२) भारतवर्ष एक इस प्रकार के देश की अधीनता में चला गया था । जिस को सभ्यता, संस्कृति और धर्म भारत से सर्वथा भिन्न थे । चिरकाल की पराधीनता के कारण भारतीय जनताका सब दृष्टियों से निरन्तर ह्रास होरहा था।

(३) यद्यपि हिन्दू धर्म का यह विश्वास था. कि वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं, इनमें सब सत्य विद्यायें मौजूद हैं, पर न तो हिन्दू धर्मके अनुयायी ही वेदोंके वास्तविक अभिप्राय को समझते थे और न अन्य लोग वेदों के ईश्वरीयत्व पर विश्वास करते थे। दुनिया के विद्वान 'विकासवाद' के अनुयायी होने के कारण इस बात को समझ ही नहीं सकते थे कि वेदों में किस प्रकार से सब सत्य विद्यायें हो सकती हैं। अत उनका वेदों को बच्चों की बिलबिलाहट या 'गडरियों के गीत' समझना सर्वथा स्वाभाविक था।

(४) सब जगह भौतिक वादी सभ्यताका प्रभुत्व था। प्रकृतिवाद के सिवाय अध्यात्मवाद आदि पर विश्वास रखना तो दूर रहा, उन का ज्ञान भी वस्तुतः कहीं न था। प्राचीन आध्यात्मिक सभ्यता का क्रियात्मक और विचारात्मक दोनों रूपों में लोप हो चुका था। सारी दुनियां इसी प्रकृतिवाद को अनुसरण कर रही थी इस 'वर्णाश्रम व्यवस्था प्रधान, भारत देश में भी सर्वत्र प्रकृति वाद का ही राज्य था।

ऋषि दयानन्द ने इन्हीं परिस्थितियों में काम करना था। महान् व प्रथम श्रेणी के सुधारक की तरह उन्हों ने इन सब विषयों में आन्दोलन किया, सब की

विवेचना की, सब बातों पर अपने सुधार पेश किये, जो कि बुराइयों को दूर करके सुव्यवस्था स्थापित करने वाले थे। द्वितीय श्रेणी के सुधारकों की तरह वे केवल हिन्दूधर्म की बुराइयों के विरुद्ध आवाज़ उठा कर, उन में संशोधन करके ही बस कर सकते थे, परन्तु उन्हों ने यह नहीं किया। उनके सुधार बहुत व्यापी हैं। उनकी शिक्षायें बहुत विस्तृत हैं। हिन्दूधर्म के सुधार के लिये ऋषि दयानन्द ने मूर्तिपूजा, श्राद्ध, अवतारवाद आदि का खण्डन किया। बाल विवाह, दहेजप्रथा, निकट का विवाह, जन्मानुसार वर्ण व्यवस्था आदि के विरुद्ध आवाज़ उठाई और भूत प्रेत, मुहूर्त, फलित ज्योतिष आदि की निःसारता लोगों के सन्मुख प्रगट की। धार्मिक और सामाजिक दोनों दृष्टियों से उनके सुधार बहुत महत्व पूर्ण हैं परन्तु यह बात कोई भी द्वितीय श्रेणी का सुधारक कर सकता था। जैसा कि इसी समय के अनेक अन्य राजा राम मोहन राय, रामकृष्ण परमहंस आदि सुधारकों ने अपने अपने तरीके पर किया था। परन्तु ऋषि दयानन्द ने इससे अधिक बहुत अधिक किया इस विशेष कार्यके लिये पहले प्रदर्शित अन्य तीन परिस्थितियों तथा उनके सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द के कार्य का प्रदर्शन करना आवश्यक होगा।

सबसे पहले भारतकी राजनीतिक स्वाधीनताके लिये ऋषि दयानंदने उत्सुकता प्रगट की। स्वराज्य के बिना देश को क्या हानियां पहुंच रही हैं, विदेशी राज्य के क्या नुकसान हैं–यह उन्होंने अनुभव किया। 'स्वराज्य' शब्द का राजनीतिक अर्थ में प्रयोग ही पहले पहल उन्होंने किया। ऋषि दयानन्द इस बात को खूब अच्छी प्रकार समझते थे कि भारत की स्वाधीनता के बिना यहां की प्रचीन उच्च सभ्यता और धर्म का प्रचार नहीं किया जा सकता, जिस उच्च कार्य के लिये–वैदिक सभ्यता की फिर से स्थापना के लिये वे आये थे वह पूरा नहीं हो सकता, इसीलिये उन्होंने स्वयं भी भारत की स्वाधीनता के लिये प्रयत्न किया। जहां वे भारत की स्वाधीनता को भारतीय दृष्टि से एक आवश्यक और अनिवार्य वस्तु समझते थे; वहां अपनी अभीष्ट सभ्यता के विस्तार के लिये भी इस की परम आवश्यकता का अनुभव करते थे। इतना ही नहीं, उन्होंने स्वराज्य का मार्ग दिखाने के सिवाय स्वराज्य का स्वरूप भी निश्चित किया है।

अब अगली बात को लीजिये। वेदों के सम्बन्ध में जो विचार उस समय प्रचलित थे, ऋषि दयानन्द ने उन के विरुद्ध आवाज़ उठाई। इस के लिये उन्हें केवल पुराने ढंग के पण्डितों के साथ ही संघर्ष न करना था। उन के साथ संघर्ष

तो केवल व्याख्या या अर्थ सम्बन्धी था। बड़ा संघर्ष उन्हें पाश्चात्य विद्वानों और पाश्चात्य विज्ञान से करना था विकासवाद के लोक-प्रिय सिद्धान्त का मुकाबला करना कोई आसान कार्य न था। वर्तमान समय में विज्ञान की उन्नति विशेषतः पाश्चात्य देशों में ही है, फिर उन के शासक देश होने के कारण प्राच्य देशों के लिये उनका तथा उनके विज्ञानों का महत्त्व और भी अधिक है। इन सब का ऋषि ने मुकाबला किया। उस समय तो शायद लोगों ने उनके सिद्धान्तों की सत्यता का इतना अनुभव नहीं किया, परन्तु अब लोग करने लगे हैं और सम्भवतः भविष्य में और भी अधिक करने लगेंगे। यदि यह हो गया, और पाश्चात्यविज्ञान का अवलम्ब विकासवाद पर न रह कर ईश्वरीयज्ञान पर हो गया, तो सचमुच ही ऋषि दयानन्द की बड़ी भारी विजय होगी।

अन्तिम बात सभ्यता सम्बन्धी है हमारी सम्मति में ऋषि दयानन्द की शिक्षाओं में सब से अधिक महत्त्व पूर्ण उनकी अध्यात्मवादी वैदिक सभ्यता की शिक्षा है। साधारणतया इस के महत्त्व को ठीक तरह समझा नहीं जाता है। वर्तमान यूरोपीय सभ्यता का आधार 'प्रकृतिवाद' है। यही कारण है कि इसके अनुयायी 'सम्पत्ति' को ही सब से मुख्य दर्जा देते हैं। भौतिक सुखों से अधिक ऊंचे सुख उनकी दृष्टि में कोई नहीं। वैदिक सभ्यता इसके विपरीत 'अध्यात्मवाद' पर आश्रित है। वह सम्पत्ति को यथोचित स्थान देते हुए भी उसे मनुष्य जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य नहीं स्वीकार करती। वह बहुत ऊंचा जाती है और सम्पत्ति की अपेक्षा 'धर्म' को उच्च स्थान प्रदान करती है। इस सभ्यता का रूप 'वर्णाश्रम व्यवस्था' इस एक शब्द से स्पष्ट हो सकता है। वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुसार सब से ऊंचा वर्ण है 'ब्राह्मण' और सब से ऊंचा आश्रम है 'सन्यास'। दोनों का सम्पत्ति से कोई सम्बन्ध नहीं। इस ज़माने में ऋषि दयानन्द इसी वर्णाश्रम व्यवस्था रूप वैदिक सभ्यता का सन्देश संसार को सुनाने के लिये आया था। यही उसका सब से बड़ा कार्य है। इस युग में, जब कि लोग वर्तमान समाज संगठन से संतुष्ट नहीं हैं, जब कि उसके सुधार के लिये साम्यवाद, बोल्शेविज्म, कम्यूनिज्म आदि विविध भांति के आन्दोलन चल रहे हैं और लोग इन की उपयोगिता से भी पूर्णतया संतुष्ट नहीं प्रतीत होते हैं, ऋषि का संदेश बहुत ही उपयोगी और समयोचित है इस वर्णव्यवस्था की वर्तमान समाजिक संगठन की दृष्टि से व्याख्या हम यहां पर नहीं कर सकते हैं, परन्तु यह हमारा विश्वास है कि यदि इसे इसके सच्चे अर्थों में लिया गया, तो यह वर्तमान समाज संगठन के रोग को दूर कर सकता है।

इस प्रकार हमने देखा कि ऋषि दयानन्द की शिक्षायें युगान्तर उपस्थित करने वाली हैं। यदि उनका अनुकरण किया गया तो न केवल हिन्दू धर्म की कुरीतियां व अन्ध विश्वास दूर होकर सच्चे वैदिक धर्म की पुनःस्थापना होसकती है, परन्तु संसार में एक नवीन युग का प्रारम्भ हो सकता है इस नवीन युग में सभ्यता का आधार भौतिकवाद न हो कर अध्यात्मवाद होगा, समाज में सम्पत्ति के मालिकों के स्थान पर विद्वानों और महात्माओं का प्रभुत्व होगा, सम्पत्ति के विषय विभाग के स्थान सब को उन की योग्यता और आवश्यकता के अनुसार उपभोग्य पदार्थ प्राप्त होंगे। यही नहीं, इस नवीन युग में विज्ञान का रुख ही बदल जायगा। वैज्ञानिक सत्यज्ञानके लिये वेदों की तरफ दृष्टि उठावेंगे। सत्य व असत्य का ज्ञान केवल प्रत्यक्ष पर आश्रित न रहेगा। लोग अनुभव करेंगे कि इन चर्म-चक्षुओं से जो कुछ दिखाई देता है, सत्य उससे परे है। उन्हें मालूम होगा—"हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।" वे इसी विहित सत्य को ढूंढने का यत्न करेंगे।

परन्तु स्मरण रखिये कि यह नवीन युग केवल एक सुपना भी बना रह सकता है। होसकता है कि इन उच्च शिक्षाओं के रहते हुए भी भविष्य के ऐतिहासिक ऋषि को प्रथम श्रेणी के सुधारकों में न गिनें। इसकी सम्भावना केवल इस अवस्था में है यदि ऋषि के अनुयायियों ने-आर्यसमाज ने-अपने कर्त्तव्यका सम्यक् रीति से पालन नहीं किया। हिन्दूधर्म में एक सुधार की धारा बहा कर ही दयानन्द का कार्य पूरा नहीं होजाता। उस अवस्था में ऋषि की केवल एक शिक्षा कार्यरूप में परिणत होगी और भविष्य के ऐतिहासिक उन्हें द्वितीय श्रेणी के ही सुधारकों में गिनेंगे। ऋषि के सच्चे अनुयायी बनने के लिये हिन्दूधर्म में सुधार-आन्दोलन ही पर्याप्त नहीं है। निस्सन्देह वह स्वयं भी एक महान् कार्य है। इस के लिये आर्य समाज की जितनी भी प्रशंसा की जाय, कम है परन्तु ऋषि की उच्च शिक्षाओं का यह केवल एक भाग है। दयानन्द के सच्चे अनुयायी बनने के लिये - उस की उच्च शिक्षाओं के वास्तविक प्रचार के लिये हमें भी वही मार्ग पकड़ना पड़ेगा, जिसे सम्राट अशोक के बाद भगवान् बुद्ध के अनुयायियों ने अवलम्बन किया था। बुद्ध के वे चेले, जो बड़े सम्राटों, राजाओं और अमीरों के लड़के थे पीले वस्त्र पहन कर हाथ में भिक्षा पात्र लेकर हज़ारों नहीं लाखों की संख्या में चारों तरफ़ फैल गये। वे जिधर भी गये विजयी बन कर गये। परन्तु उन की विजय शस्त्रों

की विजय न थी, उनकी विजय 'धर्म विजय' थी। वे दुनिया को सच्ची सभ्यता सिखाने गये थे, सत्य धर्म रूपी कवच के कारण वे अजेय थे। पहले उन्होंने अपने में शक्ति उत्पन्न की-फिर एक शक्ति बन कर संसार को विजय करते हुए चले गये। यही आर्यसमाज को भी करना होगा। पहले इस भारत को-जो कि आर्यों की, आर्य सभ्यता की, और आर्य धर्म को केन्द्र भूमि है-शक्तिशाली करना होगा, इसे स्वाधीन करना होगा। फिर यहां अपने आदर्शों को क्रिया रूप में परिणत कर, इसे वैदिक सभ्यता का जीता जागता नमूना बना कर, दुनिया भर में वैदिक सभ्यता का प्रचार करना होगा तभी ऐतिहासिक ऋषि दयानन्द का इतिहास में सच्चा स्थान निश्चित कर सकेंगे। परन्तु क्या आन्तरिक झगड़ों में फंसा हुवा आर्य समाज इस महान कार्य को कर सकेगा? इसका उत्तर भविष्य ही देगा।

ऋषि दयानन्द

(ले० प्रो० मणिराम गुप्त डी० ए० वी० कालेज लाहौर)

मेट तिमिर-अज्ञान, ज्ञान का दीप जगाया।
दयानन्द ने हमें सत्य का मार्ग बताया॥
झेला कष्ट अनेक, नहीं मन में भय खाया।
जो कुछ समझा, सत्य उसे दिल खोल सुनाया॥
चाटुकारिता का नहीं तुममें ऋषिवर! लेश था।
इस कारण सहना पड़ा क्या क्या तुम्हें न क्लेश था॥१॥

कभी आर्य संतान नहीं तुम को भूलेगी।
सदा गर्व के साथ ऋषी तुम पर फूलेगी॥
बड़ा किया ऋषिवर तुमने उपकार हमारा।
क्या न रहेगा भला देश फिर ऋणी तुम्हारा॥
मिट सकता क्या विश्व से कभी तुम्हारा नाम है।
निष्फल हो सकता नहीं ऋषी तुम्हारा काम है॥ २॥

स्त्रियों में आर्य संस्कृति का ह्रास

(लेखका कु० ज्ञानदेवी "स्नातिका विशारदा")

आधुनिक पाश्चात्य प्रवाह से हमारी स्त्री जाति किस प्रकार अपनी पुरातन एवं पावन आर्य संस्कृति से पराङ्मुख हो रही है, यह बात आर्य जनता के लिये न केवल विचारणीय ही है, अपितु महर्षि के पवित्र आदेश को सफल तथा सुदृढ़ बनाने के लिये स्त्री जाति को उक्त पाश्चात्य-प्रवाह से रक्षा करनी मुख्य कर्तव्य है।

इस युग के प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द ने जो आर्य संस्कृति का पुनरुद्धार रूप उच्चादर्श आर्य जनता के सम्मुख उपस्थित किया है उस उच्चादर्श की पूर्ति वर्तमान प्रचलित प्रवाह में असम्भव नहीं तो कठिनतम अवश्य ही प्रतीत होती है। पुरुष जिस प्रवाह में बहना चाहें बह जांय। इससे ऋषि के प्रदर्शित कार्य क्रम में कोई विशेष न्यूनता अथवा बाधा नहीं हो सकती। क्योंकि घर की साम्राज्ञी स्त्री है। वह जिसे जिस ओर प्रवृत्त करना चाहे कर सकती है। अतः हमें तो स्त्री जाति का इस ओर चित्ताकर्षण करना ही अभीष्ट है। क्योंकि यदि भारतीय स्त्रियां अपनी पुरातन आर्य-सभ्यता को सुरक्षित करने में तन्मय हो जाएं, तो कभी भी भारतीय जन इस से विमुख नहीं हो सकते।

परन्तु अवस्था इससे सर्वथा विपरीत ही दृष्टि गोचर होती है। आज से कुछ वर्ष पूर्व यह देश पाश्चात्य सभ्यता से आक्रमित नहीं हुआ था, उस समय की स्त्रियां अपने नित्य नैमित्तिक कर्मों को श्रद्धा से करती थीं। यद्यपि उन्हें मूर्ति पूजा से प्रीति थी, परन्तु जो कुछ भी हो जिसे वह धर्म समझती थीं, उसे श्रद्धा से पालन करतीं, और रामायण तथा गीता सी धर्म पुस्तकों को प्रेम से सुनती थीं। उस समय शिक्षा का सर्वथा अभाव था। तिस पर भी प्रत्येक गृह में आर्य सभ्यता के कई एक चिन्ह अवशिष्ट थे।

आर्य संस्कृति के पुनः प्रवर्त्तक भगवान् दयानन्द ने स्त्रियों के लिये उच्च शिक्षा का आदर्श दिखला कर उन अवशिष्ट चिन्हों को पूर्ण रुपेण जागरित करने का प्रयत्न किया इस "स्त्रीशिक्षा" अंश में महर्षि के कार्य में अत्यधिक सफलता हुई। क्योंकि आर्य सज्जन अपनी पुत्रियों को निस्संकोच उच्चशिक्षा में लगाने लगे। इसके साथ ही साथ पाश्चात्य सभ्यता का शिक्षित-समाज पर ऐसा प्रबल

आक्रमण हुआ कि ऋषि के चरण चिन्हों पर चलने के लिये प्रयत्न शील आर्य जनता भी इस आघात से बच न सकी। और आर्य-जनता ऋषि वर्णित स्त्रियों के लिये उच्चशिक्षा का अर्थ वर्तमान ऐण्ट्रेंस एफ. ए आदि शिक्षा से लेने लगी। तथा इस पाश्चात्य-प्रवाह का प्रभाव इतना अधिक बढ़ा कि सुशिक्षित तथा सभ्य समाज में उन्हीं स्त्रियों की गणना होने लगी जो दो चार आँग्ल-भाषा के शब्द प्रयोग करलें। अर्थात्-भारत में निवास करती हुईं स्त्रियां भारतीय जनों से शुद्ध आर्य-भाषा भी न बोल सकें। अथवा अपने (भारतीय ढंग) रहन सहन को छोड़ कर पाश्चात्य-सभ्यता का अवलम्बन करें।

पाश्चात्य सभ्यता में ऊपर बड़प्पन और आभ्यन्तर निःस्सारता एवंऊपर २ की सिद्धियां, तथा अंदर खोखलापन है। हमारी आर्य-सभ्यता नारियलके समान अंदर से स्वच्छ तथा निर्मल है। आर्य-सभ्यता में स्त्रीजाति की स्थिति का किन सुन्दर शब्दों में कवि कालिदास ने वर्णन किया है—" गृहिणी सचिवः सखी मिथः, प्रिय शिष्या ललिते कलाविधौ " अर्थात् स्त्री को गृहस्वामिनी, मन्त्री, मित्र और शिष्य के रूप में घर में निवास करना चाहिये।

"यतोऽभ्युदय निश्रेयससिद्धिः स धर्मः।" आर्य-संस्कृति, आर्य-सभ्यता मोक्ष मार्ग की प्रदर्शिका है। प्राकृतिक उन्नति करते हुए भी आत्मिक उन्नति के मार्ग का अन्वेषण, स्त्री जाति का मुख्य कर्तव्य होना चाहिये।

महर्षि ने ऐसी आर्य संस्कृति का, पुरातन आचार व्यवहार का, पुरातन स्मृतियों का, तथा अतीत काल के धर्म कर्म का सुरक्षित करना स्त्री जाति के लिये परम कर्तव्य बताया है। आर्यों का भूत उन के सुवर्णमय आचारों और विचारों से सुवर्णमय प्रतीत होता था और ऋषि दयानन्द इसी पुरानी आर्य-संस्कृति का पुनरुद्धार करना चाहते थे।

उपरोक्त आर्य-संस्कृति के उद्धार का एक मात्र उपाय स्त्रीजाति के लिये संस्कृत का पठन-पाठन है। और वर्तमान काल में इसी उपाय का अभाव दृष्टि गोचर होता है। यही कारण है, कि भारतीय स्त्रियां संस्कृत से अनभिज्ञ होने के कारण अपनी आर्य संस्कृति से विमुख होकर पाश्चात्य-प्रवाह में बह रही हैं। स्त्री जाति के आर्य सभ्यता को छोड़ने से पुरुष स्वभावतः इस पावन संस्कृति की अवहेलना कर रहे हैं।

ऋषि दयानन्द श्री आर्य-संस्कृति के पुनरुद्धार के उपदेश दिये कई वर्ष हो गये, परन्तु आज पर्यन्त केवल एक दो संस्थाएं कन्या-महा-विद्यालय तथा कन्या गुरुकुल ही इस लुप्त होती हुई संस्कृति को किंचित् सुरक्षित कर सकी है। आज बोधोत्सव के अवसर पर ऋषि के इस महायज्ञ को सफल बनाने तथा आर्य-संस्कृति का पुनरुद्धार करने के लिये क्या स्त्रियां संस्कृत को न अपनायेंगी ?

आर्य समाज और उसके सिद्धान्त

(श्री० प्रो० भीमसेन विद्यालंकार)

किसी भी समाज या आन्दोलन का बल उसके सिद्धान्तों में होता है। इस्लाम का बल उसके एकेश्वरवाद और कुरान की शिक्षाओं में था। इन सिद्धान्तों के बल पर निर्भय होकर, मुसलमानों ने सम्बन्धी व दोस्त किसी की परवाह नहीं की। इसलिए अशिक्षित होते हुए भी वह बहुत ज़ोर से फैले। धर्म के मामले में धार्मिक सिद्धान्तों के संघर्ष में कृत्रिम एकता के लिए उन्होंने मित्रों का, धनियों का या राजाओं तक का लिहाज़ नहीं किया। सिद्धान्त प्रेम के सामने उन्होंने कभी किसी के दुनियाबी बल की पर्वाह नहीं की।

संसार के सब सुधारकों के यही ढंग होते हैं। वह अकेले सिद्धान्त बल के भरोसे दुनिया को ललकारते हैं। उनके लिए उनके सिद्धान्त उनके श्वास और निश्वास होते हैं। जिस प्रकार कोई व्यक्ति श्वास निःश्वास के विना जीवित नहीं रह सकता उसी प्रकार यह सुधारक सिद्धान्तों के मटियामेट होने पर स्वयं भी मटियामेट हो जाते हैं।

ऋषि दयानन्द ने भी अपने सिद्धान्तों के लिए अपने आपको बलिदान किया। उन्होंने सिद्धान्तों की रक्षा करने के लिए, राजा, प्रजा, सम्बन्धी किसी की भी पर्वाह नहीं की। इन अपत्तियों ने उनके दिल में सिद्धान्त प्रेम को और भी अधिक दृढ़ कर दिया। यह सिद्धान्त प्रेम सिद्धान्तों के विस्तृत गम्भीर ज्ञान का परिणाम होता है। सुधारक लोग अपने २ ढंगों से अनुयायियों में इस सिद्धान्त प्रेम को स्थिर रखने का यत्न करते हैं। या तो वह महम्मद और सिक्ख गुरुओं की

तरह अनुयायियों को सिद्धान्त ज्ञान के बिना ईश्वरीयता के नाम पर Fanetics धर्मान्ध बना कर, उन्हें सिद्धान्त प्रेमी बना देते हैं। अथवा-आज कल के प्रजा सत्तावादियों की तरह हरेक अनुयायी को सिद्धान्तों की शिक्षा दी जाय।

प्रथम प्रकार के जोशीले अनुयायी, अज्ञान वश कईवार अपने पन्थ को, अपने सिद्धान्तों को नुकसान पहुंचाते हैं। जिस प्रकार सिक्ख और मुसलमान मूर्ति पूजा के विरोधी होते हुए भी कबरों और ग्रन्थ साहब की पूजा कर, सिद्धान्तों का खून करते हैं। आज ऐसे ही धर्मान्ध मुसलमान इस्लाम के उदात्त सिद्धान्तों को कलंकित कर रहे हैं।

द्वितीय प्रकार के अनुयायी तर्क और आत्म चिन्तन के सहारे—सिद्धान्त प्रेम पैदा करने का यत्न करते हैं। यह लोग संख्या में थोड़े होते हुए भी जनता को अपनी तरफ खींच लेते हैं। ऋषि दयानन्द दूसरे ढंग के अनुयायी तय्यार करने के उद्देश्य से अनुयायियों को "जप मन्त्र" (अल्ला हो अकबर, वाह गुरु का खालसा) का उपदेश देकर कट्टर आर्य समाजी और कट्टर दयानन्दी नहीं बनाना चाहते थे।

ऋषि दयानन्द ने "दयानन्द की जय" "वैदिक धर्म की जय" आदि कोई संक्षिप्त मन्त्र आविष्कृत नहीं किया। उन्होंने वैदिक पाठशालाएं खोल कर, लोगों को सिद्धान्तों का ज्ञान कराकर सिद्धान्त प्रेमी बनाना चाहा था।

ऋषि दयानन्द तथा उनके प्रारम्भ के अनुयायियों और आर्य समाज के नेताओं ने संख्या की पर्वाह तक नहीं की और सिद्धान्त ज्ञान के बाद ही सिद्धान्त प्रेम को अपने हृदयों में पैदा किया। इसी सिद्धान्त प्रेम के कारण प्रारम्भ के आर्य समाजियों ने सम्बन्धियों, दोस्तों तथा सरकारी सहायता की उपेक्षा कर, आर्य समाज को अपनाया। संख्या में थोड़े होते हुए भी उनमें एक आकर्षण था जिसके कारण साधारण जनता का उनकी तरफ ध्यान खिंचा रहता था। छोटे २ दुकानदारों और छोटी हैसियत के आदमियों ने स्वयं सत्यार्थ प्रकाश तथा सिद्धान्तों को समझ कर आर्य समाज के प्रचार में जो काम किया उसकी जितनी सराहना की जाय थोड़ी है। आर्य समाज का जीवन उसके सिद्धान्तों में है। आर्य समाज इस्लाम और सिक्ख धर्म की तरह धर्मान्धता के बल पर नहीं फैल सकता। क्योंकि आर्य समाज में ज्यादा संख्या कौलेजों के ग्रैजुएट और वकील बैरिस्टरों की है। यह वकील बैरिस्टर धर्मान्धता के रंग में नहीं रंगे जा सकते।

यदि आर्य समाज के नेताओं ने आर्य समाज को धर्मान्धता के रंग में रंगना चाहा तो विद्वान् लोग आर्य समाज से अलग हो जायंगे। इस समय आवश्यकता इस बात की है कि आर्य समाज के सिद्धान्तों के ज्ञान को अधिक विस्तृत किया जाय।

आर्य समाज की वर्तमान शिथिलता के कारणों पर विचार करते हुए कई विद्वान् यह विचार प्रकट करते हैं कि नवयुवक आर्य समाज में हाथ नहीं बंटाते। हमारी राय में वर्तमान शिथिलता का मुख्य कारण यह है कि आर्य समाज के वर्तमान नए नेता-सिद्धान्त ज्ञान-परिश्रम पूर्वक सिद्धान्तों को जाने बिना-लोगों को वैदिक धर्म की जय, ऋषि दयानन्द की जय के जयकारों से आर्य समाजी बनाना चाहते हैं। इस प्रवृत्ति के कारण पढ़े लिखे नवयुवक उत्साह के साथ आर्य समाज में नहीं आते सिद्धान्तों के जिज्ञासु, सिद्धान्तों के खोजी ही सिद्धान्त प्रेमी बन सकते हैं। वर्तमान समय में आर्य समाज के अन्दर यह प्रवृत्ति धीरे २ घर कर रही है कि वह सांसारिक ऐश्वर्य तथा दुनियावी दृष्टि से लोक प्रियता प्राप्त करने के लिए सिद्धान्तों में शिथिल हो रहे हैं। कुछेक लोग नाम मात्र के सुन्दर दिखावे तथा नाम मात्र की एकता के लिए सिद्धान्तों को पालन करने में ढील कर रहे हैं। हम इस लिए आर्य समाज के समस्त सिद्धान्तों पर विशेष बल देना चाहते हैं।

बसन्त

आई बसन्त है यह सज साज सजीली।
बेली नवल हैं झूमती खिल खिल के लजीली ॥ १ ॥
सौरभ सना समीर सुन्दर धीर चल रहा।
अठला रही हैं क्यारियां फूलों से फबीली ॥ २ ॥
रस ले रहे हैं डारियों पै गूंजते भौंरे।
कलियां चटक रही कहीं चटकीली रंगीली ॥ ३ ॥
सब ठौर रहे मौर अंबुआ मालती केसू।
उद्यान में भारत के छबि आज छबीली ॥ ४ ॥
गावें बसन्त राग में गुणवाद ईश के।
कोयल भी साथ दे रही है तान रसीली ॥ ५ ॥

कर्म या जन्म

(श्री पण्डित जनमेजय विद्यालङ्कार, आयुर्वेदशास्त्री कानपुर)

गत दो तीन सौ वर्षों से संसार के प्रायः सभी भागों में कर्म और जन्म की कशमकश किसी न किसी रूप में जारी है। रूस की ज़ारशाही ने जब जनता पर अत्याचार करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझ लिया और मान लिया कि रूस में पैदा होने वाला हरेक प्राणी हमारा गुलाम है तब उसके विरोध में महात्मा लेनिन ने अपनी तेज़ तलवार के ज़ोर पर ज़ारशाही को मुहंतोड़ जवाब दिया, कि जो भी कोई हल चलाकर खेती पैदा करने का काम करेगा वही मालिक हो सकेगा चाहे वह किसी कुली या गुलाम की सन्तान भी क्यों न हो। जो सम्राट् का पुत्र होकर भी हल चलाकर नाज की उत्पत्ति न करेगा उसे मालिक बनना तो दूर रहा-खाने को रोटियां भी न मिलेंगी। रूस में जन्म और कर्म की इस लड़ाई में कर्म की विजय हुई और महात्मा लेनिन संसार के एक महापुरुष कहलाये। पुराने खलीफ़ा लोगों की सन्तान होने के कारण भूतपूर्व खलीफ़ा ने शासन की योग्यता न रखते हुए भी जब टर्की के सम्राट् बन कर अपने स्वदेश और उपनिवेशों पर भी विदेशियों को अधिकार जमाने दिया तो बहादुर कमालपाशा की खूंखार तलवार अपने म्यान में न रहसकी। कमालपाशा ने कमज़ोर तथा डरपोक और विदेशियों से दबने वाले खलीफ़ा को उसकी राजगद्दी से उतार कर ज़ोर से ज़मीन पर पटक दिया और कह दिया कि टर्की देश का शासन कमज़ोर भीरु और विदेशियों का पक्षपाती व्यक्ति हरगिज़ नहीं कर सकता, चाहे ऐसा व्यक्ति पुराने खलीफ़ाओं का सगा बेटा ही क्यों न हो। टर्की का शासन वही पुरुष करेगा जो निडर बहादुर और सच्चा देशभक्त हो, चाहे ऐसा व्यक्ति निर्धन अपढ़ तथा गुलाम आदमी का ही पुत्र क्यों न हो। कर्म और जन्म के इस घमासान में भी कर्म की विजय हुई और कमालपाशा की तूती तमाम इस्लामी संसार में बोलने लगी तथा टर्की के पुराने खलीफ़ाओं की सन्तान होने के कारण टर्की की राजगद्दी का दावा करने वाला भूतपूर्व खलीफ़ा आज टर्की में क़दम नहीं रख सकता।

भारतवर्ष में भी यह लड़ाई हुई और अब भी जारी है। सायण महीधर आदि से भी कुछ समय पूर्व इस देश के कुछ चालाक आदमियों ने अपने को

ब्राह्मण कहना शुरू किया। अपने को ब्रह्मा के मुंह से उत्पन्न हुआ बतला जनता को धोखा दिया। अपने को "अवध्य" व "अदण्ड्य" कहकर तात्कालि राजाओं को भी खूब बेवकूफ़ बनाया। दान दक्षिणा लेने का अधिकार भी अ ही बतला कर लोगों को खूब लूटा खसोटा। वेदों और शास्त्रों आदि के पढ़ने अधिकार अपने लिए जन्मसिद्ध और Reserve बतला कर तमाम जनता को रत्तर मूर्ख और अशिक्षित बना दिया, फिर अपने आप भी पढ़ना लिखना दिया। हमारी धूर्तविद्या को कोई समझ न ले इसी उद्देश्य से राजाओं द्वारा अ राक्षसी नियम भी बनवाए। जैसे "श्रवणे त्रपुजतुभ्यां कर्णपरिपूरणमुच्चारणे जि च्छेदो धारणे हृदयविदारणम्" अर्थात् यदि शूद्र वेदमन्त्र सुन ले तो उस कानों में पिघला हुआ सीसा भरदो, यदि शूद्र वेदमन्त्र बोले तो उसकी जीभ टलो, यदि वह वेदमन्त्र याद करले तो उसे जान से मार डालो। ओह! स्व आदमी क्या नहीं कर सकता? कैसा भीषण अत्याचारी राजनियम है इस प्रकार जब इन्हों ने अपने लिये मौज मारने के सब सा कर लिए तब अपने बाल बच्चों के लिए भी प्रबन्ध किया। मूर्ख जनता को सिखा दिया कि भविष्य में हमारी जितनी भी सन्तानें होंगी वह सब ब्राह्मण कहलायेंगी और उन सब के भी वही अधिकार होंगे जो हमारे हैं। अन्य कि भी आदमी की सन्तानें कभी ब्राह्मण हो ही नहीं सकतीं। ब्राह्मण की स पूजा करनी चाहिये, इसलिये तुम सब का धर्म कर्म यही है कि हमारी ह हमारे पुत्र पौत्रादिकों की सदा पूजा व सेवा आदि किया करो। जब इस प्र तमाम जनता अशिक्षित तथा निर्बल होगई तब विदेशियों के मुँह में भी पानी गया। हिन्दुस्तान सोने की खान है किन्तु जो इस सोने की खान के मालिक पहरेदार हिन्दू लोग हैं वह प्रायः सभी अशिक्षित निर्बल तथा कुछ थोड़े से आ मियों के हाथ की कठपुतली मात्र हैं-इस मुल्क से जितना भी सुवर्ण ढोया जा स ढोना चाहिए। फिर क्या था, महमूद गज़नवी, मुहम्मद गोरी और उस के हजा लुटेरे साथी सभी मालामाल होगए। सोमनाथ, मथुरा, कुरुक्षेत्र, हरद्वार, देह मुलतान, लाहौर आदि स्थानों की ईंट से ईंट बजने लगी। यह हिन्दू सन्तान दो रुपयों में ग़जनी के बाज़ारों में बिकने लगी। किन्तु जिन के हाथ में देश बागडोर थी, बहादुर राजपूत राजा लोग जिनके चरणसेवक थे, जिनकी आज्ञा बिना कुछ हो नहीं सकता था और लौकिक भाषा में जिन्हें ब्राह्मण कहा जाता वह देश की बागडोर संभालने के अयोग्य थे उनके इतने अधिकार इतनी प्रति

सब कुछ सिर्फ इसलिये था कि वह अपने को प्राचीन ब्राह्मणों की सन्तान कहते थे। उन्होंने वह अधिकार तथा वह प्रतिष्ठा अपने लिये जन्मसिद्ध मानी थी जो कि किसी समय–सच्चे ब्राह्मणों–गुणकर्म युक्त उत्तम पुरुषों–के लिए जनता ने प्रसन्नता से दी थी। जनता की बागडोर मुसल्मानी राज्य में भी इन्हीं लोगों के हाथ में रही। इन्हीं की व्यवस्था के द्वारा आज भी हिन्दु जाति अपने सात करोड़ सगे भाइयों को अछूत समझ कर दुतकार चुकी है। अयोग्य आदमियों के हाथ में तीस करोड़ हिन्दू जाति का नेतृत्व सब से पहिले बहादुर गुरु गोबिन्दसिंह को खटका। उस समय जनता को यह आदत पड़ गई थी कि वह बात बात मेंजन्म के ब्राह्मणों से व्यवस्था लेकर तब कुछ काम करती थी। बहादुर गुरु ने आज्ञा दी कि आर्य संस्कृति की रक्षा के लिये आर्यजाति का प्रत्येक बालक और बालिका संस्कृत पढ़े। काशी से उत्तर आया कि "स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्" अर्थात् स्त्री और जिन्हें शूद्र कहा जाता है वे कुछ नहीं पढ़ने पायेंगे। देशकाल को समझने वाले, हिन्दूजाति के उद्धारक और रक्षक, वीरशिरोमणि, तीस करोड़ जनता के नेता बनने की वास्तविक योग्यता से युक्त, बहादुर गुरुगोविन्दसिंह ने मुसल्मानों के मुकाबिले में हिन्दूजाति को जब शेर बनाकर खड़ा करना चाहा तब केवल जन्म के आधार पर जनता के नेता बनने का दावा करने वाले इन लोगों ने बात बात में गुरु का विरोध शुरू किया और यथाशक्ति एक भी सुधार हिन्दूजाति में नहीं होने दिया। गुरु साहब प्रयत्न करते थे कि जनता की बागडोर बहादुर बुद्धिमान, निर्भय लोगों के हाथ में आवे चाहे वे भङ्गी कुल में ही क्यों न पैदा हुए हों। गुरु साहब चाहते थे कि गुण कर्म की पूजा हो, जन्म की नहीं। किन्तु तात्कालिक जन्म के ब्राह्मणों ने यही कोशिश की कि हिन्दुजाति का नेतृत्व हमारे ही हाथों में रहे, हम में नेता बनने और व्यवस्था देने की योग्यता चाहे हो या न हो। आखिर गुरू साहब को पन्थप्रकाश नामी ग्रन्थ में गुरुमुखी भाषा में लिखना ही पड़ा कि "जो कोई हमारा शिष्य हो जावेगा वह जन्म के ब्राह्मणों के पैर कभी नहीं पूजेगा"।

कर्म और जन्म की इस लड़ाई में महर्षि दयानन्द ने बहुत बड़ी भारी विजय प्राप्त की। ऋषि ने हिन्दू जाति को वेदों शास्त्रों स्मृतियों तथा धर्म ग्रन्थों के आधार पर शिक्षा दी कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र यह चारों गुण कर्म से होते हैं, जन्म से नहीं। ब्राह्मणों का सम्मान सब से अधिक होना चाहिए, उन्हीं को जनता

का नेतृत्व ग्रहण करना चाहिये और राजाओं या सम्राटों को भी ब्राह्मणों की सम्मति से ही कोई काम करना चाहिए। ऋषि ने बताया कि ब्राह्मण उस आदमी को कहते हैं जो विद्वान् सदाचारी धार्मिक परोपकारी और निस्वार्थी हो, चाहे उसका जन्म भङ्गी कुल में ही हुआ हो। ऋषि ने जनता को बतलाया कि शूद्रों का स्थान वर्णाश्रम धर्म में सबसे नीचा है किन्तु शूद्र उसे ही कहते हैं जो मूर्ख अशिक्षित तथा चोर आदि हो, चाहे वह कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की ही सन्तान हो। ऋषि ने देश और जाति की बागडोर योग्य आदमियों के हाथों में दी और जन्म के आधार पर बड़ा बनने वालों का घोर विरोध किया। गुणकर्म और जन्म की लड़ाई जो भारतवर्ष में हुई उस में भी विजयश्री ने गुणकर्म पक्ष को ही स्वीकार किया, और गुणकर्म पक्ष के परमाचार्य महर्षि दयानन्द उन्नीसवीं शताब्दी के सब से बड़े महापुरुष कहलाए। आगामी शताब्दियां महर्षि के इस उपकार और विजय के गीत बड़ी प्रसन्नता और कृतज्ञता पूर्वक गाया करेंगी।

महर्षि ने खूब मनन करने के पश्चात् निश्चय किया था कि आर्यावर्त देश में आज कल ब्राह्मणों की संख्या अंगुलियों पर गिनने के लायक भी नहीं रह गई है और जनता जिनसे बात बात में व्यवस्था मांगने पहुंच जाती है और जिनके हाथों में वास्तविक देश की बागडोर है वे यद्यपि अपने को कहते ब्राह्मण हैं परन्तु विद्याहीन गुणहीन स्वार्थ परायण आदि होने से न तो वे देश के नेता बनने के ही योग्य हैं और न वे वस्तुतः ब्राह्मण ही हैं। देश के रत्न, पञ्जाब केशरी लाला लाजपतराय जी ने अखिल भारतीय हिन्दु महासभा के बृहदधिवेशन में गत २८ दिसम्बर को कानपुर शहर में कहा था कि "आज कल हमारे देश में एक दर्जन भी वास्तविक ब्राह्मण नहीं हैं यदि १ दर्जन भी वास्तविक ब्राह्मण इस देश में होते तो गोहत्या अवश्य बन्द हो जाती। यह स्थापना बिलकुल ठीक और न्यायानुकूल है पञ्जाब केशरी के इस निर्भय सिंहनाद ने हमें फिर मनु महाराज का वह श्लोक याद दिला दिया है कि—

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानाञ्च व्यतिक्रमः।
त्रीणि तत्र भविष्यन्ति दुर्भिक्षं मरणं भयम् ॥

अर्थात् जहां अपूज्यों की पूजा तथा पूजनीयों की अप्रतिष्ठा होती है उस देश में अकाल पड़ना, मौतें बहुत होना और तरह २ के भय सदा लगे रहते हैं। सचमुच ही यदि महर्षि दयानन्द के लक्षणों के अनुसार उत्तम गुण कर्म युक्त

एक दर्जन भी ऐसे महानुभाव हमारी जाति में होते कि जिन्हें वैदिक विधि के अनुसार ब्राह्मण कहा जा सकता तो न केवल गोहत्या ही देश से बन्द हो जाती किन्तु देश और जाति के अन्य भी सब दुर्भिक्ष--मरण--भय आदि कष्ट बात की बात में नष्ट हो जाते।

महर्षि की हार्दिक इच्छा और प्रबल प्रयत्न था कि आर्यजाति में फिर से वैदिक वर्णव्यवस्था गुण कर्मानुसार प्रचलित हो। वर्णाश्रम व्यवस्था का पुनरुत्थान ही ऋषि की सब क्रियाओं का केन्द्र है। शिवरात्रि के इस पुण्य पर्व के दिन प्रत्येक आर्यसंतान को गम्भीरता पूर्वक प्रतिज्ञा लेनी चाहिए कि वह गुणकर्मानुसार वर्णव्यवस्था स्थापित करने तथा जन्मानुसार प्रचलित ज़ातपांत को नष्ट करने का प्रयत्न मनसा वाचा कर्मणा अवश्य करेगा।

— —
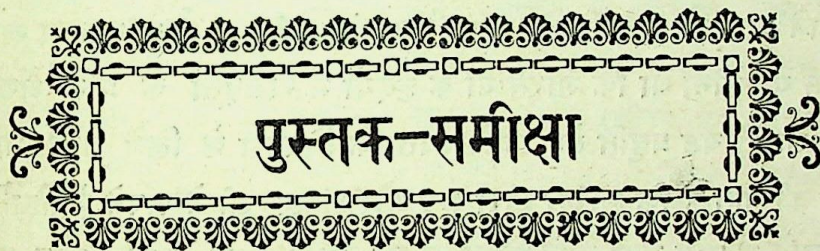
पुस्तक-समीक्षा

राजपूताने का इतिहास—(पहला खण्ड) ग्रन्थकर्ता रायबहादुर पण्डित गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा-अजमेर। स्थायी ग्राहकों से एक खंड का मूल्य ६)

प्रस्तुत पुस्तक और उसके लेखक भारतीय सभ्यता के अंधकार मय आकाश को प्रकाशित करने वालों में अपना विशेष स्थान रखते हैं। भारतवर्ष पर समय २ पर विदेशों से आक्रमण होते रहे हैं—इतना ही नहीं, इन आक्रमण कारियों ने राजनैतिक शक्ति-विस्तार के साथ २ अपने २ देशों के रीति रिवाजों को हिन्दुस्तान में फैलाने का भी यत्न किया। इन विदेशियों की इन चेष्टाओं को भारत के क्षत्रियों ने अपने बाहुबल से यथा शक्ति रोका। अंगरेज़ों के आने से पूर्व तक, राजपूताना का प्रदेश भारतीय सभ्यता का गौरवास्पद केन्द्र स्थान बना रहा। समय २ पर भारत के भिन्न २ प्रान्तीय नेताओं ने इसी प्रदेश से स्वाधीनता की दीक्षा ली थी। मेवाड़ राजपूताना तथा मेवाड़ में प्राप्त शिला लेख तथा कीर्ति स्तम्भ आज भी इस बात के साक्षी हैं कि राजपूताने के वीरों ने इस दुर्गस्थान में डर करा, हूणों, पूचियो तथा मुसलमानों को यहां की सभ्यता का

अन्त करने से सफलता प्राप्त नहीं करने दी—उन्हें सफलता तो क्या मिलनी थी अपने क्षात्र तेज—तथा बलिदान के बल से—अपने चरित्रबल से इस राजपूताना भूमि के वीरोंने विदेशियों को भारतीय बनने पर लाचार किया। मुसलमान सिक्ख मराठे—सब किसी न किसी तरह राजपूताने के वीरों को अपनाने की कोशिश करते रहे हैं। परन्तु कुछ समय से—भारतीयता के रक्षक राजपूतों के विषय में–उनकी उत्पति के विषय में योरोपियन तथा कुछेक भारतीय ऐतिहासिकों ने यह विचार प्रकट करने शुरु किए हैं कि यह राजपूत भारतीय नहीं थे, किन्तु बाहिर से आकर यहां बसे हैं।

खोज करने वाले ऐतिहासिकों के साधन अधूरे थे–वे भारत के, विशेषतः राजपूताना के रीति रिवाजों को नहीं जानते थे उन्होंने अपनी साधनाओं तथा विचारों के अनुसार ही राजपूतों की उत्पत्ति के विषय से विचार किया। मध्य एशिया से आने वालोंको गूजरों तथा यूनियों का वंशज लिखा। इस तर्क का स्वाभाविक परिणाम यह होना था कि भारतीयों के हृदयों में राजपूतों के प्रति श्रद्धा के भाव कम हो जायें। यह प्रवृति देश को सभ्यता के विकास के लिये बड़ी घातक है। प्रसन्नता की बात है कि श्रीयुत हीराचन्द गौरीशंकर जी ने अपने ऐतिहासिक खोज–राजपूताने में पाये जाने वाले शिला लेखों तथा ताम्र पत्रों—और पुराने ऐतिहासिक ग्रन्थों के आधार पर, इस भ्रम को दूर कर दिया है कि राजपूत लोग गूजी आदि के वंशज थे। विपक्ष का खंडन करते हुए Sentimental reasans की अपेक्षा Historical Arguments दी गई है यही इस पुस्तक की विशेषता है। पुराने इतिहास के खोजियों के लिए पुस्तक काम की है।

ओझा जी पुराने इतिहास के प्रामाणिक खोजी हैं, रुचि भेद या परिस्थिति भेद के कारण वह राजपूतों और मराठों के पारस्परिक सम्बन्ध पर न्याय युक्त प्रकाश नहीं डाल सके—सम्भव है उन्हें मराठों के इतिहास का पूर्ण अनुशीलन करने का मौका न मिला हो–इसी प्रकार अंगरेज़ों के शासन से राजपूतों को जो नुक्सान पहुंचा है तथा प्रारम्भ में राजपूताना में आने वाले अंगरेज रेजिडैन्टों ने राजपूतों और मराठों में आपस में द्वेष बुद्धि पैदा करने के लिये जो कार्य किए हैं उनका इस पुस्तक में जिकर नहीं किया गया–अच्छा होता यदि अंगरेजों और मराठों के समय के राजपूताना के इतिहास को वे अछूत ही रखते।

प्रस्तुत पुस्तक में राजपूताना के प्राचीन राज वंशों का संक्षिप्त इतिहास

लिखा गया है – उदयपुर रियासत का विस्तृत इतिहास भी प्रारम्भ किया गया है—अगले खन्डों में क्रमश राजपूताने की रियासतों का मुसलमानों के समय का तथा पुराना इतिहास विस्तार के साथ लिखा जायगा।

पुस्तक की भाषा ओज पूर्ण तथा राजपूताने की छाप लिये हुए है। भारत के प्राचीन इतिहास के प्रेमियों तथा राजपूत जाति के भक्तों को यह पुस्तक अपने पास ज़रूर रखनी चाहिये। अगले खंड सचित्र तथा नकसों के साथ छपेंगे छपाई शुद्ध तथा कागज बढ़िया है। एक खंड की पृष्ठ संख्या ४०० से ऊपर है।

आर्य कुमार गीता—लेखक श्री स्नातक ईश्वरदत्त भिषगाचार्य। 'चरक चिकित्सालय' परेड कानपुर से प्राप्य मू० ।) आर्य कुमारों से ≡)

'गीता' का भारतीय सभ्यता और साहित्य में कितना उच्च स्थान है यह किसी से छिपा नहीं है। किन्तु उसका संपूर्ण रूपेण कंठ करना बहुत कठिन है। इसी को अनुभव करते हुए सुयोग्य स्नातक जी ने उसका गुटका रूप में बड़ा उत्तम संग्रह किया है। यह संग्रह सर्व साधारण, और विशेषत: आर्य कुमारों के लिये बहुत ही लाभदायक है। प्रत्येक युवक के पास इसकी एक कापी का होना अत्यावश्यक है।

भविष्य पुराणलोचन—लें० पं० मन्साराम जी आर्योपदेशक सम्पादक श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी तथा श्री स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ। मू० ॥।) म० राजपाल सरस्वती आश्रम लाहौर से प्राप्य।

मध्यकालीन समय में लोगों ने वेदों के अर्थों को न समझते हुए परस्पर सम्प्रदायिक झगड़ों में पड़कर भिन्न २ पुराणों की रचना की। इन में से मुख्य पुराण भविष्य पुराण में क्या २ अश्लील गन्दी और सृष्टि नियम विरुद्ध अवेदिक बातें भरी पड़ी हैं यदि यह सब आपको जानना हो तो उपर्युक्त पुस्तक को अवश्य पढ़ें। यद्यपि लेखक ने सभ्यता वश उस गन्दगी से बहुत कुछ दूर ही रहना चाहा है तो भी कहां तक बचें, जो कुछ है उसकी गन्ध तो आही जाती है। प्रत्येक आर्य के घर में इस पुस्तक का होना बहुत ज़रूरी है। इसे पढ़कर प्रत्येक पाठक पौराणिक गढ़ में निश्शंक विचर सकता है।

सम्पादकीय

आर्य का ऋष्यंक

हमें इस बात का शोक है कि इस वर्ष 'ऋष्यङ्क' आशातीत संख्यामें छपने परभी हम अपने ग्राहकोंकी इच्छा पूर्ण नहीं करसके। इससमय अवस्था यह है कि हमारे पास आर्यकी एक कापी भी शेष नहीं बची है और आर्य भाईयों की ओर से उसकी मांग निरन्तर उसी प्रकार जारी है। हम आर्य परिवार को विश्वास दिलाते हैं कि यदि ईश्वर ने चाहा तो आगामी वर्ष इस कमी को पूरा कर हम अपने ग्राहकों को भर पेट सन्तुष्ट कर सकेंगे।

अफ्रीका में गुरुकुल

आर्य जनता को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि उस की प्यारी संस्था गुरुकुल का नाम और काम दिनोंदिन अधिक उन्नति करता जाता है. वस्तुत: अफ्रीका प्रदेश में बहुत दिनोंसे एक ऐसी संस्था की स्थापनाअनुभव की जा रही थी जिसमें वहां के बालकों की शारीरिक मानसिक और आत्मिक उन्नति की जा सके। लगभग एक वर्ष हुआ जब श्री पं० चमूपति जी आर्य-सेवक वैदिक धर्म का प्रचार करने के लिये यहां से अफ्रीका गए थे। इससे बढ़ कर और कौन सा अवसर हो सकता था जब कि प्रस्तावित गुरुकुल के विचार को कार्य रूप में परिणत करने के लिये अधिक संगठनात्मक विचार किया जा सके। आज जो रिपोर्ट हमारे सामने उपस्थित है उससे मालूम पड़ता है कि वहां के उद्योगी आर्य महानुभावों के प्रयत्न से इस काम में बहुत कुछ सफलता हो गई है और गुरुकुल की स्थापना में कुछ ही समय शेष रह गया है। यह गुरुकुल संसार मात्र के आर्यों की प्रतिनिधि 'आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब' के आधीन, गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी की शाखा होगी। इसलिये स्वाभाविक ही था कि इसकी स्कीम, पाठ प्रणाली आदि सब कुछ (कुछेक स्थानिक परिवर्तनों के साथ) उसी तरह हो जैसी कि गुरुकुलों की मातृ संस्था गु० कु० कांगड़ी की है। वर्तमान विदेशी शिक्षा प्रणाली से बढ़ता हुआ असन्तोष ही गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता को अधिक और अधिक अनुभव कराता जा रहा है। आवश्यकता इस बात की है चातुर्दिक उन्नति के लिये स्थान २ पर प्रारम्भिक गुरुकुलों की अधिक वृद्धि हो। इसके लिये श्री नाहरसिंह श्री फकीरचन्द और श्री लाहौरीराम जी ने वहां जो भी प्रयत्न किया है उसके लिये हम उन्हें बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि सुयोग्य पं० श्री चमूपति जी आर्य सेवक की अध्यक्षता में उन्हें पर्याप्त से

अधिक सफलता मिलेगी। ईश्वर उन्हें बल दें कि वे अपने शुभ कार्य में निरन्तर सफलता प्राप्त करें।

टंकारा की शताब्दी

५ फर्वरी से १३ फर्वरी तक टंकारा की शताब्दी समारोह के साथ मनाई गई। आर्य समाज के प्रसिद्ध २ सन्यासी तथा विद्वान् इस समारोह में सम्मिलित हुए हमने लिखा था कि इस शताब्दी को मनाने का मुख्य फायदा यह है कि आर्य समाज के इतिहास में ऋषि दयानन्द के जन्म स्थान के सम्बन्ध में जो संवाद फैले हुए हैं वह दूर हो जांय। सन्तोष की बात है कि शताब्दी के समारोह पर विचार करते हुए किसी भी विचारक ने टंकारा को ऋषि दयानन्द को जन्मभूमि माने जाने में आपत्ति नहीं की सबने सर्वसम्मति से टंकारा को ऋषि की जन्मभूमि मान लिया है। आर्य समाज के विद्वानों तथा कवियों और पुस्तक प्रकाशकों को इस ऐतिहासिक निर्णय की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये और यथा समय उचित परिवर्तन करना चाहिए। टंकारा की शताब्दी देशी रियासत में की गई है। काठियावाड़ प्रदेश में वैदिक-धर्म प्रचार की कमी है। भारतवर्ष में ब्रिटिश भारत में आर्य समाज का प्रचार काफी है, परन्तु रियासतों में इस की बहुत कमी है। टंकारा शताब्दी में विशेष स्मरणीय घटना--एक वृद्ध राजपूत का अपने पुत्र को आर्य समाज की भेंट करना था। समारोह के साथ २ अपनी प्रियवस्तुओं का बलिदान ही किसी समारोह को जीवित जागृत बना सकता है। इस समय इस बात की अवश्यकता है कि आर्य भाई आर्य समाज रूपी यज्ञ की ज्वालाओं को प्रदीप्त करने के लिये आत्म बलि करें। टंकारा शताब्दी की इस विशेषता को हमें नहीं भुलाना चाहिये। और आर्य समाज के व्यापक सिद्धान्तों को दूर तक फैलाने के लिए अपनी यथाशक्ति कोशिश करनी चाहिए।

आर्य समाज का उद्देश्य

कुछ समय से कुछेक विचारक अपनी विचार संकीर्णता के कारण आर्य समाज के उद्देश्य को भी संकीर्ण तथा संकुचित करने लगे हैं आर्य समाज का अन्दोलन भारत-वर्ष में "हिन्दू जाति" से हुआ था। परन्तु उस का कार्यक्षेत्र संसार तथा मनुष्य जाति तक विस्तृत है। हिन्दू मुसलमानों के पारस्परिक वैमनस्य के कारण कई लोग आर्य समाज को हिन्दू जाति के अन्दर सीमित करना चाहते हैं। ऐसे

सज्जनों को ऋषि दयानन्द की Spirit को समझने के लिये सत्यार्थ प्रकाश के खण्डनात्मक समुल्लासों का ध्यान पूर्वक मनन करना चाहिए। ऋषि दयानन्द ने जिस आत्मिक तीव्रशैली से मुसलमानों और ईसाइयों का खण्डन किया है, उसी तीव्रशैली से जैनी तथा हिन्दु सम्प्रदायों का भी खण्डन किया। ऋषि दयानन्द केवलमात्र हिन्दू सुधारक नहीं थे, वह भारतवर्ष और संसार में नया परिवर्तन लाना चाहते थे। ऋषि दयानन्द ने जिन सिद्धान्तों पर विशेष ज़ोर दिया था वह सिद्धान्त साम्प्रदायिक क्षेत्र में सीमित नहीं थे। मनुष्यता के नाम पर वह सुधार करना चाहते थे—हमें इस समय इस तरफ़ विशेष ध्यान देना चाहिए, नहीं तो आर्य समाज भी हिन्दू धर्म के अन्य सम्प्रदायों की तरह सम्प्रदाय बन जायगा।

गुरुकुल मास

यह महीना गुरुकुलमास है। इस महीने पंजाब प्रतिनिधि सभा के आधीन-गुरुकुलों के वार्षिकोत्सव आ रहे हैं। कोई भी समाज व जाति अपने निजू शिक्षणालयों के बिना अपनी विशेषताओं को कायम नहीं रख सकती। आज हम देख रहे हैं कि मुसलमान-सनातनी तथा कुछेक आर्य भाई सरकारी शिक्षणालयों द्वारा अपने २ धार्मिक सिद्धान्तों का प्रचार करने का यत्न कर रहे हैं, परन्तु उन में से किसी को प्रशंसनीय सफलता नहीं हुई। शिक्षणालय सभ्यता के उत्पत्ति स्थान होते हैं आर्य समाज जिस आर्य सभ्यता का उद्धार करना चाहता है, उस के लिए अनुकूल वातावरण हमें गुरुकुलों में ही मिल सकता है। यद्यपि सामयिक परिस्थितियों के कारण आर्य-समाज पूर्ण रूप से गुरुकुल शिक्षाप्रणाली को नहीं अपना सका फिर भी विपरीत अवस्थाओं में जिस हद तक गुरुकुल शिक्षाप्रणाली को अपनाया गया है, वह प्रशंसनीय है इस समय देश में सरकारी संस्थाओं का प्रभाव बढ़ने के कारण राजतेज के कारण हमारी मनोवृत्तियों पर भी उस की छाया पड़ने की संभावना है! हमें इस गुरुकुल मास में अपनी इस मनोवृत्ति पर विशेष रूप से विचार करना चाहिए। क्योंकि हमारी मनोवृत्तियों पर ही आर्य सभ्यता का विकास निर्भर है।

—राजेन्द्र.

आर्यसमाज के उच्चकोटि के विद्वानों की पुस्तकें

सन्यासी महात्माओं की ओर से आत्मप्रसाद।

(१) **श्री स्वामी सत्यानन्द जी**—दयानन्द प्रकाश १॥) संध्यायोग ।-) सामाजिक धर्म ॥) दयानन्द वचनामृत ॥=) ओंकार उपासना ≡) सत्योपदेश माला १)

(२) **श्री नारायण स्वामी जी**—आत्म दर्शन १॥) आर्य समाज क्या है ।-) प्राणायाम विधि =) वर्णव्यवस्था पर शंकासमाधान ≡)

(३) **श्री स्वामी अच्युतानन्द जी**—व्याख्यानमाला (संस्कृत में) संस्कृत में योग्यता प्राप्त करने के लिये ॥=) आर्याभिविनय द्वितीय भाग सजिल्द ।-)॥ एक ईश्वरवाद -) प्रार्थना पुस्तक

(४) **श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी**—आर्य पथिक लेखराम १।) मुक्ति सोपान ॥=)

(५) **श्री स्वामी सर्वदानन्द जी**—आनन्द संग्रह, परम आनन्द की प्राप्ति के सब साधन इस में दिये गये हैं १)

(६) **श्री स्वामी अनुभवानन्द जी**—भक्त की भावना, बहुत बढ़िया पुस्तक है मू०केवल॥)

भक्ति दर्पण अथवा आत्म प्रसाद।

इस में भक्ति मार्ग के सभी साधन दे दिये गये हैं। प्रत्येक स्त्री, पुरुष, बच्चे, बूढ़े को हर समय जेब में रखनी चाहिये। पाकिट साईज सुनहरी जिल्द मू० ॥)

स्कूलों तथा पाठशालाओं में बच्चों को उपहार में देने योग्य उत्तम पुस्तक है। आर्य समाज के बड़े २ विद्वानों ने इसे बहुत पसन्द किया है।

आर्यप्रतिनिधि सभा द्वारा स्वीकृत।

—आर्य प्रतिनिधि सभा ने आर्य समाजों के लिये हिसाब किताब, मासिक चन्दा, संस्कार, पुस्तकालय, वस्तुभण्डार, साप्ताहिक सत्संग तथा वार्षिक वृत्तान्त के लिये १० प्रकार के रजिस्टर और फार्म स्वीकार किये हैं, जो प्रत्येक समाज को प्रयोग में लाने चाहियें। यह रजिस्टर सजिल्द तथा एक वर्ष से अधिक समय के लिये प्रर्याप्त हैं। मू० केवल ६)

—शुद्धि के प्रमाण पत्र—जो सभा द्वारा स्वीकृत हैं, अति सुन्दर रंगीन छपवाए गए हैं, प्रमाण पत्र का एक भाग समाज के पास रहेगा। और दूसरा भाग काट कर शुद्ध हुए व्यक्ति को दिया जाता है। १०० फार्मों की एक कापी का मू० १॥=), ५० फार्मों की कापी ।॥=)

—आर्यसमाज के प्रवेश पत्रों तथा नियमों की १०० फार्मों की सुन्दर कापी ॥=), रसीद बुक ॥) हिन्दी, अंग्रेज़ी, उर्दू नियम ।=) सैंकड़ा ॥

साप्ताहिक सत्संग के लिये सत्संग गुटका ≡) भजन संकीर्तन -)

राजपाल—अध्यक्ष, आर्य पुस्तकालय तथा सरस्वती आश्रम, लाहौर।

सालभर का परीक्षित

भारत सरकार तथा जर्मन गवर्नमेंट से रजिस्टर्ड़

८०००० एजेंटों द्वारा बिकना दवा की सफलता का सब से बड़ा प्रमाण है

(बिना अनुपान की दवा)

यह एक स्वादिष्ट और सुगंधित दवा है, जिस के सेवन करने से कफ़, खासी, हैज़ा, दमा, शूल, संग्रहणी, अतिसार, पेट का दर्द, बालकों के हरे पीले दस्त, इन्फ्लुएंजा इत्यादि रोगों को शर्तिया फायदा होता है। मूल्य ॥) डाक खर्च १ से २ तक ।=)

दाद की दवा

बिना जलन और तकलीफ़ के दाद को २४ घण्टे में आराम दिखाने वाली सिर्फ़ यही एक दवा है। मूल्य फ़ी शीशी ।) आ. डा. खर्च १ से २ तक =) १२ लेने से २) में घर बैठे देंगे।

दुबले पतले और सदैव रोगी रहने वाले बच्चों को मोटा और तन्दुरुस्त बनाना हो तो इस मीठी दवा को मंगा पिलाइये बच्चे इसे खुशी से पीते हैं दाम फ़ी शीशी ॥) डाक खर्च ॥)

पूरा हाल जानने के लिये सूचीपत्र मंगा कर देखिये, मुफ्त मिलेगा। यह दवाईयां सब दवा बेचने वालों के पास मिलती हैं।

सुख संचारक कंपनी, मथुरा

ार्य्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब, गुरुदत्त भवन लाहौर ।

आय व्यय मद्धे मास माघ १९८२ । १०१

निधि	बजट आय	इस मासकी आय	इस वर्ष की आय	बजट व्यय	इस मास का व्यय	इस वर्ष का व्यय
ार्यालय सभा				६४१०)	४५१।=)	४३१६≡)।॥
ा	२६००)	१२४॥-)॥	१२७२॥-)			
रक्षा				८६०)	३८)	५७५॥।)॥
			१५०)			१३३॥=)
			१२५)			
्रकाश आज्ञा			८३॥=)			
्सेज़ आफ़ दयानन्द						
योग		१२४।-)॥	१६३१≡)		४८९।=)	५०२५॥=)।
्य वेदप्रचार				१५६०)	४८)	६०८॥)
पुस्तकालय	५००)	३२॥≡)	३३०॥≡।)	२५००)	१८०॥=)	२१२३॥=)॥
	३०००)	१६५।)	८९०)।	३०००)	३००।=)	१७८२=)१
ा निधि	२०००)	२०१॥।=)	१७५९।≡)।			
	२००)	५)	६५॥=)			
उपदेशक				१७०८०)	१०१४॥-)॥	१०५९८॥≡)७
्यय				६४००)	१०१२॥-)।।	५५२७।≡)॥।
्जीवन				९०)		६६।)॥
कोष				१२००)	५०)	६१३॥=)॥
्रा माता पं० गणपति शर्मा				२४)		१२)
योग		४१५-)	३०४६)॥		२६०६≡)।	२१३३२॥≡)५
्वार		१३६८॥-)१०	१३६२७-)२			
्म स्मारक निधि	३००)	१)	१५६॥।≡)			
उपदेशक				२४००)	२-)	५०१।-)
्यय				५००		४७॥)
् विधवा पं० तुलसीराम				१२०)	१०)	१००।
,, वज़ीरचन्द				९६)	८)	८०)
योग		१)	१५६॥≡)		२०-)	७२८॥।-)
्क					२७)।	४३॥।)८
्क़र्ज़ा		१६१॥)।	३६०१०≡)४			
			२१७६।≡)			
्आय व्यय			५५७॥-)		२४॥।-)।	२६६≡)॥।
्ा मकान		८)	५=)			
योग		१७०॥)।	३८७९७≡)४		६१।।-॥	३१३।)५
्त अन्य संस्थायें		७७)	११६६)		२२५)	७१४८।-)२
आर्यसमाजें		५)	२६१०≡)		१४॥।=)	२३८॥-)
्दिक पुस्तकालय		१०)	६०)			३०)
विद्यार्थी आश्रम		४०)	५०२)		६०)	५७४)
्अम्बालाल दामोदरदास						५०॥)
योग		१३२)	४६४१≡)		४०६॥।)	१०१८४।।=)२

निधि	बजट आय	इस मास की आय	इस वर्ष की आय	बजट व्यय	इस मास का व्यय
वसीयत निहाल देवी जींदाराम			४७६९१)		
स्वा० विद्यानंद जानकी बाई			१०००)		
प० पूर्णानन्द जी					५०)
म० ओचीराम जी					२५)
रामशरणदास जी		३२=)	१०३२=)		३२=)
म० ईश्वरदास					५०)
योग		३२=)	६८०१।=)		१५७=)
दलितोद्धार	१००००)	२७।॥	१८४०≡।॥।	१००००	५१४)।
राजपूतोद्धार		२४॥)	१०१=)		१९१)
प्रोवीडेंट		८६-)७	१२१०॥)४		
उपदेशक विद्यालय	६०००)	७५३)	१८६६८॥≡)॥।	६०००)	५६३)
आर्य विद्यार्थी आश्रम	४५००)	७८२।≡)	५२३७॥-)।	४५००)	५०७।-)।
गुरु०भ० आश्रम शाला			२५०)		
अज्ञात निधि		८३=)।	४६-६।≡)		२६०५॥)
शताब्दी			४७६≡)		
वेदामृत			५४५॥≡)		
उपदेशक विद्यालय स्थिरकोष			२००००)		
विदेश प्रचार	२०००)		६५॥=)।	१५००)	
सभा के सेवकों की सहायता					
शिक्षा समिति		१०)			
उपदेशक विद्यालय शाला			१६०) १६१०)		
प्रेमदेवीहोमकरणभंडार				६०)	
आसाम प्रचार					
रामचन्द्रस्मारकनिधि			३५७॥)॥		
असाधारण निधि		५)	७)		
बोनस			१२३॥-)॥।		
गुरुकुल मुलतान			५६।=)		
मदरास प्रचार			७०)		
योग		२०२२॥=)१०	६०३७६=)७		४३८१-)॥
गुरुकुल महानिधि		५५३७॥≡ २	८००१५॥=)॥		१७३३३॥-)।
,, स्थिर छात्रवृत्ति		३००)	१८४३४-)		
,, अस्थिर ,,			४५०॥)		
,, उपाध्याय वृत्ति			५८४०५)॥		
,, शालानिधि		१६५०)	४२०५।=)		
कन्यागुरुकुल इंद्रप्रस्थ			१६४५१॥=)॥		
योग		७४८७॥≡)३	१७७०६१॥)॥		१७३३३॥-)।

(शेष टाइटल के दूसरे पृष्ठ पर)

Registered No. L 1424. रजिस्टर्ड नं० एल १४२४

ओ३म्

भाग ७
अङ्क १२

अप्रैल १९२९
चैत्र १९८२

आर्य्य

आर्य्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का
मासिक पत्र

सम्पादक—चमूपति

प्रार्थना

ओ३म् इन्द्रं वर्धन्तोऽप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ।
अपघ्नन्तोऽराव्णः ऋग्वेद ।

हे प्रभु ! हम तुम से वर पावें ।
विश्व जगत् को आर्य्य बनावें ॥
फैलें, सुख सम्पत् फैलावें ।
आप बढ़ें, तव राज्य बढ़ावें ॥
वैर-विघ्न को मार मिटावें ।
प्रीति-नीति की रीति चलावें ॥

वार्षिक मूल्य ३) रु० पेशगी

बाबू जगतनारायण प्रिन्टर व पब्लिशर के अधिकार से विरजानन्द प्रेस लाहौर में छप कर प्रकाशित हुआ।

विषय सूची

———

संशोधन

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२६	२७	कोयलों	कौंपलों
,,	२८	महात्मा	महात्मा (या महातमाः ?)

सर्वयोग	३४८८२३।)१?	६५४९६२॥)	४६७२१।≡)७	२७।
गत शेष	११३७३०४॥=)	१०५६२७६॥=)१०		
योग	१४८६१२७॥)११	१७११६४२।=)१०		
व्यय	४६७२१।≡)७	२७१८३५॥≡)॥		
शेष	१४३६४०६।≡)४	१४३९४०६।≡)४		

* ओ३म् *
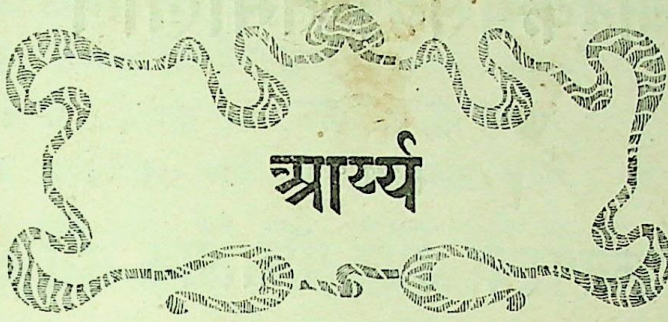
भाग ७] लाहौर—चैत्र १९८२ अप्रैल १९२६ [अंक १२

[दयानन्दाब्द १०१]

वेदामृत
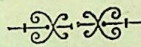
१. परम ब्रह्म

ओ३म् यतः सूर्य उदेत्यस्तं यत्र च गच्छति ।
तदेव मन्येऽहं ज्येष्ठं तदु नात्येति किंचन ॥

अथर्व १०. ८. १६.

जिस से सूर्य उदय पाता है,
रात अस्त हो छिप जाता है ।
मैंने ज्येष्ठ उसी को जाना,
उस से परे न कुछ जाता है ॥

वैदिक सिद्धान्तमाला।

[पुष्प १]

वर्णव्यवस्था और पौराणिक मत।

(पुराणों के प्रकाश में वर्णव्यवस्था पर कुछ विचार)

(श्री० गुरुदत्त सिद्धान्तालङ्कार आर्योपदेशक)

(गतांक से आगे)

'न यतोऽस्ति किंचित्—वस्तुतस्तु तस्य पुरुषस्य किमपि स्थूलं विग्रहं नास्ति। धारणार्थमेवास्य स्थूल विग्रहस्य कल्पनेति तात्पर्यम्।" भागवत के द्वितीय स्कन्ध प्रथमाध्याय के २५ से ३७ श्लोक तक दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इन श्लोकों में वर्णित विराट पुरुष का स्थूल शरीर वर्णन काल्पनिक और आलङ्कारिक है, वास्तविक नहीं। लेख में केवल मात्र एक २५ वां श्लोक नमूने के तौर पर दिया गया है, शेष स्थल को पाठक स्वयं पुराण में से देखने का कष्ट उठा सकते हैं। इस तरह स्वयं पुराणकार ने भी यजुर्वेद के पुरुष सूक्त की छाया में ही विराट् पुरुष के देह की आलङ्कारिक व्याख्या करते हुए "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" मंत्र की अभिधापरक व्याख्या ठीक उसी ढङ्ग से तथा उन्हीं शब्दों में की है जिन शब्दों में कि आर्यसमाज इस मंत्र की वास्तविक व्याख्या पेश करता है। पुराणकार का आशय तो निम्न श्लोक से स्पष्ट होरहा है-

"ब्रह्माननं क्षत्रभुजो महात्मा, विड्रुरङ्घ्रिश्रितकृष्णवर्णः"

ब्राह्मण इस विराट् पुरुष का मुख है। क्षत्रिय भुजायें हैं। वैश्य इस के उरु हैं तथा शूद्र पादस्थानीय हैं। क्यों पंडित जी महाराज! अपने माननीय पुराण की इस सारमय व्याख्या को देख कर क्या अब भी आप को कुछ होश आया या नहीं? स्वयं पुराणकार भी आपकी इस लपोड़शंख व्याख्या पर हंस रहे हैं कि ब्राह्मण देवता परमात्मा के मुख से टपक पड़े, क्षत्रिय महाराज उसकी भुजाओं

से और लाला साहिब (वैश्य) उस की जङ्घाओं से। शेष रहा बेचारा शूद्र। वह भगवान् के पैरों के तलुओं से पैदा हुआ। यही एक श्लोक ही आप के मानमर्दन के लिये काफ़ी है। परन्तु आप इतने से ही सन्तुष्ट न होंगे। आप हम से ऋषि के लाक्षणिक अर्थ के लिये प्रमाण पूछेंगे। सो भी लीजिये, हाज़िर है। कहीं और से नहीं, अपितु आप के ही घर से और वह भी आप के परम माननीय ग्रन्थ श्रीमद्भागवत पुराण से। ज़रा आंखों पर से पक्षपात की पट्टी खोल कर ग़ौर से पढ़ना कि आप के परम माननीय आचार्य श्रीमद्भागवत्कार ने यजुर्वेद के उक्त मंत्र की क्या लाक्षणिक व्याख्या की है, और वह ऋषि के लाक्षणिक अर्थ से कितना ज़्यादा टक्कर खाती है। अब हम उक्त मंत्र की भागवतकार कृत लाक्षणिक व्याख्या को पाठकों की भेंट करते हैं। व्याख्या निम्न प्रकार से है—

१ मुखतो अवर्तत ब्रह्म, पुरुषस्य कुरूद्वह।
यस्तून्मुखत्वाद्वर्णानां, मुख्योऽभूद् ब्राह्मणो गुरुः ३०।

२ बाहुभ्योऽवर्तत क्षत्रं, क्षत्रियस्तदनुव्रतः।
यो जातस्त्रायते वर्णान्, पौरुषः कण्टक क्षतात् ॥३१॥

३ विशोऽवर्ततत्स्तुतस्योर्वो, लोकवृत्तिकरी विभोः।
वैश्यस्तदुद्भवो वार्तां, नृणां यः समवर्तयत् ॥३२॥

४ पद्भ्यां भगवतो जज्ञे, शुश्रूषा धर्म सिद्धये।
तस्यां जातःपुरा शूद्रो, यद्वृत्त्या तुष्यते हरिः ॥३३॥

५ एते वर्णाः स्वधर्मेण, यजन्ति स्वगुरुं हरिम्।
श्रद्धयात्मविशुद्ध्यर्थं, यज्जाताः सहवृत्तिभिः ॥३४॥

श्रीमद्भागवत ३ स्कं० ७ अध्या० ३० .... ३४ श्लोक

इन उपर्युक्त ५ श्लोकों में से प्रथम चार श्लोकों में तो क्रमशः उक्त मन्त्र के एक २ पाद की व्याख्या कीगई है पांचवां श्लोक वर्णव्यवस्था पर सामान्यदृष्टि से प्रकाश डालता है। पहिले हम पांचवें श्लोक पर कुछ विचार करेंगे। क्योंकि हमारी व्याख्या का मुख्य आधार यही श्लोक है। इस श्लोक में पठित "यज्जाता सह वृत्तिभिः" वाक्य विशेष विचारणीय है। इस का अर्थ निम्न है—कि "उक्त भिन्न २ वृत्तियों के साथ जिस हरि से ये चार वर्ण पैदा हुए"। इस श्लोक का चतुर्थ पाद इस बात को खुले शब्दों में घोषित कर रहा है कि स्वयं पुराणकार

भी वर्ण विभाग का मुख्य आधार मानसिक वृत्तियों को ही मानते हैं। केवल मात्र जन्म को वर्णव्यवस्था का मुख्य निर्णायक मानना तो पौराणिकों के परम माननीय आचार्य श्रीमद्भागवतकार को भी अभीष्ट नहीं है मानसिक वृत्तियों से वर्णों की उत्पत्ति का वर्णन करके श्रीमद्भागवतकार ने तो एक प्रकार से पौराणिकों पर वज्रप्रहार ही कर दिया है, तथा इन के जन्म मूलक वर्णव्यवस्था के दृढ़ दुर्ग को पूरी तरह से हिला दिया है। पंचम श्लोक का चतुर्थ पाद ही हमारे इस अर्थ की पुष्टि कर रहा है, कि पहिले चार श्लोकों में पठित ब्रह्म, विश तथा सेवा शुश्रूषा शब्द ब्राह्मणादि वर्ण अथवा एतद्संज्ञाविशिष्ट व्यक्ति या जाति के वाचक नहीं अपितु ये शब्द मानसिक वृत्तियों के वाचक हैं। इस से भी बढ़कर हमारे अर्थ की पुष्टिमें एक और प्रमाण है और वह यह, कि उपर्युक्त श्लोकों में क्षत्र, विश तथा शुश्रूषा शब्दोंके विद्यमान होते हुए भी इनसे पृथक् पुनः क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र शब्दों को इनमें पढ़ा गया है। क्षत्रियादि पदों का पुनः पृथक् पठन हमारी उक्त स्थापना को और भी ज्यादा पुष्ट कर रहा है। यदि क्षत्रादि शब्द मानसिक वृत्तियों के वाचक न होकर क्षत्रियादि वर्णों के वाचक होते, तो ऐसी अवस्था में क्षत्रियादि पदों का पुनः पठन निरर्थक है, तथा उक्त श्लोकों में निरर्थकत्व तथा पुनरुक्त दोष उपस्थित होते हैं। अतः पुराणकार की पद्य रचना को दोष रहित सिद्ध करने के लिये तथा अपने परम माननीय पुराण की इज़्ज़त रखने के लिये पौराणिकों को भी झख मार कर हमारा अर्थ ही स्वीकार करना होगा। अन्यथा उन्हें अपने परम माननीय आचार्य पर बलात्कारेण पद्य रचनानभिज्ञता तथा दुष्ट कवित्व के दोष को मढ़ना ही होगा। देखें, पौराणिकों को इन दो विकल्पों में से कौनसा विकल्प अभीष्ट है। इस प्रकार से स्वयं श्रीमद्भागवतकार ने विराट पुरुष के मुख, बाहु, उरु तथा पाद से क्रमशः ब्रह्म, क्षत्र, विश तथा शुश्रूषा (शूद्र वृत्ति) वृत्तियों की उत्पत्ति बता कर ऋषि दयानन्द के लाक्षणिक अर्थ की पुष्टि की है। दोनों ही इस बात में पूर्ण रूप से सहमत प्रतीत होते हैं, कि विराट पुरुष के आलङ्कारिक आधिभौतिक देह में ब्रह्मवृत्ति, क्षात्रवृत्ति, वैश्यवृत्ति तथा शूद्रवृत्ति क्रमशः उसके मुख, बाहु, उरु तथा पाद को Represent करता हैं। विराट पुरुष के मुखादि अवयवों से ब्रह्म, क्षत्रादि मानवीय मानसिक वृत्तियों की उत्पत्ति बताकर तथा इनके आधार पर वर्ण विभाग करके स्वयं पुराणकार ने भी ऋषि के उक्त लाक्षणिक अर्थ तथा वर्ण व्यवस्था विषयक वैदिक सिद्धान्त की मुक्त कण्ठ से पुष्टि की है। पुराणकार की इस लाक्षणिक व्याख्या का अशुद्ध सिद्ध किये बिना अहंमन्य

तथा पांडित्य का झूठा अभिमान करने वाले पौराणिक विद्वानों का ऋषि दयानन्द की लाक्षणिक व्याख्या पर हंसी उड़ाने का प्रयास करना सूर्य पर थूक फैंकने के प्रयत्न के समान निरर्थक तथा साहस मात्र है। अब हम क्रमशः प्रथम चार श्लोकों की व्याख्या करके इनके अर्थों को ऋषि के उक्त लाक्षणिक अर्थ से तुलना करेंगे। जिनमें से कि प्रथम श्लोक निम्न है:—

"मुखतोऽवर्तत ब्रह्म, पुरुषस्य कुरूद्वह, यस्तून्मुखत्वाद्वर्णानां, मुख्योऽभूद्ब्राह्मणो गुरुः"

इस श्लोक का अर्थ निम्न है—विराट् पुरुष के मुख से ब्रह्मवृत्ति से युक्त ब्राह्मण वर्ण पैदा हुआ। जोकि सब वर्णों में से मुख्य (श्रेष्ठ तथा उनका नेता) होने के कारण उन का गुरु हुआ। इस स्थल में ब्रह्म शब्द का अर्थ ब्राह्मण नहीं, अपितु ब्रह्मवृत्ति से युक्त ब्राह्मण वर्ण है। इससे ऊपर हम इसके समाधान के सम्बन्ध में कुछ लिख चुके हैं। अब कुछ और प्रकाश डालते हैं। इससे पिछले तीनों श्लोकों में क्षत्र, विश तथा सेवा शब्द क्षत्रियादि वर्ण वाचक पदों से पृथक पठित होने के कारण तत्तत्सम्बन्धिनी मानसिक वृत्तियों के वाचक हैं। यद्यपि इस श्लोक में ब्राह्मण शब्द का पृथक पाठ नहीं है, तथापि साहचर्य बलात् ब्रह्म शब्द का अर्थ ब्राह्मणवृत्ति ही करना होगा ब्रह्म शब्द का अर्थ ब्राह्मण वृत्ति है, इससे आप भी इन्कार नहीं कर सकते। क्योंकि उणादि प्रकरण में कौमुदीकार ने भी ब्रह्म शब्द का निम्न अर्थ लिखा है "ब्रह्मतत्वं तपो वेदो ब्रह्मा विप्रः प्रजापतिः"। ब्रह्म शब्द का एक अर्थ ब्राह्मण भाव (ब्रह्मवृत्ति) भी है। तत्व शब्द का तद्भाव अर्थ स्वयं भाष्यकार ने ही किया है। "तस्य भावस्तत्वं"। इस के अतिरिक्त स्वयं ब्राह्मण ग्रन्थ भी हमारे उपर्युक्त अर्थ की पुष्टि कर रहे हैं। "ब्रह्म हि ब्राह्मणः" यह शतपथ का वचन है। इस वाक्य में हि पद एव के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इस में उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। इस का अर्थ निम्न है "मानो ब्राह्मवृत्ति ही साक्षात् ब्राह्मण है"। इस का स्पष्ट भावाशय यही है कि ब्रह्मवृत्ति से युक्त पुरुष की ब्राह्मण संज्ञा होती है। यहां पर ब्रह्म शब्द का अर्थ ब्राह्मण नहीं, अपितु ब्राह्मवृत्ति है। शतपथकार ने जिस प्रकार से ब्रह्मप्रकृति अथवा ब्राह्मवृत्ति में तत्संयुक्त चेतन ब्राह्मण व्यक्ति की उत्प्रेक्षा (कल्पना) की है। इस में कुछ भी आश्चर्य नहीं कि पुराणकार ने भी ठीक उसी प्रकार ब्रह्मप्रकृति अथवा ब्राह्मणत्व रूप धर्म तथा तद्धर्म से युक्त वर्ण में घनिष्ठ सम्बन्ध मान करके दोनों के लिये एक ही शब्द का प्रयोग किया हो। यद्यपि अन्य श्लोकों में क्षत्रियादि वर्णवाचक पदों का पाठ तत्संबन्धिनी वृत्तियों

के वाचक पदों से पृथक् किया गया है। अब इस पद्यका स्पष्ट अर्थ यह है कि— विराट पुरुष के मुख से ब्राह्मवृत्ति युक्त ब्राह्मण वर्ण उत्पन्न हुआ। जो कि शेष तीन वर्णों का नायक (नेता) होने के कारण सब से मुख्य (श्रेष्ठ अथवा प्रधान) तथा सब का गुरु होता है"। पाठक गण! अब ज़रा ऋषिकृत लाक्षणिक अर्थ पर भी ध्यान दीजिये। देखिये! दोनों के भावाशयों में कितनी विशेष समीपता है। ऋषि ने "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" प्रथम पाद की निम्न लाक्षणिक व्याख्या की है—'अस्य पुरुषस्य मुखं विद्यादयो ये मुख्यगुणा सत्यभाषणोपदेशानि कर्माणि च सन्ति तेभ्यो ब्राह्मण आसीदुत्पन्नः" ऋषि ने मुख शब्द का लाक्षणिक अर्थ ज्ञान, उपदेश (मार्ग प्रदर्शन करना) तथा सत्यभाषणादि सात्विक गुण और कर्म किया है पुराणकार ने भी ब्राह्मवृत्ति को विराट् पुरुष के मुख का representative बता कर ऋषि के उक्त लाक्षणिक अर्थ की पुष्टि की है। दोनों लेखक इस बात में भी सहमत हैं कि ब्राह्मण वर्ण की उत्पत्ति का आधार ब्राह्मवृत्ति ही है, न कि विराट् पुरुष का मुख। इस तरह पुराणकार ने भी ऋषि की हां में हां मिलाई है। अब ज़रा शतपथकार की कल्पना को भी देखिये। उस ने तो पौराणिक अर्थ की एकदम ही सफ़ाई कर दी है। शतपथकार ब्राह्मण की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए कहते हैं, कि 'यस्माद्ेते मुख्यास्तस्मान्मुखतोऽसृजन्त'। उक्त वाक्य में तस्मात् में हेतु अर्थ में पञ्चमी विभक्ति हुई है। इस का अर्थ 'तस्माद्धेतोः, तस्माद् कारणाद्वा' ऐसा होगा। अब उक्त वचन का अर्थ बिलकुल स्पष्ट है, कि— 'क्योंकि ये (ब्राह्मण) सब वर्णों में मुख्य हैं, इसलिये ये मुख से हुए स्वयं शतपथकार का उक्त वचन ही इस बात की स्पष्ट घोषणा कर रहा है कि— क्योंकि ब्राह्मण मुख्य हैं, अतएव इन के मुख से पैदा होने की कल्पना की गई है। वास्तव में ब्राह्मणों का मुख से उत्पन्न होना कोई प्राकृतिक अथवा भौतिक fact नहीं है, कल्पना मात्र ही है। वास्तविक fact तो यह है कि ब्राह्मण श्रेष्ठ तथा नेता होने के कारण मुखस्थानीय (Head) है। अब 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्' पद की वास्तविक व्याख्या स्पष्ट होगई है। क्यों पण्डित जी महाराज! इतने पुष्ट प्रमाणों के अनन्तर भी क्या आप अब भी ऋषि की लाक्षणिक व्याख्या को अशुद्ध कहने का दुस्साहस करेंगे?

द्वितीय श्लोक में पुरुष सूक्त के वर्ण व्यवस्था विषयक मंत्र के द्वितीय पाद "बाहू राजन्यः कृत." की लाक्षणिक व्याख्या की गई है। श्लोक का अर्थ निम्न है—

"पुरुष की बाहुओं से क्षत्रवृत्ति उत्पन्न हुई। इस वृत्ति के अनुकूल कर्मों (व्रत) वाला पुरुष ही क्षत्रिय है अर्थात् क्षात्र धर्म से युक्त पुरुष की क्षत्रिय संज्ञा होती है। जो (क्षत्रिय) उत्पन्न होकर सब वर्णों की शत्रु तथा दुष्ट लोगों से रक्षा करता है। इस श्लोक में क्षत्र शब्द क्षात्रवृत्ति या क्षात्र धर्म के लिये प्रयुक्त हुआ है, क्योंकि इस शब्द के पीछे पड़ा हुआ "क्षत्रियस्तदनुव्रतः" तथा पञ्चम श्लोक में पठित 'यज्ञातः सह वृत्तिभिः" निम्न दो वाक्य आन्तरिक साक्षि के रूप से हमारे निम्न कथन को पुष्टि में प्रबल प्रमाण हैं, कि इस श्लोक में पठित क्षत्र शब्द से पुराणकार का तात्पर्य क्षात्र वृत्ति से है, न कि क्षत्रिय संज्ञा से। इस श्लोक में पुराणकार ने क्षत्रिय शब्द की स्वाभाविक व्युत्पत्ति बहुत उपयुक्त शब्दों में की है। यह व्युत्पत्ति कोई नवीन नहीं है, जैसा कि हम रघुवंश में पढ़ते हैं:—

"क्षतात्किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढ़ः"

अब ज़रा देखिये, कि पुराणकार ने इस श्लोक द्वारा क्षत्रिय के लक्षण को कितना स्पष्ट कर दिया है। क्षत्रिय के घर में उत्पन्न होने मात्र से ही कोई व्यक्ति क्षत्रिय नहीं बन जाता, अपितु क्षत्रिय संज्ञा उसी की है, जिस के व्रत (कर्म) क्षात्रवृत्ति के अनुकूल हों, तथा जो व्यक्ति शेष वर्णों की शत्रुओं तथा दुष्ट पुरुषों से रक्षा करे। अब सारे श्लोक को सङ्गत कर के (बाहू राज्यन्यः कृतः) निम्न मंत्रांश की पुराणकार कृत लाक्षणिक व्यख्या पर ध्यान दीजिये, कि 'पुरुष की बाहुओं से क्षत्रिय संज्ञाविशिष्ट व्यक्ति नहीं अपितु क्षात्र वृत्ति उत्पन्न हुई और उस से उक्त पुरुष क्षत्रिय है। अब ज़रा पुराणकार की इस लाक्षणिक व्याख्या का ऋषि दयानन्द के निम्न अर्थ से मिलान कीजिये। देखिये कितना ज़्यादा सादृश्य है। ऋषि ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में उक्त मंत्र के द्वितीय पाद (बाहू राजन्यः कृतः) की निम्न व्याख्या की है:—

"बलवीर्यादि लक्षणान्वितो राजन्यः क्षत्रियस्तेनकृत आज्ञप्त आसीदुत्पन्नो भवति।"

बल, वीर्य तथा पराक्रमादि गुण (क्षत्रप्रकृति) विराट् पुरुष के आलङ्कारिक आधिभौतिक देह में बाहु को Represent करते हैं। इन गुणों अथवा क्षत्र प्रकृति से क्षत्रिय वर्ण की उत्पत्ति हुई। क्षात्रधर्म अथवा बल, वीर्यादि गुणों से युक्त पुरुष की संज्ञा होती है। पुराणकार ने भी ऊपर ठीक इसी भावाशय को ही व्यक्त किया है। देखिये दोनों के शब्दों तथा भावाशय में कितनी ज़्यादा

सदृशता है । ऋषि ने बाहु शब्द का लाक्षणिक अर्थ मनमाना नहीं किया अपितु शतपथ ब्राह्मण के आधार पर किया है । देखिये शतपथकार क्या कहते हैः—

"बाहू वै मित्रावरुणौ पुरुषो गर्तः वीर्यं वा एतद्राजन्यस्य यद्बाहू ।

शतपथ कां ५। अ० ४ । ब्रा० ३॥

बाहुएं ही निश्चय से मित्र और वरुण हैं (क्योंकि ये हमारी शत्रुओं के आक्रमणों तथा आपत्तियों से रक्षा करती हैं) वे बाहुएं कौन सी हैं? शतपथ कार इस को स्पष्ट करते हुए कहते हैं, राजन्य (क्षत्रिय) का वीर्य ही बाहु है। क्यों पण्डित जी महाराज! आप का बाहु शब्द के ऋषि कृत लाक्षणिक अर्थ का प्रमाण मिला या नहीं ?

अब आइये ज़रा तीसरे श्लोक पर विचार करें। तीसरे श्लोक में उक्त मंत्र के तृतीय पाद (ऊरु तदस्य यद्वैश्यः) की लाक्षणिक व्याख्या की गई है। श्लोक निम्न है—

"विशोऽवर्तन्त तस्योर्वो, लोकवृत्तिकरीर्विभोः ।
वैश्यस्तदुद्भवो वार्त्तां, नृणां यः समवर्तयत् ॥

श्लोक का अर्थ निम्न है, कि—उस विराट् पुरुष की उरु जङ्घाओं से लोक वृत्ति (धन धान्य आदि वैश्य वृत्ति) संपादित करने वाली साधारण प्रजाएं उत्पन्न हुई। वैश्य की उत्पत्ति उन से हुई, जो कि मानवीय प्रजाओं को व्यापार, कलाकौशलादि व्यवहार को संपादित करता है । इस श्लोक में विश शब्द से वैश्य का नहीं अपितु वैश्य वृत्ति संपन्न साधारण प्रजाओं का ग्रहण है* इस की सिद्धि के लिये हमें अब युक्तियाँ देने की ज़रूरत नहीं । इस का समाधान हम ऊपर कर आये हैं। द्वितीय पाद में पठित 'लोक वृत्ति करी' पद तथा तृतीय पाद में पठित "वैश्यस्तदुद्भवो" वाक्य हमारे इस आशय को व्यक्त रूप से पुष्ट कर रहे हैं।

(शेष आगे)

* विश् शब्द का लौकिक अर्थ प्रजा इस लिये है, कि साधारण जनता में धनधान्य कमाने तथा भोग विलास की प्रवृत्ति की प्रधानता होती है। सामान्य जनता में परोपकार, त्याग, कर्तव्य पालन, प्रभुत्व, साहस तथा प्रजारक्षा की प्रवृत्ति धनधान्य पैदा करने की प्रवृत्ति की अपेक्षा बहुत ही कम पाई जाती है। इसलिये सामान्य प्रजा को शास्त्रों में विश् अर्थात् वैश्य कहा है।

गोरक्षक ख्रिष्टान।

(लेखक—कविराज विद्याधर विद्यालंकार आयुर्वेदशास्त्री)

गतांक से आगे।

(३य परिच्छेद)

परिडत जीके मरने के पीछे कल्याणी की अतिहीन दशा होगई थी। जीविका का कोई साधन न था। किशोर अभी बच्चा ही था। साथमें एक गौ को भी पालना पड़ता था। गौ अभी बछिया कहाने के योग्य थी अभी वह पहली बार भी दूध न दे पाई थी। कल्याणी को आशा थी कि इस बार वह ज़रूर दूध देने योग्य हो जावेगी। कल्याणी यथा शक्ति उस की सेवा करती थी। खाने पीने के लिये ऋण लेना आवश्यक देख कल्याणी उधार लेने लगी छः महीने में लग भग पञ्चास रुपये उस के सिर चढ़ गये। उधार बढ़ता ही जाता था। उसे कल्याणी कैसे चुका सकेगी इस बात को कल्याणी जब सोचती थी तो सिवाय किशोर के और कोई अवलम्ब न दीखता था। कभी २ वह किशोर की छोटी आयु देख कर निराश भी हो जाती थी। रुपया चुकाते न देख लोगों ने उधार देना बन्द कर दिया। रुपये वाले चुकाने का तक़ाज़ा करने लगे एक दिन एक बनिये ने गली में खड़ा होकर कल्याणी को बहुत ऊंच नीच सुनाई। कल्याणी ने बनिये के केवल तीस रुपये देने थे। कल्याणी ने हाथ जोड़ कर बनिये से दो महीने की और मोहलत मांगी। बनिया यह कह कर चला गया कि यदि दो महीने के अन्दर मेरे रुपये न चुकाये तो मकान और सब असबाब कुर्क करा लूंगा।

कल्याणी एक लज्जा शील अच्छे चरित्र की स्त्री थी। उस ने निश्चय कर लिया था कि यदि दो मास तक कुछ बन्दोबस्त रुपये चुकाने का न हो सका तो मैं आत्महत्या कर लूंगी। जब पति ही न रहे तो स्त्री के भी रहने का धर्म नहीं।

कल्याणी इसी उधेड़ बुन में रहती थी। उस ने रात के समय का भोजन उसी दिन से छोड़ दिया था जिस दिन बनिये ने उस के मकान को कुर्क करने की बात कही थी। अब एक मास होने को है कि कल्याणी के घर रात को चूल्हा नहीं चढ़ता। दोपहर की रखी हुई दो सूखी

रोटियां नमक और पानी से खाकर किशोर रात का भोजन समाप्त करता है। परन्तु आज किशोर सायंकाल घर नहीं पहुँचा। कल्याणी बड़ी चिन्तित बैठी थी कि अचानक किशोर ने दरवाज़ा खटखटाया और अन्दर आते ही बोला, "मां, आज पूरा बदला ले लिया है। पिता का बदला पुत्र को लेना ही चाहिये न। क्यों मां! मैंने अच्छा किया न! मैंने आज उसी मोटे साधु के गले में जूतियों का हार भरी सभा में डाल दिया।'

मां ने उठकर किशोर का मुंह हाथ से ढांप कर कहा, 'बेटा! क्या बकता है। चुप रह, ऐसी बात मुंह से नहीं निकाला करते। किसी साधु के क्या डाला, ज़रा धीरे २ कह।'

किशोर ने मुंह पर से मां का हाथ हटाते हुए कहा 'मां, ! वही खिष्टान दयानन्द साधु आजकल काशी में फिर आया हुआ है। मैं भी वैद्य जी के साथ सभा में जा पहुंचा था। वहां एक स्त्री खिष्टान के गले में डालने को जूतियों की माला बना लाई थी। मैंने उसी माला को ले साधु के पास जाकर उस के गले में डाल दिया। पिता का बदला लेते ही मैं भाग पड़ा।'

कल्याणी दयानन्द का नाम सुनते ही सिर पीट कर रह गई। शिवजी को स्मरण करते हुए वह बोली, 'बेटा, तैंने बहुत बुरा किया। तेरे पिताने उसको ज़हर दिया था, वह स्वयं ही चलता बना और साधु का कुछ न बिगड़ा। अब तूने ऐसा काम किया है कि न जानें तुझे साधु ने क्या शाप दे दिया हो। हे भगवान! मुझ अभागिनी पर क्यों विपत्ति गिरा रहे हो' ऐसा कह रोते २ उसने किशोर को गोद में ले चादर से ढक लिया। फिर डरते २ पूछा 'बेटा! साधु ने तुझे मारा था?'

किशोर ने गोदी से निकल कर कहा, 'नहीं मां, लोग मारने लगे थे। पर जब साधुने देखा तो उसने लोगों को बन्द करके कहा, कि देखो, इस बच्चे को कोई कुछ मत कहो, इसे आने दो। यह बड़े प्रेम से बनाये इस जूतियों के हार को हमारे गले में डालने को आ रहा है। 'ऐसा कहते २ साधु ने आगे बढ़ कर सिर झुका कर वह हार अपने गले में डाल लिया और मुझे कुछ न कहा। बस, मैं वहां से सरपट भागता आ रहा हूं।'

मां ने पुत्र की मंगल कामना करके रोटी खिला कर किशोर को सुला दिया। कल्याणी उदास हो कर कुछ सोचती रही। वह दयानन्द के नाम से घबरा गई थी।

(४र्थ परिच्छेद)

उपरोक्त घटना को बीते पांच दिन हो गये।

आधी रात का समय है अभी बारह बज कर चुके ही हैं। रात चांदनी है पर बादलों में कभी २ चांद छिप जाने से अंधेरा भी हो जाता है। इस समय काशी निस्तब्ध है। गंगा के बहने का शब्द केवल सुनाई दे रहा है। एक साधु समाधि लगाये गंगा के किनारे बैठा है। उसके शान्त मुख मण्डल से अद्भुत शान्ति बरस रही है। पास ही एक मनुष्य पड़ा सोरहा है। साधु ध्यानमें मग्न है।

इसी समय "गंगा मईया! तेरी शरण लेती हूं। तूही दु:ख दूर कर" ऐसा बोलते हुए किसी नारी ने गंगा में छलांग लगादी। साधुने नेत्र खोल पास पड़े हुए मनुष्य को पुकारा 'बलदेव! देखो कोई अबला पानीमें कूदी है, जल्द निकालो। मैं भी उसे...................।'

अभी वाक्य पूरा भी न होने पाया था कि दूसरी छलांग की आवाज़ सुनाई दी और देखते न देखते बलदेव एक स्त्री को जल से निकाल साधु के सामने ले आया।

साधु –'देवी! तुम कौन हो? आधी रात में पानी में क्यों कूदती हो? क्या जीवन छोड़ने से दुःख छूट जायेंगे। कर्म फल तो अवश्य भोगना पड़ेगा'।

नारी!—महाराज! आपने मुझे बचा कर अच्छा नहीं किया। मैं दुःखों से एक बारही छूटने चली थी आपने क्यों बाधा दी। मुझे अब जीने से कष्ट ही कष्ट है। मैं जी कर क्या करूंगी।'

साधु—'देवी! धीरज धरो! कहो तो तुम्हें क्या कष्ट है'

नारी–महाराज! मैं विधवा हूँ दरिद्रता के मारे तंग आगई हूं। कर्ज़ बहुत सिर चढ़ गया है। उतारने का कोई उपाय नहीं। एक मात्र पुत्र है वह भी छोटा है उसे सोता छोड़ कर आज गंगाकी शरण आई थी सो आपने मरने न दिया'।

साधु—देवी! तुम्हारे घर में कुछ और भी है?

नारी—महाराज! एक बछिया और है। पर वह आज तक सूई नहीं, अब सूने की आशा थी पर उससे क्या होगा?

साधुने नेत्र बन्द कर लिये। दो क्षण बाद नेत्र खोल कर कहा—

"देवी! तुमने बहुत भूल की जो यहां चली आई। शीघ्र घर जाओ। तुम्हारी

गौ अभी घण्टे भर में सूने वाली है। तुम्हारे सभी दुःख गौ की सेवा से दूर हो जायेंगे। शीघ्र चली जाओ।"

कल्याणी—सच महाराज ! क्या एक घण्टे तक मेरी गौ सूएगी? तबतो लौट जाना ही धर्म है। नहीं तो गोहत्या का पाप भी सिर चढ़ेगा।'

साधुने बलदेव से स्त्री को घर तक पहुंचा आने को कहा।

कल्याणी बलदेव के साथ चल पड़ी। परन्तु दो पग चल कर फिर लौट पड़ी। साधु से कहने लगी—

'महाराज ! आपका शुभ नाम क्या है? कहां निवास है?'

साधु—माई ! मुझे दयानन्द कहते हैं। मैं रामबाग़ में ठहरा हुआ हूं।

कल्याणी एकदम घबरा कर खड़ी हो गई। डरते २ बोली—"क्या कहा, दयानन्द ! हाय, तब तो अनर्थ हो गया।"

दयानन्द—माई ! क्या अनर्थ हो गया।

कल्याणी—महाराज ! यदि सचमुच आप ही दयानन्द हो तो मुझे अभी भस्म करो। मैंने आपको कष्ट देने के कारण ही ये सब दुःख उठाये हैं। मेरे पति ने आप को ज़हर दिया था, आप के शाप से वही मर गया मेरे बच्चे ने आप के गले में जूतों का हार डाल था वह भी तभी से सूखता जा रहा है। तब महाराज! मुझे भी शाप देकर अभी भस्म करो। मैं जीकर क्या करूंगी।'

दयानन्द—माता ! धैर्य्य धरो। क्या कह रही हो? दयानन्द ने तो आज तक किसी को भी शाप नहीं दिया। वह शाप देगा भी नहीं। वह तो सदा लोगों का भला ही करता है और करता रहेगा। उसका चाहे कोई कितना ही अनिष्ट कर डाले वह तो उसे याद भी नहीं रखता। तुम्हारे पति ने कब ज़हर दिया था। (कुछ ध्यान करके) ओह ! वह बात कहती हो। वह तो होनहार थी। होनहार जो होती हो उस में दयानन्द कुछ नहीं कर सकता।

कल्याणी—क्या कहते हो, महाराज ! होनहार थी। तो क्या आपने मेरे स्वामी को शाप नहीं दिया।

दयानन्द—नहीं देवी। विस्मय न करो। तुम्हारे पति ने ज़हर वाला पान भूल से स्वयं खालिया था और मुझे दूसरा पान दिया था। मैंने उसे पान खाने से रोका भी। परन्तु ऐसा ही उसका कर्म फल था। मैं उसे कैसे बचा सकता था?

कल्याणी—ओहो ! तब तो बड़ा भारी भ्रम उड़ गया। तभी पतिदेव आपको

स्तुति करते २ परलोक सिधारे थे। तो क्या मेरे किशोर को भी आप ने शाप नहीं दिया ? वह तो दिन २ सूखता जाता है।

दयानन्द—(कुछ देर ध्यान करके) देवी ! दोनों समय सूखी रोटी खाने और वह भी भरपेट न खाने से ही उसका यह हाल हुआ है। जाओ गौ का दूध पिलाने से वह भी पुष्ट हो जायेगा।

कल्याणी कुछ देर आश्चर्य मुग्ध हो कर खड़ी रही। तब आगे बढ़ कर स्वामी के चरण छूने लगी।

दयानन्द ज़रा हटते हुए सतेज स्वर से बोले—

"जाओ जाओ, जल्दी चली जाओ। तुम्हारा अब विलम्ब करना ठीक नहीं। दयानन्द के चरण छूने का रमणी को अधिकार नहीं। हां, दयानन्द का मस्तक माता के चरणों को छू सकता है। विधाता का ऐसा ही विधान है। देवी ! मुझे स्पर्श मत करना।"

कल्याणी ठिठक कर वहीं खड़ी रह गई। डरते २ बोली। "महाराज ! आप इतने ऊंचे हैं !" ऐसे तपस्वी, महात्मा परोपकारी मनुष्य तो इस कलियुग में होते नहीं। आप कहां इस लोक में आगये। मैं चरण स्पर्श तो नहीं करती मुझे कोई अन्य सेवा अवश्य बतायें। मैं कृतार्थ हो जाऊंगी',

दयानन्द—माता ! साधु को सेवा की आवश्यकता नहीं होती। तोभी तुम्हें श्रद्धा हो तो कुछ दूध मेरे स्थान पर भिजवा दिया करना, परन्तु यदि गौ की बच्ची और किशोर को भूखा रखा तो मैं दूध न पीऊंगा।

कल्याणी—महाराज ! मैं कृतार्थ हुई ! क्या गौ बच्ची देगी ?"

दयानन्द—जाओ, शीघ्र जाओ। बलदेव ! जाओ इन्हें शीघ्र छोड़ आओ।

बलदेव—गुरुदेव ! आप यहां अकेले रहेंगे ?

दयानन्द—अकेले ! बलदेव ! दयानन्द सदा अकेला ही रहा है कोई भय नहीं है। शीघ्र देवी को घर पहुंचा आओ। भय यही है कि कहीं जाने से पहले गौ सू न गई हो।

बलदेव कल्याणी को लेकर चला गया।

कहना नहीं होगा कि घर पर पहुँचते ही देखा कि गौ एक बछिया कुछ देर पहले जन के चुकी थी। कल्याणी उसकी देख भाल में लग गई। बलदेव के लौट जाने का उस को पता भी न लगा।

(५म परिच्छेद)

कल्याणी की सेवा से प्रसन्न हो कर गौ दोनों समय मिलाकर आठ सेर दूध देती है। कल्याणी नियम से छः सेर दूध नित्य दयानन्द जी के स्थान पर भेज देती है। स्वामी जी के स्थान पर कल्याणी को जाने की आवश्यकता नहीं। बलदेव नित्य प्रातः सायं आकर दूध ले जाता है।

किशोर नित्य ही डेढ़ दो सेर दूध पी कर पुष्ट हो गया, कल्याणी प्रसन्नता में बनिये की बात भूल गई।

ठीक दूसरे महीने की समाप्ति पर सायंकाल बनिया रुपया मांगने आगया। कल्याणी उसे देख इधर उधर झांकने लगी। बनिये ने गौ को बच्चा दिया देख उसी को लेने की मन में ठान, कहा—

"रुपया देती है या नहीं?"

कल्याणी चुप रही।

बनिया—तुम्हारी गौ कितना दूध देती है?

कल्याणी—आठ सेर!

बनिया—अच्छा, अभी मैं इसे ही लेजाता हूं। बाक़ी हिसाब फिर समझ लूंगा।

बनिया गौ को खोलने लगा, कल्याणी ने गौ को न ले जाने की बहुत प्रार्थना की, गिड़गिड़ाई, रोई, चिल्लाई। पर बनिये ने एक न सुनी। गौ खोल कर चलने लगा।

उसी समय बलदेव दूध लेने आ गया। गौ को बलपूर्वक घर से ले जाते देख बलदेव ने बनिये को गले से पकड़ लिया। बनियां डर के मारे गौ को छोड़ हट कर एक ओर खड़ा होगया।

बलदेव ने बनिये को घर से बाहर निकाल कड़कड़ाते हुए पूछा, "तेरे कितने रुपये इसने लिये थे"?

बनियें को स्वप्न में भी आशा न थी कि कोई विधवा का भी सहायक आ निकले। वह बलदेव के वज्र समान हाथ से पकड़ा जाने के कारण दुखते हुए गले को अभी मल ही रहा था कि बनिये से बलदेव ने रुपये के विषय में पूछा। बनिये को इस प्रश्न से कुछ शान्ति मिली सही। परन्तु बलदेव को सामने खड़ा

देख वह डर के मारे कांपते २ बोला "तीस रुपये"। उसने डर से ब्याज भी न बताया केवल तीस ही कह कर और परे को हट गया।

बलदेव—अच्छा सुन लिया। ज़रा परे हट कर खड़ा रह। अभी २ रुपये तुझे मिल जायेंगे। पहले हम गुरु जी के लिये दूध ले लें"।

बनियां यह न जानता था कि बलदेब जैसा कड़ियल जवान भी अपने गुरु से डरता है। बनिये ने बलदेव के गुरु को बलदेव से भी बड़ा पहलवान समझ कर कांपते २ कहा "कुछ जल्दी नहीं हुजूर! आपका दास रात भर ऐसे ही खड़े रहने को तय्यार है"।

बलदेव कुछ मुस्कराया। कल्याणी ने दूध दोह दिया। बलदेव ने तीन आने सेर के हिसाब से लगभग एक महीने भरके दूध के दाम ३३) रुपये कल्याणी को देदिये कल्याणी ने रुपये लौटाते हुए आश्चर्य से कहा—"यह रुपये कैसे! मैं कदापि न लूंगी"।

बलदेव—यह तीन आने सेर के हिसाब से दूधके दाम हैं। तुम लेती क्यों नहीं"!

कल्याणी—ब्राह्मण को दूध बेचने से पाप लगता है।

बलदेव—"मेरे गुरुदेव तुम से अधिक पाप पुण्य को समझते हैं। यह उन के भेजे हुए रुपये तुम्हें अवश्य ही स्वीकर करने पड़ेंगे"।

यह कह कर बलदेव ने कल्याणी को रुपये फिर देदिये।

कल्याणी ने देवता का प्रसाद समझ रुपये ले लिये। बलदेव चला गया।

बनिये की आकाङ्क्षा पूरी हुई।

(छटा परिच्छेद)

आज काशी में स्थान २ पर एक ही चर्चा हो रही थी। कुछ लोग चौराहे पर खड़े कल की घटना के विषय में बातें कर रहे थे। कल सायंकाल भरी सभा में उसी लड़के किशोर ने दयानन्द सरस्वती के गले में फूलों की माला डाली थी। लोग इसी घटना को लेकर दयानन्द सरस्वती की प्रशंसा कर रहे थे।

एक ने कहा—वह जादूगर प्रतीत होता है। जो कोई उसके यहां जाता है वैसा ही होजाता है। वह कुछ ऐसा बोलता है, कुछ ऐसा देखता है कि बिना उसके वश

में हुए रहाही नहीं जाता। कल उसी लड़के ने जब फूलों की माला गले में डालनी चाही तो उसने कहा, 'बेटा, हमें तो वही जूते की माला लादो। मेरे लिये फूलों की माला नहीं है।' लड़का रोता २ उनके पैरों को लिपट गया। सारी सभा इस दृश्य को देख कर रो पड़ी।

लोगों में से एक ने कहा – अजी वह मंत्र शास्त्री है। मंत्र से सब को वश में कर लेता है।

दूसरा बोला—नहीं जी वह कोई सिद्ध है।

तीसरा—अजी सरस्वती उसकी जीभ पर है। सब वेद शास्त्र उसे कण्ठ हैं।

चौथा वह पूर्ण ब्रह्मचारी है।

पांचवां – वह ऋषि है, कोई ब्रह्मर्षि है।

छटा—वह इस लोक का नहीं, कोई देवता है।

सातवां—वह हिन्दु जाति का रक्षक है।

आठवां– वह सब जगत का उपकार करने वाला पूरा महात्मा है।

नौवां—अजी! किस की बात करते हो भाई! कौनसा गुण है जो उसमें न हो। वह ब्रह्मचारी है, सन्यासी है, तपस्वी है, योगी है, ऋषि है, ब्रह्मवेत्ता है, परोपकारी है। कोई ब्रह्मा जी के समय का वैदिक ऋषि है। हम से पूछो तो हम सबका कल्याण उसी की बात मानने से होगा।

इसी समय इस भीड़ को चीरते हुए एक रमणी और एक बालक आगे बढ़े।

किशोर- वह तुम्हारा कोई भी हो, पर मेरा तो वह 'खृष्टान दयानन्द' ही है।

कल्याणी—वह स्त्री जाति का सच्चा उपकार करने वाला और गौ-रक्षक है। उससे बढ़ कर इस काशी में कोई देवता नहीं है. बोलो गोरक्षक दयानन्द की जय।

सब—गोरक्षक दयानन्द की जय।

किशोर—गोरक्षक खृष्टान दयानन्द की जय॥

वेदार्थ दीपक निरुक्त भाष्य (समालोचना)

(श्री० पं० चमूपति 'आर्य सेवक')

(५)

इस समय तक हमने पण्डित जी के किये निरुक्त-भाष्य से प्रायः मतभेद ही दर्शाया है। इसका अभिप्राय यह न समझना चाहिये कि पण्डित जी के परिश्रम का हमारे हृदय में आदर नहीं। आरम्भ में संक्षेप से हमने पण्डित जी के भाष्य की मुक्तकण्ठ प्रशंसा की थी। अपने से पूर्ववर्ती भाष्यों से पण्डित जी ने बहुत स्थानों पर पृथक्ता का पथ ग्रहण किया है। ऐसे अवसरों पर ऋषि दयानन्द कृत भाष्य से भी सहायता ली गई है। निरुक्त पृ. ४७ में आए 'उर्वशी' के प्रकरण को बड़ी सुन्दरता से स्पष्ट किया गया है। यह कहना कठिन है कि भाष्य के इस स्थल का कितना भाग पण्डित जी की मौलिकता का परिणाम है। क्योंकि इससे पूर्व भी उर्वशी विद्युत् वाची समझा और कहा जाता रहा है। परन्तु संपूर्ण स्थल को जिस सफ़ाई से श्री चन्द्रमणि जी ने खोला है। वह उन्हीं का हिस्सा है। यास्क के 'ऊरुभ्याम् अश्नुते' शब्दों का अर्थ 'ऊरुभ्यामश्नुते' करने वालों की भ्रान्ति का प्रदर्शन भी हृदयङ्गम हुआ है। यहां पण्डित जी ने अपने विज्ञान परिचय का पूरा पता दिया है।

हम चाहते हैं 'हृदय' और 'हिरण्य' के अर्थों पर भी हम पण्डित जी को इसी प्रकार बधाई दे सकते। इन दो शब्दों के अर्थ भी वर्तमान विज्ञानानुकूल किये गए हैं परन्तु प्रमाण अपर्याप्त होने से यह अर्थ निस्संकोच स्वीकार करने योग्य नहीं। शतपथ में 'हृदय' शब्द की व्युत्पत्ति हृ, द, और य से की गई है। हृदय हरता है, देता है और चलता है केवल इन संकेतों से रक्त संचार के सिद्धान्त की अभिज्ञता का प्रमाण ब्राह्मण--कारों को देना पण्डितों की दृष्टि में आदरणीय नहीं हो सकता। रक्त संचार का वर्णन वेद में है। श्री डा० राधाकृष्ण का एतद्विषयक लेख वैदिक मैगज़ीन में प्रकाशित हुआ है। इसी प्रकार के और प्रमाण भी उपस्थित किये जाते हैं। परन्तु पण्डित चन्द्रमणि जी की स्फूर्ति अभी और पुष्टि चाहती है।

'हिरण्य' शब्द का प्रयोग सिक्के के अर्थ में होता है। परन्तु निघण्टु में इस शब्द का पाठ सुवर्ण ही के नामों में हुआ है। यास्क की 'ह्रियते जनाज्जनमिति वा (२-१०) इस व्युत्पत्ति मात्र से इसका अर्थ सिक्का विशेष करना भी भाष्यकार की स्फूर्तिमात्र ही है। सोना भी एक मनुष्य के पास स्थिर नहीं रहता। हम जानते हैं कि यदि श्री चन्द्रमणि जी का अर्थ ठीक हो तो भारत के आर्थिक इतिहास की एक गुत्थी खुलने में सहायता मिले परन्तु प्रत्येक अर्थ के पीछे व्याख्याता की केवल स्फूर्ति मात्र से पुष्टतर प्रमाण की अपेक्षा होती है।

श्री चन्द्रमणि जी ने जहां प्रचलित भाष्यों से पूरा लाभ उठाने का प्रयत्न किया है वहां स्वतन्त्र विचार का आश्रय लेने से भी नहीं चूके। इसका कुछ दिग्दर्शन हम ऊपर करा चुके हैं। कहीं २ दुर्गाचार्य का स्पष्ट नाम लेकर भी खण्डन किया है। एक जगह, हम समझते हैं, पण्डित जी ने दुर्ग से स्पष्ट अन्याय किया है। यथा १. ११ की व्याख्या में दुर्गाचार्य ने संविज्ञातानि शब्द के दो वैकल्पिक अर्थ दिये हैं। एक अर्थ यह है:—

संविज्ञानपदमितीह शास्त्रे रूढि शब्दस्येयं सञ्ज्ञा

यह अर्थ पण्डित जी को स्वीकार है। जहां दुर्गाचार्य के इससे पहिले किये अर्थ से असहमति का अधिकार श्री चन्द्रमणि जी को है वहां उपर्युक्त अर्थ का श्रेय भी अपने से पूर्व व्याख्याकार को देना चाहिये था श्री चन्द्रमणि जी का टिप्पण पढ़ते हुए प्रतीत होता है कि दुर्ग ने यह दूसरा अर्थ किया ही नहीं, जो तथ्य के विपरीत है।

(६)

श्री चन्द्रमणि जी के मन्त्रार्थ पूर्व भाष्यकारों से बहुत उत्कृष्ट हैं। इसमें कारण है ऋषि दयानन्द की भाष्य-शैली का आश्रय। कई स्थलों पर अभी और विचार की आवश्यकता है, यथा हीनोपमा का उदाहरण देते हुए 'कुह स्विद्दोषा' इत्यादि ऋचा को उद्धृत किया है। श्री चन्द्रमणि जी इस मन्त्र का अर्थ करने से पूर्व इसका विनियोग लिखते हैं:—

यदि कोई स्त्री पुरुष अपने देश से देशान्तर में जावें तो उस देशान्तर के कर्मचारी प्रवेश से पूर्व उनसे निम्न प्रकार प्रश्न करें —

......(विधवा देवरं इव, योषा मर्यं न शयुत्रा सधस्थे वां कः आकृणुते)
और जैसे कोई विधवा स्त्री नियुक्त पति को ···· अथवा विवाहिता स्त्री अपने पति

को (के साथ) समानस्थान शय्या में एकत्र होकर सन्तानों को उत्पन्न करती है, एवं तुम्हारा परम प्रिय घनिष्ट मित्र कौन है ?'

हम नहीं जानते यह विनियोग कहां से लिया गया है। उपमेय 'मित्र' भी बिना खेंचातानी के कुछ विषम सा प्रतीत होता है। उपमा असभ्य है। कहीं हीनोपमा बनाने के लिये ही तो हीन विनियोग नहीं किया गया? हमें इस मंत्र का ऋषि दयानन्द प्रतिपादित अभिप्राय ही ठीक प्रतीत होता है। तद्यथाः—

'इससे यह सिद्ध हुआ कि देश विदेश में स्त्री पुरुष संग ही में रहें। और विवाहित पति के समान नियुक्त पति को ग्रहण करके विधवा स्त्री भी सन्तानोत्पति कर लेवे।' (स० प्र० पृ० ११८)

यह मन्त्र आर्य समाजियों और सनातनधर्मियों में विवाद का कारण रहता है। यदि इस पर सनातन धर्म के प्रामाणिक तथा प्रख्यात पण्डितों का पक्ष भी दर्शा दिया जाए तो अनुचित न होगा। विवादास्पद वाक्य यास्क कथित 'देवरः कस्मात् द्वितीयो वर उच्यते' है। विपक्षियों का कहना है कि यह वाक्य प्रक्षिप्त है, क्योंकि दुर्गाचार्य ने अपनी वृत्ति में इसे छोड़ दिया है। परन्तु सायणाचार्य अपने ऋग्वेद भाष्य में यास्क का उद्धरण करते हुए इस वाक्य को भी उसमें अंगीकार करते हैं। अतः सायण के मत में यह वाक्य यास्क ही का है। महामहोपाध्याय श्री शिवदत्त दाधिमथ ने दुर्गाचार्य की वृत्ति का संपादन करते हुए इस वाक्य पर विस्तृत टिप्पण दिया है। वह उक्त टिप्पण का आरम्भ 'निरुक्ताश्रयेण' इन शब्दों से करते हैं। उन्हें भी यह वाक्य शिरोधार्य है। इस से, प्रक्षिप्त कहने वालों का पक्ष कितना थोथा है, स्वयं सिद्ध हो जायगा।

'विधवेव देवरम्' का अर्थ दुर्ग की समति में यह है:—

'यथा विधवा मृतभर्तृका काचित् स्त्री शयने रहस्यतितरां यत्नवती देवरमुपचरति, स हि परकीयत्वात् नार्या दुराराध्यतरो भवति'

अर्थात् 'जैसे विधवा सोने में गुप्त रूप से देवर की सेवा में अधिक यत्न करती है। क्योंकि वह पर पुरुष होने से सहज आराध्य नहीं'

'मर्यं न योषा' का अर्थ करते हैं:—

'मनुष्यं देवरं सैव मृतभर्तृका ....'

अर्थात् वही विधवा देवर को ......।

दुर्गाचार्य की खींचातानी इसी से स्पष्ट है कि वह रहस्य तथा यत्न को सकारण बनाने के लिये परकीय पुरुष के संसर्ग की उपमा देर में ढूंढता है। 'मर्यं

न योषा' का अर्थ 'विधवेव देवरम्' करने में पुनरुक्ति के अतिरिक्त सामान्य साहित्यक प्रयोग पर अनावश्यक अत्याचार भी करता है। दुर्ग को भ्रम यह हुआ प्रतीत होता है कि स्यात् हीनोपमा में किसी हीन अर्थात् कुत्सित कर्म वा गुण का उपमान में होना आवश्यक है। वास्तव में यह बात नहीं। यास्क का कहना है:—

अथापि कनीयसा ज्यायांसम् (उपमिमीते)। ३. १.

अर्थात्—अथवा गौण अर्थात् अपेक्षया अप्रसिद्ध से बड़े अर्थात् प्रसिद्ध को उपमा देते हैं।

कनीयान् का अर्थ अप्रख्यात और ज्यायान् का अर्थ प्रख्याततम इस से पूर्व ३. १३ में यास्क ने स्वयं कर दिया है।

परमात्मा को जहां उपमेय बनाया जायगा वह हीनोपमा द्वारा ही होगा। कारण कि वहां तो उपमेय सदा हीन (कनीयान्) रहेगा ही। भक्त लोग परमात्मा को चोर तक कह जाते हैं। वह हीनोपमा ही तो है। निरुक्त में हीनोपमा का प्रथम उदाहरण 'तनूत्यजेव' इत्यादि मन्त्र दिया है। इस में चोर उपमान है और वनस्थ के बाहु उपमेय। परमात्मा चोर का उपमेय हो तो उपमा और भी हीन हो जाती है। अस्तु।

श्री शिवदत्त का पक्ष दुर्ग से ठीक उलटा है उन्हों ने विधवेव देवरम् के अनेक अर्थ किये हैं:—

(१) क्रीडामात्रासक्तोऽत्र स्वोदर पूर्त्युपाय ज्ञान विकलो बालः स्तनंधयोऽपत्यमेव गृह्यते देवर शब्दार्थः।

अर्थात् देवर शब्द का अर्थ है खेल में लगा दुग्धपान के लिये विकल बालक।

(२) येन पत्याऽस्मिंल्लोके क्रीडिता।

अर्थात् जिस पति से इस लोक में खेल चुका है वह विधवा का देवर है।

(३) देवर शब्द ईश्वरार्थकः। तथा च यस्तद्भरणे समर्थः पिता भ्राता पुत्रो वा।

अर्थात् देवर का अर्थ ईश्वर अर्थात् पिता भ्राता या पुत्र जो उस (विधवा) का पालन कर सके।

(४) देवर शब्दस्य परमेश्वरार्थकत्वेन ……।

अर्थात् देवर शब्द का अर्थ परमेश्वर होने से…।

(५) तस्य पत्युरसुसमाप्तयोगाद् विधवा कथ्यते

अर्थात् जिस पति के साथ चतुर्थी कर्म अर्थात् समागम नहीं हुआ उस की वह विधवा है। उस का द्वितीय वर देवर होगा।

इन महाशय का मत यह है कि इस एक मन्त्र में विधवा का बाल पोषणार्थ ब्रह्मचारिणी रहना, मृत पति के साथ सती होजाना अथवा पिता भ्राता आदि के सहारे से रहना, परमेश्वर परायण रहना अथवा अक्षतयोनि हो तो पुनः संस्कार—इन सब विकल्पों का विधान है।

अन्तिम विधान की पुष्टि में मनु का श्लोक दिया है:—

यस्या म्रियेत कन्याया वाचा सत्ये कृते पतिः।
तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः॥

यही श्लोक ऋषि दयानन्द ने अक्षतयोनि के पुनर्विवाह में लगाया है। पौराणिक लोग कहते थे यहां विवाहिता अक्षयोनि नहीं। किन्तु वाग्दान की हुई का संस्कार अभिप्रेत है। पं० शिवदत्त ऋषि के साथ हैं। उन की दृष्टि में 'वाचा सत्या कृता' वह है जिस का केवल चतुर्थी कर्म अर्थात् समागम न हो, विवाह हो गया हो। यही पक्ष शास्त्र का है।

पं० शिवदत्त के किये 'देवर' शब्द के सारे अर्थ विनोदजनक कल्पनाएं हैं। आप देवर के साथ समागम केवल अन्तिम अर्थ में ही मानते हैं, जब कि दुर्गाचार्य यास्ककृत दीव्यतिकर्मा अर्थ में मानता है। इस वैपरीत्य का समाधान वह स्वयं करें।

अब देखें सायणाचार्य का क्या मत है?

'शयुत्रा शयने विधवेव यथा मृतभर्तृका नारी देवरं भर्तृभ्रातरं अभिमुखी करोति।' ऋग्वेदभाष्य १०. ४०. २.

अर्थात् सोने के स्थान में जैसे विधवा अपने देवर को अभिमुख करती है। यह अर्थ वही है जो ऋषि दयानन्द का है भेद केवल इतना है कि वहां सन्तानोत्पत्ति है यहां भोग। इसके आगे कहा है—

'तथा च यास्कः' अर्थात् यास्क भी ऐसा ही कहता है, इस प्रकार सायण के मत में यास्क ने विधवा और देवर का वही संबन्ध निश्चित किया है जो सन्तानोत्पत्ति के लिये पति पत्नी में होता है।

उपर्युक्त अर्थों की तुलना करने से पाठक को स्वयं विदित हो जायगा कि ऋषिकृत अर्थ सब से उत्तम और सभ्य है। यदि श्री चन्द्रमणि जी ने उसी अर्थ का उद्धरण कर दिया होता तो कुछ आपत्ति न थी। उस को तोड़कर मन्त्र का विशेष विनियोग कल्पना करने की कोई आवश्यकता न थी।

हीनोपमा के प्रकरण में 'जार आ भगम्' (नि. ३. १६) के दूसरे अर्थ से भी हम अपनी असहमति प्रकट कर देना चाहते हैं। हीनोपमा कुत्सित उपमा को नहीं कहते। 'जार' का अर्थ यहां सूर्य ही है आदित्योऽत्र जार उच्यते। नि. ३. १६ और भग का तेज ही। पारजायिक अर्थ लेने की आवश्यकता नहीं।

(शेष फिर)

'तू'!

(श्री० कुरङ्ग)

मयावी हो रङ्गबरङ्गी लाखों खेल दिखाता तू
इन्द्रजाल सम जगत् बना कर नृत्य नया नचवाता तू॥
सूर्य किरण में चन्द्र प्रभा में निज कौशल दर्शाता तू
रच कर कोयल काक विश्व में लाखों राग सुनाता तू॥
क्रूरभाव भर पञ्चानन में मृग में दया दिखाता तू
क्षात्र धर्म को विकट रूप दे दासदशा शर्माता तू॥
सूर्य किरण में सूर्य स्रोत में भेद भाव अधिकाता तू
पङ्क रङ्क से कमलराज को क्यों कैसे उपजाता तू ?
नदियों के कलकलित नाद में भैरव रूप दिखाता तू
बहती उनकी मधुर धार में क्या है मौत छिपाता तू॥
जिन हाथों से कमल फूल को जग में प्रभु सरसाता तू
रुधिर पिपासु कण्टकगण को क्या उन से निर्माता तू ?

दयानन्द की प्यारी भाषाएं।

(श्री मुक्तिराम उपाध्याय आचार्य गु० कु० पोठोहार)

ऋषि दयानन्द के कार्य क्षेत्र में प्रविष्ट हो उस की कार्यमाला के मणकों को जितना अधिक टटोलते हैं उतना ही अधिक रहस्यमय पाते हैं। एक हाथ में सत्यार्थप्रकाश को लेते हैं तो दूसरे हाथ में उसी समय भूमिका आ जाती है। इस ओर मातृ भाषा की स्थापना है तो उस ओर देववाणी विराज रही है। वेद-भाष्य देखते हैं तो वहां भी दोनों देवियों का समान आसन पाते हैं। देश में और भी भाषाएं थीं, ऋषि की अभ्यस्त अपनी मातृभाषा गुजराती भी थी, परन्तु औरों को यह समादर न मिला। यह साधारण बात नहीं है, इस में कोई रहस्य है। विचार से समझ में आता है कि ऋषि ने अपने एक हाथ में राष्ट्र-महागढ़ के बन्द बड़े किवाड़ों के मोटे ताले की तालिका पकड़ी हुई थी। और दूसरे हाथ में टूटे हुए नहीं, पर अज्ञान काल के कुमत और कुविचार की आंधियों से रेत और मट्टी में दबे हुए, पुराने, पर पवित्र धर्मगढ़ के आधे बन्द ताले की ताली थी। अथवा यों कह सकते हैं कि ऋषि के एक हाथ में भूखे भारत को राष्ट्र भाव रूपी अन्न बांटने की थाली थी, और दूसरे हाथ में कुमत और जड़वाद के घोर अन्धकार में परस्पर टकरा कर ठोकरें खाते हुए मनुष्यमात्र को प्रकाश दिखलाने के लिये दीपिका थी। उसने फैलाने से पहले अपने हाथों की ओर गम्भीर दृष्टि से देखा दोनों हाथों की वस्तुओं को विकृत देख आंखों ने लौट कर अन्तःकरण से जा कहा, और अन्तः करण के गम्भीर तल में से आकाश-वाणी के सदृश यह ध्वनि निकली—"दयानन्द! इन्हें हाथ में लिये देखते क्या हो!! अच्छा देखो। और भली भान्ति देखो! देववाणी के उस अङ्ग को देखो जहां मध्यकालीन रुढियों की जवनिका ने वैदिक दिव्य ज्योति को आच्छादित कर संसार में अन्धकार का साम्राज्य स्थापित कर दिया है। अथवा लौकिक संस्कृत साहित्य के उस अङ्ग को देखो जहां स्त्रैणता का भाव वाङ्मय कलेवर धारण कर ब्रह्मचर्य्य और आचार के मूल का उन्मूलन कर रहा है; बस देख चुके! नहीं, और देखो, तुम्हारे दूसरे हाथ में आर्य भाषा है इस की ओर भी देखो। यह विचित्र दृश्य है। और इसने अपने शब्द अङ्गों को कैसी निर्दयता

से काट २ कर फेंक दिया है। और उन की जगह दूसरी भाषाओं के भद्दे अङ्गों को जोड़ अपना कैसा विरूप रूप बना लिया है। अपनों को उतार अन्यों के लेकर पहने हुए लिपि वस्त्र इस की विरूपता को और भी बढ़ा रहे हैं। न तो इस की जननी देववाणी के शब्द भण्डार का दिवाला ही निकला है, और न आर्य लिपि के चरणों में बैठने की योग्यता भी अन्य किसी लिपि ने आज तक प्राप्त ही की है। फिर इस में रहस्य क्या है ? रहस्य है हां इस में रहस्य है। और वह है भारतीय जनता का कुकाल चक्र तोता मैना जब अपनी भाषा को अन्य भाषा के रंग में रंगने लग जाते हैं, और दूसरों के इङ्गित पर बिना विचारे हां हां की ग्रीवा हिलाना आरम्भ कर देते हैं, उसी समय उन के लिये बन्धन का पञ्जर प्रस्तुत हो जाता है। इसी प्रकार मनुष्यों की भाषा में आकर मिला हुआ अन्य भाषा का एक २ शब्द एक २ लोहे का कड़ा बन, एक वृहत् शृङ्खला बनाता है। जोकि उन मनुष्यों के हाथों और पैरों के बन्धन में काम आती है। जाति के गढ़ की नींव सभ्यता पर है। प्रत्येक जाति की अपनी २ भिन्न सभ्यता होती है, और उस में निराले ही ढंग के भाव का गन्ध होता है। भाव और भाषा का जोड़ा है। भाषा के विकार से भाव विकृत हो जाते हैं और भाव के विगड़ जाने पर भाषा अपना रूप स्थिर नहीं रख सका करती। इन दोनों के विकृत हो जाने पर शनैः २ सभ्यता की जड़ खोखली हो जाती है, और जाति का गढ़ बिना ही आयास के टूट जाता है। बस ये ही वे हृदय के उद्गार थे जिन की प्रेरणा से ऋषि के मुख से ये शब्द निकले थे—"मेरी पुस्तकों का अनुवाद आर्य भाषा के अतिरिक्त और भाषा में न करो" क्या आर्य जनता, ऋषि के नाम पर, नहीं नहीं अपनी जातीय सभ्यता के नाम पर बलिदान होने वाली आर्य्य जनता, इस मङ्गल कारक ऋषिबोध दिवस के शुभ अवसर पर प्रण कर संस्कृत भाषा के साहित्य भण्डार को वैदिक भाषा के रंग में रंगते हुए इस की रूढ़ियों के दूर करने का आचरण रूप में और भी अधिक प्रयत्न करेगी ? एवं आर्य्य भाषा को और भी अधिक अपनाने के लिये, उसे राष्ट्र भाषा, पर समुज्वल भाव पूर्ण शुद्ध आर्य भाषा बनाने के लिये अपने हाथ को ऋषि दयानन्द के विशाल हाथ का अनुगामी कर लम्बा फैलाती हुई श्रेय प्राप्त करेगी ? क्या आर्य्य प्रतिनिधि सभाओं के प्रतिबिम्ब से प्रतिबिम्बित आर्य्य गज़ट और प्रकाश आर्य जाति के माथे से कलङ्क को धोते हुए आर्य भाषा में प्रादुर्भूत होंगे ? और इस आचरण से हम सब उच्च स्वर से संसार को कहेंगे कि ये हैं—दयानन्द की प्यारी भाषाएं।

सच्चे प्रचारक

(श्री प्रोफेसर अमरनाथ विद्यालङ्कार तिलक स्कूल पोलिटिक्स)

संसार में किसी विचार या मत के लोक-प्रिय हो जाने का कारण सदा उस की उत्तमता या तर्क के साथ अनुकूलता ही नहीं हुआ करती। धर्मों, सम्प्रदायों व सम्प्रदायों का इतिहास हमें बताता है कि यह मुख्यतः उस के अनुयायियों की लगन, परिश्रम और चरित्र बल का ही असर होता है। सिद्धान्तों की रक्षा के लिये अपने जीवन की बाजी लगा देने वाले व्यक्तियों के हृदयों में एक आग होती है जो देखते देखते सब ओर फैल जाती है। उन के हृदय में एक धड़कन होती है जो समाज को जबर्दस्त गति देती है। संसार में जितने भी धर्मप्रचारक हुए उन के हृदयों में कोई ऐसी ही आग थी इसी प्रकार की एक धड़कन थी—ऐसा मानना पड़ेगा। प्रत्येक सम्प्रदाय-प्रवर्तक के अन्दर उस की त्रुटियों के साथ ही साथ समाज की भलाई की एक तेज़ आग भड़क रही थी। परन्तु इतिहास बतलाता है कि प्रारम्भिक प्रवर्तकों के शिष्य भी सिद्धान्त-रक्षा और सत्य प्रेम के लिये बहुत बार अपने प्रारम्भिक प्रवर्तकों का मुकाबला करते रहे हैं। सच तो यह है कि प्रत्येक धर्म की आधार शिला जहां मतों के प्रवर्तक रखा करते हैं वहां उस पर भवन खड़ा करने के लिये उस मत के अनुयायी अपनी बलि दिया करते हैं। जहां बड़े बड़े नेता, किसी भवन में स्पष्ट दीखने वाली ईंटों के समान हुआ करते हैं, वहां जातियों के शहीद पिल-कर गारे और चूने का काम दे कर उस भवन को खड़ा करने में सहायता दिया करते हैं। उन्नति शील जातियों व संघों का इतिहास वस्तुतः शहीदों के रक्त से ही लिखा जाया करता है।

'आर्य' के किसी पिछले अङ्क में मैंने बौद्ध भिक्षुओं के कठोर नियन्त्रण का जिक्र किया था। उस लेख में मैंने बताया था कि जब तक किसी समाज व सिद्धान्त के प्रचारक इतने लगन वाले न हों, कि अपनी धुन में मस्त हो कर उसे पूरा करने के विचार से अपने प्रत्येक प्रकार के स्वार्थ को छोड़ने तथा अपने ऊपर कठोर से कठोर नियन्त्रण लगाने के लिये तैयार न हों—तबतक उस की उन्नति नहीं होती। मैंने बताया था कि बौद्धों के इतने फैलाव का कारण उन के

से काट २ कर फेंक दिया है। और उन की जगह दूसरी भाषाओं के भद्दे अङ्गों को जोड़ अपना कैसा विरूप रूप बना लिया है। अपनों को उतार अन्यों के लेकर पहने हुए लिपि वस्त्र इस की विरूपता को और भी बढ़ा रहे हैं। न तो इस की जननी देववाणी के शब्द भण्डार का दिवाला ही निकला है, और न आर्य लिपि के चरणों में बैठने की योग्यता भी अन्य किसी लिपि ने आज तक प्राप्त ही की है। फिर इस में रहस्य क्या है ? रहस्य है हां इस में रहस्य है। और वह है भारतीय जनता का कुकाल चक्र तोता मैना जब अपनी भाषा को अन्य भाषा के रंग में रंगने लग जाते हैं, और दूसरों के इङ्गित पर बिना विचारे हां हां की ग्रीवा हिलाना आरम्भ कर देते हैं, उसी समय उन के लिये बन्धन का पञ्जर प्रस्तुत हो जाता है। इसी प्रकार मनुष्यों की भाषा में आकर मिला हुआ अन्य भाषा का एक २ शब्द एक २ लोहे का कड़ा बन, एक वृहत् शृङ्खला बनाता है। जोकि उन मनुष्यों के हाथों और पैरों के बन्धन में काम आती है। जाति के गढ़ की नींव सभ्यता पर है। प्रत्येक जाति की अपनी २ भिन्न सभ्यता होती है, और उस में निराले ही ढंग के भाव का गन्ध होता है। भाव और भाषा का जोड़ा है। भाषा के विकार से भाव विकृत हो जाते हैं और भाव के विगड़ जाने पर भाषा अपना रूप स्थिर नहीं रख सका करती। इन दोनों के विकृत हो जाने पर शनैः २ सभ्यता की जड़ खोखली हो जाती है, और जाति का गढ़ बिना ही आयास के टूट जाता है। बस ये ही वे हृदय के उद्गार थे जिन की प्रेरणा से ऋषि के मुख से ये शब्द निकले थे—"मेरी पुस्तकों का अनुवाद आर्य भाषा के अतिरिक्त और भाषा में न करो" क्या आर्य जनता, ऋषि के नाम पर, नहीं नहीं अपनी जातीय सभ्यता के नाम पर बलिदान होने वाली आर्य्य जनता, इस मङ्गल कारक ऋषिबोध दिवस के शुभ अवसर पर प्रण कर संस्कृत भाषा के साहित्य भण्डार को वैदिक भाषा के रंग में रंगते हुए इस की रूढ़ियों के दूर करने का आचरण रूप में और भी अधिक प्रयत्न करेगी ? एवं आर्य्य भाषा को और भी अधिक अपनाने के लिये, उसे राष्ट्र भाषा, पर समुज्वल भाव पूर्ण शुद्ध आर्य भाषा बनाने के लिये अपने हाथ को ऋषि दयानन्द के विशाल हाथ का अनुगामी कर लम्बा फैलाती हुई श्रेय प्राप्त करेगी ? क्या आर्य्य प्रतिनिधि सभाओं के प्रतिबिम्ब से प्रतिबिम्बित आर्य्य गज़ट और प्रकाश आर्य जाति के माथे से कलङ्क को धोते हुए आर्य भाषा में प्रादुर्भूत होंगे ? और इस आचरण से हम सब उच्च स्वर से संसार को कहेंगे कि ये हैं—दयानन्द की प्यारी भाषाएं।

सच्चे प्रचारक

(श्री प्रोफेसर अमरनाथ विद्यालङ्कार तिलक स्कूल पोलिटिक्स)

संसार में किसी विचार या मत के लोक-प्रिय हो जाने का कारण सदा उस की उत्तमता या तर्क के साथ अनुकूलता ही नहीं हुआ करती। धर्मों, सम्प्रदायों व सम्प्रदायों का इतिहास हमें बताता है कि यह मुख्यतः उस के अनुयायियों की लगन, परिश्रम और चरित्र बल का ही असर होता है। सिद्धान्तों की रक्षा के लिये अपने जीवन की बाजी लगा देने वाले व्यक्तियों के हृदयों में एक आग होती है जो देखते देखते सब ओर फैल जाती है। उन के हृदय में एक धड़कन होती है जो समाज को जबर्दस्त गति देती है। संसार में जितने भी धर्मप्रचारक हुए उन के हृदयों में कोई ऐसी ही आग थी इसी प्रकार की एक धड़कन थी—ऐसा मानना पड़ेगा। प्रत्येक सम्प्रदाय-प्रवर्तक के अन्दर उस की त्रुटियों के साथ ही साथ समाज की भलाई की एक तेज़ आग भड़क रही थी। परन्तु इतिहास बतलाता है कि प्रारम्भिक प्रवर्तकों के शिष्य भी सिद्धान्त-रक्षा और सत्य प्रेम के लिये बहुत वार अपने प्रारम्भिक प्रवर्तकों का मुकाबला करते रहे हैं। सच तो यह है कि प्रत्येक धर्म की आधार शिला जहां मतों के प्रवर्तक रखा करते हैं वहां उस पर भवन खड़ा करने के लिये उस मत के अनुयायी अपनी बलि दिया करते हैं। जहां बड़े बड़े नेता, किसी भवन में स्पष्ट दीखने वाली ईटों के समान हुआ करते हैं, वहां जातियों के शहीद पिल-कर गारे और चूने का काम दे कर उस भवन को खड़ा करने में सहायता दिया करते हैं। उन्नति शील जातियों व संघों का इतिहास वस्तुत: शहीदों के रक्त से ही लिखा जाया करता है।

'आर्य' के किसी पिछले अङ्क में मैंने बौद्ध भिक्षुओं के कठोर नियन्त्रण का जिक्र किया था। उस लेख में मैंने बताया था कि जब तक किसी समाज व सिद्धान्त के प्रचारक इतने लगन वाले न हों, कि अपनी धुन में मस्त हो कर उसे पूरा करने के विचार से अपने प्रत्येक प्रकार के स्वार्थ को छोड़ने तथा अपने ऊपर कठोर से कठोर नियन्त्रण लगाने के लिये तैयार न हों—तबतक उस की उन्नति नहीं होती। मैंने बताया था कि बौद्धों के इतने फैलाव का कारण उन के

संघ का कठोर नियन्त्रण ही था। आजकल के ऐतिहासिक बुद्ध धर्म को भारत में अकर्मण्यता और अहिंसा का प्रचारक कह कर भारत की अवनति और पतन का अपराध बौद्धों के माथे मढ़ कर अपने ऐतिहासिक ज्ञान की अपूर्णता का परिचय भले ही दें किन्तु एक इतिहास का विद्यार्थी बौद्ध प्रचारकों के हृदय में एक आग देख सकता है, जिस के कारण बौद्ध भिक्षुगण एक तरफ़ सुदूर दक्षिण और इस के भी आगे समुद्र लांघ कर 'ईस्ट इण्डीज़' के टापुओं में तथा दूसरी ओर हिन्दु कुश की ऊंची चोटियों को पार करते हुए एशिया के सुदूर पश्चिम तक पहुंच गये। इतना ही नहीं उन्हों ने पूर्व में चीन, जापान और उत्तर में मध्य एशिया-तिब्बत मंगोलिया और मंचूरिया तक से भारत के तपस्वी का संदेश गुंजाते फिरते थे। पाठक अनुमान कर सकते हैं कि इस सारे एशिया में फैल जाने वाली गूंज को उठाने वाले लोग कितने धुन के पक्के रहे होंगे ? और कर्मण्यता उन में कितनी ज़्यादा मात्रा में होगी। इस कर्मवीरों के प्रभाव के समय भारत की राष्ट्रीय शक्ति को एक इञ्च भी पीछे नहीं हटना पड़ा-परन्तु अब तक प्राप्त इतिहास में भारत की राष्ट्रीय उन्नति बौद्ध सम्राटों के समय ही (गुप्तों को छोड़ कर) अपनी उन्नति के शिखर पर पहुंची-और बौद्धधर्म के अस्त के साथ ही प्रायः भारत का गौरव-सूर्य भी अस्त होगया।

यह सब कुछ मैंने यही दिखाने के लिये लिखा है, कि धर्म की सच्ची लगन राष्ट्रीयता की सहायता करती है, विरोध नहीं। सच्चा धार्मिक अपने हृदय में मनुष्यमात्र के प्रति सहानुभूति रखता है, विरोध नहीं। वह सब के गुणों की अत्यन्त प्रशंसा करता है, परन्तु दोषों की विज्ञापन बाज़ी नहीं करता किन्तु सच्चे प्रेम से वह प्रत्येक व्यक्ति व समाज के दोषों को दूर करने की कोशिश करता है। सच्चे प्रचारक के हृदय में प्रत्येक व्यक्ति—चाहे वह किसी धर्म-किसी जाति या किसी देश का हो-के लिये प्रेम का समुद्र उमड़ता है-वह विरोधी को गालियां नहीं देता-उन पर लाठियां नहीं चलाता-परन्तु विरोधी की शारीरिक व आत्मिक उन्नति दिल से चाहता हुआ-मौका पड़ने पर अपने प्राण के गाहकों की रक्षा के लिये भी अपने प्राण देने को भी उद्यत रहता है। सच्चा प्रचारक विरोधी को अपने प्रबल प्रेम से जीत लेता है। बौद्धों और ईसाइयों को प्रारम्भ में ही ऐसे प्रचारक मिले। यही कारण है कि उन का इतना विस्तार हुआ और संसार में प्रेम और शान्ति का संदेश सुना सके। ऋषि दयानन्द ऐसे ही प्रचारक थे। ऐसे प्रचारक को ही अपनी वाणी को 'मधुकथा' (मीठी वाणुक) कि[illegible]

का अधिकार है। कौन नहीं जानता कि सर सय्यद अहमदख़ां के दिल में मुसलमानों के लिये कितना पक्षपात था ? कहा जाता है कि यह रातों जाग कर बड़े ज़ोर २ से रोते हुए घुटने टेक कर परमात्मा से प्रार्थना किया करते थे कि 'या खुदा मुसल्मानों का किसी तरह भला कर। जिसे अपनी जाति की इतनी चिन्ता थी-जिस का अपनी जाति से प्रेम आजकल के तंज़ीम प्रचारक मुसल्मानों में से शायद किसी से कम न होगा-बल्कि ज़्यादा ही होगा-वह सर सैय्यद घंटों ऋषि दयानन्द के पास बैठे रहते. जहां स्वामी जी आस पास कहीं आते वहीं उनका दर्शन करने के लिये पहुंचते-यद्यपि ऋषि उन के धर्म का कठोर खंडन करते क्योंकि सर सैय्यद जानते थे कि स्वामी का हृदय शुद्ध है-वह द्वेष भाव से ऐसा नहीं कहते, उनके हृदय में मुसलमानों के लिये भी प्रेम का इतना ही अगाध समुद्र बह रहा है जितना हिन्दुओं के लिये। मेरी सम्मति में जो प्रचारक इस प्रेम का दावा अपनी छाती पर हाथ रख कर-कर सकते हों-उन्हीं को इस पवित्र "मधुकशा" को हाथ लगाने का अधिकार है, उन्हीं को शास्त्रार्थ करने का हक है अन्यथा अयोग्य व्यक्तियों का हाथ लगाते ही यह "मधुकशा" "विषकशा" का रूप धारण कर लेती है, जिसका परिणाम सिर फुटौव्वल के सिवाय और कुछ नहीं होता। विरोधी से बदला न लेने का भाव प्रचारक में पहिला गुण होना चाहिये। संसार के इतिहास में ईसा के अन्तिम शब्द—'परमात्मा! उन्हें क्षमा कर। वे नहीं जानते वे क्या कर रहे हैं"-स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य हैं। ईसाई प्रचारकों ने अपने गुरु के इस आदर्श का कहाँ तक पालन किया इसके कुछ उदाहरण देना यहां अप्रासंगिक न होगा

१—जिस समय "पाल" जोकि ईसाई मत का यूरोप में सन्देश ले जाने वाला था रोम में प्रचार कर रहा था, रोम सम्राट प्रसिद्ध-"नीरो" ने ईसाई प्रचारकों पर अत्याचार शुरू किया-नयी नयी तरह की यन्त्रणाओं (Tortures) के तरीके ईजाद किये गये। कई लोगों को जंगली पशुओं की खालों में भरवा कर सी दिया गया। कइयों को शिकारी कुत्तों द्वारा फड़वा दिया गया, उनकी स्त्रियों को मस्त बैलों की पूंछ में बांध कर शहर भर में घसीट २ कर मार दिया गया। रात्रि को नीरो की रंगशाला में उन्हें बुलवाया गया-उनके शरीर पर कपड़ा लपेट कर तेल डाल दिया गया। इसके बाद मशालें बुझा दी गयीं-और इन्हीं ईसाई वीरों की देह में आग लगा कर इन जलती हुई मशालों की ज्योति में राग रंग किया गया—पर कौन कह सकता है कि यही जलती हुई मशालें रोम वासियों के हृदयों के बुझे हुए दीपकों को नहीं जला गयीं ? क्या ईसाई

यत इन अत्याचारों से मर गयी ? इन अत्याचारों ने रोम वासियों के मुर्दे दिलों को जगा दिया—ये अत्याचार सरे आम होते थे। ईसाई शहीद मृत्यु के समय जिस शान्ति का प्रकाश करते थे—उनके चेहरों पर जो प्रसन्नता झलकती वह दर्शकों पर असर डालती थी। इन कष्टों से बेचैन न होने का कारण वे यही समझते कि दैवीय शक्ति इन शहीदों के साथ है जो इन्हें कोई कष्ट नहीं होने देती। और कौन कह सकता है कि उनकी रक्षा आत्मा की दिव्य शक्ति नहीं कर रही थी। ईसाई प्रचारक जिस शक्ति का प्रचार करते थे उसकी प्रत्यक्ष झलक जिस झलक ने पं० गुरुदत विद्यार्थी को आस्तिक बनाया था उसी झलक ने रोमन लोगों के हृदय में भी ईश्वरीय सत्ता का विश्वास करा दिया। रोमन लोग धड़ाधड़ ईसाई होने लगे। भौतिक शक्ति के घमंडियों ने समझा कि अभी और अत्याचारों की आवश्यकता है। परन्तु ईसाई मत-"जस जस सुरसा बदन बढ़ावा। तासु दुगुन कपि रूप दिखावा" के अनुसार बढ़ता ही गया। अन्त में सब के गुरु "पाल" को ही कुचलने का निश्चय हुआ। आग के ढेर पर लाठी मारना मूर्खता है-वह बुझती नहीं किन्तु कोयले बिखर जाते हैं-और चिंगारियां उड़ कर घर में ही आग लगने का भय रहता है। फिर रोमन लोग तो पहले ही फूस के झोपड़ों में रह रहे थे। पाल के अन्तिम शब्द थे—

"O Death, where is thy sting ? O Gr ve, where is thy victory? Thanks be to God who gave us t e victory through Jesus Christ."

सचमुच ईसाई मत को पाल की मृत्यु से 'विजय' हासिल हुई। जिस आग को बुझाने का प्रयत्न किया जा रहा था वह रोम ही में नहीं, पर थोड़ी ही देर में सारे यूरोप में फैल गयी।

२—सैंट 'पाल' के बाद सैंट 'जान' भी इसी प्रकार शहीद हुआ। रोमन सम्राट् त्रेजन ने उद्घोषित किया कि सब लोग रोमन देवताओं की उपासना करें। ईसाई मत गैर कानूनी उद्घोषित किया गया। ईसाइयों का नेता सैंट जान था। उसे पकड़ कर रोम मंगाया। सैंट 'जान' ने जिस समय यह समाचार सुना उस के ये शब्द थे— "I thank thee Lord, that thou hast given a perfect Love of Thee." इस के बाद उसने अपने हाथ से बेड़ियां पहनीं और अपने आप को सैनिकों के सपुर्द कर दिया। उस समय रोमन

लोग नाट्यशालाओं और तमाशों के बहुत शौकीन थे। नाट्यशालाओं में जंगली पशुओं की लड़ाई करायी जाती। प्रायः दास और कैदी लोग उन के सामने डाल दिये जाते और इस वीभत्स दृश्य को देख कर वे आनन्द लेते थे। सैंट जान को भी ऐसी ही रंगशाला में दो भूखे शेरों के सामने छोड़ दिया गया। जान के अन्तिम शब्द थे—

"Would to God that I too might be found worthy to suffer for His cause. I shall go to Him, when my soul desires. He is the bread of life. I am His; my soul desires Him, I despise your torments.

यही कहते कहते भूखे शेरों ने उसे समाप्त कर दिया।

३—'हिलेरियन' नामी एक बालक था—उसके देखते देखते उस के पिता, दो भाइयों और एक बहन को बड़ी यन्त्रणायें दे कर मारा गया था। राज कर्मचारी को इस बालक पर दया आयी—उसने उसे बचाने के लिये पूछा—"क्या ईसाईयों की सभा में ज़बर्दस्ती तुम्हें तुम्हारा पिता लेगया था या भाई?" उस का उद्देश्य था कि बालक किसी का नाम लेकर छूट जावे। परन्तु वीर बालक ने उत्तर दिया "मैं ईसाई हूं, और मैं अपनी निजी इच्छा से सभा में शामिल हुआ था"। राजकर्मचारी ने बालक को डराया—परन्तु वह भयभीत होने वाला न था। उसने परमात्मा को धन्यवाद देते हुए कहा "तुम पूछ देखो, एक छोटा बालक भी कह देगा कि अनेक झूठे देवी देवताओं की पूजा करने की अपेक्षा, संसार के बनाने वाले एक परमात्मा की पूजा श्रेष्ठ है।" अचानक एक ईसाई महिला पास ही खड़ी थी। उसकी गोद में ६ या १० वर्ष का एक बच्चा था। इस बालक का नाम "साइरिल" था।

राजकर्मचारी ने कौतूहल वश यूंही उस बालक से यही सवाल पूछ लिया। उसे जवाब मिला—"परमात्मा एक है और ईसा उस का पुत्र है" राजकर्मचारी का चेहरा क्रोध से तमतमा उठा। वह बोला—"अरी नीच औरत! तूने अपने बालक को यह सिखाया है?" फिर बालक से धीरे से पुचकारते हुए बोला—'प्यारे बालक! तुम ने यह कहां से सीखा है!" उसने प्रेम से माता के मुंह की ओर देखते हुए उत्तर दिया—"परमात्मा की दया है कि उसने यह सत्य मेरी माता को सिखाया और इसने मुझे उपदेश दिया।"

राजकर्मचारी ने क्रुद्ध हो कर बालक को पीटना शुरू किया और माता से बोला—'देखते हैं ईसा का प्रेम इस की कैसे रक्षा करता है।" माता ने जवाब दिया "ईसा का प्रेम इसे वही दुःख सहन करने की शक्ति देता है जो ईसा ने इसके और हम सब के लिये सहा था" बालक को फिर पीटा गया और माता से वही सवाल किया गया—इस वार माता का उत्तर था—"ईसा का प्रेम इसे अपने अत्याचारियों पर क्षमा सिखाता है।" बालक से पूछा गया पर उसने अब भी उत्तर दिया—"परमात्मा एक है और संसार का बनाने वाला है" अधिक पीटा जाने से बालक बेहोश हो कर गिर गया—" माता से फिर वही सवाल पूछा गया। इस वार उस का उत्तर था कि "परमात्मा के प्रेम ने इसे मनुष्यों के घृणित क्रोध की आग से निकाल कर सदा के लिये स्वर्ग की शान्ति प्रदान की है।" माता की आंखों से आंसू टपक पड़े। नास्तिक राजकर्मचारी की आंखों से भी झलकते हुए दो बूंद आंसू गिर पड़े। नास्तिक के हृदय के भी द्वार खुले-शहीद बालक ने नास्तिक को आस्तिक बना दिया। बालक ने अपने शब्दों को फिर दोहराते हुए प्राण छोड़ दिये।

संसार के इतिहास में ऐसी घटनाओं की कमी नहीं। धर्मों व जातियों के इतिहास इस प्रकार के शहीदों की सुनहली स्मृति से भरे पड़े हैं। समाजों की उन्नति, जातियों और राष्ट्रों का उत्थान ऐसे बलिदानों से ही होता है। जिस जाति में ऐसे निर्भीक पुरुष नहीं, जिस समाज के पास बड़ी संख्या में ऐसे वीर नेता नहीं, जिस धर्म में ऐसे शहीदों का आसन खाली है, वह संसार में उन्नति नहीं कर सकता। असल बात तो यह है कि विरोधियों से लोहा लेने वाले ये शहीद ही होते हैं—जो शत्रु के भी हृदय द्वार को ज़ोर से खटखटा जाते हैं, जो विरोधियों के हृदयों में भी ज्योति जगा जाते हैं, और मेरी सम्मति में जब तक कोई समाज इस प्रकार के प्रचारक पैदा न कर ले तब तक उसे अपने आन्तरिक सुधार में ही लग कर अपने अन्दर यह शक्ति पैदा करनी चाहिये। सच्ची आत्माओं की शक्ति बारूद की शक्ति के समान होती है जो संसार की काया पलट देती है। आर्य समाज का यह दौर्भाग्य है कि उस के अन्दर बचपन में ही बुढ़ापे के चिन्ह दिखाई देने लगे हैं इस समय आर्य समाज को पहिले सारी शक्ति अन्दर की ओर लगा देने की आवश्यकता है। इस समय आर्य समाज को बड़े बड़े दिग्गज शास्त्रा-

थियों की ज़रूरत नहीं—परन्तु संसार की काया पलटने वाले अपने धुन के पक्के, सदाचारी प्रचारकों की ज़रूरत है। जिन के हृदय में एक आग हो, वैदिक सिद्धान्त जिन के जीवन में पढ़े जा सकते हों—जिन के हृदय में विरोधियों के प्रति भी प्रेम का अथाह समुद्र बह रहा हो, जिन की मधुकशा समय आने पर लाठी का रूप धारण न कर ले, किन्तु जिन की 'मधुकशा' शत्रुओं के सामने और भी मीठी हो जाय। विरोधी मतवाले के लिये सहानुभूति—उस के लिये करुणा और क्षमा जिन के जीवन का अङ्ग हो—। मैं समझता हूं—इतिहास इस बात का साक्षी है कि संसार के अन्दर इस प्रेम-धर्म के उपासकों ने जो सफलता प्राप्त की है,—संसार की जो काया पलट की है, वह और नहीं कर सके। क्या आर्य समाज के वर्तमान प्रचारक इतिहास की इस शिक्षा का अनुसरण करेंगे? क्या आर्य समाज अपने आचार्य के समान विष देने वालों के बन्धन कटाने वाले प्रचारक उत्पन्न कर सकेगा?

मैं जानता हूं कि शास्त्रार्थ प्रेमी आर्य भाई मेरे इस कथन को महत्व नहीं देना चाहेंगे—किन्तु यदि आर्य समाज ने उन्नति करनी है, तो उसे इसी उपाय का अनुसरण करना होगा। यह आर्य समाज के जीवन का सवाल है। शास्त्रार्थों से बाहरी जोश भले ही होजाय—और तो क्या जोश में आकर चाहे कितने लोग आर्य समाज के रजिस्टर में नाम लिखा कर महीने भर में ही समाज के सदस्यों की संख्या दुगनी से चौगुनी कर दें, परन्तु जब तक लोगों के जीवन में वास्तविक उन्नति न होगी, आर्य समाज के वैदिक सिद्धान्त लोगों के दैनिक व्यवहार में पथदर्शक न बनेंगे,—आर्य समाज का सारा कार्य फिजूल होगा—आर्य समाज ही क्या प्रत्येक मत, सम्प्रदाय या धर्म जब तक क्रियात्मक जीवन में परिवर्तन न कर दे, संसार के लिये उस की कुछ भी उपयोगिता नहीं। इस मुख्य उद्देश्य में सदा हमारी अधिक शक्ति लगनी चाहिये।

आर्य्यों का भावी राज्य
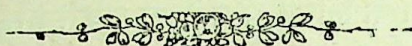
(श्री विष्णुदत्त बी. ए. एल. एल. बी.)

किसी समय संसार में आर्यों का चक्रवर्त्ती राज्य था। विशेष कर आर्यावर्त्त आर्य सभ्यता का केंद्र था और संसार में यदि किसी देश वा जाति ने चरित्र सीखना होता तो यहां आते और शिष्य भाव से यहां के गुरुजनों से शिक्षा प्राप्ति के पश्चात् अपने २ देशों में जा कर सदाचार और सुशिक्षा का विस्तार करते थे।

कोई समय आया कि भारत में स्वयं अंधकार फैल गया ज्ञान और सदाचार की प्रतिष्ठा नहीं रही। अत्याचार और अनाचार फैल गया। धर्म्माधर्म को लोग भूल गए। तपस्या और योग के जीवन के स्थान में भोग और असद् व्यवहार का राज्य हो गया। जब गुरु देश और जाति का पतन हो गया और धर्म और सदाचार का उस के केंद्रस्थान से ही बहिष्कार हो गया तो ब्राह्मणों और सुशिक्षकों के अभाव से सारे संसार में ज्ञान और धर्म नाममात्र को नहीं रहा।

बुद्ध और अन्य आचार्यों ने अपने २ सम्प्रदायों की स्थापना की परन्तु शंकराचार्य के प्रयत्न को छोड़ कर किसी आर्यावर्त्त वा अन्य देश के आचार्य ने आर्य सभ्यता के पुनरुद्धार के लिये प्रयत्न नहीं किया। इस कारण भारत वर्ष में से आर्य सभ्यता के चले जाने के पश्चात् यहां का स्वातंत्र्य, विज्ञान, सदाचार और उन्नति भी ऐसे मिट गए कि अब किसी को यह आशा मृगतृष्णा मात्र प्रतीत होती है कि फिर कभी भारत के प्राचीन दिवस आएंगे। आज तो भारत का अपना जीवन भी संदेहास्पद है जो देश किसी समय जगत के प्रायः सभी देशों पर किसी न किसी रूप में शासन करता था, वही देश अब पादाक्रांत है और शिर ऊंचा करके साहस पूर्वक बात करने के भी योग्य नहीं है।

यूरप, अमरीका और जापान आदि कई देश आजकल बड़े उन्नत देश गिने जाते हैं परन्तु उन उन देशों में धर्म और सदाचार नाम मात्र को नहीं है। इन देशों में भोग विलास ने धर्म और आचार का आसन ग्रहण कर लिया है और कुटिलता और असद्व्यवहार को कुशलता की पदवी दी गई है।

आज संसार में किसी देश और जाति को देखो एक निरन्तर संग्राम चल रहा है सम्प्रदाय और पक्षपात अपना प्रभाव अशान्ति और शत्रु भाव के प्रसार के रूप में दिखला रहे हैं।

संसार की इस अशांति का एक मात्र प्रतिकार आर्य सभ्यता का प्रचार है। जब तक आर्यों का पुराना राज्य सब रूप में संसार में नहीं फैल जाता उस समय तक संसार में शांति नहीं आ सकती।

स्वामी दयानन्द ने देखा कि संसार पीड़ित है। दिव्य दृष्टि से ऋषि ने अनुभव किया कि यदि भारत में आर्य सभ्यता का पुनरपि प्रचार हो जावे तो सारे संसार का भला हो सकता है।

भारत की उन्नति का सब से बड़ा उपाय ऋषि ने यह बतलाया कि संसार भर में से साम्प्रदायिक भाव का निकाल देना चाहिये अन्यथा परस्पर भ्रातृभाव की कदापि आशा ही नहीं हो सकती। जिस मनुष्य का आत्मा कई भ्रान्तियों का दास है वह न अपना भला कर सकता है और न किसी अन्य का। धर्म वा सदाचार, देशोन्नति वा विज्ञान प्रसार, वर्णाश्रम धर्म स्थापना वा योगाभ्यास, तपस्या वा वीरता, निर्भयता वा सतोगुणी वृत्तियां कोई जप कर लेने वा विश्वास मात्र से उपलब्ध होने वाली वस्तुएं नहीं हैं। इस के लिये प्रथम साधन आत्म स्वातंत्र्य है। उपरोक्त सद्गुणों की प्राप्ति से ही प्राचीन आर्य्यों का निष्कंटक राज्य था। स्वराज्य का लोग स्वप्न देखना चाहते हैं। परंतु यह नहीं समझते कि आत्म स्वराज्य के बिना बाह्य राज्य की प्राप्ति नहीं हो सकती।

ऋषि दयानन्द के नाद ने भारत भूमि में एक ऐसे यज्ञ का प्रारम्भ करा दिया है जो दिन प्रति दिन विस्तृत हो रहा है। आर्य्य सभ्यता के इस राज्य के विस्तार के लिये किसी आग्नेय वा वायव्य अस्त्रों की आवश्यक्ता नहीं है। परञ्च अपने जीवनों को आर्य्य सभ्यता के आदेशानुसार संगठित करने की आवश्यकता है।

इस नए युद्ध का एक मात्र शास्त्र विज्ञान का प्रचार है। स्वामी दयानन्द ने इस कारण केवल ऋषिकृत ग्रंथों के ही पढ़ने पढ़ाने की आज्ञा दी है। सारा संसार आज किस्सा कहानी कथा गल्प और उपन्यास में आनन्द लेता है जिसको साइन्स और विज्ञानशास्त्र और विद्या का नाम दिया जाता है वह भी भ्रांति रहित नहीं। डार्विन का शासन कई वर्षों से प्रत्येक पाश्चात्य तत्ववेत्ता के मस्तिष्क पर

उपस्थित है। यद्यपि वैदिक सभ्यता के पुनरुद्धार के पश्चात् अब कहीं २ लोग इस भ्रांति को अनुभव करने लगे हैं।

वर्त्तमान शिक्षा का अंतिम उद्देश्य प्रकृति वाद है। ईश्वर वाद के लिये कोई स्थान नहीं है। आज कल जितने सम्प्रदाय भी प्रचलित हैं वह भी कथा और भ्रांतियों का संग्रह हैं।

प्राचीन ऋषि सदैव आप्त पुरुष थे। वह कदापि असत्य भाषण नहीं करते थे। यदि अपने कथन को लेखबद्ध भी करते थे तो सूत्रवत् आयुर्वेद, न्याय शास्त्र आदि किसी विद्या वा विज्ञान के ग्रंथ को उठा कर देखलो अंत में और आरम्भ में सदा ईश्वर की सत्ता को अनुभव किये बिना पढ़ने वाला नहीं रह सकता था। इन ग्रंथों और शास्त्रों ने अपना मुख्य उद्देश्य ही मोक्ष की प्राप्ति ही बतलाया है।

वेद इस अनोखी सभ्यता का स्रोत है। किसी साम्प्रदायिक आचार्य्य ने कभी वेद की स्थापना की ओर क्षण भर भी ध्यान नहीं दिया क्योंकि वेद के दर्शनमात्र से ही उन की कपोल कल्पित साम्प्रदायिक भ्रांतियों का जाल नहीं फैल सका। स्वामी दयानन्द ने इसी वेद को उद्भासन दिया। यदि वे चाहते तो अन्य आचार्य्यों की भांति वह भी अपना एक सम्प्रदाय चला देते। उस का मंत्र, जप, तप, स्तोत्र और कलमा बना लेना उन के लिये कठिन न था जब कई अनपढ़ मूर्ख पाखंडी आज कल कान में मंत्र फूंक कर गले में कंठी बांधते फिरते हैं। शिष्यों का भला करना तो ऐसे लोगों के लिये कठिन है परंतु यह लोग शिष्यों से धन बटोर कर और बड़े २ भवन निर्माण करके अपने आत्मा का नाश कर लेते हैं। इन लोगों ने जगत् में हठ और दुराग्रह को फैलाया है। यदि यह लोग संसार में पैदा ही न होते तो भी अच्छा था। अब यह बात स्पष्ट है कि मुसलमान और ईसाई, बौद्ध और जैनी, सिख और ब्राह्म और अन्य मतवादी भली प्रकार समझ रहे हैं कि अब तर्क और ज्ञान के मार्ग से बच कर कोई सम्प्रदाय खड़ा नहीं रह सकता। इस कारण अपने २ ग्रंथों के सब चमत्कारों को अलङ्कारों का वस्त्र पहनाया जा रहा है और इस काट छांट का यह परिणाम होगा कि कभी कोई ऐसा समय आ जावेगा कि विश्वास मात्र वैर भाव हठ और दुराग्रह का नाम धर्म्म नहीं रहेगा। और आत्म स्वातंत्र्य, सदाचार, तर्क, और वेद ही एक मात्र आर्य्य संसार का

धर्म्म होगा। सहस्रों वर्षों के पश्चात् फिर स्वामी दयानन्द के नेतृत्व में भारत संसार को वेद का झंडा लेकर विजय करने के लिये चला है। इस विशाल कार्य्य के लिये एक महती सेना की आवश्यकता है। इस समय जो सैनिक इस सेना को मिले हैं वह अपनी एकत्रित की हुई सामग्री के अनुसार कार्य्य कर रहे हैं परन्तु देश में आर्य्य सभ्यता का निष्कंटक राज्य होने पर ही विदेश में यह धर्म्म का राज्य फैलेगा। वह सैनिक कैसे सौभाग्यवान होंगे जो इस शांति और धर्म्म का राज्य फैलाने वाली सेना में सम्मिलित होकर अपने धार्मिक जीवन से वीरता का ज्वलन्त दृष्टान्त उपस्थित करेंगे। वह दिन भी कैसा स्वर्गीय होगा जब कि अंग्रेज़ और जर्मन, फ्रांसीसी और चीनी, जापानी और ईरानी, अफ़गान और अमरीकन, तुर्क और अरब आदि सब फिर वैदिक धर्म्म को सहर्ष स्वीकार करके आर्य्य बन जावेंगे। आर्य्यों के इस भावी राज्य की आशा ने स्वामी दयानन्द को वैदिक धर्म्म के प्रचार के लिये प्रोत्साहित किया और हमें भी उन के चरण चिन्हों पर चल कर इस स्वप्न को पूर्ण करने में सहायता देने का सौभाग्य प्राप्त करना चाहिये।

———

"प्रार्थना"

"श्री कुरङ्ग"

मोह व्यथा में दुःख दशा में, उद्धर दीनाधार!
मानस पीड़ा हर कर हरिवर, तारो करुणागार!
यत्न प्रयत्न किए मैं लाखों, हुई निराशा घोर।
पड़ा प्रभो! तव चरण शरण में, करो कृपा की कोर॥
जल थल नभ में तुम ही व्यापक तेरो रूप अथोर।
जीवन दो अब जलधर स्वामिन्! द्वारे खड़ा चकोर॥
मीन मनुज हो सूर्य चन्द्र हो, जग तेरो विस्तार।
शक्ति शालि! हे करुणासागर! दुख से परे उतार॥
अन्ध निशा में कलुषित होकर, फिरता मानस चोर।
सूर्य छटा छटका दो भगवन्! करदो भावन भोर॥

सम्पादकीय

फिर भारत में

६ मास के प्रवास के पश्चात् संपादकासन पर फिर बैठते हुए 'आर्य'-पाठकों की सेवा में सस्नेह 'नमस्ते' कहता हूँ। अपने आफ़्रिका के अनुभव अंग्रेज़ी पत्रों में तो प्रकाशित करता रहा, अब 'आर्य' में भी पुरानी और नई आफ़्रिक़ीय सभ्यता पर लेख माला प्रकाशित कराने की आयोजना करूंगा॥

मेरी अनुपस्थिति में श्री राजेन्द्र जी ने 'आर्य' का संपादन किया। उनके संपादन में उत्तम २ लेख 'आर्य' के पृष्ठों को अलंकृत करते रहे। उन के परिश्रम तथा कार्य-तत्परता के लिये उनका बार २ धन्यवाद है।

मैंने स्वयं इस समय में लेख भेजने में कमी नहीं थी। परन्तु वह लेख सब समालोचनात्मक थे। इसमें सन्देह नहीं कि समालोचना, और वह भी उत्कृष्ट साहित्य की। साधारण पाठकों के लिये कुछ बहुत रुचिकर नहीं होती। परन्तु साहित्य की उन्नति का साधन समालोचना ही है। 'आर्य' में समालोचना का स्थान रहना आवश्यक है। हां! इतना ध्यान रखना ही होगा कि यह अंग पत्र का एक छोटा सा लघुकाय अंग हो। बहुत पृष्ठ न घेरे।

साप्ताहिक या स्थूल?

'आर्य' की कलेवर-वृद्धि अथवा इसे मासिक से साप्ताहिक कर डालने की आवाज़ आर्य जगत् में क्रमशः बल पकड़ती जाती है। मासिक का साहित्य में अपना स्थान है, साप्ताहिक का अपना। मासिक विचार का प्रेरक होता है, साप्ताहिक आन्दोलनों का प्रवर्त्तक। यह बात तो निर्विवाद ही है कि आर्य सामाजिक जगत् में आर्य सिद्धान्तों ही पर गम्भीर विचार केवल 'आर्य' के पृष्ठों में होता है। मासिक होने के कारण यह पत्र सामयिक वादविवादों से ऊपर उठ कर धर्म तथा समाज की स्थिर समस्याओं के सुलझाने में अपनी शक्ति का व्यय करता है।

कुछ हो, 'आर्य' की पृष्ठ-संख्या बढानी हो चाहे उसे साप्ताहिक बनाना हो, कठिनाई आर्थिक ही होगी। आर्य प्रतिनिधि सभाओं में सब से बड़ी तथा अधिक शक्ति-संपन्न सभा का एक मात्र मासिक पत्र हो और वह घाटे में रहे, यह कुछ गौरव की बात नहीं। आर्यों को इसकी ग्राहक संख्या बढ़ानी चाहिये।

यदि आर्य प्रतिनिधि सभा के आगामि अधिवेशन तक जिसमें मास भर से अधिक समय नहीं रहा, यह संख्या एक हज़ार तक पहुँच जाए तो 'आर्य' की उन्नति का कोई रूप स्वीकार किया जा सकता है। कलेवर-वृद्धि तथा आवृत्ति-वृद्धि दोनों के प्रस्तावकों को अपना बल 'आर्य' के ग्राहक बढ़ाने में लगाना चाहिये।

स्कूलों वालो ! सावधान !

श्रीयुत देवीचन्द एम ए कालेज समाज के मुख्य स्तंभों में से एक हैं। आप का विशेष यश होशियारपुर ज़िले में स्कूलों की भरमार कर देने के कारण है। शिक्षण विभाग के कार्य का इन्हें अनुभव है और जिस कक्षा का शिक्षण उन के अधीन है, उस के संबन्ध में उनका सा ज्ञान उन के सहकारियों में और किसी को नहीं कालेज पक्ष के सज्जन उन्हें साधु वृत्ति का सत्पुरुष भी कहते हैं, यद्यपि उन्हों ने अपने 'आर्य समाज द्वारा अधिष्ठित शिक्षण कार्य के वृत्तान्त' में गुरुकुल का वर्णन कुछ संकीर्ण दृष्टि ही से किया था संकीर्णता का कारण अज्ञान हो सकता है। आज हम उन के एक लेख का जो सहयोगी 'आर्य गज़ट' की २७ चैत्र की संख्या में छपा है, सार मात्र 'आर्य' के पाठकों को भेंट करने लगे हैं।

आप इस लेख में आर्य स्कूलों की अद्यावधि सफलता और वर्तमान तथा भावि असफलता पर विचार करते हैं। आप की सम्मति में गत समय की सफलता के कारण तीन हैं:—

"(१) गवर्नमेंट की अंग्रेज़ी शिक्षा की ओर उपेक्षा ..... ।

(२) लोगों का इस अंग्रेज़ी शिक्षा का इच्छुक होना और आर्य समाज का इस आवश्यकता को पूरा करना।

(३) तालीमे मिशनरी (शिक्षक सेवकों) का त्याग ।

वास्तव में पहिले दो कारण एक ही कारण के दो भिन्न रूप हैं।

महाशय जी का विचार है कि अब यह तीनों बातें जाती रही हैं (१) 'जहां पहिले गवर्नमेंट अंग्रेज़ी शिक्षा के विरुद्ध थी वहां अब डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और गवर्नमैन्ट धड़ाधड़ अंग्रेजी स्कूल खोल रहे हैं'। निजू स्कूलों के रास्ते में दिनों दिन नई अड़चनें-यथा उन की अस्वीकृति, ग्रांट न मिलना, अतिव्ययकारी नियम इत्यादि २ उपस्थित की जा रही हैं।

(२) पहिले आर्य समाज इस क्षेत्र में अकेला था। अब सब संप्रदाय अपने स्कूल खोलते जाते हैं। इस से स्पर्धा होती है और धन कम आता है।

(३) अब त्याग की जगह भोग ने लेली है। सेवा भाव से शिक्षक लोग कार्य करने को उद्यत नहीं होते।

अत: महाशय जी की मंत्रणा है कि अब और स्कूल नहीं खोलने चाहियें। जो विद्यमान हैं उन्हीं को संगठित करना चाहिये।

ईसाई स्कूलों के बन्द होने की ओर भी महाशय जी ने संकेत किया है और दबे शब्दों में इसी अवस्था के आर्य स्कूलों पर घटित होने की आशंका भी प्रकट की है।

स्थिति स्वाभाविक है।

यह है महाशयजी के लेख का भाव। हम उन से पूछते हैं कि अंग्रेज़ी पढ़ाना आर्य समाज का उद्देश्य कब से था? आर्य पाठशालाओं की सफलता वेद वेदांग पढ़ाने से होती, संस्कृत की उच्च शिक्षा देने से होती। 'अविद्या को देश से दूर करके विद्या की वृद्धि' क्या अंग्रेज़ी तालीम से ही हो सक्ती थी? अब सरकार ने जान लिया कि अंग्रेज़ी पढ़ाना उस का अपना काम है। वह उसे करने दो। आप के सिर से बोझ हटा। आप उस कार्य में अपना धन तथा शक्ति लगाइये जो आप का उद्देश्य है अर्थात् वेद वेदांग पढ़ाने में। अंग्रेज़ी को गौण स्थान दीजिये परन्तु उसे अपनी सफलता का कारण—और वह भी प्रधान कारण—न बनाइये।

रहा नई पीढ़ी में त्याग का अभाव सो तो पहिली पीढ़ी के त्याग के उलटे उपयोग का फल है। त्याग किया गया ऐसे कार्यों में जिन से भोग-वादी सभ्यता का प्रचार हो। संचालकों के संकल्प शुभ हों परन्तु उन शुभ तथा पवित्र संकल्पों से भोग का मार्ग ही तो तैयार हो पाया है? अंग्रेज़ी शिक्षा से त्याग की कामना दुःसासह है, मुग्धमनस्कों का आशावाद है। अब भी समय है। नष्ट होती शक्ति का उपयोग भोग के स्रोतों—अर्थात् अंग्रेज़ी स्कूलों में न करते जाइये। इस का कांटा त्याग की ओर मोड़िये। आज फैलाव से सहकारियों को सावधान करते हो, कल संगठन से भी सावधान करना होगा।

भोग के स्रोत

हमने अंग्रेज़ी स्कूलों को भोग का स्रोत कहा। इस में साक्षि लाहौर के गवर्नमेंट कालेज के प्रिंसिपल महाशय की लीजिये। आपने अपने कालेज के वार्षिक वृत्तान्त ही में लिखा है:—

"पहिले की अपेक्षा भोग की ओर अधिक प्रवृत्ति है। जीवन पर दृष्टि उपेक्षा की है। गंभीर यत्न में शिथिलता है...... सुन्दर प्रतीत होने की कामना..........आडंबर और वेष की अतिव्ययिता तक पहुंचती है।....खर्च बहुत अधिक है। अधनवानों को धनवानों की व्यय में स्पर्धा नष्ट कर रही है।

यह शब्द हैं एक आंगल महाशय के जो अंग्रेजी शिक्षा के मुख्य पुरोहितों में से हैं और एक ऐसे महाविद्यालय को चला रहे हैं जिस के दूसरे महाविद्यालय अधूरी नकलें हैं। नीचे हम कालेजों के विद्यार्थियों के एक हितैषी की अपनी आंखों का दिया प्रमाण पेश करते हैं।

टिब्बी में अकाल-

लाहौर के एक कालेज के एक कार्यकर्ता रावी से आते हुए टिब्बी के पास से गुज़रे। टिब्बी में लाहौर की वेश्याओं का आवास है। एक वेश्या एक टांगे वाले से पूछ रही थी कालेज कब खुलेंगे ? जाने वाले को ख़याल आया, संभव है, इस का कोई संबन्धी कालेज में भर्ती होने वाला हो। पूछने पर वेश्या ने कहाः—हम भूखी मर रही हैं।

आशय स्पष्ट है। ऐसी ही एक घटना का पता एक और महाशय से मिला। दोनों संवाददाता खिन्न थे कि नई पीढ़ियों की वृत्ति किस भविष्य की ओर संकेत करती है।

हम इसे पाश्चात्य सभ्यता का स्वाभाविक फल समझते हैं। संभव है, लाहौर से बाहर की दशा इतनी शोचनीय न हो, परन्तु लाहौर जो इस शिक्षा का केन्द्र है, इस सुशिक्षित भोग विलास का भी केन्द्र है। पाश्चात्य शिक्षा का उपकार टिब्बी की भूखी वेश्याओं के लिये है। जिन की परोपकार कामना इतनी तीव्र हो कि अपने जिगर के टुकड़ों को दरिद्र वेश्याओं की भोग भट्ठी का ईंधन बना सकें वह आंखें मूंद कर इस विद्या (?)—वृद्धि के पक्षपाती हो सकते हैं। दूसरों को सावधान होना चाहिये।

पुत्रि शिक्षा का प्रस्ताव

उसी लेख में महाशय जी ने पुत्रियों के शिक्षण पर ध्यान देने की प्रेरणा की है। कहीं शिक्षा प्रेमी लोग उन कोमल कोयलों को अंग्रेज़ी शिक्षा की विषैली हवा न लगा दें। कालेजों के विद्यार्थी टिब्बी के अकालपीड़ितों की सेवा के पीछे भी संभवतः महात्मा बन सकें, देवियां एक बार भोग वाद की दासी हुईं, डायनें ही बन कर रहेंगी।

कन्याओं के शिक्षण में गवर्नमेंट की उपेक्षा आप की सफलता की हेतु न होगी। कारण कि यहां अंग्रेज़ी शिक्षा की आवश्यकता न उसे है न आप को। भोगवादी उसी शिक्षा पर वहां भी बल दे रहे हैं। आप यहां अपना कर्तव्य क्या समझते हैं? उस आवाज़ के आगे झुकना या उस का प्राण-पण से विरोध करना? यही बालकों के विषय में करते तो आज क्यों यह करुण क्रन्दन करना होता? महाराज! सफलता का माप बदलिये। शिक्षा का सच्चा ध्येय अपनी आंखों के सम्मुख रखिये। विष सस्ता है, इस लिये खा लेना चाहिये, यह बुद्धिमानों की नीति नहीं। जिन गुरुकुलों को महँगा कहते हो, वह महँगे नहीं। हां भी तो अमृत हैं जो किसी भाव मिले सस्ता है।

हमारा विरोध किसी संस्था विशेष से नहीं। हम तो पाश्चात्य सभ्यता के विरोधी हैं जिस का दूसरा नाम अंग्रेज़ी शिक्षा है। इस की आयोजना मैं करूं तो भोगवाद बढ़ाऊंगा आप करें तो भोगवाद बढाएंगे।

आर्य समाजों में मिलाप की आवाज़ उठती रही आओ भावी सन्तति को भोगवाद की भड़कती भट्टी से बचाने के लिये साझा यत्न करें। शिक्षा का ध्येय वह बनाएं जो ऋषि ने अपनी पुस्तकों में स्थिर किया है।

गुरुकुलोत्सव- गुरुकुलोत्सव २ से ५ एप्रल तक बड़े समारोह से हुआ। उपस्थिति खूब रही। व्याख्यान उत्तम हुए। ८६ हज़ार रुपये दान की प्राप्ति तथा प्रतिज्ञाएं हुई। संचालकों को बधाई हो।

आचार्य रामदेव जी ने अपने भाषण में गुरुकुल की कृत-कार्यता पर प्रकाश डाला। आपने बताया कि अब तक १३४ स्नातक हुए हैं जिनमें से ४ का देहान्त हो चुका है, ५ आगे शिक्षा पा रहे हैं। शेष १२५ में से ८९ सार्वजनिक कार्यों में लगे हैं। इस अनुमान से किसी दूसरे विद्यालय ने देश को सेवक नहीं दिये। प्रत्येक सात स्नातकों में से एक लेखक है गुरुकुल के स्नातकों की कृतियों ने हिन्दी साहित्य की संवृद्धि की है शिक्षा का मासिक व्यय विद्यालय-विभाग में कांगड़ी तथा उसकी समग्र शाखाओं का ५) रु० प्रति ब्रह्मचारी से अधिक नहीं। इस स्थिति के होते कौन कह सकता है कि गुरुकुल शिक्षा प्रणाली महंगी है। इन सस्ते दामों यह सुवर्णीय परिणाम बधाइयों तथा साधुवादों का स्थल हैं।

श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य एम. ए. एल. एल. बी. ने जो तिलक विद्यापीठ के वाईस चांसलर हैं, दीक्षान्ताभिभाषण किया जिसमें आपने गुरुकुल के आदर्श तथा शिक्षा विधि की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की।

दानों में मुख्य राशि श्री जमनालाल बजाज की है। उन्होंने १५००) रु० आगामी वर्ष के लिये गान्धी-अर्थ-शास्त्र पीठ के व्यय के लिये दिया और प्रतिज्ञा की कि यदि इस पीठ का कार्य सन्तोषदायक रहा तो इसके लिये दृढ़ ३००००) रु० की राशि एकत्रित कर देंगे जिसके सूद की आय से यह पीठ स्थिर रूप से चल सके।

दयानन्द वैदिक ग्रन्थ माला

आर्य जनता इस बात से अपरिचित नहीं कि पं० चमूपति जी की अध्यक्षता में ऋषि दयानन्द के वेद भाष्य तथा अन्य प्रत्येक स्थल से जहां ऋषि ने किसी भी वेद मंत्र का भाष्य किया है, वैदिक शब्दों का कोष तैयार हो रहा है। अब यह संग्रह समाप्त प्राय है और संपादित हो 'वेद कोष' बन मुद्रणार्थ प्रेस में जानेवाला है। पुस्तक की उपयोगिता इसी से स्पष्ट है कि आर्यसमाज के पण्डितों ने इस पुस्तक के प्रस्ताव होने के दिन ही से इस शुभ विचार का स्वागत किया है। ऋषि की दृष्टि से वेद का अर्थ करने के लिये यह कोष मुख्य कुंजी का काम देगा। यह कोष दयानन्द वैदिक ग्रन्थमाला का पहिला पुष्प होगा। अन्य पुस्तकें भी तैयार कराने और छपवाने की आयोजना हो रही है। आर्य समाज में गम्भीर निश्चित तथा वैज्ञानिक रीति के स्वाध्याय-साहित्य की इस पुस्तक माला ही से नीव पड़ेगी। ऐसी पुस्तक मालाओं की प्रथानुसार इस माला की ग्राहकता के नियम यह होंगेः—

संरक्षक—२५०) एकदम देने वाले महानुभाव इस के संरक्षक कहला सकेंगे।

आजीवन सदस्य—जो महाशय १००) रु० पेशगी देगें, उन्हें आजीवन इस माला की पुस्तकें बिना दाम मिलती रहेंगीं।

सहायक-जो महाशय २५) रु० देदेगें, उन्हें पुस्तकें ४/५ दाम में भेजी जाया करेंगी। अर्थात् ५) रु० का पुस्तक ४ रु० में दिया जायगा।

स्थिर ग्राहक--जो महाशय १) रु० जमा करादेंगे, उन्हें पुस्तकें बिना डाक व्यय मिला करेंगी।

आर्यों को इस माला के ग्राहक इस लिये बनना चाहिये कि वेद के स्वाध्याय में इससे अधिक उपयोगी साधन और नहीं। स्वयं लाभ न उठा सको तो भी वेदार्थ की आर्ष शैली के प्रचारार्थ पुस्तकें खरीदो और धन से इस प्रयत्न की

सहायता करो। सब आर्य समाजों और आर्य संस्थाओं यथा गुरुकुल, स्कूल, पाठशाला आदि को अवश्य ग्राहकों में अपना नाम लिखवाना चाहिये। ग्राहकों की पर्याप्त संख्या हो जाने पर मुद्रण कार्य आरम्भ होगा। वेद कोष का मूल्य उसकी पृष्ठ संख्या पर निर्भर होगा। लगभग १० रु० का अनुमान है।

सब रुपया मंत्री आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब गुरुदत्त भवन के नाम से आना चाहिये।

कलकत्तामें हिंदू-मुस्लिम फसाद

कलकत्ता में हिन्दू मुस्लिम फसाद के समाचार जनता तक पहुंच चुके हैं। फसाद का आरम्भ आर्य समाज के नगर-कीर्तन से हुआ। पोलिस के डिपुटी कमिश्नर कीर्तन यात्रा के साथ थे। मुसलमानों ने अकस्मात् आक्रमण किया। झगड़ा बढ़ गया।

मुठभीड़ आर्यों तक ही परिमित न रही। आक्रान्ताओं का लक्ष्य आर्य समाज मन्दिर तथा काली के मन्दर को भ्रष्ट करना था। समस्त हिन्दुओं ने मिल कर फ़सादियों को रोका। जहां मन्दिरों को आघात पहुंचा, वहां मस्जिदें भी टूटने से नहीं बचीं। २०० के लगभग घायल हस्पतालों में पहुंचे इनमें से अधिक मुसलमान हैं। कुछ मृत्युएं भी हुईं। आक्रान्ताओं का जब जम कर मुकाबिला हुआ तो दुम दबा कर भागे।। कई स्थानों पर लेने के देने पड़े। पोलिस ने विशेष रक्षा न की होती तो अशान्ति-प्रियता का पूरा मज़ा चखते।

अब अभियोग चलेंगे और वैमनस्य बढ़ेगा। फसादों की शृंखला से, जो कुछ समय से विविध स्थानों में घटित हो रहे हैं, प्रतीत होता है कि परदे के पीछे कोई गहरा षडयन्त्र है जो सारे भारत में द्वेषाग्नि को प्रचण्ड कर रहा है। कलकत्ते के फसाद से हिन्दू मुसलमानों दोनों को शिक्षा लेनी चाहिये। हिन्दुओं को संगठित सांमुख्य की, मुसलमानों को हिन्दुओं की जागृत अवस्था और उसके संमुख अपने गुंडापन की निर्बल कायरता की। गुंडापन परिणाम में भीरु होता है। उस की बहादुरी तभी तक रहती है जब तक उस का विरोध न हो। अब सामना होगा।

सयाने मुसलमानों को अपने शान्ति-प्रेम की आवाज़ शक्तिशालिनी करनी चाहिये। अभागा भारत दीन है—दूसरों के अत्याचार से इतना नहीं जितना अपने आन्तरिक कलहों के कारण। यदि गुंडे लोग स्वयं न रुके और उन के सहधर्मियों ने भी उन पर ज़ोर न डाला तो हिन्दुओं का अपना बाहुबल उन्हें सचेत कर सीधे रास्ते पर लायगा। फिर भारत की जय होगी।

सरकार की शान्ति-स्थापन की डींग क्या हुई ? सरकार अपनी अधिकारेच्छा का मुख्य हेतु कलही हिन्दी जातियों में शान्ति-स्थापन की आवश्यकता को बताती है। यदि यह हेतु भी थोथा है, जैसे इन बार बार होते फसादों से सिद्ध होता है, तो सरकार स्पष्टतया अपनी निष्प्रयोजनता की साक्षि देती है। बन्दर बांट का शासन आखिर कब तक ?

आर्य प्रतिनिधिसभा के मंत्री महाशय लिखते हैं:—

फरीदकोट में आर्य-समाज का उत्सव बन्द

'फरीदकोट की भूमि को जब से तुलसीराम के रक्त ने पवित्र किया है तब से आर्य जनता उस स्थान को पुण्य धर्म-धाम समझती है। वीर के बलिदान के पीछे वहां की परिस्थिति प्रचार के सर्वथा प्रतिकूल थी परन्तु पिछले दिनों वहां आर्यसमाज की फिर से स्थापना हुई ९, १०, ११ एप्रिल को आर्यसमाज का उत्सव होना नियत हुआ। आर्य सामाजिक जगत् के प्रसिद्ध संन्यासियों, वक्ताओं, तथा नेताओं ने वीर की बलिदान-भूमि को अपने प्रचार का योग्यतम क्षेत्र मान वहां की जनता को अपने दर्शनों तथा उपदेशों से कृतार्थ करना स्वीकार कर लिया था। उत्सव की तैयारियां जोरों से हो रही थीं। सरकार से सज्जा-सामग्री की प्रार्थना की गई। सनातनधर्म सभा, गुरुद्वारों, जैनसभा, अंजुमन इसलाहे मुसलिमीन को उन के त्यौहारों और वार्षिक उत्सवों के अवसरों पर यह सहायता दी जाती रही है, परन्तु आर्य समाज से सरकार ने सुतेली मां का सा व्यवहार किया। सज्जा भूषा की कुछ ऐसी बात न थी। ५ एप्रिल को जब उत्सव में कुल चार दिन शेष थे आज्ञा आई कि उत्सव बन्द कर दो आज्ञा अत्याचार-पूर्ण तो हैही; सिखाशाही है और फिर आकस्मिक। आर्य समाज पर कोई दोष नहीं लगाया। बन्दिश का कोई कारण नहीं बताया, लिखा है 'विविध कारणों से'। अधिकारियों ने कोई अपराध किया होता तो उन से पूछ ताछ करते। बैठे बिठाए जलसा रोक दिया। स्थानीय कार्य कर्ताओं को तो कष्ट हुआ ही, बाहर के गण्यमान्य नेताओं को मुफ्त का क्लेश दिया गया। यही नहीं, देश भर के आर्यों को इस समाचार के पहुंचते ही कठोर आघात पहुंचा है। शासकों ने मनमानी कर प्रजा के एक शान्ति-प्रिय भाग की वेदनाएं अपने विरुद्ध करली हैं। मैंने कौंसिल के प्रधान को तार दिया था। परन्तु उत्तर नहीं आया। उत्सव-निरोध का प्रभाव केवल रियासत ही में नहीं

किन्तु संसार भर की आर्य जनता पर है। जहां भी एक आर्य रहता है, उसके हृदय में तुलसीराम की बलिदान-भूमि का प्यार है। इस पवित्र स्थान पर एकत्रित हो वीर की प्रतिष्ठा करने के अधिकार को आर्य जनता छोड़ नहीं सकती। यह अधिकार प्राप्त करना ही होगा। किस प्रकार? यह बताने का अभी समय नहीं। क्या मैं आशा करूं कि रियासत के अधिकारी समय पर अपनी भूल स्वीकार कर उस अत्याचार को शीघ्र लौटा लेंगे जो उन्होंने विचार न कर कर डाला है।'

मसूरी का नगर कीर्तन बन्द

पिछले वर्ष मसूरी आर्य-समाज का नगर कीर्तन बन्द हुआ था। इस बार फिर बन्द होने का समाचार आया है। आखिर यह धींगा धांगी कब तक? राज्य नियम पालन तथा शान्ति स्थापन किये रखने का फल यही है तो आर्यों को अपना व्यवहार बदलना होगा। स्थान २ पर आर्य समाज के रास्ते में बाधा खड़ी की जा रही है जो असह्य है। आर्यों को जीना है और साधिकार जीना है। उसका साधन है सत्याग्रह। निरोधाज्ञा होते हुए भी नगर-कीर्तन कर लेना चाहिये। अहिंसात्मक निष्क्रिय प्रतिरोध ही, जिसका दूसरा नाम विनीत आज्ञाभंग है, इस समय आर्य जनता का केवल मात्र हथियार हो सक्ता है। प्रश्न किसी स्थान विशेष का नहीं। सारी आर्य जनता का है। जनता को तैयारी करनी चाहिये। जब नेताओं का बुलावा आए, कार्य आरम्भ हो जाए।

अछूत आर्य समाजी

हम समझते थे आर्य समाज ने छूत का भूत हटा दिया। सहयोगी 'प्रभात' में निम्नलिखित समाचार पढ कर हँसी भी आई, खेद भी हुआ —

"देहरादून में प्रतिनिधि सभा के अधिवेशन के अवसर पर, जैसा कि हुआ करता है, बहुत से लोगों ने प्रतिनिधियों को अपने अपने यहां निमंत्रित किया था। इन्हीं में से एक लाला बिहारीलाल जी भी थे जो रैदास (चमार) सभा के प्रधान हैं। वे यद्यपि प्रचलित जाति के अनुसार अछूत जाति में से हैं परन्तु योग्यता, गुण, ज्ञान, और सामाजिक स्थिति में वे उच्च वर्ण वालों से कदापि कम नहीं हैं। आपने भी एक दिन के लिए प्रतिनिधियों को भोजन के लिए निमंत्रित किया था। परन्तु बड़ी हैरानी और लज्जा की बात है कि देहरादून आर्य्य समाज ने यह शर्त लगाई कि भोजन के बनाने वाले सब ब्राह्मण ही होंगे और यह प्रबन्ध समाज की ओर से होगा। लाला बिहारीलाल जी को केवल धन दे देना चाहिए। इस पर लाला बिहारीलाल जी ने एक शर्त्त पेश की कि हमारी जाति के तीन-चार पढ़े-लिखे शुद्ध और साफ व्यक्ति भोजन परोसने का काम करेंगे, क्योंकि ईसाई. मिश्नरी हमारी जाति

के लोगों में जो यह कह कर भ्रम फैलाते हैं कि आर्य्य समाज भी हम से परहेज़ करता है, वह दूर हो जायगा। लेकिन शास्त्री जी ने यह बात, यह कह कर अस्वीकार कर दी कि इस बात से प्रतिनिधि-सभा के मेम्बरों में, आपस में मत-भेद हो जायगा क्योंकि सारे प्रतिनिधि सदस्यों को यह बात स्वीकार न होगी।"

यदि हमें पीछे के समाचारों से यह पता न होता कि कई प्रतिष्ठित प्रतिनिधियों ने म. विहारीलाल के हां खाना खाया तो हम देहरादून समाज को ही नहीं, यू. पी. की आर्य जनता को धिक्कार देते।

वीर महिला

दैनिक 'बङ्गाली' ने इन्हीं दिनों की एक घटना का वर्णन किया है जिस से विश्वास होता है कि भारतीय महिलाओं में आज भी प्राचीन वीर क्षत्रियाओं का निर्भीक साहस विद्यमान है जो उचित शिक्षण से विकसित किया जा सक्ता है:—

'अलीपुर पोलिस को एक साहस-पूर्ण डाके की सूचना मिली है जिस का निरोध गृहपत्नी की वीरता से हुआ। बज बज के थाने के अन्तर्गत राजारामपुर के एक धनी गिरीशचन्द्र अदोक हैं। १६ (मार्च) की रात को जब अभी सायंकाल हो रहा था, गिरीश बाबू की पत्नी अपने बालकों को साथ लिये बरामदे में बैठी थी इतने में कुछ पुरुष उस के घर में घुस आए।.........महिला डर गई और अपने बच्चों को घर के अन्दर कर आप भी अन्दर घुसी। इतने में डाकू बरामदे में दौड़ आए और उसे द्वार बन्द करने से रोकने लगे। अब एक ओर देवी द्वार बन्द करने को अन्दर से बल लगाती थी दूसरी ओर डाकू उसे खोलने को ज़ोर लगा रहे थे।.........महिला ने द्वार ढीला किया और एक डाकू का हाथ ताकों के बीच में आ गया। देवी ने अपूर्व साहस से ....द्वार भीड़ दिया जिस से डाकू की उंगलियां द्वार ही में रह गई। सारे डाकुओं ने अपने साथी को छुड़ाने का पूरा प्रयत्न किया और वह इस में सफल हुए। डाकू का हाथ छूट गया परन्तु उस के हाथ की चार उंगलियां कट कर पीछे रहीं।.........उंगली कटा डाकू शीघ्र पकड़ा गया। उसे पकड़ाने वाला यही चिन्ह था।'

क्या इस्लाम सार्वभौमिक धर्म है ?

यह प्रश्न सहयोगी मौडर्न रिव्यू ने उठाया है जो साम्प्रदायिक या धार्मिक पत्र नहीं। इस का उत्तर सहयोगी के अपने शब्दों में सुनियेः—

अन्तर्जातीय वृत्ति का अर्थ यह नहीं कि अपनी जाति (या संप्रदाय) के हित को भुला दिया जाय। जब पूर्वीय या उत्तरीय बंगाल में अकाल या बाढ़ या भूकम्प या बीमारी आदि पड़ते हैं तो यद्यपि यह प्रान्त मुसल्मान-प्रधान प्रान्त हैं तो भी वहां के रहने वाले मुसल्मानों की सहायता संकीर्ण-हृदय हिन्दु ही करते

हैं, उदारमना मुसल्मान नहीं। ...... कामिल्ला के अभयाश्रम के द्वितीय वार्षिक वृत्तान्त से पता लगता है कि उस के दवाई देने वाले हस्पताल से ४१७५ मनुष्यों ने सहायता प्राप्त की जिन में से २३९६ मुसल्मान थे। इस आश्रम द्वारा संचालित स्कूल में १२० छात्र हैं जिन में से ७२ मुसल्मान हैं। है यह आश्रम हिन्दुओं ही का चलाया हुआ। इस के हिन्दु ही कार्यकर्त्ता हैं और हिन्दु ही संचालक। बंगाल और आसाम में पछड़ी हुई जातियों के उद्धारार्थ परिश्रम करने वाली सभा की पंद्रहवीं वार्षिक रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि उस के नीचे बीस जिलों में ४०६ स्कूल हैं जिन के छात्रों की संख्या १६३८९ हैं। इन में सब से अधिक भाग नम शूद्रों का है और उस के पीछे मुसल्मानों का जो ३०२३ हैं। अब इस सभा की चन्दे की सूची पढ़ जाइये। मुसल्मान चन्दा देने वाले केवल दो हैं। इन में भी सर अब्दुर्रहीम या उनके अनुयाई बिल्कुल नहीं। ...... जिसे इसलाम की सार्वभौमिकता या अन्तर्जातीयता कहा जाता है वह केवल सांप्रदायिकता है जो मुसलमान-प्रधान देशों पर फैली हुई है और वहां के ही मुसल्मानों की ख़ैर मनाती है। वास्तविक सार्वभौमिकता का अर्थ है सब देशों की सब जातियों, सब संप्रदायों के, सब मनुष्यों की खैर मनाना।

आर्यसमाज के उच्चकोटि के विद्वानों की पुस्तकें

सन्यासी महात्माओं की ओर से आत्मप्रसाद।

(१) **श्री स्वामी सत्यानन्द जी**—दयानन्द प्रकाश १॥) संध्यायोग ।–) सामाजिक धर्म ॥) दयानन्द वचनामृत ।=) ओंकार उपासना ≡) सत्योपदेश माला १)

(२) **श्री नारायण स्वामी जी**—आत्म दर्शन १॥) आर्य समाज क्या है ।–) प्राणायाम विधि =) वर्णव्यवस्था पर शंकासमाधान ≡)

(३) **श्री स्वामी अच्युतानन्द जी**—व्याख्यानमाला (संस्कृत में) संस्कृत में योग्यता प्राप्त करने के लिये ॥=) आर्याभिविनय द्वितीय भाग सजिल्द ।–)॥ एक ईश्वरवाद –) प्रार्थना पुस्तक

(४) **श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी**—आर्य पथिक लेखराम १।) मुक्ति सोपान ॥=)

(५) **श्री स्वामी सर्वदानन्द जी**—आनन्द संग्रह, परम आनन्द की प्राप्ति के सब साधन इस में दिये गये हैं १)

(६) **श्री स्वामी अनुभवानन्द जी**—भक्त की भावना, बहुत बढ़िया पुस्तक है मू०केवल॥)

भक्ति दर्पण अथवा आत्म प्रसाद।

इस में भक्ति मार्ग के सभी साधन दे दिये गये हैं। प्रत्येक स्त्री, पुरुष, बच्चे, बूढ़े को हर समय जेब में रखनी चाहिये। पाकिट साईज सुनहरी जिल्द मू० ॥)

स्कूलों तथा पाठशालाओं में बच्चों को उपहार में देने योग्य उत्तम पुस्तक है। आर्य समाज के बड़े २ विद्वानों ने इसे बहुत पसन्द किया है।

आर्यप्रतिनिधि सभा द्वारा स्वीकृत।

—आर्य प्रतिनिधि सभा ने आर्य समाजों के लिये हिसाब किताब, मासिक चन्दा, संस्कार, पुस्तकालय, वस्तुभण्डार, साप्ताहिक सत्संग तथा वार्षिक वृत्तान्त के लिये १० प्रकार के रजिस्टर और फर्म स्वीकार किये हैं, जो प्रत्येक समाज को प्रयोग में लाने चाहियें। यह रजिस्टर सजिल्द तथा एक वर्ष से अधिक समय के लिये पर्याप्त हैं। मू० केवल ६)

—शुद्धि के प्रमाण पत्र—जो सभा द्वारा स्वीकृत हैं, अति सुन्दर रंगीन छपवाए गए हैं, प्रमाण पत्र का एक भाग समाज के पास रहेगा। और दूसरा भाग काट कर शुद्ध हुए व्यक्ति को दिया जाता है। १०० फार्मों की एक कापी का मू० १॥=), ५० फार्मों की कापी ।॥=)

—आर्यसमाज के प्रवेश पत्रों तथा नियमों की १०० फार्मों की सुन्दर कापी ।=), रसीद बुक ॥) हिन्दी, अंग्रेज़ी, उर्दू नियम ।=) सैंकड़ा ॥

साप्ताहिक सत्संग के लिये सत्संग गुटका ≡) भजन संकीर्तन –)

राजपाल—अध्यक्ष, आर्य पुस्तकालय तथा सरस्वती आश्रम, लाहौर।

आर्य्य प्रतिनिधि सभा

आय व्यय मद्धे ...

निधि	बजट आय	इस मासकी आय	
मुख्य कार्यालय सभा	२६००)	५९)	
दशान्श			
दायाद्य रक्षा			
पुण्यार्थ			
सत्यार्थप्रकाश आज्ञा			
ग्लिम्पसेज़ आफ़ दयानंद			
गुरुकुल से दत्तांश		१२००)	
योग		१२५६)	२८९
कार्यालय वेदप्रचार			
वैदिक पुस्तकालय	५००)	२०)	३५०
आर्य	३०००)	५५९॥≡)	१४४
चाराना निधि	०००)	२४२॥)१	२००
ट्रैक्ट			६५
वेतन उपदेशक			
मार्ग व्यय			
बीमा जीवन			
वैदिक कोष			
सहायता माता पं० गणपति शर्मा			
योग		८२२।≡)१	३८
वेद प्रचार		३२०८॥)	१७२
लेखराम स्मारक निधि	३००)	१४२॥-)	३०
वेतन उपदेशक			
मार्ग व्यय			
गुज़ारा विधवा पं० तुलसीराम			
,, ,, वज़ीरचन्द			
योग		१४६॥-)	
सूद बैंक		३५४।-)१	
,, क़र्ज़ा			
भूमि आय व्यय			
किराया मकान		५।)	
योग		३५६॥-)१	
अमानत अन्य संस्थायें		१८०)	
,, आर्य समाजें		५)	
,, वैदिक पुस्तकालय		१०)	
,, विद्यार्थी आश्रम			
,, अम्बालाल दामोदरदास			
योग		१९५)	

...प्रकार दोनों का आशय एक ही है, कि ...परिभाषा में श्रम Labour कहा जाता ...भौतिक देह में पाद को Represent ... Labour Class का उद्भव हुआ। ... र कर अब पाठक स्वयं अपने हृदय ...न्द का वर्णव्यवस्था का सिद्धान्त ... उस का हृदय से समर्थन करते ...वर्णव्यवस्था विषयक विचारों की ...है, कि स्वयं उस के प्रतिद्वन्दियों ... साथ पूर्णरूप से सहमत हैं। माननीय आचार्य श्रीमद्भागवत- ... मन्त्र की वही व्याख्या करने के ... ऋषि दयानन्द की तरफ़ से पेश ...ना तथा झूठ को फैलाना सरल ...इस सारमय और वैज्ञानिक व्याख्या ...शा उतरा या नहीं? क्या आप ...नभिज्ञ तथा वेदों के परम रक्षक ... लिखे धर्म-विमुख बाबुओं का समूह ...गवतकार ने अपनी इस उदार और ... दयानन्द और आर्य समाज के वर्ण- ...और उनकी अजेयता पर अपनी अटूट ...वस्था तथा जात पात के भूसे के से बने ... पूरी तरह से भस्मसात् कर दिया है। ...वैज्ञानिक व्याख्या की तहे दिल से तारीफ़ ... सचाई का पक्ष लेने के लिये उसे हार्दिक ...यपि भागवतकार की उत्तम व्याख्या मात्र ... तोड़ने के लिये काफ़ी से अधिक है, तो ...ड़ेंगे। अब तक तो हमने केवल मात्र आप ...ा विषयक मंत्र की ऋषि तथा आर्यसमाज ...न तो आपकी व्याख्या को व्याकरण, सा- ...ह से कसके उसकी निस्सारता का नग्न- ...लेंगे।

कर सकते हैं। ऋषि दयानन्द तथा पुराणकार दोनों का आशय एक ही है, कि सेवा जिसे कि आधुनिक अर्थ शास्त्र की परिभाषा में श्रम Labour कहा जाता है—विराट् पुरुष के आलङ्कारिक आधिभौतिक देह में पाद को Represent करती है। इसी सेवावृत्ति से शूद्रवर्ण Labour Class का उद्भव हुआ। पुराणकार की इन उक्त दो व्याख्याओं को देख कर अब पाठक स्वयं अपने हृदय में विचार करें कि आर्यसमाज तथा ऋषि दयानन्द का वर्णव्यवस्था का सिद्धान्त कितना प्रबल तथा पुष्ट है, कि स्वयं पुराण भी उस का हृदय से समर्थन करते हैं। क्या आर्यसमाज और ऋषि दयानन्द के वर्णव्यवस्था विषयक विचारों की सत्यता तथा अजेयता का यह प्रबल प्रमाण नहीं है, कि स्वयं उस के प्रतिद्वन्द्वियों के परम माननीय ग्रन्थ भी इस विषय में उन के साथ पूर्णरूप से सहमत हैं। क्यों पंडितजी महाराज! आख़िर आप के परम माननीय आचार्य श्रीमद्भागवतकार को भी पुरुष सूक्त के वर्णव्यवस्था विषयक मन्त्र की वही व्याख्या करने के लिये बाधित होना पड़ा, जोकि आर्यसमाज तथा ऋषि दयानन्द की तरफ़ से पेश की जाती है। जान बूझ कर सचाई का ख़ून करना तथा झूठ को फैलाना सरल काम नहीं, अपितु टेढ़ी खीर है। पुराणकार की इस सारमय और वैज्ञानिक व्याख्या को देखने के अनन्तर क्या अब भी आप का नशा उतरा या नहीं? क्या आप अब भी वेदवक्ता ऋषि दयानन्द को संस्कृतानभिज्ञ तथा वेदों के परम रक्षक आर्यसमाज को केवल चन्द अंग्रेज़ी पढ़े लिखे धर्म-विमुख बाबुओं का समूह कहने की ढिठाई करेंगे? श्री मद्भागवतकार ने अपनी इस उदार और वैज्ञानिक व्याख्या द्वारा जहां ऋषि दयानन्द और आर्य समाज के वर्णव्यवस्था विषयक विचारों की सत्यता और उनकी अजेयता पर अपनी अटूट मुहर लगादी है, वहां पौराणिक वर्णव्यवस्था तथा जात पात के भूसे के से बने हुए नकली किले में आग लगा कर उसे पूरी तरह से भस्मसात् कर दिया है। हम भागवतकार की इस उदार और वैज्ञानिक व्याख्या की तहे दिल से तारीफ़ करते हैं तथा कम से कम इस अंश में सचाई का पक्ष लेने के लिये उसे हार्दिक बधाई देते हैं। पंडित जी महाराज! यद्यपि भागवतकार की उत्तम व्याख्या मात्र ही आप का जन्म विषयक झूठा घमंड तोड़ने के लिये काफ़ी से अधिक है, तो भी हम आपका पीछा इतना जल्दी न छोड़ेंगे। अब तक तो हमने केवल मात्र आप ही के घर से पुरुष सूक्त के वर्ण व्यवस्था विषयक मंत्र की ऋषि तथा आर्यसमाज कृत व्याख्या की पुष्टि की है। परन्तु हम तो आपकी व्याख्या को व्याकरण, साहित्य तथा तर्क की कसौटी पर पूरी तरह से कसके उसकी निस्सारता का नग्नचित्र सारे संसार के सामने खींच कर ही आराम लेंगे।

राजा वेन और नियोग

(श्री पं० विश्वनाथ आर्योपदेशक)

शास्त्र दृष्टि से नियोग कोई कर्तव्य-कर्म एवं आवश्यक अनुष्ठेय धर्म नहीं है। केवल एक आपद्धर्म है। महर्षि दयानन्द जी ने भी ऐसा ही प्रकट किया है, और आर्य समाज भी इसी प्रकार मानता है। अतएव इसके लिये अधिक कहने सुनने की आवश्यकता नहीं। परन्तु आर्य-समाज के विरोधिया ने नियोग को अपने आक्षेपों का एक विशेष लक्ष बनाया हुआ है। अत एव कभी २ लिखने की आवश्यकता पड़ जाती है।

शास्त्रार्थों में जब आर्य परिडत नियोग विषयक प्रमाणों की भरमार करके पौराणिकों के सब मार्ग रोक देते हैं तो वह मनुस्मृति के उन प्रक्षिप्त श्लोकों का आश्रय ढूंढते हैं जिन में बताया गया है कि नियोग राजा वेन ने चलाया। यह पशु धर्म है और वर्ण संकरता को फैलाने वाला है अतएव साधुजनों ने इसकी निंदा की है। इस विषय पर 'आर्य' के किसी गताङ्क में मनुस्मृति तथा अन्य शास्त्र प्रमाणों से उक्त श्लोकों को प्रक्षिप्त एवं नियोग पर किये आक्षेपों की निःसारता को विस्तार पूर्वक लिख चुके हैं। इस लेख में केवल इतना ही बताना है कि पुराणादि में जहां कहीं वेन की कथा आई है, उपर्युक्त कल्पना का किञ्चन्मात्र भी उल्लेख नहीं मिलता।

पुराणों के कथनानुसार राजा वेन मनु के कुल में उत्पन्न हुआ था और बड़ा पापी था। इसके राज्य में प्रजा को बड़ा कष्ट हुआ। धर्म का लोप हो गया और अधर्म बढ़ने लगा। अन्त को ऋषियों के कोप से इसका नाश हुआ और इस के शरीर को मथकर एक स्त्री पुरुष का जोड़ा निकाला गया। पुरुष का नाम पृथु, और स्त्री का नाम शतरूपा हुआ। पृथु विष्णु का अवतार था। इसने वेन के राज्य-सिंहासन पर आरूढ़ होकर धर्म की रक्षा की और गौ रूपिणी पृथिवी से अनेक पदार्थों को निकाला, इत्यादि। यद्यपि यह कथा असम्भव दोष युक्त है और वेन का मनु के कुल में उत्पन्न होना ही यह सिद्ध कर देता है कि मनुस्मृति में लिखे वेन सम्बन्धि श्लोक मनु भगवान् का उपदेश कदापि नहीं हो सकते।

अतएव यह नियोग आपद्धर्म के तत्व को न जानने वाले किसी पुरुष के नियोग निन्दा युक्त प्रक्षिप्त श्लोक हैं। परन्तु श्रीमद्भागवत् पुराण से भी वेन राजा के सम्बन्ध में कुछ श्लोक यहां उद्धृत कर दिये जाते हैं जिन से पाठक महानुभाव यह निश्चय कर सकेंगे कि वास्तव में नियोग निन्दा परक वेन सम्बन्धि मनुस्मृति के श्लोक पीछे की मिलावट हैं:—

न यष्टव्यं न दातव्यं न होतव्यं द्विजा क्वचित्।
इति न्यवारयद्धर्मं भेरी घोषेण सर्वशः ॥ भागवत् ४—१४-६

(अर्थ) राजा वेन ने अपने राज्य में ढंडोरा पिटवा दिया कि कोई पुरुष कहीं यज्ञ न करे। दान न दे, हवन न करे। जब इस प्रकार लोगों को धर्म कर्म से निवारण किया गया तब ऋषि मुनि वेन के पास गये, और इस आज्ञा को वापिस लेने के लिये कहा। बहुत कुछ समझाया परन्तु उसने नहीं माना। प्रत्युत अपने आपको सत्य पक्ष पर समझते हुए इस प्रकार उत्तर दियाः—

बालिशा बत यूयं वो अधर्मे धर्म मानिनः।
ये वृत्तिदं पतिं हित्वा जारं पतिमुपासते ॥ २३ ॥
को यज्ञ पुरुषो नाम यत्र वो भक्ति रीदृशी।
भर्तृ स्नेह विदूराणां यथा जारे कुयोषिताम् ॥ २५ ॥
विष्णुर्विरंची गिरिश इन्द्रो वायुर्यमो रविः।
पर्जन्यो धनदः सोमः क्षितिरग्नि रपांपति ॥ २६ ॥
एते चान्ये च विबुधाः प्रभाव वर शापयोः।
देहे भवन्ति नृपतेः सर्व देवमयो नृपः ॥ २७ ॥
तस्मान्मां कर्मभिर्विप्रा यजध्वं गत मत्सराः।
बलिं च मह्यं हरतमत्तोऽन्यः कोऽग्रभुक् पुमान् ॥ २८ ॥

(अर्थ) हे ऋषि मुनियो! तुम बालक हो जो अधर्म में धर्म का मान करते हो और जैसे कोई स्त्री, अपने पालन करने वाले पति को छोड़ कर जार पति की उपासना करे ऐसी ही तुम्हारी अवस्था है। २३। वह यज्ञ पुरुष कौन है जिसमें तुम्हारी इस प्रकार की भक्ति है। और यह भक्ति तुम्हारी ऐसी है जैसी पति स्नेह से रहित दुराचारिणी स्त्रिया की जार से होती हैं। २५। विष्णु, ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, वायु, यम, रवि, पर्जन्य, कुवेर, चन्द्रमा, पृथिवी, अग्नि, समुद्र, यह और

दूसरे देवताओं की उत्पत्ति वर अथवा शाप से हुई है। और यह सब देवता राजा के शरीर में भी विद्यमान हैं क्योंकि राजा सर्व देवमय है। २७। अतएव हे ब्राह्मणो ! अभिमान का त्याग करके अपने कर्मों से मेरी पूजा करो। मुझे बलि दो। मेरे बिना और कौन अग्रभुक् हो सकता है। २८।

उपर्युक्त श्लोकों को पढ़ कर यह विचार सर्वथा स्पष्ट हो जाता है कि वेन ने केवल यज्ञ, हवन और दान से लोगों को हटाया। नियोग प्रथा के चलाने का कहीं कुछ भी उल्लेख नहीं मिलता। प्रत्युत उस ने ब्राह्मणों को जो यह कहा है कि तुम्हारा कर्म ऐसा है, जैसे एक स्त्री अपने पति का त्याग करके जार का सेवन करती है इस से राजा वेन की दुराचार से घृणा का ही प्रमाण मिलता है ऐसी अवस्था में उस को दुराचार के रूप में नियोग की प्रथा चलाने वाला प्रकट करना अन्याय है। इस के अतिरिक्त वेन ने लोगों को जो यज्ञ, दान और हवन से रोका है यद्यपि हम भी इस को अनुचित समझते हैं, परन्तु उस ने जो हेतु उपस्थित किया है, कि देवता वर शाप से उत्पन्न हुए हैं अतएव उपास्य नहीं, पौराणिक सिद्धान्तों को मानते हुए इस का कोई उत्तर नहीं दिया जा सकता, और नहीं भागवत में ब्राह्मण लोग दे सके हैं। इस अवस्था में जब तक पौराणिक देवता वाद का त्याग करके वैदिक सिद्धान्त का आश्रय न लिया जावे, वेन के कथन को अधर्म भी कैसे कहा जा सकता है ? इन सब बातों पर विचार करने से यही परिणाम निकलता है, कि प्रथम तो यह कथा ही बनावटी है। यदि इस में कुछ सत्यता है भी तो नियोग के साथ इस का कुछ भी सम्बन्ध नहीं। और यह भी ज्ञात होता है कि मनुस्मृति में यह श्लोक बहुत निकट के समय में मिलाये गये। यदि भागवतादि पुराणों के बनने के समय यह श्लोक मनु में होते, तो वेन की कथा में इस का समावेश अवश्य कर लिया जाता। आश्चर्य तो यह है कि नियोग का वर्णन प्रायः सारे संस्कृत साहित्य में मिलता है, परन्तु राजा वेन के साथ सम्बन्ध रखने वाले नियोग के श्लोक मनुस्मृति के अतिरिक्त और कहीं नहीं देखे गये। अतएव मनुस्मृति में इन श्लोकों के मिलावटी होने में कुछ भी सन्देह शेष नहीं रहता।

———

वेदार्थ दीपक निरुक्त भाष्य (समालोचना)

(श्री० पं० चमूपति 'आर्य सेवक')

गतांक से आगे

जैसे 'शिपिविष्ट' शब्द के स्वकथित (प्रथम) अर्थ को औपमन्यव ने कुत्सित कहा है, "कुत्सितार्थीयं पूर्वं भवतीत्यौपमन्यवः...... शेप इव निर्वेष्टितः।" नि. ५. ८. ऐसे ही यास्क कृत 'जार आभगम्' का द्वितीय अर्थ भी कुत्सित और त्याज्य है। हां! यदि 'मनुष्य जारः' का अर्थ जरिता अर्थात् स्तोता हो तो और बात है। मंत्र में उपदेश है 'उदीरय पितरा भगम्' अर्थात् माता पिता को ऐश्वर्य दे, 'जार आ' जैसे सूर्य देता है। किस को? यहां भी 'पितरौ' कर्म है और उस का अर्थ है द्यावापृथिवी को। कैसी सुन्दर उपमा है? भग का अर्थ 'स्त्री-भग' केवल व्युत्पत्ति की समानता दर्शाने को किया गया है, अन्यथा वह इस मन्त्र में विवक्षित नहीं। स्त्री भगस्तथा स्याद् भजतेः। नि. ३. १६. यहां तथा का प्रयोग यही समानता दर्शाने को है।

हम वेद में अश्लीलता स्वीकार नहीं करते – न उपमा रूप में न उपदेश-रूप में। निरुक्त ४. १. 'पिता दुहितुर्गर्भमाधात्' का कैसा उत्तम व्याख्यान किया है कि पिता का अर्थ यहां पर्जन्य है और दुहिता का अर्थ पृथिवी। तद्यथाः—

"पिता दुहितुर्गर्भं दधाति पर्जन्यः पृथिव्याः। नि. ४. २१। इस स्थल पर दुर्गाचार्य की व्याख्या देखने योग्य है। कहता है:—"अत्र पृथिव्येव दुहितृ शब्देनोक्ता, सा हि द्युलोकात् 'दूरे निहिता'। अथवा सा हि द्युलोकं दोग्धीति-दुहिता—सा हि द्युलोकात्पतित मुदकमुपजीवति (एवा?) दूरे निहिता दोग्धि वा।" अर्थात् यहां दुहिता का अर्थ पृथिवी ही है, क्योंकि वह द्युलोक से दूर है अथवा वह द्युलोक से पानी दोहती अर्थात् उस के आश्रय से जीती है। दूर पड़ी हुई दोहती है। श्री परमानन्द जी ने इस भाव को विस्तार पूर्वक अपने लेख में प्रकाशित किया है।

वेद में ऐसे स्थलों पर दुहिता का अर्थ 'पृथिव्येव' है। पृथिवी के द्युलोक से पैदा होने की आलङ्कारिक कल्पना गौण है। इसी प्रकार 'स्वसुर्जारः'

(३. १६) में स्वसा का मुख्य अर्थ उषा है, बहिन नहीं। चाहे साहचर्य से और रसहरण से हो या सायणानुसार 'स्वयं सरण' से हो । 'भ्राता' का अर्थ भी 'भागहर्ता' वा 'भर्तव्य' अथवा 'भरणकर्ता' मुख्य है, भाई गौण। यही अभिप्राय यास्क का नि. ४. २६ में प्रतीत होता है। दुर्गाचार्य ने भी यहां भाई की कल्पना नहीं उठाई।

निरुक्त ४. २५ में श्री चन्द्रमणि जी ने 'स्वसारा' का अर्थ किया है 'स्वकीय परिधि में घूमते हुए।' यहां बन्धुत्व का गन्ध भी नहीं। यही वृत्ति ठीक है। यदि यमयमी सूक्त में 'स्वसा' का अर्थ 'स्वयं सरतीति' मान लेते तो ठीक था।

नि० ४. २१ में 'दुहिता' का नैरुक्त अर्थ पृथिवी दे कर पं० चन्द्रमणि जी ने पारिव्राजक अर्थ माता किया है। हमें यह संगत प्रतीत होता है। जब प्रसंग गर्भाधान का है तो पिता के साथ माता का साहचर्य युक्ति युक्त है। पृथिवी के सदृश वह दुहिता होगी। इसी प्रकार भ्राता और स्वसा नियोग तथा विवाह प्रकरण में पति पत्नी ही होंगे। भाष्य का अन्य मार्ग अनुसरण करने वाले वेद में अश्लीलता घुसेड़ते हैं जिस का वहां लेश भी नहीं।

वेदार्थ दीपक भाष्य के पृष्ठ २३५ पर 'शेप' की व्याख्या करते हुए लिखा है:—'उपस्थेन्द्रिय का स्पर्श विशेष महत्व रखता है'। यास्क का भाव यह है कि गुप्त इन्द्रिय मृदु होने से उस की स्पर्श की वेदना अत्यन्त उग्र होती है। अतः शेपतेः स्पृशति कर्मणः 'शेप' की सिद्धि की है। पण्डित जी हमारा अभिप्राय समझ जायंगे। अधिक विशद करने का यह विषय नहीं।

लिखने को अभी कुछ और भी बातें हैं परन्तु लेख पहिले ही इतना लंबा हो गया है कि लेखनी साग्रह विराम चाहती है। इतनी लंबी समालोचना लिखने का हमने इसलिये कष्ट उठाया है कि हम निरुक्त को वेदार्थ की कुञ्जी मानते हैं और श्री चन्द्रमणि जी का भाष्य अपने ढंग का अपूर्व भाष्य है। आर्य विद्वान् वेदांगों पर स्वतंत्र विचार करने लगे हैं, उस का यह प्रथम प्रमाण है। शताब्दी महोत्सव पर प्रकाशित हुए ग्रन्थों में से यह ग्रन्थ विद्वदुपयोगी ग्रन्थ था। उस पर केवल रैतिक सम्मति दे देना हम उस का अपमान समझते थे। निरुक्त पर आर्य भाष्य करने के लिये श्री चन्द्रमणि से अधिक योग्य कौन होता? हम उन के प्रयत्न का स्वागत करते हैं और आर्य विद्वानों को प्रेरणा

करते हैं कि इस का अध्ययन कर लेखक के प्रयत्न को सफल करें। सर्वांश में सहमति होनी असंभव है। जहां अध्येताओं की दृष्टि से सुधार अपेक्षित है, उस की ओर अङ्गुलिनिर्देश श्री चन्द्रमणि जी का अपमान नहीं किन्तु उन के अपने मनोरथ की पूर्ति है। इसी भाव से प्रेरित हो कर हमने यह पृष्ठ लिखे हैं।

यास्क का निरुक्त अपूर्ण है। हमारा विचार है कि इसी ढंग का एक पूर्ण निरुक्त संपादन करने की अवश्यकता है। ऋषि दयानन्द के वेद भाष्य को कोषरूप देने का यही प्रयोजन है। आ० प्र० नि० सभा इसे पूरा करा देगी तो विद्वानों का उपकार होगा। जो हो, पण्डित चन्द्रमणि जी ने ठीक दिशा में पग उठाया है और उन के प्रयत्न का हम हार्दिक स्वागत करते हैं।

———

टिप्पणि—इस भाग के साथ वेदार्थ-दीपक निरुक्त-भाष्य के पूर्वार्द्ध की समालोचना समाप्त होती है। दूसरा भाग ग्रन्थकर्ता ने इस लिये भेजने की कृपा नहीं की कि उनके विचार में 'आर्य' में संक्षिप्त समीक्षा निकलने के पीछे, जो पुस्तक के पक्ष में थी, नई विस्तृत समालोचना नहीं निकलनी चाहिये थी, या उस में यह न लिखना चाहिये था कि पुस्तक इस समालोचना के लिये हमें दी गई यदि पुस्तक-लेखक समालोचना का अभिप्राय विज्ञापन मात्र समझते हैं तो यह उन की भूल है। उत्तरार्ध की समालोचना समयाभाव के कारण न होसके तो और बात है वह इस लिये न रुकेगी कि पुस्तक बिना मूल्य प्राप्त नहीं हुआ। समालोचना साहित्य का अंग है और ग्रन्थ-लेखकों को उस का स्वागत करना चाहिये।

मुद्रित समालोचना में कुछ अशुद्धियां रही हैं, इनमें से जिन्हें हम अधिक हानिकर समझते हैं, उनका उल्लेख नीचे किया जाता है शेष विद्वान् स्वयं सुधार लें।

मास	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
कार्त्तिक	२२	३	यह .... की	—
	,,	२३-२४	यह ... होता	—
	२५	१३	inspection	instruction
मार्गशीर्ष	२०	१२	पद्यं	—
	२४	७	उदाहरण	उपहरण
माघ	३०	८	गणितओं	गणनाओं
	३१	२	श्रेष्ठतम कर्म	श्रेष्ठकर्मा
चैत्र	१८	३०	देर	वेद
	२१	६	मृयते	म्रियते
	२१	८	भग	'भग'
	,,	,,	पारजायिक	'जार' का 'पारजायिक'

महर्षि दयानन्द और शिक्षा

(श्री युधिष्ठिर विद्यालंकार, आचार्य, गुरुकुल हरियाना)

वे ही मनुष्य अपने जीवन को सफल कर सकते हैं, जो धर्म अर्थ काम और मोक्ष की प्राप्ति के लिये पूर्ण पुरुषार्थ करते हैं। हमारे शास्त्रों में अधर्म को अनर्थ, कुकाम और बन्ध का हेतु तथा धर्म को अर्थ, काम और मोक्ष का साधन बताया गया है, और यह भी कहा है कि जो मनुष्य धर्म को जानना चाहते हैं उनके लिये मनु जी की आज्ञानुसार वेद से बढ़कर प्रामाणिक पुस्तक कोई नहीं है। अत एव मनुष्य के लिये यह अत्यावश्यक है कि वह वेदों की शिक्षा से विभूषित हो। अब हमें यह जानना चाहिये कि "वेदों की शिक्षा ग्रहण करना" इसका अर्थ क्या है? इसके लिये पहिले हमें यह समझ लेना चाहिये कि शिक्षा किसे कहते हैं? महर्षि दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश के अन्त में अपने मन्तव्यों को प्रकाशित करते हुए शिक्षा का लक्षण यह किया है कि 'जिससे विद्या, सभ्यता धर्म्मात्मता आदि की बढ़ती हो और अविद्या आदि दोष छूटे उस को शिक्षा कहते हैं।"

शिक्षा दो प्रकार की होती है (१) विद्याभ्यास की शिक्षा (२) व्रताभ्यास की शिक्षा। जिस से अविद्या सम्बधी दोष छूटें और विद्या सम्बधी गुणों की वृद्धि हो उसका नाम विद्याभ्यास की शिक्षा है। और जिससे असभ्यता अधर्मात्मता अजितेन्द्रियता आदि दोष छूटें और सभ्यता धर्मात्मता जितेन्द्रियता आदि गुणों की वृद्धि हो उसे व्रताभ्यास (सदाचार) की शिक्षा कहते हैं। वेदों के अर्थों को भली भांति समझने से ही अविद्या सम्बधी दोष छूट कर विद्या सम्बधी गुणों की वृद्धि हो सकती है। और वेदों की आज्ञा के अनुसार ठीक २ आचरण करने से ही असभ्यता आदि दोष नष्ट होकर सभ्यता आदि गुणों की वृद्धि हो सकती है। इसलिये विद्याभ्यास की शिक्षा को सम्पूर्ण करने का साधन वेदों के अर्थों को भलीभांति समझना है और व्रताभ्यास की शिक्षा को सम्पूर्ण करने का साधन यह है कि वेदों की आज्ञा के अनुसार ठीक २ आचरण किया जावे। ✓

महर्षि जी ने वेदों की शिक्षा ग्रहण करने के विषय में उपदेश देते हुए सत्यार्थप्रकाश और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में एक वेद मन्त्र का प्रमाण

देकर एक अत्यन्त कल्याणकारक और सर्वदा स्मरण रखने योग्य सचाई को प्रकाशित किया है। वह मन्त्र निम्नलिखित है—

ओ३म् ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अधिविश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥

ऋग्वेद मं० १। सू० १६४। मं० ३९ ॥

इसका भावार्थ समझाते हुए उन्होंने लिखा है कि जो मनुष्य पाठ-मात्र भी नहीं जानता उसकी अपेक्षा वह अधिक श्रेष्ठ है जो वेद पाठमात्र जानता है। वेद पाठमात्र जानने वाले की अपेक्षा वेदों के अर्थों का जानने वाला श्रेष्ठतर है और अर्थों को जानने वाले की अपेक्षा वेदों की आज्ञा के अनुसार आचरण करने वाला अधिक गुणवान् है। और आचरण करने वालों में भी सब से उत्तम वह है जिसने वेदों की शिक्षा के द्वारा पूर्ण रूप से सुशिक्षित होकर परमात्मा का ज्ञान वा दर्शन कर लिया है।

इस विषय में मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि महर्षि जी ने सत्यार्थप्रकाश संस्कारविधि, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आदि में वेदों की शिक्षा पूर्ण-रूप से ग्रहण करने की जो रीति बतलाई है वही सब से उत्तम है। हमें अपने आर्य्य शिक्षणालयों तथा गुरुकुलों में उसी को प्रचलित करना चाहिये, क्यों कि महर्षिजी ही आर्य्य जाति के सब से बड़े उद्धारक हैं, वैदिक शिक्षा के तत्व वेत्ताओं में शिरोमणि हैं और वर्तमान युग में सांगोपांग वेद के अद्वितीय विद्वान् हैं। ऐसे सुयोग्य महापुरुष की निर्दिष्ट की हुई रीति ही सब से उत्तम हो सकती है।

उन्होंने शिक्षा की जो रीति बतलाई है उसे दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। (१) पाठ विधि (२) व्यवहार विधि। जिस रीति से ब्रह्मचारियों को वेदों के अर्थों का ज्ञान भली भान्ति हो सकता है उसे पाठ-विधि कहते हैं। और जिस रीति से उन्हें वेदों की आज्ञा के अनुसार आचरण करने का अभ्यास हो सकता है उसे व्यवहार-विधि कहते हैं। यदि हम संस्कार विधि के वेदारम्भ-संस्कार प्रकरण को और सत्यार्थप्रकाश के द्वितीय, तृतीय समुल्लास को विचार-पूर्वक पढ़ेंगे तो पता लगेगा कि इन में शिक्षा का वर्णन करते हुए केवल पाठ विधि पर ही हमारा ध्यान आकर्षित नहीं किया किन्तु व्यवहार विधि पर भी बहुत अधिक बल दिया है। इसका कारण यह है कि शिक्षा की पूर्णता के लिये पाठविधि और व्यवहार विधि दोनों की आवश्यकता है।

ऐसी पूर्ण शिक्षा केवल गुरुकुलों में ही हो सकती है, स्कूलों और कलेजों में कदापि नहीं। अतएव सब आर्य भाइयों को चाहिये कि जब सन्तान ८ वर्ष की हो जावे तो उन्हें स्कूलों में न भेजा करें, किन्तु लड़कों को कुमार गुरुकुलों में भेज दिया करें। और गुरुकुल के संचालकों को चाहिये कि वे अपने २ गुरुकुल में विद्याभ्यास और व्रताभ्यास दोनों प्रकार की शिक्षा उसी रीति से प्रारम्भ कर देवें जिस रीति से महर्षि जी ने अपने ग्रन्थों में प्रतिपादित की है। इस के लिये प्रत्येक गुरुकुल में यह अनिवार्य्य नियम होना चाहिये कि जो धार्मिक विद्वान् महानुभाव ब्रह्मचारियों को वेदों के अर्थों का ज्ञान कराने के लिये वेदांग उपांग आदि की शिक्षा दें वे उनका पूर्ण कल्याण करने के भाव से प्रेरित होकर उनको अपने न्याय-पूर्ण निरीक्षण में रख कर वेद प्रतिपादित आज्ञाओं के अनुसार नित्य कर्मानुष्ठान, सत्यभाषण, ब्रह्मचर्य, वीर्य रक्षा, अहिंसा, ईश्वर भक्ति, देश सेवा आदि उत्तमोत्तम व्यवहारों की शिक्षा भी अवश्य देते रहें। और उत्तम व्यवहारों की शिक्षा देने के लिये ब्रह्मचारियों का निरीक्षण करें। ये पढ़ाने का कार्य्य भी अवश्य करें। इसी रीति से ब्रह्मचारी पूर्ण विद्वान् और पूर्ण धार्मिक होकर आदर्श विद्या व्रतस्नातक बन सकते हैं।

इसी लिये महर्षि जी ने सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में यह आज्ञा दी है कि "जो अध्यापक पुरुष वा स्त्री दुष्टाचारी हों उन से शिक्षा न दिलावें किन्तु जो पूर्ण विद्या युक्त धार्मिक हों वे ही पढ़ाने और शिक्षा देने योग्य हैं"।

महर्षि जी की यह प्रबल इच्छा थी कि आर्य शिक्षणालयों वा गुरुकुलों में उन्हीं की निर्दिष्ट की हुई पाठ विधि और व्यवहार विधि प्रचलित हो। क्योंकि उन्हों ने इस विषय का वर्णन अपने बनाये बहुत से ग्रन्थों में किया है और इसी रीति से शिक्षा देने के लिये बलपूर्वक अनुरोध भी किया है (देखो स. प्र. समु. ३, संस्कार विधि वेदारम्भ प्रकरण)

प्रत्येक गुरुकुल में पाठ विधि और व्यवहार विधि ऐसी होनी चाहिये जिस के द्वारा ब्रह्मचारी अपनी उन सब प्रतिज्ञाओं का पालन कर सकें जो उन्होंने गुरुकुल में प्रविष्ट होने से पूर्व वेदारम्भ संस्कार के समय की थीं और जिन की पूर्ति के लिये ही वे गुरुकुल में प्रविष्ट हुए थे और साथ ही शिक्षक महानुभावों ने जो प्रतिज्ञाएं की थीं उनका भी परिपालन हो सके। इस के लिए महर्षि निर्दिष्ट पाठ विधि और व्यवहार विधि ही ऐसी सर्वांग सम्पूर्ण है जिस के द्वारा उन सब प्रतिज्ञाओं का पालन हो सकता है जो उस समय ब्रह्मचारियों और शिक्षक महानुभावों ने की थीं।

उस पाठ विधि का संक्षिप्त स्वरूप निम्नलिखित है:—

पहले ब्रह्मचारी शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष इन पांच वेदांगों को क्रम से पढ़े। फिर पूर्व मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग सांख्य,—इन पांच उपांगों को क्रमशः पढ़ कर ईश, केन कठ, प्रश्न, मुण्डक, माडूक्य, ऐतरेयय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक—इन दश उपनिषदों का अध्ययन करके वेदान्त दर्शन पढ़े (पूर्व मीमांसा आदि छः उपांग व छः दर्शन कल्प नामक वेदांग के अन्तर्गत हैं और ब्राह्मण ग्रन्थों का नाम भी कल्प है) तदनन्तर ऐतरेय ब्राह्मण सहित ऋग्वेद का, शतपथ ब्राह्मण सहित यजुर्वेद का साम ब्राह्मण सहित साम वेद का और गोपथ ब्राह्मण सहित अथर्ववेद का क्रम पूर्वक अध्ययन करें। और तत् पश्चात् आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद और अर्थवेद (शिल्प शास्त्र) की शिक्षा को क्रमशः ग्रहण करें। साथ ही उन्हों ने यह भी बतलाया है कि इन सब ग्रन्थों को ऋषिकृत व्याख्याओं की सहायता से ही पढ़ना उचित है और अनार्ष ग्रंथों को सर्वथा परित्याज्य वा जाल ग्रन्थ समझ कर उनका अध्ययन वा अध्यापन कदापि न करना चाहिये, क्योंकि ऋषि बड़े विद्वान् सब शास्त्रों को जानने वाले और धर्मात्मा थे और अनृषि अर्थात् जो अल्प शास्त्र पढ़े हैं और जिन का आत्मा पक्षपात सहित है उन के बनाये ग्रन्थ भी वैसे ही हैं। इस प्रकार से महर्षि निर्दिष्ट पाठ विधि पढ़ कर ब्रह्मचारी वेदों के अर्थों को भली भान्ति समझ सकते हैं और आदर्श विद्या स्नातक बन सकते हैं।

वेदारम्भ संस्कार के समय ब्रह्मचारी पिता और आचार्य से ब्रह्मचर्य, सत्यभाषण आदि विषयक उपदेश सुन कर हाथ जोड़ प्रतिज्ञा करता है कि "जैसा आपने उपदेश किया वैसा ही करूंगा"। संस्कार विधि के वेदारम्भ प्रकरण और सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास में आचार्य्य महोदय उन सब उत्तम व्यवहारों की नियम पूर्वक शिक्षा देते हैं जिन के द्वारा ब्रह्मचारी अपनी वह प्रतिज्ञा पालन कर सकता है। इस प्रकार से महर्षि प्रतिपादित व्यवहार विधि के द्वारा सुशिक्षित हो कर ब्रह्मचारी वेदों की आज्ञा के अनुसार ठीक २ आचरण कर सकते हैं और आदर्श व्रत स्नातक बन सकते हैं।

अत एव सब आर्य भाईयों को यह दृढ़ निश्चय करना चाहिये कि हम महर्षि दयानन्द जी की बतलाई हुई पाठ विधि और व्यवहार विधि के द्वारा ही अपनी सन्तान को वेदों की सर्वांग-सम्पूर्ण शिक्षा से विभूषित कर सकते हैं और ऐसा निश्चय करके हमें अपने आर्य शिक्षणालयों और गुरुकुलों में यही आदर्श पाठ विधि और आदर्श व्यवहार विधि प्रचलित करनी चाहिये।

बुद्धि की छुरी।

(श्री दर्शक)

(१)

महाशय अमीरचन्द एकौंटेंट जेनरल के हेडक्लर्क हैं। पुराने कर्मचारी हैं। आफ्रिका में उस समय आए जब अभी यह काला महादेश dark continent बसना आरम्भ हुआ था। इन का मान है, आदर है। यूरोपियन अफ़सर इन्हें विश्वास की दृष्टि से देखते हैं। एकौंटेंट जेनरल का नाम ही नाम है। हस्ताक्षर वह करता है, और इसी कष्ट के मूल्य रूप में वेतन भी उसे मिलता है। परन्तु एकौंट विभाग का भला बुरा, काला चिट्ठा सब अमीरचन्द के हाथ में है। जनता भी इन की आयु, अनुभव, शील, दान इत्यादि गुणों पर मोहित है।

इण्डिया से एक नवयुवक आया। नाम था राम। उस ने मैट्रिक्यूलेशन पास किया है। कालेज में भर्ती हुआ परन्तु रुग्ण होकर लौट आया। अब दफ़्तर में लेखक होना चाहता है। लड़का होनहार है। अमीरचन्द की दृष्टि में जच चुका है। वह उसे पहिले ही वह वेतन और पदवी देना चाहते हैं जो साधारणतया वर्ष दो वर्ष के सेवक को मिलती है।

अमीरचन्द—बेटा! तुम्हारा प्रार्थना-पत्र ठीक है। इस में एक पंक्ति और बढ़ा दो। लिख दो एंट्रेंस करने के पीछे मैं इण्डिया में वर्ष भर अस्थायी लेखक रहा हूं और गणक-परीक्षा भी पास की है।

राम—श्रीमन्! इस के लिये तो प्रमाणपत्र चाहिये।

अमीर—प्रमाणित मैं कर दूंगा। (कुछ सोच कर) अच्छा! 'परीक्षा पास की है' न लिखो, 'कार्य जानता हूं' लिख दो।

राम—है तो यह भी असत्य।

अमीर - तुम्हें संसार का अनुभव नहीं। यह दो चार शब्द लिख देने से दुगना वेतन मिल जायगा। आरम्भ उत्कृष्ट हो तो आगे सारा जीवन उत्कृष्ट रहता है।

इतने में इसी प्रयोजन का प्रार्थना-पत्र टाइप कराया जा चुका था। राम को

हस्ताक्षर के लिये कहा गया परन्तु उस ने थोड़ी देर सोच कर इनकार ही कर दिया। म. अमीरचन्द मुस्कराए और चुप रहे।

(२)

राम को एकौंट आफ़िस में स्थान मिल गया परन्तु उस का हृदय एक ही दो वर्ष में वहां के कार्य से ऊब गया। म. अमीरचन्द ने उसे समझाने का यत्न किया परन्तु वह सीधे (असत्य के) रास्ते पर न आया। उस के नियम-प्रेम के लिये म. अमीरचन्द के हृदय में आदर था परन्तु कार्यालय के व्यापार में उस पर विश्वास न किया जा सकता था। वह किसी से कहता कुछ न था तो भी एक कुढ़ने वाला साथी रोज़ की आफ़त है। पैंतालीस वर्ष के बूढ़े को पचीस वर्ष का युवक धर्म का उपदेश सुनाया करे— यह प्रथा कहां तक चल सकती थी। राम ने अन्त को मौन साध लिया। दोनों एक दूसरे को नमस्ते २ कहते और प्रतीत यह होता कि अब दोनों के बीच में मर्यादा की दीवार है। एक दिन राम ने त्याग-पत्र दे दिया। अमीरचन्द की आंखों में आंसू आगए। हृदय राम से प्रेम करता था परन्तु मस्तिष्क त्यागपत्र की प्रतीक्षा में था कुछ दिन ननुनच हुआ पर जीत मस्तिष्क की हुई।

अमीरचन्द—अपने निर्वाह का कुछ प्रबन्ध भी किया है ? त्याग-पत्र तो आज कल स्वीकार हुआ समझो। आगे क्या करने की ठानी है ?

राम—परमात्मा पालक हैं। दांत दिये हैं तो अन्न भी देंगे।

अमीरचन्द—यह उपदेशकों की बातें हैं। वेदि पर से शोभा देती हैं। संसार में रत्ती भर भी लागू नहीं।

राम—कल तो यह भजन गाते २ आप ने मेज़ तोड़ दिया था।

अमीर—तोड़ा था, बनाया तो नहीं। अनुभव की कमी है।

राम अब तक मुस्करा रहा था, झट गम्भीर होगया। चुपके से उठा और अपने घर एकान्त में जा बैठा।

(३)

दो महीने के पीछे पता लगा कि राम युगांडे जाता है। वहां जनवरी से मार्च तक कपास का मौसम होता है। शासक वर्ग की ओर से तिथि नियत कर दी जाती है फिर कृषकों का तांता बँध जाता है जंगल के बीचों बीच स्टोर बने रहते हैं। वहां नीग्रो आते हैं और अपने कपास के गट्ठे तोल २ कर देते जाते हैं।

मूल्य नक़द मिलता है। दिन रात यह कार्य चलता है।

राम ने सुना था, व्यापार नौकरी से उत्कृष्ट है। इस में किसी की अधीनता नहीं। सन्तोष से कार्य किया जाए तो सदाचार-पूर्वक निर्वाह भी किया जा सकता है। यही लक्ष्य रख कर वह नवम्बर मास में युगांडा पहुंच गया था। धनेश्वर शर्मा गुजरात के एक बड़े सेठ थे। धर्मात्मा प्रसिद्ध थे। स्थानीय हिन्दू सभा के प्रमुख थे। राम ने सीधा उन के घर का रास्ता लिया। महा० अमीरचन्द के पत्र ने अपरिचय में परिचय का रास्ता पैदा कर दिया था। उस रास्ते पर सफलता-पूर्वक चल खड़ा होना राम के अपने आचरण पर निर्भर था। थोड़े दिनों में यह सेठ जी का भी प्रेम--पात्र बन गया। उन्होंने ऋतु आरंभ होते ही एक स्टोर का आधिपत्य इसे दे दिया। ऋतु अनुकूल थी। उपज अधिक हुई थी। राम का स्टोर ऐसे स्थान पर था जहां से चारों ओर मीलों तक और स्टोर न था। महीना भर में इन के पास इतनी कपास हो गई कि तीन महीने में भी और किसी स्टोर में न हो सकती थी।

एक दिन सेठ जी स्टोरों का दौरा करते राम के स्टोर पर जा निकले। राम को कार्य से अवकाश न था। सेवकों द्वारा सेठ जी की शुश्रूषा कराई गई। सेठ जी ने राम को कार्य करता देखने की इच्छा प्रकट की। कोई आधा घण्टा उस के पास बैठे रहे।

रात के बारह बजे राम कपास के क्रय-कार्य से निवृत्त हुआ और सोने के लिये आया तो सेठ जी को जागता पाया। राम ने उन्हें प्रणाम किया और विश्राम लेने को कहा। सेठ जी चिन्तित प्रतीत होते थे।

सेठ जी—राम! इस तरह कार्य न चलेगा।

राम विस्मित रह गया। उसे अभिमान था कि उस ने दिन रात एक करके इतनी कपास इकट्ठी की है जो सेठ जी के सारे जीवन में एक बार कभी न हुई होगी। समझा स्यात् कार्य की अति से रोकना चाहते हैं।

राम—महाराज! यही तो काम के दिन हैं। फिर आराम ही आराम है।

सेठ—इसी प्रकार मैं भी लहू पसीना एक किया करता था तब जाके इतना धन संचित हुआ है। परन्तु परिश्रम के साथ गुर भी तो चाहिये।

राम—वह क्या? महाराज!

सेठ—नीग्रोओं को पूरा मूल्य नहीं दिया करते। सौ शिलिंग देते हुए दस अपनी मुट्ठी में रख लिया करते हैं। इन्हें गिनना थोड़ा आता है? और आप भी तो इस रेलपेल में यह गिन सकते भी कहां हैं? जितनी कपास तुम ने ख़रीदी है, यदि समझदार होते तो दो और मास में एक लाख शिलिंग का लाभ भला कोई बड़ी बात थी? पचास हज़ार हमें मिल जाता, पचास हज़ार के तुम मालिक होते। अगले वर्ष तुम छोटे सेठ होते, हम बड़े।

राम—(मुख नीचा किये हुए) यह न्याय तो नहीं। गरीब का गला काटना क्रूर हिंसा है।

सेठ—आज राज्य ही हिंसा का है। क्या यह गोरे न्याय कर रहे हैं जो इस सारे देश को ही दबोचे बैठे हैं? किन की भूमि है, कौन मालिक है। ढकोसला यह है कि हम इन के रक्षक हैं।

राम—हिन्दी इस नीति का विरोध करते हैं।

सेठ—इस लिये कि यह नीति गोरों की है। हमने कभी अपने आप को काले लोगों का रक्षक नहीं कहा। हम तो केवल इन का पक्ष लेते हैं। संरक्षक बनने की मज़दूरी है देश का राज्य। पक्ष लेने की मज़दूरी सौ शिलिंग की जगह छनव्वे शिलिंग देना मात्र। यह राजनीति के सूत्र हैं जो तुम्हारी समझ में नहीं आ सकते। अभी दो मास और शेष हैं, इनमें घाटा पूरा कर सकते हो। इन दो मासों के लिये कृपया यह न्याय वृत्ति छोड़ देना। न्याय की दुहाई के लिये नौ मास कुछ कम समय नहीं। हमारा व्यापार का अनुभव है, मुफ्त में सेठ नहीं हुए।

दूसरे दिन राम ने परीक्षार्थ सेठजी के गुर बर्त देखना चाहा। एक नीग्रो से पूरी कपास लेकर १०० की जगह ९० शिलिंग उस की हथेली पर धरे। नीग्रो दो ही चार पग आगे गया था कि राम की दृष्टि उस के नंगे काले भोले अपढ़ शरीर के साथ २ गई। उसे दया आई कि इस पशु सदृश सरल भिखारी का माल रख लेना कौन मनुष्यता है? आंखें आंसुओं से डबडबा गईं। पूर्व इस के कि नए विक्रेता के माल को हाथ लगाता उस ने जाते हुए लंगूर को बुलाया। उसे १० शिलिंग और दिये। देखने वाले दंग रह गए। उन्हों ने यह सद्व्यवहार आज तक न देखा था। दांव पेच को न समझते थे। न उस का प्रतीकार हो उन के हाथ में था। इतना ज्ञान था कि ठगी होती है, हम ठगे जाने को और स्टोर वाले ठगने को बने हैं। आज सब के हृदय गद्गद हो कर नाच उठे।

राम सारे मौसम में ६००० शिलिंग से अधिक लाभ न दिखा सका। इस में से ३००० इसे मिला और शेष सेठ जी के घर गया। यह कमाई तीन मास की नहीं, वर्ष भर की समझनो चाहिये क्योंकि युगांडा में ३ मास कमाने के और ९ खाने के होते हैं।

राम इतने में सन्तुष्ट था परन्तु सेठ के कलेजे पर सांप लोट गया। सेठ जी का हृदय इस से प्यार करता था परन्तु मस्तिष्क नौकरी से जवाब दे रहा था। राम ने तेवर ताड़ लिये और चल खड़ा हुआ।

(४)

राम अब देश-सुधारकों में भर्ती हुआ। इंडियन एसोसियेशन शिथिल अवस्था में थी। उस का मन्त्री हो गया। गांव २ में यात्रा आरम्भ की और काली और भूरी जातियों के दुखड़ों पर वक्तृताएं देने लगा। राम बहुत विद्वान् न था। उस की वक्तृता उस के दिमाग से नहीं, दिल से निकलती थी। एक दिन कंपाले में लेक्चर किया जिस का विषय था 'काली चमड़ी'। जब टांगानीका के कोढ़ों, केनिया के कपांडे, युगांडा के सिफ़िलिस का वर्णन किया, श्रोताओं को आठ २ आंसू रुलाया। नीग्रोओं की पुरानी सभ्यता का, उन के नष्ट हुए विज्ञान का, उन की पुरातन शासन-प्रणाली का स्वयं पाश्चात्यों के प्रमाण से वर्णन किया। वर्तमान गिरावट का उत्तरदाता वर्तमान राज्य की लोलुपता को निश्चित किया। शोर उठा 'काली चमड़ी की जय'। राम को सुहैली भाषा आती थी। बीच २ में उस का प्रयोग भी किया था। श्याम वर्ण लोग फड़क उठे। उन्हों ने टोपियां उछालीं, उछले, कूदे।

इधर व्याख्यान समाप्त हुआ, उधर राम को हथकड़ी लग गई। ६ मास का कारावास हुआ।

यही दिन भारत में असहयोग-आन्दोलन के थे। उसकी छाया आफ़्रिका में भी पड़ी थी। कितने खादी-भाण्डार खुल चुके थे। नेटिवों को कातना सिखाया गया था। कपास की भूमि में इस आन्दोलन की सफलता में सन्देह ही क्या था? गवर्नमेंट ने आज्ञा दे दी कि कपास का रोकने वाला अपराधी होगा। मेडिकल विभाग की ओर से घोषणा हुई कि कपास के इकट्ठे पड़े रहने से महामारी आती है। स्वास्थ्य रक्षा के लिये आवश्यक होगा कि कपास का निर्यात चालू रहे। वह बात न हो सकी जो नेता लोग चाहते थे। तोभी कई स्टोर एसोसियेशन की

ओर से स्थापित हुए। उनसे खादी बुनी गई। धन आया और आन्दोलन तीव्र हुआ। कितने गण्य मान्य लोग जेलों में ठोंसे गये।

अब राम अकेला न था। पकड़े हुए नेताओं ने जेल में ही एक संघ बना लिया था। मौज से रहते थे। कारावास क्या था, तीर्थ यात्रा ही तो थी।

राम कलेजा थाम कर रह गया, जब उसे पता लगा कि एसोसियेशन के स्टोरों में भी वही शिलिंगों की काट रहा करती थी जो दूसरे व्यापारियों में। खादी भाण्डारों की आर्थिक समृद्धि का कारण नीग्रोओं का परिश्रम ही नहीं, अपितु उनका अज्ञात त्याग—धन से उपराम—भी था। उन्हें पूरी कमाई न देकर कुछ हिस्सा भण्डार के लिये रख लिया जाता था। प्रबन्धक लोगों का निर्वाह न हो सकता यदि नीग्रोओं की जेबें काट कर उनका घर पूरा न किया जाता।

राम कांप गया जब उसके एक राजनैतिक सहकारी ने उसे उत्तर देते हुए कहा कि आफ्रिकनों का जीवन का ढंग सस्ता है, इस से थोड़ा सा रुपया कम पाने से उनकी कुछ हानि नहीं होती। क्या यह वही युक्ति नहीं कि भारतीयों का स्टैंडर्ड ओफ लिविंग Standard of Living (जीवन-निर्वाह का आदर्श) छोटा है, इसलिये इन्हें कम वेतन मिलना चाहिये। सहसा उसके मुख से निकला:— हम कहां गोरों से अधिक दयालु हैं। दोष रंग का नहीं, मनुष्यता का है। बड़ा पशु छोटे पशु को मारता है तो अधिक बुद्धिशाली कम बुद्धिशाली का चुपके से ख़ून चूसता है। इसकी छुरी लोहे की नहीं, इसके नख हड्डी के नहीं, बुद्धि के हैं, अनुभव के हैं। स्वराज्य ढोंग है, न्याय छल है, समानता स्वांग मात्र है।

राम कई रातें उनींदा रहा जब अपने राजनैतिक कैदी भाइयों को देखता, उसकी आंखों में खून आता। उसे देख सब सहम जाते और बात करने का साहस न कर सकते।

(५)

राम जेल से निकलते ही नीग्रोओं में चला गया। उन्हीं का खाना खाता, उन्हीं का पहरावा पहिनता। कपास का मौसम आया और इसने भी कृषि की। उन्हीं के साथ पंक्ति बांध स्टोर के द्वार पर खड़ा होता। अपना गट्ठा उतारता, सौ के नौवे शिलिंग लेता और पीठ पीछे से धकेला जाकर आगे जा खड़ा होता।

इस जीवन में राम को पहिले तो कष्ट अनुभव होता रहा। नंगा रहने से लजाता। चितिज उपज खाकर रोगी हो जाता। पांव में छाले पड़े रहते। सिर में पीड़ा उठती। परन्तु ज्यों २ समय बीतता गया, राम को इस बनेले जीवन का अभ्यास होता गया। उसे गोरों और भूरों द्वारा नित्यं प्रति प्राप्त होने वाला अपमान अत्यन्त असह्य था। किसी २ समय हृदय से कठोर वेदना उठती कि मैं मनुष्य होकर पशुओं की भान्ति लताड़ा जा रहा हूँ। यदि यह विचार शान्त न करता कि मैं लीला ही तो कर रहा हूं, नीग्रो नहीं, परन्तु नीग्रोओं का नाटक करता हूं, तो कभी का यह जीवन त्याग देता। वास्तव में भारतीय रहना उसे पसन्द न था। वह या तो गोरा होकर मनुष्य के पूर्ण अधिकार मांगना चाहता था या काला होकर पशु सदृश पूर्ण अत्याचार उठाने का इच्छुक था। पूर्वोक्त स्थिति अप्राप्य थी, शेषोक्त में प्रयास था परन्तु असंभावना न थी। त्रिशंकु की तरह बीच में लटकना अपनी ही दृष्टि में उपहास का पात्र रहना था।

कपास का मौसम समाप्त हुआ और राम नीग्रोओं में मिला हुआ उन्हें शिक्षित करने का यत्न करने लगा। उनके साथ खेलता, नाचता, गाता, कूदता, बातों २ में एक दो गिनना सिखलाता। उन्हीं की भाषा में उन्हें रोचक साहित्य का रसिक बनाने लगा।

इस समय राम ने एक पाठशाला खोल रखी है जो वर्ष में तीन मास बन्द रहती है और शेष नौ महीने किसी दिन किसी समय और किसी दिन किसी समय लग जाती है। उसके कार्य-क्रम में खेल कूद, गाना बजाना, पढ़ना लिखना इत्यादि विषय हैं। छात्रों का न पहरावा बदला न भोजन। राम जङ्गलियों में जङ्गली हो गया है। उसने संसार का रहा सहा अनुभव खो दिया है। पूछो, तेरे जीवन का उद्देश्य क्या है? कभी कहता है, 'अनुभव का नाश करता हूं' और कभी 'बुद्धि की छुरी को कुण्ठित'।

परलोक क्या है ?

(श्री० केशव देव 'ज्ञानी' सिद्धान्तालङ्कार, मद्रास)

संस्कृत के "मृत्यु" और "मर्त्य" शब्द एक ही धातु से बने हैं। हमारे पूर्वजों को मौत से शायद इतना भय न होता था, जितना कि आज कल हमें। मौत का नाम लिया नहीं कि घर की बूढ़ी स्त्रियें आंखें फाड़ कर हमारी तरफ़ देखने लगती हैं, मानो उन्होंने न मरने का ठेका ही ले लिया है। परन्तु हमारे पूर्व पुरुषों को "मरण शरीर धारियों का सहज स्वभाव प्रतीत होता था, और जीवन एक विकृति या अस्वाभाविक-कार्य"

शायद इसी लिये हमारे इस 'भू-लोक' को मर्त्य-लोक के नाम से पुकारते हैं, क्योंकि यहां पर मर्त्यों या मनुष्यों का निवास है। वेद में आत्मा को 'अमृत' शब्द से कहा है। तब प्रश्न होता है कि 'अमृत' का 'मृत्यु' से क्या सम्बन्ध ?

* * * * *

साधारणतया यह समझा जाता है कि पश्चिमीय विद्वान् (विशेषतया वैज्ञानिक) सब नास्तिक हैं। न तो वे किसी परमात्मा की हस्ती में विश्वास करते हैं और न जीवात्मा की। उनके लिये यह शरीर भौतिक-तत्त्व—जिसे वे Matter या Energy कहते हैं—का बना है। और इसी के स्थूल भाग को 'देह' और सूक्ष्म को क्रमशः मन, बुद्धि और चैतन्य कहते हैं। परन्तु अभी उस दिन हम एक प्रसिद्ध पश्चिमीय वैज्ञानिक की लिखी पुस्तक पढ़ रहे थे, जिसका शीर्षक है "What do we know about the Beyond"। उसमें एक स्थान पर लेखक लिखता है कि

"Long observation has shown clearly that there exists in us something unknown, which has been systematically denied up to the present in all scientific theories, and that this something survives the disintegration of our earthly bodies and the transformation of our material molecules, which, by the way, from a purely scientific view, are also indestructible. Wheather we call it a principle, element, pychic-atom, action or spirit, there is no denying that, this unknown something really exists."

अर्थात्, चिरकाल के निरीक्षण से पता चलता है कि हमारे अन्दर कोई ऐसी चीज़ मौजूद है, जिस का अब तक वैज्ञानिक लोग निषेध करते आए हैं, परन्तु जो इस शारीरिक परमाणुओं के जुदा हो जाने पर भी वर्त्तमान रहती है, और जो कि वैज्ञानिक दृष्टि से 'अमर' है। चाहे हम इसे 'नियम,' 'तत्त्व' या 'जीवात्मा' कहें परन्तु इस बात से निषेध नहीं हो सकता कि कोई ऐसी चीज़ है अवश्य"।

* * * * *

बृहदारण्यक उपनिषद् में राजा जनक के ऋषि याज्ञवल्क्य से यह पूछने पर कि "किं ज्योतिरयं पुरुष इति ?" ऋषि क्रमशः उत्तर देता है" आदित्यः चन्द्रमा—अग्निः—वाक्—आत्मा एव अस्य ज्योतिः सम्राट्! आत्मा एव अयं आस्ते, पल्ययते, कर्म कुरुते, विपल्येति इति ।"

फिर आगे चल कर उसी आत्म-स्वरूप का वर्णन करते हुए कहते हैं कि "यही विज्ञानमय आत्मा प्राणों में, हृदय में और अन्तरिन्द्रियों में विद्यमान है। और यह आत्मा ही समान रूप से दोनों लोकों में संचरण करता है। वह जिस समय स्वप्नावस्था में क्रीड़ा करता हुआ मनुष्य-देह को प्राप्त करता है सब विषयों से सम्बद्ध हो जाता है। और फिर जब शरीर छोड़ने पर मृत्यु के बाद विषय-पाप से मुक्त होता है, तब फिर अपने वास्तविक 'अमृत' स्वरूप का भान करने लगता है।"

इस प्रकार "तस्य वा एतस्य पुरुषस्य द्वे एव स्थाने भवत इदं च परलोक स्थानं च"। उस पुरुष के दो ही रहने के स्थान हैं; एक यह 'मर्त्यलोक' और दूसरा 'परलोक' या 'देव-लोक'।

इसी उपनिषद् में एक दूसरे स्थान पर कहा है कि "अथ त्रयो वाव लोका मनुष्य लोकः, पितृलोको, देवलोक इति" अर्थात् यहां तीन लोक हैं। १म मनुष्य लोक, २य पितृलोक और ३य देवलोक। इसी के १म अध्याय के चतुर्थ ब्राह्मण में ४ लोक कहे हैं; मनुष्यलोक, पितृलोक, ऋषिलोक और देवलोक।

एक और स्थान पर अर्थात् बृ० उ० के ४र्थ अध्याय के ३य ब्राह्मण में ७ लोक गिनाए हैं:—मनुष्य–पितृ–गन्धर्व–कर्मदेव–आजानदेव–प्रजापति और ब्रह्मलोक।

* * * * *

अब प्रश्न यह होता है कि ये 'पितर,' 'गन्धर्व' 'प्रजापति' आदि कौन हैं? इन शब्दों के अनेक भावार्थ किये जा सकते हैं। आर्य समाज का भी इनके

विषय में अपना एक मत है। परन्तु प्रस्तुत प्रसंग में हम स्वयं कोई अर्थ न घड़ कर शास्त्र के प्रमाणों से देखेंगे कि वहां ये शब्द किन अर्थों में प्रयुक्त हुए हैं। सबसे पहिले मनुस्मृति के सृष्ट्युत्पत्ति विषयक १म अध्याय में आता है :—

एते मनूंस्तु सप्तान्यानसृजन्भूरितेजसः।
देवान्देव निकायांश्च महर्षींश्चामितौजसः ॥ ३६ ॥

यक्षरक्षः पिशाचांश्च गन्धर्वाप्सरसोऽसुरान्।
नागान्सर्पान्सुपर्णांश्च पितॄणां च पृथग्गणान् ॥ ३७ ॥

किन्नरान्वानरान्मत्स्यान्विविधांश्च विहङ्गमान्।
पशून्मृगान्मनुष्यांश्च व्यालांश्चोभयतो दतः ॥ ३९ ॥

अर्थात् ब्रह्मा से विराट्, विराट् से मनु, मनु से दश प्रजापति, और उनसे सात और मनु, और फिर देव, देवनिकाय, महर्षि, यक्ष रक्ष, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा, असुर, पितर, किन्नर, और मनुष्य आदि उत्पन्न हुए यहां 'मनुष्यों' की उत्पत्ति देव, पितर आदियों से स्पष्टतया भिन्न है।

इसी प्रकार गीता के विश्व रूप दर्शन योग नामक अध्याय में अर्जुन 'अद्भुत रूप' का वर्णन नीचे के श्लोकों में करता है—

अमी हि त्वा सुरसङ्घा विशन्ति, केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षि सिद्धसंघाः, स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभि ॥ २१
रुद्रादित्या वसवो ये च साध्याः, विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च।
गन्धर्व यक्षासुर सिद्धसङ्घाः वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥ २२ ॥ इत्यादि

इस प्रकार यहां पर भी सुर, महर्षि, सिद्ध, साध्य, उष्मपा, गन्धर्व, यक्ष, और असुर आदि कोई मनुष्य से पृथक् जीवित प्राणी प्रतीत होते हैं।

फिर मुण्डकोपनिषद् के २य मुण्डक में 'अक्षर' स्वरूप परमात्मा से सृष्ट्युत्पत्ति का प्रकार बतलाते हुए ऋषि लिखता है:—

तस्माच्च देवा बहुधा संप्रसूताः, साध्या मनुष्या पशवो वयांसि। इत्यादि

यहां भी 'देव' और 'साध्य' मनुष्य और पशुओं की तरह भिन्न २ योनियां प्रतीत होती हैं।

* * * * *

अभी उस दिन हम प्रसिद्ध अंग्रेज़ वैज्ञानिक सर ओलिवर लाज का

एक लेख पढ़ रहे थे जिस में से नीचे लिखे वाक्य पाठकों की ज्ञान-वृद्धि के लिये यहां उद्धृत करते हैं:—

'संसार में सर्वव्यापी विकास हो रहा है, यह वैज्ञानिकों का अटूट सिद्धान्त है। जिस प्रकार मूल तत्त्वों से खनिज पदार्थ, खनिजों से वनस्पति आदि, और उस से पक्षी, पशु और मनुष्य हुए हैं, उसी प्रकार मुझे प्रतीत होता है कि मनुष्य से ऊपर भी कई योनियां हैं, जिन में चेतनता, इच्छा और गति अधिक सूक्ष्म और उन्नत स्वरूप में पाई जाती हैं ।"

इस प्रकार साधारणतया यह कल्पना की जा सकती है कि मनुस्मृति इत्यादि में वर्णित 'देव' पितर' और 'साध्य' आदि मनुष्यातिरिक्त कोई सूक्ष्म-सशरीर या अशरीर योनियां हैं जिन के रहने के स्थान 'देवलोक' 'पितृलोक' इत्यादि कहे गये हैं।

* * * * *

जिस समय हम ऊपर के वाक्य लिख रहे हैं हमें भय हो रहा है कि कई हमारे आर्य समाजी भाई दिल ही दिल में कहेंगे कि यह लो फिर वही सनातनी विचार 'प्रेतों और पितरों' के। परन्तु हमें इसमें कोई सनातनीपना या अन्ध विश्वास नहीं प्रतीत होता, क्योंकि यह कोई असम्भव नहीं कि जिस समय मनुष्य यह स्थूल शरीर या अन्नमय--कोष छोड़ता है, और जिसे हम बोल चाल में 'मृत्यु' कहते हैं, उसके बाद उसका सूक्ष्म--शरीर या शेष के चार प्राणमय मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोष उसके साथ रहते हैं, और ज्यों २ वह इन्हें भी छोड़ता जाता है उसे क्रमशः 'पितर' 'गन्धर्व' 'देव' और 'ब्रह्म' योनियां प्राप्त होती हों।

यहां हम स्पष्ट कह दें कि आख़िरकार यह सब विचार, परलोक सम्बन्धी हमारी और अन्यों की कल्पना मात्र है, क्योंकि निश्चय से तो वह कहे जिसने स्वयं वहां जाकर देखा हो। और विचित्रता यह है कि जब हम वहां जाते हैं तो हमारी ज़बान नहीं होती, और जब तक यहां रहते हैं तो वहां का अनुभव नहीं।

* * * * *

अन्त में "मृत्यु" पर लिखते हुए हम बाबू पीयूश कान्ति घोष के 'आल इण्डिया- स्पिरिच्युलिस्टिक- कान्फ्रैन्स' में पढ़े हुए सभापति के भाषण से निम्न के २ वाक्य उद्धृत करते हैं:—

"Death, so-called, is just as natural as birth, and is simply a transition to another plane and somewhat changed mode of existence. That plane is as really a tangible place with as real and tangible mode and means of living, as in this earth."

मृत्यु उतनी ही स्वाभाविक है जितना जन्म। और इसमें केवल एक क्षेत्र (सतह) से दूसरे क्षेत्र या लोक में परिवर्त्तन हो जाता है। और वह "परलोक" भी उतना ही वास्तविक और स्थायी है जितना कि यह "भू लोक"

इस लिये हमें चाहिये कि हम मृत्यु की चिन्ता और भय छोड़ कर 'आत्म सुधार' और 'आत्म-उन्नति' के मार्ग पर लगातार क़दम बढ़ाते चलें, ताकि अन्त समय में जब हमें 'क्रतो स्मर, कृतं स्मर' का पाठ सुनाया जाय, हमें दुःख न हो कि "ओह! हमने सारी आयु व्यर्थ में गंवा दी"। मृत्यु एक दिन आएगी और अवश्य आएगी। और उससे बचने (मुक्त होने) का उपाय यही है कि हम उसके लिये पहिले से तैयार रहें।

ऋषि के प्रति

(ले०—'दयामय' शास्त्री, विद्यालङ्कार)

ऋषि दयानन्द १९ वीं सदी के महा पुरुषों में अद्वितीय है। वह विभिन्न गुणों का पुतला है। यदि धर्म के प्रेमी उसे वैदिक धर्म की साक्षात् मूर्ति समझते हैं, यदि आर्य संस्कृति के पक्षपाती उसे आर्य संस्कृति की चरम सीमा पर पाते हैं तो राष्ट्रीयता के पुजारी उसे राष्ट्रीय दृष्टि से देख सकते हैं। वह एक का नहीं, सब का है। जिस कसौटी से भी परखिये सोने के समान वह सच्चा साबित होगा।

* * * * * *

ऋषि अद्वितीय तपस्वी थे किसी सुधारक के लिये ज्ञानी के साथ तपस्वी होना ज़रूरी हैं। बिना तप के ज्ञान व्यर्थ है। ज्ञान रहित तपस्वी तप रहित ज्ञानी से अच्छा है। लेकिन जहां ज्ञान और तप का मेल हो वहां सोने में सुगन्ध है।

ऋषि इस सत्य को पहिचानते थे। भीष्म के समान वे आजन्म ब्रह्मचारी रहे। भगवान् बुद्ध के समान कार्य क्षेत्र में प्रवेश से पूर्व उन्होंने कठिन तप किया। तपस्वी का तप व्यर्थ नहीं जाता। ऋषि का प्रयत्न सफल हुआ। उनकी सफलता का श्रेय उनकी तपस्या में है।

* * * * * *

सम्पन्नता नम्रता का कारण है। फल फूल वाला पेड़ झुक जाता है, आधा भरा घड़ा शब्द करता है, पूर्ण घट नहीं। इसी तरह ज्ञानी लोग स्वभावतः नम्र होते हैं। वे अपनी भूल को मानते और अल्पज्ञता को स्वीकार करते हैं। ऋषि का यही हाल था। वह अपने समय का अद्वितीय विद्वान् और वेद वेत्ता था। काशी में एक भाषण में उनसे अशुद्ध प्रयोग हो गया जिसे एक बालक के सुझाने पर स्वामी ने उसे स्वीकार कर लिया। उपनिषद् ने ऐसे ही लोगों के लिये "अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्" का प्रयोग किया है। ऋषि के विषय में यह श्रुति पूर्णतया चरितार्थ है।

* * * * * *

यथा नाम तथा गुण की कहावत को चरितार्थ देखना हो तो ऋषि के नाम में देखिये। ऋषि को पान में विष दिया जाता है। स्वयं इलाके का शासक अपराधी को लाता है और उत्सुकता से दण्ड की आज्ञा चाहता है। ऋषि कहते हैं "मैं संसार को कैद कराने नहीं, कैद से छुड़ाने आया हूं।" अपराधी, शासक तथा दर्शक ऋषि की उदारता पर चकित हो जाते हैं, उन्हें ऋषि की महत्ता का बोध होता है। ऋषि को द्वेष छू न गया था। वे दया में भी आनन्द मानते थे अतः दयानन्द कहलाये। दयानन्द ! तुम धन्य थे; धन्य था तुम्हारा नाम और धन्य हुआ तुम्हारा काम।

* * * * * *

ऋषि का सत्य-प्रेम आदर्श था। वे वैदिक धर्म को सत्य मानते थे, अतः उन्होंने कुरानी, किरानी, जैन आदि का खण्डन किया। इस खण्डन में किसी के प्रति द्वेष उनका कारण न था अपितु सत्य ग्रहण के लिये निष्ठा ही इसका कारण थी। ऋषि की सत्यनिष्ठा को सर्वोपरि सबने माना। यही कारण है कि सारी जनता ऋषि को प्रेम करती थी, अपना मानती थी। लाहौर जोधपुर आदि में मुसलमानों के यहां निवास ऋषि की सर्व प्रियता का द्योतक है। ऋषि की मृत्यु

के समय मुसलमानों के सर्वमान्य नेता सर सैयद अहमद के शब्द ऋषि की विश्व--प्रियता प्रगट करते हैं।

*　*　*　*　*　*

ऋषि राष्ट्रीयता का सच्चा उपासक था, वह अपने घर को, स्वदेश को परतंत्र और हीन देख कर दिल में दुःख मानता था। ऋषि की धर्म-भक्ति भीरुओं की धर्म भक्ति न थी उसमें देश भक्ति की पुट दी गई थी। सत्यार्थ प्रकाशादि रचनायें उसके देश के प्रति प्रेम के उज्ज्वल उदाहरण हैं। वह वहां स्वराज्य के लिये व्याकुल और उतावला दिखाई देता है। स्वराज्यान्दोलन से इतने वर्ष पहिले स्वराज्य के प्रति ऋषि का प्रेम उसके ऋषित्व का द्योतक है।

*　*　*　*　*　*

भारत प्राचीन काल से ऋषि--भूमि रहा है। सब ऋषि महान् थे परन्तु १६ वीं सदी का ऋषि प्राचीन ऋषियों से अधिक महान् है। प्राचीन ऋषियों ने केवल परम्परागत परिपाटी की पुष्टि की थी। प्रचलित कर्म--काण्ड के लिये ही वे प्रवृत्त रहे थे परन्तु इस ऋषि के लिये समस्या कुछ कठिन थी। उसे जङ्गल को काट कर नये सिरे से बसाना था जिसमें वह पूर्णतया सफल हुआ। यही ऋषि दयानन्द की महत्ता थी, यही उसके जीवन का तत्व था। इस युग में वैदिक धर्म का पुनरुद्धारक भी वह इसीलिये कहाया। ऋषि अपने जीवन द्वारा इस तत्व को फैला कर सदा के लिये अमर हो गया है।

*　*　*　*　*　*

जीवन में ऋषि ने जो कार्य किया उसका भार वह आर्य--समाज पर छोड़ गया है। देखना यह है कि आज आर्य-समाज में कितने हैं जिन्होंने ऋषि के जीवन को समझा है? ऋषि की शिक्षा के विपरीत आज आर्य-समाज खोखला हो गया है। आज आर्य समाज से राष्ट्रीयता, तपस्या, उदारता एक २ करके विदा ले रहे हैं। रह गया है तो केवल कोरा सिद्धान्तों के प्रति आग्रह। यदि आर्य समाज में आज भी कुछ अच्छाई है तो उसका कारण केवल ऋषि की तपस्या है, आर्य-समाजी नहीं। किसी दूसरी सोसायटी ने विरासत में मिली जायदाद का ऐसा अनुचित प्रयोग न किया था जैसा कि ऋषि के पीछे आर्य--समाज ने। यह एक कड़वा परन्तु सच्चा अनुभव था जोकि हर एक ने कानपुर कांग्रेस के समय आर्य-समाज से लिया था।

— —— —

मुक्ति से पुनरावृत्ति

(श्री० स्वामी वेदानन्द तीर्थ जी)

मुक्तिप्राप्त जीव पुनः इस संस्कार चक्र को प्राप्त होता है या नहीं, इस विषय पर दार्शनिक सम्प्रदायों में घोर मत-भेद है। अपने अपने मत की पुष्टि में दोनों ओर के पण्डित प्रबल युक्ति प्रयुक्ति का प्रयोग करते हैं। वैदिक धर्मी वेद तथा प्रबल तर्क के आधार पर मुक्ति से पुनरावृत्ति (फिर लौटना) मानते हैं। दयानन्द जी ने अपने ग्रन्थों में इस विषय में दो वेद मन्त्र भी उपस्थित किए हैं। युक्ति तथा तर्क द्वारा इस विषय का प्रतिपादन दूसरे अवसर के लिए छोड़ आज विद्वद्वर्ग के समक्ष मुक्ति से पुनरावृत्ति के चार मन्त्र उपस्थित करता हूं। विचारक विद्वान् इन पर विचार करें—

ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ता इन्द्रस्य सख्यममृतत्वमानश।
तेभ्यो भद्रमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥ १ ॥

य उदाजन्पितरो गोमयं वस्वृतेनाभिन्दन् परिवत्सरे बलम्।
दीर्घायुत्वमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥ २ ॥

य ऋतेन सूर्यमारोहयन् दिव्यप्रथयन् पृथिवीं मातरं वि।
सुप्रजास्त्वमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥ ३ ॥

अयं नाभा वदति वल्गु वो गृहे देवपुत्रा ऋषयस्तच्छृणोतन।
सुब्रह्मण्यमङ्गिरसो वो अस्तु प्रतिगृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥ ४ ॥

इन का संक्षिप्त सरल अर्थ इस भांति है: —

(ये) जिन महात्माओं ने (यज्ञेन) यज्ञ, देवपूजा=परमेश्वर पूजा, संगतिकरण=विद्वत्संग, दान=प्रत्येक पदार्थ से स्व स्वत्व त्याग पूर्वक ब्रह्मसत्त्वापादान से (दक्षिणया) दक्षिणा=दानपुण्य से, कर्मों में कुशलता के द्वारा [कर्म के तीन प्रकार संभव हैं—कर्म, अकर्म, विकर्म--यजुः ४०। १-२ से विकर्मों-उलटे कर्मों, तथा अकर्मों=न करने का निषेध है, शेष रहे कर्म, वे निष्काम कर्म ही हो सकते हैं, अतः कर्मों में कुशलता का भाव है --निष्काम कर्मों में तत्परता] (इन्द्रस्य) शुभ्र अखण्डैश्वर्यसम्पन्न परमात्मा के (अमृतत्वं+सख्यम्) मोक्ष रूप समान गुण को (आनश) प्राप्त किया है हे ऐसे (सुमेधसः) उत्तमधारणावती बुद्धियुक्त (अङ्गिरसः) ज्ञानियो ! (मानवम्) मनुष्य सम्बन्धी शरीर को (प्रति+गृभ्णीत) लौट कर पुनः

ग्रहण करो। (तेभ्यः) ऐसे (वः) तुम लोगों का (भद्रम्) कल्याण (अस्तु) हो ॥१।

(ये) जिन्हों ने (पितरः) पदज्ञ=वेदवेत्ता विद्वानों ने (गोमयम्) वाणीमय (वसु) धन (उद्+आजन्) उत्तम रीति से प्राप्त किया, करते हैं तथा (गोमयम्) पार्थिव (वसु) धन (उद्+आजन्) फेंक दिया, त्याग दिया, देते हैं [अज गति क्षेपणयोः. अज धातु का अर्थ गति=ज्ञान, गमन, प्राप्ति तथा क्षेपण=फेंकना हिलाना, हमला करना, हरकत देना, आक्षेप करना है] और (ऋतेन) ऋत=सृष्टिनियम ज्ञान के द्वारा (परिवत्सरे) सर्वथा निवास योग्य मानवदेह में (बलम्) आच्छादक अज्ञानान्धकार को (अभिन्दन्) तोड़ा=तोड़ते हैं-दूर करते हैं। हे (सुमेधसः) उत्तम संगति वाले (अङ्गिरसः) प्राणशक्तिसंपन्न महात्माओ! (मानवम्) मनुष्य देह को (प्रति+गृभ्णीत) पुनः ग्रहण करो। (वः) तुम्हारे (दीर्घायुत्वम्) दीर्घायु (अस्तु) हो ॥२॥

(ये) जिन्हों ने (ऋतेन) ज्ञान पूर्वक नियमाचरण से (सूर्यम्) चराचर के आत्मा प्रभु को (दिवि) दिव्यगुण युक्त मन में=हृदयाकाश में=ब्रह्मरन्ध्र में (आरोहयन्) प्राप्त किया=धारण किया और (मातरम्) मान प्राप्त कराने वाली (पृथिवीम्) वेद वाणी का (वि+अप्रथयन्) विशेष विस्तार किया।

हे (सुमेधसः) पापवृत्ति नाशक (अङ्गिरसः) ज्ञानानन्द युक्त महात्माओ! (मानवं+प्रति+गृभ्णीत) फिर से मनुष्य जन्म ग्रहण करो। (वः) तुम्हारी (सुप्रजास्त्वम्) उत्तम सन्तति, श्रेष्ठ शिष्य मण्डली (अस्तु) हो ॥ ३॥

(अयम्) ज्ञानवान् परमात्मा (नाभा) सब संसार का बन्धु (वः) तुम्हारे (गृहे) अन्तः-करण में (वल्गु) मनोहर,=मधुर (वदति) उपदेश करता है। हे (देवपुत्राः) परमात्मपुत्रो! (ऋषयः) ऋषियो! (तत्) परमात्मा के उस उपदेश को (शृणोतन) सुनो। हे (सुमेधसः) उत्तम मेधाशक्ति सम्पन्न (अङ्गिरसः) ब्रह्मानन्द प्राप्त महाशयो! (मानवं+प्रति+गृभ्णीत) पुन मनुष्यशरीर ग्रहण करो (सुब्रह्मण्यम्) उत्तम वेद ज्ञान (वः) तुम्हें (अस्तु) हो ॥ ४॥

इन मन्त्रों में कई बातें विचारणीय हैं। (१) चारों मन्त्रों में प्रत्येक के अन्त में "प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः" यह वाक्य आता है। 'प्रति' का अर्थ "लौट कर" या "पुनः" किया गया है। लोक में भी "प्रत्यागच्छ" लौट कर आ, या लौट आ, होता है। 'गृभ्णीत' लोट् लकार की क्रिया है, जो होता ही आशीर्वाद या विधि अर्थ में है। इस वास्ते 'प्रति गृभ्णीत मानवम्' का अर्थ बिना किसी हेर फेर के "लौट कर मनुष्य शरीर ग्रहण करो" है।

(२) प्रत्येक मन्त्र में "अंगिरसः" तथा "सुमेधसः" पद भी आते हैं। यह भी रहस्य पूर्ण शब्द हैं। मुक्ति-प्राप्ति से पूर्व तथा मुक्ति से पुनरावृत्ति के पश्चात् की अवस्था इन दो शब्दों द्वारा व्यक्त की गई है। 'अङ्गिरसः' पद का अर्थ हमने (१) 'ज्ञानियो (२) प्राणशक्ति सम्पन्न (३) ज्ञानानन्द युक्त (४) ब्रह्मानन्द प्राप्त' किया है। इसमें प्रमाण 'तस्मादङ्गिरसोऽधीयानः—(गो० ब्रा०) अङ्गिरसः=अधीयान ज्ञानी। 'यो=अङ्गिरसः सः रसः' (गो० ब्रा०) अङ्गिरस=रस 'प्राणो वा अङ्गिर' (शत०) अङ्गिरस=प्राण।

(३) सूर्य्य का अर्थ 'चराचर का आत्मा' किया गया है। इसके लिए सन्ध्या में आए उपस्थान मन्त्र में "सूर्य्य आत्मा जगतः तस्थुषश्च" जगत्--जङ्गम--चर तस्थुष.—स्थावर-अचर का आत्मा सूर्य्य कहाता है।

(४) गृहे का अर्थ 'अन्तः करण में' किया है। गृह्णन्ति जानन्ति येन तत् गृहम्। अर्थात् जिसके द्वारा ग्रहण किया जाए, जाना जाए।

(५) 'सुमेधसः' तथा 'अङ्गिरसः' शब्दों के भाव को जब हृदयङ्गम कर लिया जाय तो (१) भद्रम् (२) दीर्घायुत्वम् (३) सुप्रजास्त्वम् तथा (४) सुब्रह्मण्यम् काप्रयोजन समझने में कठिनता न होगी। मन्त्रों में इन शब्दों का यही क्रम है। और यह सार्थक है। पहले भद्रता-साधुता-कल्याणगुण सम्पत्ति प्राप्त की जाती है तब दीर्घ आयु तथा उत्तम प्रजा-पुत्र शिष्यादि प्राप्त हो सकते हैं। इन सब का लक्ष्य सुब्रह्मण्य=उत्तम वेद ज्ञान या मुक्ति होता है। यदि 'दीर्घायुत्वम्' का अर्थ विपुल आय कर लें (आय तथा आयु का मूल धातु एक ही है) तो उपर्युक्त चार शब्दों का क्रमशः अर्थ यह होता है भद्र=धर्म, दीर्घायुत्व=आय=अर्थ, सुप्रजास्त्व= काम, सुब्रह्मण्य=मोक्ष।

चौथे मन्त्र में मुक्ति से लौटों के लिये 'देव पुत्र' विशेषण आया है। देव-पुत्र का अर्थ परमात्मा के पुत्र किया गया है। इस पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। नाभा 'णह बन्धने' धातु से बनता है।

(७) तीसरे मन्त्र में आए पृथिवी शब्द का जो जो अर्थ हमने किया है, उन में "वागिति पृथिवी" (जैमिनि ब्राह्मण) प्रमाण है।

(८) द्वितीय मन्त्र में आए 'परिवत्सर' शब्द में एक गूढाशय है जिस का उद्घाटन हम फिर कभी करेंगे।

इन मन्त्रों से अगले दो मन्त्र भी इसी के साथ सम्बद्ध विषय का निरूपण करते हैं। उन पर फिर कभी विचार करेंगे। स्वाध्यायशील वैदिक विद्वानों से प्रार्थना है कि वे इन पर विचार करें।

असहिष्णुता

(ले०—श्री वंशीधर विद्यालङ्कार आचार्य गुरुकुल-सूपा)

१

भारतवर्ष के राजनैतिक और धार्मिक वायुमण्डल में एक आवाज़ गूंज रही है और वह यह है कि आर्य समाज असहिष्णु है, आर्य समाज में सहन शीलता नहीं है। दूसरे धर्म्मों की बढ़ती हुई शक्ति को आर्य-समाज नहीं देख सकता। वह चाहता है कि संसार के अन्दर सब आर्य-समाजी ही हों। विचार विभिन्नता संसार के अन्दर हर समय मौजूद रहेगी। यदि कोई चाहे कि वह नष्ट हो जाय तो यह असम्भव है। इस लिये सब से उत्तम सिद्धान्त यह है कि अपने आप जियो और दूसरों को भी जीने दो (Live and let live)। और वह इसी प्रकार हो सकता है कि विचार-भेद होने पर भी हम दूसरों की अच्छाइयों को देखते हुए उन की बुरी बातों को सहन करें।

यह असहन शीलता आर्य समाज में आई कहां से ? इस विषय पर विचार करते हुए बहुत से विचारकों ने यह सिद्धान्त स्थिर किया है कि आर्य-समाज में जो यह असहिष्णुता दिखाई देती है वह पाश्चात्य सभ्यता और यूरोप की कृपा का फल है। यूरोपियन मिशनरियों से ही आर्य-समाज ने इस की दीक्षा ली है।

अक्टूबर के Moden Review (१९२३) मद्रास में स्वराज्य पत्र के सम्पादक K. M Pannikar M. A. (Oxen) अपने "यूरोप एण्ड एशिया" नामक लेख में इस प्रकार लिखते हैं—:

"Closely associated with this idea is the feeling of religious intolerance. We noticed how religious toleration was the normality in pre-European times in Asia. But with the affressive propaganda of the missionaries and the utilisation of religion for the purpose of politics this feeling of intolorance has broken out in a very marked degree in Asiatic countries also. It is a significant fact that in ear-

lier times the hostility between Islam and Hinduism was sought to be bridged by synthesis like Sikhism and Kabir-Panth, while today it takes the form of aggressive organisations like Arya Samaj on the side of Hindoos and Ahmadies on the side of the Mussalmans".

इस समय में जो यह खण्डनात्मक चर्चा चली है वह मिशनरियों के कारण है। पहले हिन्दु मुसल्मानों के वैमनस्य को दूर करने के उपाय ये थे कि दोनों मज़हबों की अच्छाई को देखना और उस अच्छाई के द्वारा दोनों में एकता स्थापित करना। इसी प्रकार सिक्खों और कबीर पन्थियों की उत्पत्ति हुई थी, किन्तु आज कल हिन्दुओं की ओर से आर्य-समाज और मुसल्मानों की ओर से अहमदिया आपस में एकता स्थापित करने की अपेक्षा खण्डनात्मक कार्य्य कर परस्पर वैमनस्य को बढ़ा रहे हैं।

यह है उपर्युक्त कथन का सारांश

क्या आर्य समाज सचमुच असहन शील है? क्या खण्डनात्मक कार्य्य की दीक्षा आर्यसमाज ने यूरोपियन मिशनरियों से ही ली है? क्या आर्यसमाजी धार्मिक एकता को नहीं चाहता और परस्पर वैमनस्य की ही वृद्धि करना चाहता है?

इसी का हम इस लेख में विचार करेंगे।

२

सत्यार्थ प्रकाश के ११ वें समुल्लास के अन्तिम भाग में ऋषि दयानन्द लिखते हैं, कि धर्म दो नहीं हैं। उन्होंने एक इस प्रकार की सभा की कल्पना की है जिस में सब मत और मज़हब वाले बैठ कर विचार कर रहे हैं। उन सब की आन्तरिक बातों का निचोड़ एक ही निकलता है कि सृष्टि के प्रारम्भ में भी वही एक धर्म था और आज भी वही एक धर्म है। जितनी ख़राब बातें उस में आ गई हैं वह एक व्यक्तिगत दोष है। स्वामी जी उसी एक धर्म को वैदिक-धर्म के नाम से कहते हैं। आधुनिक धार्मिक पुस्तकों की एक भी ऐसी अच्छाई नहीं है जो उस में न पाई जाय। इस लिये यदि उन्होंने उस 'धर्म-तत्व' को जो सब मज़हबों में एक जैसा पाया जाता है 'वैदिक-धर्म' के नाम से कहा तो इस में कोई हानि नहीं। सब ही धार्मिक एकता के प्रचारक यही तो कहते हैं कि सब धर्मों की अच्छाइयां एक हैं। स्वामी जी ने इस से एक क़दम और आगे रख कर कहा

कि अच्छाइयां ही तो धर्म हैं इस लिये धर्म एक है। यदि उन बुराइयों को जो आज कल के प्रचलित धर्मों में चल गई हैं, दूर कर दिया जाय तो वही शुद्ध स्वरूप एक धर्म का हम को दिखाई देगा। इसलिये स्वामी जी ने उस एक धर्म का प्रचार करने के लिये दो साधन किये -

(१) वैदिकधर्म (सब धर्मों के एकतत्त्व) का प्रचार

(२) बुराइयों का खण्डन

यहां हम इस बात की ओर ध्यान दिलाना चाहते हैं कि जो लोग यह समझते हैं कि ऋषि दयानन्द या आर्य समाज अन्य धर्मों का खण्डन करते हैं वे भारी भूल में हैं। आर्य समाज एक मात्र बुराइयों का खण्डन करता है और एक धर्म का प्रचार करता है। वह धर्म का खण्डन नहीं करता।

क्या बुराइयों का खण्डन करना असहनशीलता है ? यदि यह असहन-शीलता है तो ऐसे स्थानों पर सहन शीलता से असहन शीलता लाख दर्जे अच्छी है। इस असहन शीलता की आग की भट्टी आर्य-समाज में तब तक जलेगी जब तक इस में पड़ कर सब धर्मों की बुराइयां जल नहीं जातीं। ध्यान से देखने वाले विचारक देख रहे हैं कि इस असहन शीलता ने मतों में कितने परिवर्तन कर दिये हैं। अब सब धर्मों की व्याख्या (प्रायः) शुद्ध उसी प्राचीन वैदिक धर्म के अनुसार होने लग गई है। वह दिन, वह घड़ी शुभ होगी जब कि पूर्ण रूप से सब मज़हबों की व्याख्याएं एक हो जांयगी। व्याख्या एक होने पर तो धर्म एक हो-ही जायगा। महात्मा गांधी ने अपने यंग इण्डिया में एक लेख लिखा था जिस में उन्हों ने यह बताया था कि 'धर्म एक नहीं हो सकते' किन्तु आर्य सामज का तो विचार यह है कि सर्वत्र धर्म एक ही है। रीति रिवाजों को धर्म नहीं कहते। उसी एक धर्म का प्रचार आर्य--समाज करता है।

हम समझते हैं कि आर्य समाज को जो धार्मिक एकता का विद्वेषी कहा जाता है और संकीर्ण हृदय का समझा जाता है वह समझने वालों का भ्रम मूलक विश्वास है। वह उन की आर्य समाज से अपरिचिति है। आर्य समाज बुराइयों का खण्डन शास्त्रार्थों द्वारा करता है। ये शास्त्रार्थ भारत वर्ष में आज से नहीं चले हैं, किन्तु बहुत पुराने हैं। स्वामी शङ्कराचार्य ने भी तो सब बौद्धों, कर्म-काण्डी मीमांसकों और जैनियों का खण्डन किया था। क्या उन पर भी पाश्चात्य सभ्यता की मुहर लगी हुई थी ? हम पूछते हैं कि बुराइयों का खण्डन कौन नहीं करता ?

महात्मा गन्धी स्वयं बुराइयों का खण्डन करते हैं। नान-कोआपेरशन का उपदेश देते हैं. क्यों? क्या हम पूछ सकते हैं कि क्या यह असहन शीलता नहीं है?

हम इस प्रकार के विचारकों से एक प्रश्न पूछते हैं और वह यह है कि वे एक भी ऐसी धार्मिक अच्छाई को बताएं जिस का आर्य-समाज ने खण्डन किया हो? आर्य समाज ने आज तक एक मात्र बुराइयों का ही खण्डन किया है और बुराइयों को सहन करना स्वयं एक अधर्म है।

३

एक बात रह गई, और वह है Revelation की, ईश्वरीय ज्ञान की। अन्य मज़हबों की तरह आर्य समाज इस बात को एक मात्र कहता ही नहीं किन्तु सिद्ध भी करता है। हम स्वयं सिद्ध स्वतंत्र विचारकों (Free thinkers) की यहां चर्चा नहीं करते जो एक दम एक Statement कर देते हैं, और उसे सिद्ध नहीं कर सकते।

प्रश्न है कि सृष्टि के प्रारम्भ में ज्ञान कैसे हुआ? वेद को छोड़ कर अन्य किसी मज़हब की पुस्तक उतनी पुरानी नहीं है यह सत्य है। जब तक इस युक्ति का उत्तर नहीं दिया जायगा कि ज्ञान कैसे उत्पन्न हुआ, यह उलझन नहीं सुलझेगी।

आर्य-समाज ने इस प्रश्न पर विचार करके यही परिणाम निकाला है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है। इस का प्रचार आर्य समाजी इस लिये नहीं कर रहे हैं कि उन्हें किसी धर्म से प्रेम है किन्तु इस लिये कि यह एक सत्य है। युक्ति, और प्रमाणों का उत्तर-एक मात्र एक स्टेटमैण्ट से नहीं हो सकता। यदि प्रत्येक विचारक इस प्रश्न पर शान्त हो कर विचार करेगा तो उसे भी इस सचाई का अनुभव होगा. निष्पक्षपात और विचार की आवश्यकता है। वह दिन आयगा, (आज नहीं तो १००साल बाद) जब कि संसार अनुभव करेगा कि स्वामीदयानन्द ने किस गहरी सचाई का पता लगाया था। जबतक वह इसे अनुभव नहीं करता तब तक आर्य समाज को अपना कड़वा कर्तव्य पालन करना ही होगा। धर्म के नाम पर जो ढौंग रचे जा रहे हैं उन की पोल खोलनी ही पड़ेगी। धर्म के आगे जो अस्वाभाविक पर्दे लगाए जा रहे हैं उन्हें हटाना ही पड़ेगा। इस के लिये यदि आर्य समाज को असहनशीलता की उपाधि से विभूषित किया जाता है तो उस का सहर्ष स्वगात किया जायगा किन्तु इसी असहन शीलता के द्वारा जिस सत्य

का मार्ग खुल रहा है यदि उस सत्य की एक झांकी भी हमारे समालोचकों को दृष्टिगत होगी तो हमें यह पूरा विश्वास है कि वे धर्म के नाम पर जो बुराइयां की जा रही हैं उन का वे भी असहन शील हो कर समूलोन्मूलन करके ही छोड़ेंगे । 'खण्डन करना' मिशनरियों की कोई ख़ास सम्पति नहीं है।

डी० ए० वी० कालेज लाहौर के

अनुसन्धान विभाग की

रिपोर्ट ।

जब तक भारत के गौरवस्वरूप साहित्य का परिचय पाश्चात्यों को न हुआ था, तब तक भारतवासी उन की दृष्टि में असभ्य, वर्बर थे, किन्तु भारतीय साहित्य सूर्य्य के आलोक की साधारण छटा के दृग्गोचर होते ही उन के दृष्टि-कोण में भारी अन्तर होगया । अब वे भारतीयों को संसार के सब से पुरातन सभ्यता-प्रचारक तो नहीं, किन्तु पुरातन काल के प्रधान सभ्यता-प्रसारकों में से मानते हैं। योरूपियों ने इस सभ्यता का अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए नाना सभा समितिएं बनाईं। कई महाशयों ने भारतीय सभ्यता भारतीय साहित्य के अनुशीलन ही को अपने जीवन का ध्येय बनाया । हमारा चाहे उन से कितना ही मतभेद क्यों न हो, किन्तु उन के पुरुषार्थ, अध्यवसाय की सराहना अवश्य करनी पड़ती है।

उन्हीं योरूपियों की देखा देखी उन्हीं की रीति नीति में दीक्षित कुछ भारतीयों ने भी उसी ढंग की सभाएं बनाईं, परन्तु वे भी उसी मार्ग का अनुसरण करती रहीं। पश्चिमी गुरु जी के वचन में पूर्वी चेला ननुनच का कोई हेतु नहीं देखता । इधर कुछ काल से कई विद्वानों ने अपने पश्चिमीय गुरुओं से मतभेद दिखाने का साहस भी किया है, परन्तु उस से कोई विशेष महत्त्व का परिणाम नहीं निकला।

आर्य्यसमाज अपने आप को आर्य्यसंस्कृति का रक्षक मानता है। उस ने एक विशेष रीति (मौखिक प्रचार से व्याख्यान आदि) के द्वारा इस संस्कृति की

रक्षा करने का प्रयत्न भी किया है। पुरातन आर्य्य साहित्य के प्राण स्वरूप मूल चारों वेदों के प्रकाशित करने का गौरव भी आर्यसमाज को प्राप्त है। समय समय पर भिन्न भिन्न विद्वान् अपनी अपनी परिमित शक्तियों के अनुसार इस दिशा में प्रयत्न करते रहते हैं। उन्हीं प्रयत्नों में एक प्रयत्न डी० ए० वी० कालिज का अनुसन्धान विभाग है। इस के द्वारा ८ या ९ ग्रन्थ आज तक प्रकाशित हो चुके हैं। इन ग्रन्थों के गुण दोषों का विवेचन तो फिर किसी अवसर पर करेंगे। यहां हमें एक विशेष बात बतानी है, जो हमें इस विभाग की १९१७ से १९२५ तक की रिपोर्ट से ज्ञात हुई है। पल्लवग्राही योरुपीय पण्डित भारतीय संस्कृत विद्या के अगाधमेध विद्वद्वर्ग की अवहेलना करते रहे हैं। मेक्समूलर संपादित "पूरबीय पवित्र पुस्तकमाला" (S. B. E.) इसका ज्वलन्त प्रमाण है। उसमें वेद, ब्राह्मण, उपनिषदों, धर्म्मसूत्रों, मनुस्मृति, गृह्यसूत्र, वेदान्तदर्शन प्रभृति, वैदिक, तथा अनेक जैन और बौद्ध ग्रन्थों के अनुवाद प्रकाशित हुए, किन्तु सब योरुपीयों के किए हुए। केवल गीता तथा सनत्सुजातीय ऐसे साधारण ग्रन्थों का अनुवाद एक भारतीय का किया प्रकाशित किया गया।

हमारे उपरिकथित अनुसन्धान विभाग के अधिकारी भी उसी प्रकार के अपराध के अपराधी हैं। यह विभाग अपने ग्रन्थों को किसी भी भारतीय विद्वान् के पास समालोचनार्थ नहीं भेजता। इन की दृष्टि में भारतवर्ष भर में एक भी विद्वान् ऐसा नहीं, जिस के पास इन को पुस्तकें समालोचना के लिये भेजी जा सकें। जितनी समालोचनाएं इन्हों ने छापी हैं, प्रायः सारी गौराङ्ग विज्ञों की। क्या इस का यह तो अभिप्राय नहीं, कि इन के सम्पादकों के विचार भारतीय सभ्यता के सम्बन्ध में वैसे ही है, जैसे कि पश्चिमी विद्वानों के। अथवा इन ग्रन्थों के अनुवाद, तथा टिप्पणियां इतनी अशुद्ध तथा असम्बद्ध होती हैं कि इन्हें भारतीय विद्वानों के पास भेजने में संकोच होता है। अथवा क्या यह तो नहीं, कि भारतीय विद्वानों ने सच्ची सच्ची समालोचना की, और उसे आप ने अपने विरुद्ध जान कर प्रकाशित नहीं किया? प्रतीत ऐसा होता है, कि अपने स्वामियों को, जो यूरोपीय शिक्षा से दीक्षित हैं, प्रसन्न रखने के लिए यूरोपीय संस्कृतज्ञों (?) की सम्मतियां उन के आगे रखते हैं। अस्तु। जो भी हो, भारतभक्तों को, आर्य संस्कृति के प्रेमियों को, संस्कृत साहित्य के भक्तों को इन के द्वारा की गई अवहेलना की उपेक्षा न करनी चाहिये। 'नारद'

परलोक पर ज्ञानी जी

'आर्य' के इस अंक में अन्यत्र श्री 'ज्ञानी जी' का परलोक-विषयक लेख छपा है। परलोक में 'ज्ञानी जी' की गति काल्पनिक हो, इस का मुझे आश्चर्य है। आप लिखते हैंः—'यह विचार परलोक संबन्धी हमारी और अन्यों की कल्पना मात्र हैं'। फिर कहा हैः—विचित्रता यह है कि जब हम (कौन? ज्ञानी जी?) वहां जाते हैं तो हमारी जवान नहीं होती और जब तक यहां रहते हैं, तो वहां का अनुभव नहीं।' पृ० २४. । दयनीय अवस्था है।

आपने प्रथम जीव की स्वतन्त्र अमर सत्ता पर किसी 'प्रसिद्ध.....वैज्ञानिक' का प्रमाण दिया है। सो ठीक। फिर वृहदारण्यक के सहारे पहिले दो लोकों की कल्पना की, एक मर्त्य लोक, दूसरा परलोक। परलोक का अर्थ बताया 'देव लोक' फिर इन में एक तीसरा पितृलोक बढ़ाया। वह परलोक के अन्तर्गत है या भिन्न है? यदि अन्तर्गत है तो देवलोक अकेला परलोक का पर्याय क्योंकर हुआ? इस के पश्चात् एक चौथा लोक बढ़ा, ऋषिलोक। अन्त में लोक सात हो गए। पृ० २२.। यह सब परलोक हुए। और इन में भिन्न २ योनियों का निवास है! (पृ० २३)

यह अच्छा किया कि लोक शब्द का 'अर्थ घड़ा' नहीं किन्तु इस पर मनु का प्रमाण दिया है। इस प्रमाण में 'लोक' शब्द आया ही नहीं। देव, देवनिकाय, महर्षि, यक्ष, रक्ष, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा, असुर, नाग, सर्प, सुपर्ण, पितर, किन्नर, वानर, मत्स्य, विहंगम, पशु, मृग, मनुष्य, व्याल, उभयतोदत्, शब्द आए हैं। आप ने अर्थ करते हुए, सब शब्द नहीं लिये, स्यात् इष्ट न हों! आपने लिखा हैः—'मनु से १० प्रजापति और उन से ७ और मनु.....उत्पन्न हुए।' इस उत्पत्ति का क्या अर्थ? मनु के पुत्र १० प्रजापति थे या कुछ और? पुत्र थे तो योनि एक हुई? और फिर नागों और व्यालों का क्या बना? ऐसा नहीं तो यह सब सृष्टिकर्त्ता हुए। मनु भी मनुष्य न रहा। सिद्धान्त स्थिर कीजिये। यह तो आप के अनुवाद से स्पष्ट है कि प्रथम मनु शेषोक्त ७ मनुओं से भिन्न प्राणी है। परन्तु इसी मनु १. ६२ में आता हैः—

स्वायंभवाद्याः सप्तैते मनवो भूरितेजसः।

अर्थात् स्वायंभव आदि सात मनु.............।

शास्त्रों में और स्वयं मनु के कथनानुसार पहिले ही मनु का नाम जो विराट् से उत्पन्न होता है, स्वायंभव है। अब स्वायंभव प्रजापतियों का उत्पादक है और प्रजापति स्वायंभव के! इस परस्पर विरोध युक्त प्रसंग को यदि कोई आर्य समाजी प्रक्षिप्त कह दे तो ज्ञानी जी रुष्ट तो न होंगे।

आखिर लाज की अलौकिक योनियों की कल्पना उन की 'संसार में सर्व व्यापी विकास' की धारणा पर निर्भर है। यह धारणा थ्योसाफिकल सोसाइटी की है। ज्ञानी जी इस से सहमत हों तो इस पर भी विचार हो सकता है।

भिन्न कोषों के उत्तरोत्तर त्याग पूर्वक भिन्न २ योनियों में जाना प्रमाण चाहता है।

'आर्यसमाजी'

सम्पादकीय

सभा का अधिवेशन

सभा का अधिवेशन अब होने ही वाला है। मई मास का अन्तिम से पूर्व का सनीचर और इतवार इस के लिये निश्चित है। अधिवेशन का साधारण कार्य अधिकारियों का चुनाव तथा वेद प्रचार और गुरुकुल के बजट पास करना होता है। इसी में ही सारा समय निकल जाया करता है। और कार्य चाहे अन्तरङ्ग सभा ने प्रस्तुत होने की स्वीकृति दे भी दी हो, समयाभाव से सदा स्थगित होते हैं। मेरे विचार में अब सभासदों ने इन तीनों कार्यों अर्थात् चुनाव, गुरुकुल के बजट पर विवाद, तथा वेद प्रचार के बजट पर विवाद करने में पूरा अभ्यास प्राप्त कर लिया है। अब इन में समय कम लगे तो हानि नहीं। गुरुकुल के बजट के लिये दूसरा दिन विशिष्ट रहता है। गत वर्ष किसी २ राशि में एक रुपये की कमी का प्रस्ताव पेश करने की नई रीति का अवलंबन भी कतिपय सभासदों ने किया था। इस बार भी आशा नहीं, यह एक बार सीख लिया पाठ भुला दिया जाए। पहिले एक गुरुकुल था, अब कन्या गुरुकुल का बजट भी स्वीकृति के लिये आने लगा है। गतवर्ष इसे बीच में छोड़ना पड़ा था। इस प्रकार एक ओर कार्य में वृद्धि हो रही है, दूसरी ओर सभासदों के विवाद-कौशल में भी उन्नति है। हमारा बजट का विवाद देखकर कौन कह सकता है कि हमारी सभा राज्य की व्यवस्थापक सभाओं से किसी अंश में न्यून है। यदि सभा की कार्यवाही ऐसे ही चलानी हो तो एक नियम कौंसिलों से और भी ले लेना चाहिये। वह यह कि बजट के विवाद के लिये समय नियत कर दिया जाए। उस समय के अन्दर २ जो विवाद हो जाय उसके पश्चात् सारा बजट स्वतः स्वीकृत समझा जाय। इस प्रकार सभासद मुफ़्त का विवाद बढ़ाने से सावधान रहेंगे। यदि अन्तरङ्ग सभा गुरुकुल के बजट को एक विशेष समिति (S lect committee) के अर्पण करदे और वह उस पर विचार करके सभा के साधारणाधिवेशन में पेश करे तो समय बचाना सहज होगा। शिक्षा के विषय पर विचार करने की योग्यता प्रत्येक सभासद में नहीं हो सकती। गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता और आचार्य की

एक शिक्षा से प्रायः अनभिज्ञ समुदाय के सामने विवाद के लिये ला खड़ा करना शिक्षा का उपहास है और कार्य कर्ताओं पर बलात्कार। मेरा विचार साधारण सभा से उसका अधिकार छीन लेने का नहीं, किन्तु उस के अमूल्य समय का उपयोग मितव्ययिता से करने का है।

साधारण सभा की अधिक रुचि प्रचार के कार्य में होनी चाहिये। इस पर विचार करने की योग्यता अधिक सभासदों में हो सकती है। सभा का प्रधान कार्य भी मैं यही समझता हूँ। अधिकारियों की ओर से इस कार्य की रिपोर्ट आवे और भविष्य में इस कार्य की उन्नति के साधन प्रस्तुत किये जायें। स्थानीय अनुभव प्रत्येक सभासद् को होगा। इस कार्य में उपदेशकों का उपदेशकरूप में भाग हो। सन्यासिवर्ग को भी आमंत्रित किया जाय। जो कार्य-प्रणाली वहां निश्चित हो, उसके अनुसार बजट बनाया जाय।

प्रचार की आवश्यकता बढ़ रही है और इस क्षेत्र के सभी कार्यकर्ता अनुभव करते हैं कि वर्तमान प्रचार--प्रणाली संकुचित प्रणाली ही है। उत्सवों के अतिरिक्त प्रचार के अन्य साधनों पर ध्यान ही बहुत कम जाता है। एक लकीर है, उसे हम पीटे चले जाते हैं। लेखद्वारा प्रचार होता ही नहीं दलितोद्धार का काम रुक सा गया है। विधर्मी स्थान २ पर नई बस्तियां बसा रहे हैं। उन्हें हम हृदय में ही नहीं लाते। पुरोहित-प्रणाली पूरे उत्साह से चलाई ही नहीं गई। परिस्थिति राज्य तथा प्रजा दोनों की ओर से भयङ्कर हो रही है। उस पर विचार करने का समय ही किसे है? वर्ष भर में एक ही बार इकट्ठा होना और उसमें भी वर्षों के चले आते बजट पर दो चार चुभतियां कह कर चले जाना कुछ गम्भीर कार्य-निष्ठा नहीं। हम सभासदों को अपना महान् उत्तरदातृत्व समझना चाहिये। केवल पञ्जाब ही नहीं, किन्तु विदेशों तक में वेद का सन्देश पहुंचाना हमारी सभा का पवित्र उद्देश्य है। इस उद्देश्य की पूर्ति का साधन करने के समय अन्यमनस्क रहकर या पोलिटिकल सभाओं का सा केवल अभिनय करके चले जाना हम सभासदों की धर्म--परायणता का द्योतक नहीं।

मेरे विचार में प्रचार का कार्य एक सारा समय दे सकने वाले किसी अनुभवी सज्जन के हाथ में होना चाहिये। गत वर्ष सवेतन मंत्री की नियुक्ति का प्रस्ताव हुआ था। इसके रास्ते में नियम सम्बन्धी रुकावटें उपस्थित हुईं मंत्री के लिये उपयुक्त पुरुष की प्राप्ति एक समस्या है जो वर्षों से चली आती है। अ-वैतनिक मंत्री अप्राप्य हो, सवैतनिक की नियुक्ति नियम तथा नीति के विरुद्ध हो।

आखिर काम कैसे चलेगा ? महा० कृष्ण का गिरता पड़ता स्वास्थ्य कब तक सभा का एक मात्र सहारा रहेगा ?

इस स्थिति का एक उपाय मेरी समझ में आता है। वह यह कि गुरुकुल की तरह से प्रचार विभाग भी मंत्री के कार्य--विभाग से अलग कर दिया जाय। इस के लिये एक अधिष्ठाता हो जैसे गुरुकुल के लिये मुख्याधिष्ठाता है। जो सम्बन्ध गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता का मंत्री से है, वही प्रचार विभाग के अधिष्ठाता का हो। कोई संन्यासी, दयानन्द सेवा सदन का सदस्य, कोई अवैतनिक पूर्ण समय कार्य करने वाला आर्य, यह न होने पर कोई सवेतन कार्यकर्ता ही, इस विभाग को संभाल ले। इसमें नियम की कोई बाधा नहीं हो सकती।

मंत्री का कार्य हलका हो जाने से इस पद के लिये उपयुक्त पुरुष मिलना फिर कठिन न रहेगा। इस सारे लेख का तात्पर्य यह है कि वेद प्रचार के कार्य को एक दृढ़ नींव पर लाया जाय। उस का महत्व अनुभव किया जाय और उस महत्व के अनुकूल उस पर शक्ति और धन का व्यय हो।

१. संक्षेप से मेरा विचार यह है कि गुरुकुलों की रिपोर्ट और बजट के लिये दो या तीन घण्टे नियत कर दिये जाएं।

२. वेद-प्रचार का कार्य किसी सारा समय दे सकने वाले अवैतनिक अथवा सवैतनिक अधिष्ठाता के अधीन किया जाय और उसका संबन्ध मंत्री से उसी प्रकार का हो जैसा गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता का है।

सार यह कि सभा का अधिक समय प्रचार-विभाग के अर्पण हो।

उत्सवों का कार्यक्रम

आर्य समाज ने आरम्भ दिवस से अब तक अपना सारा निर्भर वार्षिक उत्सवों पर ही रखा है। प्रारंभिक अवस्था में प्रचार का इस से अधिक उपयोगी साधन ध्यान में लाना ह: कठिन था। उत्सवों ने आर्य समाजों को बनाया है। इस समय किसी समाज के जीवित होने का प्रमाण उसका उत्सव मात्र ही है। समाजों को उत्सव करते रहने चाहियें, यह हमारी दृढ़ धारणा है। परन्तु उत्सव ही करते रहने चाहियें, इसे हम प्रचार--प्रणाली का घातक सङ्कोच समझते हैं। आर्य समाज ने जनता में प्रवेश किया है परन्तु लोगों के जीवन में पैठा नहीं। पचास वर्ष के लगातार कार्य के पीछे भी अभी यह धर्म हुल्लड़-धर्म है। उत्सव की आंधी वर्ष के वर्ष आती है और समाज रूपी बाटिका को दो दिन के लिये

हिला सा जाती है । दो दिन के पीछे समाज-मन्दिर में फिर वही गर्द, वही कूड़ा कर्कट, जमा हो जाता है।

समाज के प्रचार से आर्य समाजियों से भिन्न लोग लाभ उठाते हों तो उठाते हों, आर्य समाजियों के जीवन में इस आंधी का कुछ प्रभाव नहीं। वह सदा एक रस रहते हैं। 'संसार का उपकार' करते २ इन्होंने अपना उपकार बिलकुल भुला दिया है । आदर्श आत्म-त्याग है। लोग आर्य-समाजी बनते हैं, न जन्मते हैं न रहते हैं।

उत्सव की शोभा बढ़ाने को कहीं दस, कहीं पन्द्रह उपदेशक पहुंच जाते हैं। फिर भी प्रबन्धकों की प्रबन्ध-पिपासा शान्त नहीं होती। इन्हें और उपदेशक चाहियें। किसी महान् व्यक्ति का व्याख्यान उद्घोषित करना भी तो कुछ थोड़ा पुण्य--संचय नहीं। इतने महान् व्यक्ति कहां से आयें? आर्यसमाजी इन्हें बटने देंगें नहीं। कहीं छावनी जम जायगी, कहीं उल्लू बोलेगा। शिकायत दोनों को है। और उपदेशकों की शक्ति का व्यय होता है दर्शनों में।

फिर उत्सवों के अतिरिक्त भी तो कोई काम है जिसे प्रचार कह सकते हैं। समाज का साहित्य कहां है ? कौन बनायेगा? दलितोद्धार की महारनी तो उत्सवों में घोषी जा सकती है। उद्धार का क्षेत्र गांवों में है जो उत्सव का भाग नहीं बन सकते। फिर कोई नई जगह, नया क्षेत्र । कूप मण्डूक रह कर क्या देश देशान्तरों और द्वीप द्वीपान्तरों में प्रचार हो जायगा ?

इस व्यवहार-बुद्धि के क्या कहने कि इधर शक्ति कम, उधर उत्सव मात्र में उसका अपव्यय ! समय बदल रहा है। तुम भी अपनी करवट बदल लो। नहीं तो पछड़ जाओगे और जी न सकोगे। वर्तमान प्रचार--प्रणाली का आज भी अन्त हुआ और कल भी। आज सुधार सकते हो कल रो धो सकोगे।

हमारी सम्मति में उत्सवों का प्रोग्राम लम्बा भले हो जाय, इतना भरा हुआ न हो। प्रातःकाल यज्ञ करो और उसके पीछे उपदेश हो जिस का लक्ष्य आर्य सिद्धान्तों, आर्य मन्तव्यों, आर्य दिनचर्या, आर्य पर्वों, त्यौहारों तथा यज्ञों की व्याख्या हो। इस सारी कार्यवाही में आर्य लोग परिवारों सहित सम्मिलित हों। प्रेरणामात्र से नहीं, अनिवार्य नियम कर दिया जाय।

दोपहर को उपदेशकों के आवास पर धर्म--चर्चा तथा एकान्त में शंका समाधान हो। उत्सव की कार्यवाही साधारणतया फिर रात ही को हो। उस में

साधारण जनता के लिये लेक्चर कराया जाए। जिन समाजों को प्रचार की भूख बहुत हो, हुल्लड़ की प्यास बुझाये न बुझे, वह एक लेक्चर, अथवा खुला शंका समाधान, आवश्यकता हो तो शास्त्रार्थ सायंकाल को भी रख सकते हैं।

इस प्रकार से उत्सव बाह्य तथा आन्तरिक दोनों प्रकार के प्रचार का काम देगा। उपदेशक केवल प्रदर्शिनी का ही काम न करेंगे किन्तु ठोस प्रचार का कार्य करेंगे। दो उपदेशक एक उत्सव के लिये पर्याप्त हैं, बहुत अधिक हुए तो तीन। पौराणिक ब्रह्माण्ड की सृष्टि, उत्पत्ति, तथा प्रलय त्रिमूर्ति से हो जाता है तो आर्य समाज का उत्सव इस संख्या से क्यों न हो सकेगा? सप्ताह भर भी यह प्रोग्राम रहे तो नवीनता के लिये नए उपदेशक की आवश्यकता न रहेगी।

जहां उत्सव बहुत से सुप्रबद्ध होंगे, वहां दूसरे कार्यों के लिये भी उपदेशक बचाये जा सकेंगे। कई ऐसे उपदेशक निकल आयेंगे जो उत्सवों में इतने उपयोगी नहीं जितने दलितोद्धार तथा ग्राम-प्रचार में।

लेक्चरों की संख्या कम होने से जनता को प्रतिदिन कोई नया विचार दिया जा सकेगा। एक की लिखी स्लेट पर दूसरा पोचा न फेरेगा।

सत्याग्रह का प्रस्ताव

'आर्य' के गतांक में आर्य समाजों के नगरकीर्तन बन्द होने का समाचार लिखते हुए हमने विचार प्रकट किया था कि इस समय सत्याग्रह ही का हथियार आर्य समाज को वर्तना होगा। सार्वदेशिक प्रतिनिधि-सभा ने अपनी बैठक २३, २४ मई को (जब पंजाब प्रान्तीय सभा की बैठक भी होनी है) लाहौर में रख इस विषय का निर्णय करने का निश्चय किया है कि क्या इस समय सत्याग्रह ही हमारी स्वत्वरक्षा का साधन है या इस से वरे कुछ और भी? जनता को अपने नेताओं के निर्णय की प्रतीक्षा करनी चाहिये। और जो वह कहेंगे, वह करने को अभी से उद्यत रहना चाहिये।

दयानन्दोपदेशक विद्यालय

दयानन्दोपदेशक विद्यालय का प्रवेश तथा उपाधिवितरण का उत्सव २४ एप्रिल को मनाया गया। विद्यालय के वृत्तान्त से जो श्री स्वा० वेदानन्द तीर्थ ने पढ़ा पता लगता है कि विद्यालय का आरंभ ६ विद्यार्थियों से हुआ और वर्ष के अन्त तक २४ नियमित और कुछ अनियमित विद्यार्थी हो गये। ५ परीक्षार्थियों ने सिद्धान्त-भूषण परीक्षा पास की। इन में से ३ को जो उपस्थित थे उपाधियां दी गईं।

विद्यालय की शिक्षा का प्रमाण एक विद्यार्थी की कुरान विषयक वक्तृता और दो के 'मुक्ति से पुनरावृत्ति' विषय पर शास्त्रार्थ से मिलता है। वक्ता ने कुरान के उद्धरण पढ़े। वादियों ने प्रमाण और युक्ति से अपना पक्ष सिद्ध किया। एक प्रमाण अपूर्व था। वह वही है जो श्री स्वा० वेदानन्द जी ने अन्यत्र अपने लेख में व्याख्या सहित उपस्थित किया है। आचार्य श्रीस्वतन्त्रतानन्द जी ने दीक्षा देते हुए उपदेश किया। उत्सव सफल रहा।

रेवाड़ी का अभियोग

आर्य-समाज के सम्मुख आज स्थिति कैसी है, यह स्थान २ के अनुभवी लोग अपने २ अनुभवों द्वारा जानते ही हैं। एक साथ मुसलमानों का सामना, सरकार का सामना, और सनातनी भाइयों का भी सामना है। विरोधी किन हथियारों पर उतर रहे हैं, इस का पता रेवाड़ी में चलाए गए उस अभियोग से चलता है जिस की व्यवस्था म० एफ़. बी. पूल मैजिस्ट्रेट ने दी है। अभियोग ७ प्रतिष्ठित आर्यों के विरुद्ध था। स्थानीय मुसलमान उस में वादी थे। दोष यह था कि उन्होंने दिन दिहाड़े में एक मुसलमान की दूकान लूटी है। मैजिस्ट्रेट ने अपनी व्यवस्था में इसे 'wicked fabrication' अर्थात् धूर्तों की बनावट ठहराया है। घटना हुई ही नहीं और अभियोग चल गया है। क्यों? मैजिस्ट्रेट लिखता है:—'इस लिये कि यह (दोषारोपित) आर्य समाज के मान्य अधिकारी हैं'। पोलिस इस 'धूर्तों की बनावट' में आधे की हिस्सेदार है। है कुछ गवर्नमैंट का उत्तरदातृत्व?

अब चुपके बैठ कर काम न चलेगा। स्थिति भयंकर हो रही है।

मसजिदों के आगे बाजा

मसजिदों को बाजा हौवा हो रहा है। मुसलमान इसका नाम सुनते ही लाल पीला हो जाता है। पिछले दिनों के कितने ख़ून ख़राबे इस बाजे की इस्लाम-ध्वंसिनी ध्वनि ने कर दिये। इसी संबन्ध का शीया सुन्नियों का अभियोग प्रिवी कौंसल में गया। उस के फैसले के निम्नलिखित वाक्य ध्यान में रखने योग्य हैं:—

"प्रत्येक संप्रदाय के अनुयायियों को अधिकार है कि उचित सजधज के साथ अपनी धार्मिक यात्राएं राजमार्गों पर ले जा सकते हैं। इस में सड़क के आव जाव संबन्धी स्थानीय शासकों की आज्ञा, मैजिस्ट्रेट के आदेश तथा जनता के अधिकारों ही का बन्धन होगा।

दूसरे संप्रदायों या धर्मों के अनुयायियों को यह अनुरोध करने का अधिकार नहीं कि उन के धर्म मन्दिरों के पास से गुज़रने के कारण यात्रा का कोई कार्य रुक जाना चाहिये। पर हां! मैजिस्ट्रेट किसी विशेष स्थिति में आज्ञा दे सकता है कि अमुक स्थान से इतनी दूरी पर यात्रा संबन्धी कार्य रुक जाना चाहिये।"

कलकत्ते और अन्य स्थानों के फसादी और उन के पृष्ठ पोषक मुसल्मान नेता इस आज्ञा के दर्पण में अपना ख़ूनी मुंह देखें।

आर्य 'गज़ट' का मांस प्रचार

हमें आर्य समाज के वृद्ध बताते हैं कि किसी समय मांस विषय पर कालेजी भाइयों के साथ हमारे नेताओं का घोर संग्राम हो चुका है। कालेजी भाइयों ने उन दिनों पुस्तकाएं छापी थीं और मांस भक्षण का खुला पक्ष लिया था। परन्तु न जाने क्यों, हमारी स्मृति में मांसाशन का खुला विधान अपने आपको आर्य-समाजी कहने वालों ने प्रायः नहीं किया। किसी इक्के दुक्के ने साहस किया भी है तो उसे दबे शब्दों में रोका गया है। हम अफ्रीका में थे जब हमने आर्य गज़ट में ला० हरदयाल एम.ए. का वह लेख उद्धृत हुआ देखा जिसमें मांसाशन को हिन्दुओं की जातीय आवश्यकता बताया गया है। यह लेख आर्य-गज़ट के लिये नहीं लिखा गया था किन्तु किसी और पत्र से केवल मांसाशन के विधान के हेतु ही उसे आर्य-गज़ट में स्थान दिया गया। और संपादक महाशय ने लिखा था कि हरदयाल कोई 'अलूल जलूल' मनुष्य नहीं कि उसकी सम्मति का आदर न हो। यही नहीं, ला० लाजपतराय और हसरत मोहानी को भी मांस-भक्षण विधायकों में रख कर मांस भक्षण को शिष्टानुमोदित विधि प्रकट किया गया था। यदि वेद के विषय में भी इन महानुभावों की सम्मति को आप्त प्रमाण मान लिया जाए तो 'आर्यगज़ट'को वेद से भी छुट्टी मिले। और फिर कालेजों के विषय में? उक्त टिप्पण के पश्चात् महाशय कृष्ण पर व्यक्तिगत आक्षेप करते हुए जिन से 'गज़ट' की कोई संख्या खाली नहीं होती, उनके और किसी दूसरे के भी मांस निन्दक होने पर खिल्ली उड़ाई जाती रही है। इस पर दावा यह है कि प्रादेशिक सभा मांस भक्षण के विरुद्ध है। उक्त सभा के मुखपत्र को चसका लगा है तो इस बात के दोहराने तेहराने का कि सब सद्गुण मांसभक्षण के साथ निवास करते है, या कर सकते हैं। किसी डाक्टर ने किसी नए आविष्कार के लिये रोग के कृमि अपने शरीर में डाल लिये हैं तो अनुमान यह है कि वह माँसाहारी हैं। विचित्र तर्क हैं!

बालि महाराज का 'वीर-भोजन'

पराकाष्ठा को २३ वैशाख का गज़ट पहुंचा है जिस में मास्टर आत्माराम के लेख के उत्तर में प्रो० बाली जी का लेख छापा गया है। प्रो० महाशय के कुछ वाक्य पढ़ जाइये और देखिये, प्रादेशिक सभा के मांस-विरोधी होने की सत्ता कितनी प्रबल है: –

"(मा० आत्माराम के) लेख का शेष भाग भी असंबद्ध विचारों का संग्रह है। आप हिसार के जाटों, मेवाड़ के सत्तू खाने वाले मारवाड़ियों और भारतीय सेनाओं की बड़ी प्रशंसा करते हैं कि वह अन्नाशी होते हुए बड़े वीर हैं। लेकिन वह भूल जाते हैं कि मांस खाने वाले अंग्रेज़ों ने सब को पराजित कर अपना दास बनाया हुआ है। .... दुनिया की सब से बलिष्ठ जातियां जो संसार पर राज्य कर रही हैं, वह सब मांसाहारी हैं। मास्टर जी के मुट्ठी भर जाट और वीर 'सत्तू खाने वाले भैय्या' उनके पासंग भी नहीं। यह 'भिंडी प्रचार' और अयथार्थ अहिंसा का सिद्धान्त ही हिन्दुस्तानी राज्य के नाश का कारण हुआ है।

यार लोगों ने अपने स्वार्थ के कारण मांस भक्षण के प्रश्न को असाधारण महत्व दे दिया है और चूंकि आर्य समाजी भी अभी तक जैनी और मारवाड़ी संस्कार रखते हैं, इस लिये वह भी इससे चौंक उठते हैं। ......

यदि ला० हरदयाल ने यह लिख दिया कि हिन्दुओं के 'बुज़ुर्ग' राम और कृष्ण भी 'वीर भोजन' खाते थे तो उन्होंने कोई अपराध नहीं किया।"

दयानन्द कालेज के एक लाइफ़ मेम्बर का यह लेख, और वह प्रादेशिक सभा के मुख पत्र में, किसी भ्रान्ति का स्थल नहीं हो सकता। यह सभा की ओर से मांस भक्षण का विरोध है तो 'प्रचार' शब्द के लिये नई डिक्शनरी घड़ना होगी।

जिम्मेदारी के काम

हम संपादक महाशय से अन्याय नहीं करना चाहते। उन्होंने साफ़ लिखा है कि 'बाली जी ने अपनी जिम्मादारी पर इस मज़मून को लिखा है। इसका कालेज पार्टी से कोई तअल्लुक़ नहीं।' उनकी लाइफ़ मेम्बरी से भी कालेज पार्टी का तअल्लुक़ है कि नहीं? यदि कोई लाइफ़ मेम्बर अपनी जिम्मेदारी की तरंग में कुछ और करले तो उसका पुण्य किसे होगा? मांस भक्षण का प्रचार डी. ए. वी. कालेज के लाइफ़ मेम्बरों की ओर से उन की अपनी जिम्मेदारी का काम है! फिर ग़ैर जिम्मेदारी से क्या करेंगे? मांस भक्षण का विरोध? ज़िम्मेदारी को एक कहो।

सम्पादक महाराज के अकथनीय तर्क पर न्योछावर हो जाने को जी चाहता है। लिखते हैं:—

'हम धार्मिक संसार में स्वा. दयानन्द को स्वतंत्रता का देवता समझते हैं। इस लिये जब तक हमारे दम में दम है, हम विद्या और बुद्धि पर कभी ताला न लगने देंगे।'

तो यह जिम्मेदारी के सब काम ग़ैर जिम्मेदार (?) दयानन्द के नाम पर होंगे? आपका दम सलामत रहे, विद्या और बुद्धि सार्थ भ्रष्ट ऊंट की तरह मुंह उठाए स्वच्छन्द तथा निरकुंश फिरेंगे। तो क्या अगली संख्या में मद्यपान की जिम्मेदारी किसी के कन्धे पर पड़ेगी? और उसके पश्चात्? वेद-खण्डन की बारी कब आती है? विद्या और बुद्धिपर आपके मतानुसार सब से बड़ा ताला यही है। संपादक महाराज! वही ताला तुड़वाइये। आर्य समाज के विश्वासभवन के वीर भित्ति-भेदक! बलिहारी है!

दोहरा शोक—अभी थोड़े ही दिनों की बात है गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक देवदत्त, जो देहली के देहात महरौली के निकट रामताल में गुरुकुल सँभाले बैठे थे, चेचक के रोगी हो कर परलोक सिधारे। हमें ब्रह्मचारी जी की पंजाबी गीतियां कभी न भूलेंगी जो वह गुरुकुलोत्सव के दिनों भोजन के समय सुनाते थे। इस के पश्चात् दयानन्द उपदेशक विद्यालय से भूषण परिक्षोत्तीर्ण पं० ऋषिदत्त के देहान्त का समाचार मिला है। यह गुरुकुल की अधिकारी परीक्षा पास थे और कुछ मास उपदेशक विद्यालय के विद्यार्थी रहे थे। इन का देहान्त प्लेग से हुआ। यह दोनों देहान्त आर्य समाज के लिये असह्य हानियां हैं।

'आर्य' पत्र प्रति अंग्रेज़ी मास की १५ तारीख़ को प्रकाशित होता है चूंकि डाकखाने में अंग्रेज़ों का हिसाब रखना पड़ता है। यह अङ्क 'मई' मास का है। तदनुसार देसी मास 'ज्येष्ठ' होता है। इस लिये इस अङ्क पर वैशाख न लिख कर 'ज्येष्ठ' लिखा गया है। इस से वस्तुतः अङ्कों की संख्या में कोई भेद नहीं आता। ग्राहक निश्चिन्त रहें। प्रबन्धकर्ता

दयानन्द-उपदेशक-विद्यालय (लाहौर) की पाठविधि

सिद्धान्त प्रवेशिका—व्याकरण—[क] अष्टाध्यायी १-५ अध्याय । [ख] वर्णोच्चारण शिक्षा तथा सन्धि विषय । [ग] शब्दरूपावली; धातुरूपावली । साहित्य—[क] संस्कृत प्रथमपाठः, संस्कृत द्वितीयपाठः । [ख] विदुर-नीति, नीतिशतक, वैराग्यशतक । सिद्धान्त—[क] सत्यार्थप्रकाश-२, १०, ११, १३, १४ समुल्लास । वेद—स्वस्तिवाचन, शान्ति प्रकरण, पञ्चमहायज्ञ-विधि (अर्थ सहित) विकल्प—[क] ऋषि दयानन्द कृत—१. आर्य्योद्देश्य रत्नमाला. २. व्यवहारभानु, ३. काशी शास्त्रार्थ, ४. सत्यधर्म्मविचार, ५. वेदविरुद्धमतखण्डन, ६ शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारण, ७. भ्रमोच्छेदन, ८. भ्रान्तिनिवारण, गोकरुणानिधि, १०. वेदान्त ध्वान्त निवारण, अथवा इस्लाम, वा ईसाईमत, वा सिखपन्थ।

सिद्धान्त भूषण (प्रथम खण्ड)

१. व्याकरण—(क) अष्टाध्यायी १—५ अध्याय (अर्थोदाहरणसिद्धि सहित) (ख) अष्टाध्यायी ६—८ मूल सूत्र । २ साहित्य—मुद्राराक्षस, मुनिचरितामृत । ३. दर्शन—(क) वैशेषिक दर्शन (ख) न्यायदर्शन (वात्स्यायन भाष्य सहित) प्रथमाध्याय ४ सिद्धान्त—(क) सत्यार्थप्रकाश २, ३, ४—६, १२ समुल्लास (ख) संस्कार विधि (विधिमात्र) ५. वैदिक - (क) आर्य्याभिविनय (ख) निघण्टु। (ग) यजुर्वेद - ४०वां अध्याय (ऋषि दयानन्दकृत भाष्यसहित) ६. उपनिषत्—केन, कठ, मुण्डक उपनिषत् ७. विकल्प—(क) भास्कर प्रकाश (प्रथम समुल्लास को छोड़ कर पूर्वार्द्ध) अथवा जैनमत—जैन तत्त्वादर्श (पूर्वार्द्ध) अथवा सिखपंथ—भाई गुरुदास दियां वारां, भक्त वाणी तथा रहित नामे अथवा ईसाईमत अथवा इस्लाम ८ (क) अनुवाद - (ख) प्रस्ताव (आर्य्य भाषा में) ९ (क) व्याख्यान-(आर्य्य भाषा में) (ख) शंकासमाधान (ग) संस्कृत संभाषण । (द्वितीयखण्ड) १. व्याकरण—(क) अष्टाध्यायी ६ ८ अध्याय (अर्थोदाहरणसिद्धिसहित) (ख) धातु पाठ (प्रयोगसिद्धि सहित) २ साहित्य - (क) प्रबोधचन्द्रोदय, शिवराजविजय ;(ख) पिङ्गलछन्दः सूत्र, काव्यालंकारसूत्र । ३. दर्शन—न्यायदर्शन (वात्स्यायन भाष्य सहित) । ४. सिद्धान्त—(क) ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका (ख) मनुस्मृति ५. उपनिषत्—प्रश्न, माण्डूक्य एतेरय, तैत्तिरीय उपनिषत् । ६. निरुक्त १—३ अध्याय । ७. वेद—यजुर्वेद, ३१, ३२, ३५, २६ अध्याय (ऋषि दयानन्द कृत भाष्य सहित) अथवा अथर्ववेद—१६, १७, काण्ड ८. विकल्प—भास्कर प्रकाश (शेष), पुराणमतपर्य्यालोचन अथवा जैनतत्त्वादर्श (शेष) अथवा गुरु तेगबहादुर के शब्द, गुरु गोविन्दसिंह जी कृत विचित्तर नाटक, निहङ्ग संपूर्ण

सिंह कृत सूर्य्य वंशीय क्षत्रिय खालसा अथवा इस्लाम अथवा ईसाईमत। ९. (क) अनुवाद (ख) प्रस्ताव (संस्कृत) १०. (क) व्याख्यान, (आर्य्य भाषा में) (ख) शंकासमाधान (ग) संस्कृत सम्भाषण

सिद्धान्त शिरोमणि (प्रथम खण्ड) १. व्याकरण—महाभाष्य (नवाह्निक)। २ दर्शन—(क) योग दर्शन (व्यास भाष्य सहित)। (ख) सांख्य दर्शन, अथवा मीमांसा दर्शन। (निवीतान्त)। ३ उपनिषद्—छान्दोग्य, श्वेताश्वतर उपनिषत्। ४ वेद-यजुर्वेद १-१६ अध्याय (ऋषि दयानन्द कृतभाष्य सहित) अथवा अथर्ववेद १--६ काण्ड ५ निरुक्त-शेष ६. सिद्धान्त-सत्यार्थप्रकाश (संस्कृत), (ख) जातिनिर्णय (पं० शिव शङ्कर कृत)। ७. विकल्प-देवी भागवत पुराण अथवा इस्लाम। ८. प्रस्ताव (संस्कृत में)। ९. व्याख्यान (आर्य्य भाषा में)। १०. शङ्का समाधान। द्वितीय खण्ड—१. व्याकरण—(क) महाभाष्य (अङ्गाधिकार) (ख) यजुः प्रातिशाख्य अथवा अथर्व प्रातिशाख्य २. दर्शन—वेदान्त दर्शन अथवा पूर्वमीमांसा दर्शन (शेष)। ३. उपनिषत्—बृहदारण्यक। ४. वेद—(क) यजुर्वेद शेष (ऋषि दयानन्द कृत भाष्य समेत) अथवा अथर्ववेद (शेष)। (ख) सायणकृत ऋग्वेद भूमिका की आलोचना.। ५. ब्राह्मण—गोपथ ब्राह्मण। ६. विकल्प—याज्ञवल्क्यस्मृति (मिताक्षरा सहित) अथवा श्रीमद्भागवत पुराण अथवा इस्लाम। ७ सिद्धान्त—वैदिक इतिहासार्थनिर्णय भूमिका छोड़कर। ८. परमतनिरसनपूर्वक स्वसिद्धान्तपोषक मौलिक निबन्ध (आर्य्य भाषा में ६० पृष्ठ फुल्स्केप. प्रति पृष्ठ ३० पंक्ति, प्रति पंक्ति २० अक्षर)। ९. व्याख्यान (संस्कृत में)। १०. शङ्का समाधान

टि०-इन परीक्षाओं के अतिरिक्त विद्यालय की ओर से निम्नलिखित दो परीक्षाएं हुआ करती हैं। किन्तु विद्यालय में इनके अध्यापन का प्रबन्ध न होगा।

१. सिद्धान्त विशारद—(१) सत्यार्थ प्रकाश। (२) ऋषिकृत-भ्रान्ति निवारणादि लघु पुस्तकें। (३) भारतवर्ष का इतिहास (श्री प्रो० रामदेव कृत (४) श्रीमद्दयानन्द प्रकाश (श्री स्वामी सत्यानन्द जी कृत) (५) पुरुषार्थ प्रकाश। (६) दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह। (७) वैदिक दर्शन। (८) संस्कारविधि (श्रीमा० आत्माराम कृत संस्कार चन्द्रिका सहित)। (९) व्याख्यान (आर्य्य भाषा में) (१०) मौखिक शंका समाधान।

२. सिद्धान्त वाचस्पति—इसकी पाठ विधि पुनः प्रकाशित की जाएगी। इस परीक्षा में वही सम्मिलित हो सकता है। जो सिद्धान्त शिरोमणि में उत्तीर्ण हो चुका हो॥

टि०-विद्यालय के नियमित विद्यार्थियों के अतिरिक्त यदि कोई और महाशय विद्यालय की शिक्षाके किसी भाग से लाभ उठाना चाहें तो उनके लिए भी उचित प्रबन्ध हो सकता है।

आर्यसमाज के उच्चकोटि के विद्वानों की पुस्तकें

सन्यासी महात्माओं की ओर से आत्मप्रसाद।

(१) **श्री स्वामी सत्यानन्द जी**—दयानन्द प्रकाश १॥) संध्यायोग ।-) सामाजिक धर्म ॥) दयानन्द वचनामृत ॥=) ओंकार उपासना ≡) सत्योपदेश माला १)

(२) **श्री नारायण स्वामी जी**—आत्म दर्शन १॥) आर्य समाज क्या है ।-) प्राणायाम विधि =) वर्णव्यवस्था पर शंकासमाधान ≡)

(३) **श्री स्वामी अच्युतानन्द जी**—व्याख्यानमाला (संस्कृत में) संस्कृत में योग्यता प्राप्त करने के लिये ॥=) आर्याभिविनय द्वितीय भाग सजिल्द ।-)॥ एक ईश्वरवाद -) प्रार्थना पुस्तक

(४) **श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी**—आर्य पथिक लेखराम १।) मुक्ति सोपान ॥=)

(५) **श्री स्वामी सर्वदानन्द जी**—आनन्द संग्रह, परम आनन्द की प्राप्ति के सब साधन इस में दिये गये हैं १)

(६) **श्री स्वामी अनुभवानन्द जी**—भक्त की भावना, बहुत बढ़िया पुस्तक है मू०केवल॥)

भक्ति दर्पण अथवा आत्म प्रसाद।

इस में भक्ति मार्ग के सभी साधन दे दिये गये हैं। प्रत्येक स्त्री, पुरुष, बच्चे, बूढ़े को हर समय जेब में रखनी चाहिये। पाकिट साईज सुनहरी जिल्द मू० ॥)

स्कूलों तथा पाठशालाओं में बच्चों को उपहार में देने योग्य उत्तम पुस्तक है। आर्य समाज के बड़े २ विद्वानों ने इसे बहुत पसन्द किया है।

आर्यप्रतिनिधि सभा द्वारा स्वीकृत।

—आर्य प्रतिनिधि सभा ने आर्य समाजों के लिये हिसाब किताब, मासिक चन्दा, संस्कार, पुस्तकालय, वस्तुभण्डार, साप्ताहिक सत्संग तथा वार्षिक वृत्तान्त के लिये १० प्रकार के रजिस्टर और फर्म स्वीकार किये हैं, जो प्रत्येक समाज को प्रयोग में लाने चाहियें। यह रजिस्टर सजिल्द तथा एक वर्ष से अधिक समय के लिये प्रर्याप्त हैं। मू० केवल ६)

—शुद्धि के प्रमाण पत्र—जो सभा द्वारा स्वीकृत हैं, अति सुन्दर रंगीन छपवाए गए हैं, प्रमाण पत्र का एक भाग समाज के पास रहेगा। और दूसरा भाग काट कर शुद्ध हुए व्यक्ति को दिया जाता है। १०० फार्मों की एक कापी का मू० १॥=), ५० फार्मों की कापी ।॥=)

—आर्यसमाज के प्रवेश पत्रों तथा नियमों की १०० फार्मों की सुन्दर कापी ।'=), रसीद बुक ॥) हिन्दी, अंग्रेज़ी, उर्दू नियम ।=) सैंकड़ा ॥

साप्ताहिक सत्संग के लिये सत्संग गुटका ≡) भजन संकीर्तन -)

राजपाल—अध्यक्ष, आर्य पुस्तकालय तथा सरस्वती आश्रम, लाहौर।

सालभर का परीक्षित

भारत सरकार तथा जर्मन गवर्नमेंट से रजिस्टर्ड

८०००० एजेंटों द्वारा बिकना दवा की सफलता का सब से बड़ा प्रमाण है

(बिना अनुपान की दवा)

यह एक स्वादिष्ट और सुगंधित दवा है, जिस के सेवन करने से कफ़ खासी, हैज़ा, दमा, शूल, संग्रहणी, अतिसार, पेट का दर्द, बालकों के हरे पीले दस्त, इन्फ्लुएंजा इत्यादि रोगों को शर्तिया फायदा होता है। मूल्य ॥) डाक खर्च १ से २ तक ।=)

दाद की दवा

बिना जलन और तकलीफ़ के दाद को २४ घण्टे में आराम दिखाने वाली सिर्फ़ यही एक दवा है। मूल्य फ़ी शीशी ।) आ. डा. खर्च १ से २ तक ।=) १२ लेने से २।) में घर बैठे देंगे।

दुबले पतले और सदैव रोगी रहने वाले बच्चों को मोटा और तन्दुरुस्त बनाना हो तो इस मीठी दवा को मंगा पिलाइये बच्चे इसे खुशी से पीते हैं दाम फ़ी शीशी ॥।) डाक खर्च ॥)

पूरा हाल जानने के लिये सूचीपत्र मंगा कर देखिये, मुफ्त मिलेगा यह दवाईयां सब दवा बेचने वालों के पास मिलती हैं।

सुख संचारक कंपनी, मथुरा

Registered No. L.1424. रजिस्टर्ड नं० एल १४२४

भाग ७ जून १९२६
अङ्क ३ आषाढ़ १९८३

आर्य्य

आर्य्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का मासिक पत्र

सम्पादक—चमूपति

प्रार्थना

ओ३म् इन्द्रं वर्धन्तोऽप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ।
अपघ्नन्तोऽराव्णः ॥ ऋग्वेद ।

हे प्रभु ! हम तुम से वर पावें ।
विश्व जगत् को आर्य्य बनावें ॥
फैलें, सुख सम्पत् फैलावें ।
आप बढ़ें, तव राज्य बढ़ावें ॥
वैर-विघ्न को मार मिटावें ।
प्रीति-नीति की रीति चलावें ॥

वार्षिक मूल्य २) रु० पेशगी

बाबू जगतनारायण प्रिन्टर व पब्लिशर के अधिकार से विरजानन्द प्रेस लाहौर में छप कर प्रकाशित हुआ ।

विषय सूची

आर्य के नियम।

१-यह पत्र अंग्रेज़ी मास की १५ तारीख़ को प्रकाशित होता है। (डाकखाना में चूंकि अंग्रेज़ी तारीख़ देनी होती है, इसलिये अंग्रेज़ी तारीख़ का हिसाब रक्खा गया है)।

२—इसका वार्षिक मूल्य ३) है। सभा ने वैदिक धर्म तथा नागरी प्रचार के लिये इसे जारी किया है।

३—इस पत्र में धर्मोपदेश, धर्म-जिज्ञासा, प्रतिनिधि सभा की सूचनाएं दर्ज होती हैं।

४—पत्र में प्रकाशित होने के लिये समाचार तथा लेख प्रत्येक अंग्रेज़ी मास की १ तारीख़ के पूर्व आजाने चाहियें।

५—यदि डाक की ग़लती से कोई अङ्क न पहुंचे, तो १५ दिन के भीतर सूचना देने से वह अङ्क भेज दिया जायगा, लेकिन इस अवधि के पश्चात् मंगवाने पर प्रति अङ्क ।-) देने पड़ेंगे।

* ओ३म् *

भाग ८] लाहौर—आषाढ़ १९८३ जून १९२६ [अंक ३

[दयानन्दाब्द १०२]

वेदामृत

अपार

ओ३म् यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः । न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥

ऋ. ८. ७०. ५.

सैंकड़ों मन हों हज़ारों बुद्धियां अनगिन्त प्राण ।
पार पा सकें न, अणु भर शक्ति बन जाती महान ॥

युगण्डा में ब्रज-बाल*

श्री आचार्य रामदेव जी ने 'तेज' के विशेषांक में युगण्डा-वासियों में प्रचलित एक गाथा का वर्णन करते हुए उसे श्री कृष्ण की बाल्यावस्था की कहानी का अपभ्रंश मात्र ठहराया था From Uganda to Khartum नाम की Albert B. Loyd लाइड रचित पुस्तक के अध्ययन से-जिस से आचार्य महोदय ने उपरि-वर्णित मत स्थापित किया था —मैं भी इसी परिणाम पर पहुंचा हूं।

श्री कृष्ण जी की विचित्र बाल-कथा तथा उन का अपने क्रूर चाचा राजा कंस के हाथों अलौकिक ढंग से बचाव अनेक देशों तथा सम्प्रदायों की देवमाला-लीलाओं में वर्णित है।

तुलना के लिये कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं—

१. साईरस नामक परशिया का प्रथम राजा, मीडीज़ के अधिराज असरेज़ीज़ की कन्या मैन्डेस का पुत्र माना जाता है। मीडी-राज कंस की भांति आकाश-वाणी को सुनता है कि उस की पुत्री का पुत्र उस के राज्य का अपहरण करेगा। वह उस पुत्री का विवाह एक साधारण स्थिति के पुरुष से कर देता है परन्तु फिर भी उसी प्रकार की दैव चेतावनी उस की निद्रा को भंग करती है पुत्री से एक पुत्र होता है। नव-जात शिशु को नष्ट करने के लिये मन्त्री को नियुक्त किया जाता है, परन्तु वह ऐसे क्रूर आदेश को कार्य-रूप में लाने का भार एक गडरिये पर डालता है। इस अन्तर में ग्वाले की स्त्री एक मरा हुआ बच्चा जनती है। उस मन्दभाग्य बालक के स्थान में अपनी मृत सन्तान को रख देने का भाव उस के लिये आश्चर्यजनक नहीं। यद्यपि उस का बलिदान—यदि एक शोकातुर माता के लिए किसी अन्य की सन्तान का पालन करना बलिदान कहला सकता है—गोकुल के अमर गोप नन्द की पत्नी यशोदा की अपेक्षा तुच्छ है। दोनों बालकों का अदल बदल हो जाता है। अब मन्त्री के लिये यह पहचानना कठिन है कि यह मारा हुआ बच्चा किस का है।

२. रोम के संस्थापक-युगल रोमूलस और रेमस के विषय में इसी प्रकार से देवताओं द्वारा निर्मित और सुरक्षित चरित्र का वर्णन मिलता है। मंगल (Mars) देवता द्वारा रोम की एक देवदासी (Vestal virgin) से उन की उत्पत्ति हुई। यह कन्या नुमीटर की पुत्री थी, जिसे उस के छोटे भ्राता एमूलियस ने राज्य से बहिष्कृत किया तथा उस के एक मात्र पुत्र का बध करा कर और उस की इकलौती कन्या को देव-दासी बना कर उस की सन्तान का उच्छेद कर दिया। राजा एक कुंवारी

* पं० चमूपति के एक लेख का अनुवाद।

कन्या से दो पुत्र होने पर कुपित हुआ। कोप का बड़ा कारण संभवतः यह था कि उसके सिंहासन के लिये सच्चे अधिकारियों का प्रादुर्भाव हो गया। राजा ने बच्चों को सन्दूकों में बन्द कर के इटली की यमुना—टाईबर नदी-में फेंक देने का आदेश दिया। वे अनुकूल समय पर एक गडरिये के हाथ पड़े। वह उन्हें स्वपुत्रों के सदृश पालने लगा। ये दोनों भाई बाल्यावस्था में कुछ ऐसे ही साहसपूर्ण कार्य करते हैं जैसे पुराणों के कथनानुसार कृष्ण और बलराम ने किये थे। रोमुलस पकड़ा जा कर राजा के सम्मुख लाया गया और रेमस भी शीघ्र उसे आ मिला। कुछ अपनी शूरवीरता से और कुछ मित्रों और अनुयाइयों की सहायता से उन्होंने राजा का वध किया और राज्य अपने राज्यभ्रष्ट दादा के अर्पण कर दिया। और अपने लिये अपने बाल्यकाल की क्रीड़ा-स्थली को चुन लिया जहां उन्हों ने वर्तमान रोमनगर की स्थापना की।

३. यहूदियों की पुरानी साक्षि (Old Testament) में वर्णित शिशु मोज़ेज़ का तिनकों की नौका में नीलतट पर परित्यक्त होना तथा उस का फरोह की आज्ञानुसार—कि इसराईल जाति के सब बच्चे जन्म लेते ही समुद्र में फेंक दिये जावें—वहां छोड़ा जाना, वहाँ से उसी फरोह की कन्या द्वारा उस का उठा लिया जाना और अपनी ही माता को परवरिश के लिये दिया जाना स्थूल रूप से ऊपर कही गाथाओं से बहुत समानता रखता है। फिर समय आता है जब मोज़ेज़ अपने अनुयायियों समेत फरोह के हाथों भाग निकलता है। उसे रास्ता देने के लिये लाल सागर (Red Sea) के दो टुकड़े हो जाते हैं। यह मथुरा के फरोहा-कंस-के अत्याचार से बचने के लिये अपने पिता वसुदेव के करकमलों में उठाये हुए शिशु कृष्ण के चरण-कमलों के सम्मुख यमुना के जलावतार की घटना का उत्तरकालीन रूप नहीं तो क्या है?

४ उपरि कथित वृतान्तों में इतिहास का वर्णन काव्य की शैली से, जो कल्पित कथानकों से अलंकृत है, हुआ है। ऐसे अनेक वर्णन संसार की विविध जातियों में पाये जाते हैं। मैं संक्षेप के लिये बुगण्डा जाति की उस परम्परागत गाथा की ओर आता हूँ जिस की श्री कृष्ण के ऐतिहासिक और पौराणिक कथा से अत्यन्त समता के वर्णन से इस लेख का प्रारम्भ हुआ है. उक्त पुस्तक के ४६ पृष्ठ पर बवेज़ी राजवंश के अलौकिक प्रारम्भ के विषय में निम्न गाथा का वर्णन है:—

बुन्योरो राजा बुकुकु ने एक राज-नियम बनाया—कि उस के हां उत्पन्न हुई किसी कन्या का विवाह न होगा। उस के एक पुत्री नीनमबिरो नाम की थी। उसने उस के गृह के चारों ओर एक बाड़ लगवा दी। उस में कोई द्वार न था। इसिम्बा (विचित्र देव-मनुष्य) बाड़ पर चढ़ा और दूसरी ओर उतर

गया। उस ने चार दिन तक वहां गुप्त वास किया। नीनमविरों के हां पुत्र हुआ। उसने अपनी दासी से कहा कि उसे महान् एलबर्ट झील पर ले जा कर डुबो दे। बच्चे का नाम नदहुरा रखा गया। नदहुरा अपने पोषक पिता की गौओं सहित राजा की गौओं को खेतों में चराने ले गया। एक दिन राजा स्वयं अपनी गौएं देखने गया। नदहुरा ने राजा को मार दिया। नदहुरा एक प्रसिद्ध राजा बन गया। प्रायः अपनी प्रजा की सहायता से विजयान्त युद्ध करता रहा परन्तु एक युद्ध-यात्रा में वह मारा गया और उस की प्रजा का भी बध कर दिया गया।

आज भी कुछ मुसलम रियास्तों में राजाओं की पुत्रियों का विवाह राज-नियम से वर्जित है। रियासत बहावलपुर में जहां का निवासी कि लेखक है ऐसा ही नियम प्रचलित है। औरंगज़ेब के समय से पूर्व तक के मुगल राजा इसी नियम पर चलते रहे। युगण्डा के प्रथम बववेज़ो राजा का सादृश्य भारत के ब्रजबाल से मुख्यतया इन अंशों में है:—उस की कारागार में उत्पत्ति, उस का तत्काल न्यानज़ा झील पर लेजाया जाना, जिस ने भारत की यमुना की तरह भीड़ के समय देवकुमार की जीवन-रक्षा की। उस का बाल-काल में गोपके रूप से पालन पोषण होना, उस का एक मातृकुल के राजा को बध करना। उस का प्राणान्त भी कृष्ण के अन्त के समान ही है। बगण्डा कंस बुकुकु के विजित राज्य का उस के वैध अधिकारियों के अर्पण किया जाना बगण्डा जाति के भोले हृदय, और इसी भोलेपन के कारण स्वार्थी मस्तिष्क, की पहुंच से कहीं ऊंचा भाव है। राजनीतिज्ञ आज भी इस उत्तम भाव को क्रियात्मिक रूप में परिणत करना अपनी शक्ति से बाहिर मानते हैं। बाल कृष्ण सब देशों का प्रिय रह चुका है। पुराणों का आदिम ब्रजबाल किसी भी देश का हो—अधिक संभावना उस के भारती होने की है—संसार की जातियां अपने वीरों की जीवनियों के चारों ओर किसी न किसी रूप में—कुछ सत्य कुछ कालपनिक सा—श्री कृष्ण की बाल्य--कालीन घटनाओं का सा ताना तनती रही हैं।

पुराणों के अतिरिक्त किसी चित्र में ब्रजबाल पर काम-क्रीड़ा, व्यभिचार आदि दोषों (जिन का एक बच्चे पर आरोपण निस्संदेह काव्य-कल्पना का विपर्यय है) का सर्वथा अभाव इस विषय में पर्याप्त प्रमाण है कि पुराणों में यह अश्लीलता पीछे की मिलावट है। बगण्डा लोगों ने अपनी आर्य संस्कृति के चिन्हों में गोपराज--जिस की निष्पाप पवित्रता, तथा वीरता ने संसार भर के कवि और दैवसंदेशहरों के मनों पर सिक्का जमा लिया है--की स्मृति आज तक स्थिर रूप से सुरक्षित रखी है।

धर्मेन्द्र बी. ए.

आर्य समाज का अन्वेषण-कार्य

(श्रीयुत भीमसेन विद्यालङ्कार)

आर्य समाज के विद्वान् आज अन्वेषण कार्य की ओर विशेष रूप से रुचि दिखा रहे हैं। दूसरे सम्प्रदायों के विद्वानों पर आर्य समाज के विद्वानों की विद्वत्ता की छाप तब तक नहीं लग सकती जब तक विद्वानों ने अन्वेषण कार्य में विशेष खोज न की हो। ऋषि दयानन्द और पण्डित गुरुदत्त के बाद अन्वेषण कार्य में किसी आर्य समाजी विद्वान् ने विशेष प्रतिभाशाली खोज नहीं की। इसी लिये हम देखते हैं कि निरन्तर प्रचार के जारी होने पर भी प्रतिष्ठित विद्वान् लोग आर्यसमाज में सम्मिलित नहीं हुए। वे आर्यसमाज से सहानुभूति प्रकट करते हैं, इतना ही कुछ एक आर्य समाजी विद्वानों की प्रेरणा से वह समय २ पर कर देते हैं कि ऋषि दयानन्द और आर्य समाज की प्रशंसा में कुछ लिख दें। स्पष्ट शब्दों में आर्य समाज तथा ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तों का विद्वत्ता के बल पर मंडन करने वाले विद्वान् बहुत कम दिखाई देते हैं। आर्य समाज का प्रभाव बिना आर्य समाज की छाप के दिनों दिन फैल रहा है देव समाजी सनातनी सब आर्य समाज की भावना तथा Spirit को अपना रहे हैं। परन्तु इन नववर्षों में यह सब लोग स्वतन्त्र रूप से ही चलने का यत्न करते हैं। काशी के विद्वान् विद्वत्ता के सामने सिर झुकाने को तय्यार रहते हैं, परन्तु आज ऋषि दयानन्द के बाद उन पण्डितों को विद्वत्ता के मैदान में पराजित करने वाले विद्वान् नहीं दिखाई देते।

इस का एक मात्र कारण हमारी राय में यह है कि अबतक आर्यसमाज ने ऐसा कोई अन्वेषण विद्यपीठ संगठित नहीं किया जहां आर्य समाज के विद्वानों या वैदिक साहित्य का अनुशीलन करने वालों को स्वतन्त्र रूप से संकोच के बिना विचार-चर्चा का अवसर मिले। अन्वेषण विद्यापीठ वहीं सफल होते हैं जहां का वातावरण भिन्न २ विज्ञानों तथा विद्याओं की विचार-चर्चा से परिपूर्ण हो। आर्य समाज के शिक्षणालयों में गुरुकुल महाविद्यालयों को छोड़ कर और कोई ऐसा शिक्षणालय नहीं है जहाँ इस अन्वेषण विद्यापीठ को संगठित किया जा सके। केवल मात्र पुरानी पुस्तकों के स्वसिद्धान्त-समर्थक उद्धरणों को संगृहीत करना या "शुद्धपाठ भेद" छाप कर पुस्तकें छपना—अन्वेषण कार्य नहीं है। अन्वेषण

विद्यापीठों का उद्देश्य यह होता है कि वह मौलिक नई युक्तियों द्वारा सिद्धान्तों का समर्थन करें। स्पष्ट शब्दों में यह कह सकते हैं कि कैमिस्ट्री, इतिहास, तुलनात्मक भाषा-शास्त्र तथा कृषि विज्ञान आदि भिन्न २ विज्ञानों के आधार पर वैदिक सिद्धान्तों को समर्थित करने का यत्न जहां हो सके वहीं अन्वेषण विद्यापीठ बन सकता है।

ऐसे स्थानों पर यह प्रबन्ध होना चाहिए कि भिन्न विज्ञानों के उपाध्याय मिल कर अपनी २ दृष्टि से एक २ सिद्धान्त पर प्रकाश डाल सकें। इस लिए हमारा प्रस्ताव है कि अन्वेषण कार्य की तरफ बढ़ती हुई रुचि को इस समय विशेष रूप से संगठित करने का यत्न होना चाहिये। इस के बिना आर्य समाज के वैदिक सिद्धान्त सर्वत्र प्रचलित नहीं हो सकेंगे।

नि:सन्देह इस समय आर्य समाज के कुछेक विद्वान् निजू तौर से अन्वेषण का कार्य कर रहे हैं। परन्तु शोक से लिखना पड़ता है कि इस समय जो सज्जन अन्वेषण कार्य कर रहे हैं उन्हों ने अपने अपने अन्वेषण के कार्य क्षेत्र Scope of research work) का खाका भी निश्चित रूप से अङ्कित नहीं किया। कोई पुस्तक हाथ में लगी उस की अन्तरंग बहिरंग परीक्षा को ही अन्वेषण कार्य समझा जाता है।

इस समय हमारे सामने यह स्पष्ट नहीं है कि वैदिक सिद्धान्तों की दृष्टि से ज्योतिष, कैमिस्ट्री, आयुर्वेद आदि विज्ञानों के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में कितनी बातों का पता लग चुका है और कितनी बातों का पता लगाना है। लो० टिलक जैसे प्रकाण्ड विद्वानों ने ज्योतिष के बल पर वेदों के जो अर्थ किए हैं और ज्योतिष शास्त्र के आधार पर वेद काल निर्णय के सम्बन्ध में जो अर्थ लिखे हैं आजतक उन का खंडन करने का यत्न नहीं किया गया न ही किसी ने इस दिशा में खोज करने का यत्न किया है। इसी प्रकार से शब्दार्थ सम्बन्ध को नित्य मनाने के लिये केवल मात्र शास्त्रों के प्रमाण तो उपस्थित किए जाते हैं, परन्तु उपनिषदों में व्यञ्जनों तथा स्वरों की उत्पत्ति तथा आविर्भाव के सम्बन्ध में जो सन्दर्भ आते हैं उनकी वैज्ञानिक व्याख्या करने का यत्न किसी ने नहीं किया। शब्दार्थ सम्बन्ध की नित्यता—अकुह विसर्जनीयानां कण्ठः। इत्यादि व्यञ्जनोत्पत्ति स्थानों के पारस्परिक सम्बन्धों का विश्लेषण तब तक नहीं हो सकता जब तक Physics या भौतिक विज्ञान द्वारा शब्द Sound की उत्पत्ति का विशेष दृष्टि से अध्ययन न किया जाय।

इसी प्रकार वर्णव्यवस्था तथा ब्रह्मचर्य जैसे वैदिक सिद्धान्तों के सम्बन्ध में वेद में जो मन्त्र आते हैं उन की स्पष्ट व्याख्या तब तक नहीं हो सकती जब तक sociology समाज शास्त्र, theory of population जनवृद्धि के सिद्धान्त तथा Eugenics सन्तति शास्त्र द्वारा इन सिद्धान्तों पर प्रकाश न डाला जाय । ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में आर्य राजाओं की वंशावलि देते हुए ऐतिहासिक खोज करने के लिए विशेष प्रेरणा तथा निर्देश दिए हैं । अपने ग्रन्थों में स्थान २ पर वेद मन्त्रों की व्याख्या करते हुए उन वैज्ञानिक सिद्धान्तों की तरफ संकेत किया है ऋषि दयानन्द वैदिक धर्म को केवल मात्र भक्त लोगों का धर्म नहीं बनाना चाहते थे । इस्लाम ईसाइयत तथा हिन्दुओं के कुछेक सम्प्रदायों की तरह वह इसे संकुचित भक्तजनों का धर्म नहीं बनाना चाहते थे वह इसे विद्वानों का, वैज्ञानिकों का प्रिय धर्म बनाना चाहते थे । युरोप में एक ऐसा समय था जब कि कोई भी व्यक्ति विद्वान् बनने के लिये evolution अर्थात् विकास सिद्धान्त को अपने विचार-चर्चा क्षेत्र में लाना आवश्यक समझता था । इस समय इस बात की आवश्यकता है कि वैदिक सिद्धान्तों का मंडन इस प्रकार से हो कि विद्वानों को बाधित हो कर, अपनी विद्वत्ता को पूर्ण बनाने के लिये वैदिक आर्यसामाजिक साहित्य का अनुशीलन करना पड़े हमें आशा है कि स्वतन्त्र तथा सरकारी शिक्षणालयों के संचालक अपने २ शिक्षणालयों के गौरव को स्थिर रखने के लिये इस तरफ विशेष ध्यान देंगे । साथ ही यह भी कोशिश करेंगे कि अन्वेषणा करने की प्रवृत्ति रखने वालों को शिक्षणालयों के साथ संलग्न अन्वेषण विद्यापीठों में एकत्रित करें । प्रचारकों तथा मिशनरी आन्दोलन करने वालों के वातावरण में अन्वेषण जैसा गंभीर कार्य नहीं हो सकता । अन्वेषण विद्यापीठ के संचालन के कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिये आवश्यक है कि ऐसे स्थानों के अध्यक्ष-पद पर उन्हें ही नियुक्त किया जाय जिन्हों ने किसी सुसंगठित रिसर्च इन्स्टीट्यूट में काम करने का अनुभव प्राप्त किया हो । भाण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट आदि संस्थाओं के अनुभव के आधार पर हमें इस कार्य को चलाना चाहिए ।

इस कार्य की उपयोगिता के सम्बन्ध में आवश्यक विचार प्रारम्भ में प्रकट कर चुके हैं। आर्य समाज में विद्वानों की संख्या बढाने के लिए इस समय अन्वेषण विद्यापीठ की स्थापना शीघ्र ही होनी चाहिये, नहीं तो आर्य समाज के विचार भी सिक्ख सम्प्रदाय की तरह केवल मात्र साधारण जनता तथा देहातों तक ही परिमित रहेंगे।

अष्टाध्यायी का ऋषिकृत भाष्य

[श्री स्वा० वेदानन्द जी तीर्थ]

ऋषि दयानन्द के पत्रों के पढ़ने से ज्ञात होता है कि ऋषि अष्टाध्यायी पर भाष्य लिखना चाहते थे। ईश्वर जाने, ऋषि ने वह भाष्य पूरा किया या नहीं ? किन्तु इधर चार पांच सालों से ऋषिकृत अष्टाध्यायी-भाष्य की चर्चा सुनने में आ रही है। श्रीयुत पं० भगवद्दत्त जी बी० ए० को इसकी उपलब्धि का श्रेय है। पुस्तक छापनी आरम्भ कर दी गई है। इसके ३२-३२ पृष्ठ के दो अङ्क छापे गए। फिर इसके पश्चात् कोई अङ्क नहीं निकाला गया। वैदिक प्रेस वालों का धर्म भाव देखिए, उन्होंने ग्राहकों को जिन से वे ४॥) रु० अगाऊ मोल ले चुके हैं, इस विषय की सूचना देना आवश्यक नहीं समझा, वरन् मुझे तो यहां तक पता चला है कि वे लोगों के पत्रों का उत्तर भी नहीं देते, यदि देते हैं तो गोल माल, कभी लिख दिया, पं० भगवद्दत्त जी बीमार हैं, कभी कुछ। अस्तु, उन दो अङ्कों का सम्पादन श्री भगवद्दत्त जी ने किया है। लोग आश्चर्य्य में थे कि अगले अङ्क क्यों नहीं प्रकाशित होते। टंकारा से लौटते हुए मुझे तथा श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी को अजमेर ठहरना पड़ा। वहां पता लगा कि वे अङ्क तो सारे के सारे रद्दी कर दिए गए हैं और उनका पुनः सम्पादन तथा प्रकाशन हो रहा है। किन्तु अब उनका सम्पादन श्रीभगवद्दत्त जी से नहीं कराया जा रहा। उस समय ८० पृष्ठ छप चुके थे जो सम्पादक श्री रघुवीर जी एम० ए० ने कृपा करके हमें दिखाए। मैं श्री भगवद्दत्त सम्पादित दो अङ्क देख चुका था, अतः मुझे विषय तो ज्ञात था ही। मुझे इन ८० पृष्ठों के देखने में कोई असुविधा न हुई। पुस्तक देख कर मुझे बड़ी निराशा हुई। मैंने श्री सम्पादक जी से पूछा-आप ने अष्टाध्यायी पढ़ी है ? उत्तर मिला, हां ? मैंने पूछा, किससे ? उत्तर, किसी से नहीं। मैंने फिर पूछा:--आपको अष्टाध्यायी आती भी है ? सरल हृदय सम्पादक जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा-मैं संस्कृत के किसी भी पद को सिद्ध करने में असमर्थ हूँ। मैं विना पुस्तक देखे पाणिनीय व्याकरण के किसी भी सूत्र का भाव नहीं समझता।

आर्य्य पुरुषो ! देखा ! कितना दुःसाहस है, एक मनुष्य ग्रन्थ को नहीं समझता, ग्रन्थस्थ विषय से कोरा है किन्तु उसके सम्पादन का साहस करता है। अब सुनिये--सम्पादक जी का सम्पादन। सम्पादक जी बड़ी लम्बी २ टिप्पणियां लिखते हैं, क्या आप समझते हैं व्याकरण की गूढ़ गत्थियों को सुलझाने के लिए ?

नहीं, नहीं कदापि नहीं। वह तो इधर उधर की व्याकरण से असम्बद्ध- उक्तियों का संग्रन्थन करते हैं जहां कहीं उनकी अपनी कृति है, वह भी मृतप्राय, विषय से उसका भी कोई वास्ता नहीं।

भाष्य ऋषि कृत नहीं है।

किन्तु यह सब कुछ सहन किया जा सकता है यदि यह ग्रन्थ ऋषि कृत हो। परन्तु शोक से कहना पड़ता है, यह तो ग्रन्थ ही ऋषिकृत नहीं।

पाठक महानुभाव इन्हीं सम्पादक तथा संपादक के अभिभावकों का कथन है कि सं० १९३३ में स्वामी जी ने अष्टाध्यायी का भाष्य आरम्भ किया, सं० १९३६ में वेदाङ्ग प्रकाश प्रकाशित हो जाता है। वेदाङ्ग प्रकाश में वर्णोच्चारण शिक्षा सूत्रों में है जो प्रचलित 'पाणिनीय' नाम से प्रसिद्ध 'शिक्षा' से भिन्न है। किन्तु इस भाष्य में तो अष्टाध्यायी के "तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्" सूत्र के भाष्य में वर्णोच्चारण शिक्षा के जो उद्धरण दिए हैं, वे 'अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा से आरम्भ होने वाली किसी अर्वाचीन पण्डित को बनाई शिक्षा से हैं। यह लोग वेदाङ्ग प्रकाश को ऋषि दयानन्द कृत मानते हैं। किन्तु वेदाङ्ग प्रकाश के वर्णोच्चारण शिक्षा ग्रन्थ की भूमिका में 'अथ शिक्षां वाली वर्णोच्चारण शिक्षा का खण्डन है। इससे स्पष्ट सिद्ध हुआ, कि वेदाङ्ग प्रकाश का कर्त्ता तो इस अष्टाध्यायी भाष्य का कर्त्ता हो नहीं सकता, सुतरां, इन्हीं के मत से यह अष्टाध्यायी-भाष्य दयानन्द जी की कृति नहीं है।

यदि कोई यह कहे कि अष्टाध्यायी के इस सूत्र का भाष्य "वेदाङ्ग प्रकाश" के वर्णोच्चारण शिक्षा भाग के मुद्रित होने से पहले लिखा जा चुका था, इस कारण दोनों में भेद है। परन्तु थोड़ा सा विचार किया जावे, तो यह युक्ति भी निस्सार दीखती है। क्यों महाशय जी! क्या वर्णोच्चारण शिक्षा के प्रकाश करने के पश्चात् अपने लेख के सुधार करने में कोई बाधा थी?

हमारा पक्ष स्पष्ट है कि प्रकृत अष्टाध्यायी भाष्य ऋषि दयानन्द कृत कदापि नहीं हो सकता—देखिये ऋषि दयानन्द कृत सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास (संस्करण पन्द्रहवां पृष्ठ ७१) लिखते हैं:—

अब जो परित्याग के योग्य ग्रन्थ हैं, उनका परिगणन संक्षेप से किया जाता है अर्थात् जो २ ग्रन्थ नीचे लिखेंगे, वह २ जाल ग्रन्थ समझना चाहिए .... शिक्षा में अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीय मतंयथा इत्यादि ॥ पाठक वृन्द!

यह ऋषि के अपने शब्द हैं। इन के होते हुए कौन इस अष्टाध्यायी भाष्य को ऋषि कृत मानने का दुस्साहस कर सकता है। परन्तु वैदिक प्रेस है। परोपकारिणी सभा है। संस्कृत व्याकरणादि से अनभिज्ञ वैयाकरणंमन्य पण्डिताभिमानी हैं कि एक जाली ग्रन्थ ऋषि दयानन्द के नाम से आर्य्य समाज के मत्थे मढ़ रहे हैं। पहले के लोग भी इस प्रकार मनमानी करते रहे हैं ऋषियों के नाम से अनाप शनाप ग्रन्थ रचते रहे हैं।

भाई जो लिखना हो अपने नाम से लिखो, ऋषि को बदनाम न करो, यदि आर्य्य समाज ने सावधानता न की, तो न जाने इसके साहित्य में क्या २ अनर्थ किए जावेंगे।

उदार धर्म

[श्रीयुत इन्द्र विद्यालंकार]

ऊर्ध्व बाहुर्विरौम्येष, न च कश्चित् शृणोति माम्।
धर्मादर्थश्च कामश्च, स धर्मः किन्न सेव्यते॥

संसार के इतिहास-निर्माण में जितना धर्म ने हिस्सा लिया है उतना, शायद किसी अन्य अकेली वस्तु ने नहीं लिया। धर्म प्राचीनतम काल से समाज रचना में एक शक्ति शाली घटक तत्व रहा है। आज भी धर्म सब से मुख्य तत्व है। यद्यपि पाश्चात्य देशों में धर्म को केवल राजनीति का साधन मात्र समझा जाता है। तथापि एशिया में विशेषतः हमारे भारत वर्ष में धर्म राजनीति से उत्कृष्ट माना जाता है। यहां राजनीति को धर्म का साधन बनाया जाता है। आज तक हम धार्मिक-कर्त्तव्यों के सन्मुख राजनीतिक कर्त्तव्यों को गौण स्थान देते हैं, और धर्म को ही जीवन का प्रधान अङ्ग स्वीकार करते हैं।

धर्म क्या है?

आङ्गल भाषा में 'रिलिजन (Religion) शब्द इतना व्यापक नहीं जितना 'धर्म' शब्द। एक धर्म शब्द में अनन्त अर्थों का समुदाय संगृहीत है। आग का धर्म जलाना है। एक राजा का धर्म उसकी राजनीति है। 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः' गीता वाक्य में धर्म का वही सामान्य अर्थ नहीं जो साधारण जनता में प्रसिद्ध है। सामान्य अर्थ करने से धर्म एक अपरिवर्त्य वस्तु सिद्ध हो जाती है। इस सिद्धान्त से धार्मिक सहिष्णुता का कोई स्थान अवशिष्ट नहीं रहता। वास्तव

में उक्त वाक्य में धर्म का अर्थ 'कर्त्तव्य' (Duty) है। अपने २ कर्त्तव्य में तत्पर रहना प्रत्येक संसार के प्राणी के लिये उचित तथा आवश्यक है। बिना कर्त्तव्य निष्ठा से सूर्य्य का ठीक समय पर उदय तथा अस्त होना भी असम्भव हो जाय। 'यद् यदाचरति श्रेष्ठः तत्तदेवेतरो जनः' के अनुसार छोटे लोग बड़ों का अनुकरण करते हैं यदि बड़े आदमी धर्म-परायण हों तो छोटे आदमी स्वयं धर्म (कर्त्तव्य) परायण होंगे।

राजनीति प्रकरण में धर्म का अर्थ 'राजनीति' अथवा न्याय (Law) होगा। शुक्रनीति में पूग व्रात आदि स्थानीय संस्थाओं के अपने २ धर्म बताए हैं। उन्हीं के अनुसार राजा को निर्णय करने के लिए प्रेरित किया गया है इन संस्थाओं के अपने धर्म और कुछ नहीं केवल उनकी न्याय पद्धतियां, अथवा उनकी प्रथाएं और रीति रिवाज़ हैं। आज कल भी स्थानीय प्रमाणों का न्यायालयों के निर्णयों पर बड़ा प्रभाव पड़ता है यदि ऐसा प्राचीन भारतीय न्याय संस्थाओं में होता हो, तो कोई बड़ा आश्चर्य नहीं। अतः धर्म का अर्थ न्याय करना भी कोई तर्क शून्य नहीं।

'धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायाम्' के अनुसार धर्म का तत्व अत्यन्त गहन तथा दुर्बोध है। इसको सरलता से नहीं समझा जा सकता। यह धर्म नहीं है, जिसके लिये हम साधारणतया धर्म शब्द प्रयुक्त करते हैं। निस्सन्देह धर्म के सच्चे अर्थों को कोई विरला ही आदमी जान सकता है। धर्म अज्ञेय नहीं, परन्तु सरलता से ज्ञेय भी नहीं धर्मका स्वरूप बड़ा विस्तृत है, बड़ा व्यापक है. उसको देखना मनुष्य की चर्म-चक्षुओं के लिए असम्भव है। सूक्ष्म दृष्टि से ही धर्म की गम्भीरताओं का अवलोकन किया जा सकता है। अनवरत अभ्यास तथा परिश्रम से ही धर्म के मर्म को समझा जा सकता है।

वास्तव में धर्म हृदय का विषय है। जो धारण किया जाता है। वही सच्चा धर्म है। धर्म ढंढोरा पीटने से नहीं फैलाया जा सकता। धर्म वैयक्तिक जीवन की उच्चता तथा उदारता से फैलाया जा सकता है। ऋषि दयानन्द के धर्म के अति शीघ्र विस्तार में जहां उनके धर्म की अत्यन्त युक्तियुक्तता की कारणता है, वहां ऋषि के अपने ब्रह्मचर्य्य पूर्ण, तेजस्वी जीवन की भी कारणता थी। ऋषि दयानन्द अपने मन्तव्यों के विस्तार में असफल होते यदि उन्होंने उस धर्मका उज्ज्वल प्रतिबिम्ब अपने वैयक्तिक जीवन से लोगों को न दिखाया होता। इसी प्रकार महात्मा बुद्ध के धर्म की चमत्कार पूर्ण विजय का क्या हेतु था? केवल उसके

जीवन की अलौकिकता तथा दिव्य महत्ता। महात्मा बुद्ध अहिंसा के सिद्धान्त को, सहिष्णुता के सिद्धान्त को संसार में इस लिए स्थापित कर सके, क्योंकि वे स्वयं भी अहिंसा तथा सहिष्णुता की जीती जागती मूर्त्ति थे। सम्राट अशोक ने अपने एक शिलालेख में यवनों, कम्बोजों, पैठनिकों आदि विधर्मियों को अपने राज्य में पूर्ण—निष्कण्टक स्थान दिया है। उस के धर्म महामात्र जहां बौद्धों के हितों की रक्षा तथा कल्याण करने के लिए नियुक्त थे, वहां उपर्युक्त विधर्मियों के हितों की रक्षा तथा कल्याण करने के लिए भी नियुक्त थे। यह क्रियात्मक बौद्ध धर्म था। यही अशोक के प्रतापशाली, अद्भुत साम्राज्य की स्थिति का आधार स्तम्भ था। महात्मा बुद्ध इन महान् सम्राटों को अपने आध्यात्मिक प्रभाव के वश में ला सका उसका केवल कारण उसके अपने वैयक्तिक जीवन की उदात्तता के सिवाय और कोई न था। फलतः धर्म का विस्तार, उसके प्रचार पर ही निर्भर नहीं परन्तु प्रचारक के व्यक्तित्व पर भी निर्भर है।

यह सत्यता किसी भी पठित आदमी से छिपी नहीं होगी कि जितना विस्तार ईसाई धर्म का भारत में हो रहा है, उतना और किसी अन्य धर्म का नहीं हो रहा है। उस में एक से अधिक कारण है। यह ठीक है कि उन को आर्थिक सहायता पर्याप्त मात्रामें प्राप्त होती है। सरकार स्वयं उनको सहायता करती है। कलकत्ता, बम्बई, मद्रास के तीन बड़े २ बिशपों तथा अन्य छोटे बिशपों को स्वयं हिज़ मेजिस्टी के अर्थ-कोश से वेतन दिया जाता है। परन्तु इन सब के अतिरिक्त ईसाई प्रचारकों के वैयक्तिक जीवनों का भी अपरिमित प्रभाव है। लेखक एक ऐसे इटली के धर्म प्रचारक को जानता है जो मुरादाबाद के एकान्त ग्रामों में निस्स्वार्थ रूप से, अत्यन्त स्वल्प वेतन पर, अपने धर्म की सेवा कर रहा है। वह गरीबों का सहायक है, निर्धनों तथा अस्पृश्यों का मित्र तथा बन्धु है। क्यों ऐसे धर्म प्रचारक के धर्म की प्रियता न बढ़े? कितनी वार ऐसी घटनाएं सुनाई देती है कि प्लेग के दिनों में जब भाई आदि बान्धव अपने सम्बन्धियों को रोग ग्रस्त छोड़ कर चले जाते हैं। जब उन को पानी तक पूछने के लिये कोई नहीं बचता, ईसाई धर्म के सेवक पहुंचते हैं, और अपनी सेवा से रोगी के रोग को अच्छा करते हैं। अपने जीवन को विपत्ति में डाल कर भी वे शुश्रूषा में तत्पर होते हैं, फल यह होता है कि जब रोगी रोग मुक्त होता है वह उस निस्स्वार्थ, निसर्गबन्धु के पैरों में गिर पड़ता है, और विनति करता है, कि मुझे भी उसी

धर्म का बनालो, जिस धर्म के तुम हो यह मानने में किसी को इन्कार न होगा कि ऐसे साधनों से जितने सच्चे अनुयायी पैदा किये जा सकते हैं, उतने किसी अन्य उपाय से नहीं। मनुष्य का हृदय कुसुम से भी अधिक कोमल तथा मृदु है। आपत्ति में वह सहायता की अपेक्षा करता है, जो भी उस के दुःख में हाथ बटाएगा उस का मृदु हृदय उसकी तरफ़ झुक जाएगा - उसी का बन जाएगा।

'अहिंसा प्रतिष्ठायां वैरत्याग.' के अनुसार यदि अनवरत अहिंसावृत्ति के सम्पादन से हिंसक जीवों का हृदय भी जीता जा सकता है, तो कोई कारण नहीं कि मनुष्यों का हृदय, प्रेम व्यवहार—से जीता न जा सके यदि हम किसी अपराधी की धृष्टता को सहन कर लेते हैं, तो अपराधी सदा के लिये हमारा दीक्षित हो जाता है। ऋषि दयानन्द की महान् आत्मा ने विष देने वालों के अपराध को सहन किया और उन को शाश्वत् काल के लिए अपना सच्चा भक्त बना लिया। यही सच्ची सहिष्णुता का उदात्त सिद्धान्त है।

धम्मपद का निम्नवाक्य सत्यताओं से भरा है कि—

नहि वैरेण वैराणि, शम्मतीह कदाचन।
अवैरेण हि शम्मन्ति, एष धम्मः सनातनः॥

संस्कृत साहित्य में ऐसा ही एक कथन है कि 'अक्रोधेन जयेत् क्रोधं, असाधुं साधुना जयेत्।' सच्चा विजय वास्तव में यही है। तलवार के ज़ोर से धर्म का प्रचार वर्त्तमान सभ्यता के युग में नहीं हो सकता। तलवार का जमाना गया। पशुता का सिद्धान्त इस समय नहीं चल सकता। आज कल Live and let live का सिद्धान्त सर्वमान्य है। विकास वादियों के सिद्धान्तों की इस समय कोई स्थिति नहीं। आज स्टेट सोशलिज़्म की संस्था के अनुसार निर्बल को भी समाज में जीने का पूरा अधिकार है—शक्ति हीन को भी प्राण धारण करने का पूरा हक है।

धर्म के क्षेत्र में भी यही अवस्था युक्ति युक्त तथा उचित है। बलात् निर्बल धर्मपर विजय करना आधुनिक सभ्य जगत् में सर्वथा असम्भव है। सहिष्णुतापूर्ण विचार विनिमय से धार्मिक विजय की जा सकती है, परन्तु इस से भी उत्कृष्ट विजय प्रचारक के वैयक्तिक जीवन की महत्ता से की जा सकती है, जिसका वर्णन संक्षेप में ऊपर दिया जा चुका है। यही वास्तव में सच्चो विजय है—यही वास्तव में सच्चा धर्म प्रचार है। हमने कहा है कि धर्म हृदय का विषय है—

धारणाद्धर्म मित्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः ।

यत्स्यात् धारण संयुक्तं सधर्म इति निश्चयः ॥

धर्म प्रेम है, द्वेष नहीं। धर्म सहन-शीलता है, मनो-मालिन्य नहीं । धर्म वह है जो समाज के अधिकतम हित का सम्पादन करे (That which conduces to the greatest good of society is religion ।) इसी की परिभाषा दर्शनकारों ने की है। 'यतोऽभ्युदय निश्रेयस सिद्धिः स धर्मः'। वह धर्म नहीं, जो लड़ाई झगड़े का कारण बनता है, वह धर्म नहीं जो पारस्परिक मनो-मालिन्य का हेतु बनता है।

सहिष्णुता धर्म की उन्नति का एक आवश्यक एवं अपरिहेय तत्व है। इसके बिना धर्म, धर्म नहीं केवल आडम्बर है, केवल ढकोसला है । किसी धर्म की उदारता ही उस की सार्वभौमिकता का परिचायक चिन्ह है । उदार धर्म ही अन्त में विजयी धर्म होता है, अन्य नहीं।

वीर वैरागी

डर डर कर थे भीरु सरकते, कहीं गुप्तचर-चाल न हो।
स्वांग भूख का भरा शत्रु ने, कण के मिष मृति-जाल न हो ।
लो! धर दी तलवार धीर ने, हँसता काल कराल न हो।
प्यारा लगता प्राण-पखेरू, मुफ्त मृत्यु का माल न हो ॥

कोई यम को मार ले, भवसागर को फांद जाय ।
कौन मंचला वीर जो, वैरागी को बाँध जाय ॥

'आईं इन नयनों के आगे लीलाएं अद्भुत नाना ।
एक खेल था चतुर खिलाड़ी का पिँजरे में बँध जाना ।
जिन आंखों ने पीठ देख अब तक वैरी को पहिचाना ।
वैरि-वदन हँसता सम्मुख हो यह कौतुक अचरज माना ॥

दर्शन को वर-वीर के लालायित दिल्ली हुई।
भारति कौतूहल भर निश्चल नयनों की हुई॥

धोखा था भोले भूपति को सुत रखते हैं वैरागी।
मस्त मोह-माया में रहते हैं मानो सर्वस-त्यागी।
गोदी में बालक बैठाया दया क्रूर मन से भागी।
अंग २ को काट रहे, नहिँ जनक-हृदय ममता जागी॥

विजय क्षेत्र में सिंह सम जो हरते पर प्राण थे।
आज भेड़ बन चुप खड़े, क्या प्रमाण? थे या न थे॥

कमरें बांधे खड़े सूरमा देख रहे दलपति की ओर।
अभी शंख बजता है देखें पड़ें शत्रु-पुर के किस छोर।
भीरु भगौड़े खेत रहेंगे घर घर घोर मचेगा शोर।
अगुआ आगे शत्रु सामने, थामे कौन जिगर का ज़ोर॥

बन्दे! आंखें मोड़ लीं, सचमुच वैरागी रहा।
सुभट सूर सँग्राम का, चाप तोड़ त्यागी रहा॥

निज सुत मरने का माना तुझ को रत्ती भर शोक न था।
अंग २ कटता जाता है तेरा तुझे नहीं परवा।
चेला बना वीरता-युग में किस निष्क्रिय प्रतिरोधी का।
इतने वीर मरे जाते हैं, मर कर कौन हुआ जेता॥

उठ उठ दल बल चुस्त कर, आत्मशक्ति तो ली दिखा।
हम हों लाख कृतघ्न तू था पुतला उपराम का॥

सेना ने तुझ को छोड़ा है तू सेना का साथ न छोड़।
शिष्यों ने तुझ से मुख मोड़ा तू न शिष्य-दल से मुख मोड़॥
मेल शान्ति से निष्क्रियता का क्या? क्या दया दैन्य का जोड़?
समझा समाधि-सुख सपनों को, भंग-भक्त के कान मरोड़॥

मूर्त योग! वैराग्य-घन! हम को वैरागी बना।
भक्तराज! संन्यास-धन! वह संन्यास हमें सिखा॥

चमूपति

पंजाब दयानन्द दलितोद्धार मण्डल का कार्य

आर्य्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने पंजाब दयानन्द दलितोद्धार मंडल स्थापित किया हुआ है। इस मंडल के अधीन भिन्न २ जिलों में डिस्ट्रिक्ट मंडल कार्य्य कर रहे हैं।

गुरदासपुर तथा स्यालकोट मण्डल के कार्य्य कर्त्ताओं की रिपोर्ट बड़ी उत्साहजनक है। यदि पंजाब के प्रत्येक ज़िला में उत्साही आर्य्य भाई दलित जातियों को अपनाने का यत्न करें तो लाखों की संख्या में ग्रामीण लोग आर्य्य समाज की शरण में आ सकते हैं। सभा के उपदेशकों के प्रभाव और आर्य्य पुरुषों के कार्य ने यहां तक अवस्था कर दी है कि दलित जातियां आर्य्य समाज रूपी माता की गोद में आने के लिये बड़ी उत्सुक हो रही हैं। कुछ वर्ष पूर्व हमारे मुसलमान तथा इसाई इन्हें अपना खाना समझते थे। परन्तु ईश्वर की कृपा से ऐसा प्रभाव अनुभव हो रहा है कि अब यह भय तो नहीं रहा कि चमार आदि जातियां अपने धर्म से च्युत हो कर मुसलमान तथा इसाई हो जावेंगी तो भी यह शोक से जानना पड़ता है कि भंगियों में अभी हमें पूरी सफलता प्राप्त नहीं हुई। केवल ज़िला फ़िरोज़पुर के उत्साही वकील पं० विष्णुदत्त जी तथा म० विहारीलाल आदि ने अपना कार्य्य क्षेत्र भंगियों में बनाया हुआ है और म० रामरखामल प्रचारक-सभा के उत्साह से इस समय तक ५०० से अधिक भंगी ईसाई-आर्य्य धर्म में वापस आ चुके हैं। इन के अतिरिक्त ज़िला लाहौर के बावरियों में कार्य्य आरम्भ किया गया है और इस समय तक ७०० बावरिये आर्य्य समाज की शरण में आ चुके हैं। मैं केवल ज़िला गुरदासपुर, स्यालकोट तथा फ़ीरोज़पुर के मण्डलों का कार्य संक्षेप से वर्णन करना चाहता हूं ताकि पाठकों को सभा के कार्य्यकर्त्ताओं के कार्य्य से थोड़ा सा परिचय हो जाये—

स्यालकोटः—स्यालकोट मण्डल के ला. विशेशर नाथ जी वकील पसरूर मन्त्री और पं० दीवानचन्द जी उपदेशक सभा उपमन्त्री हैं। इस मण्डल ने गत वर्ष में ६४ मुसलमानों—दलित जाति के कुछ परिवार बहुत वर्ष हुए मुसलमान हो गये थे, उन के व्यवहार आचरण इसलामी सांचे में ढल चुके थे—को पं० दीवानचन्द जी उपदेशक सभा के प्रयत्न द्वारा शुद्ध करके पुनः आर्य जाति की गोदी में ले लिया है। ५०० डूम, १३०० चमार,

१४४ बटवाल, ७४ मुसलमान भाईयों ने आर्य्यसमाज की शरण गृहण की।

स्यालकोट के ज़िले में ३ पाठशालायें मान, किला सोभासिंह तथा भूंद में दलितों के लिये चल रही हैं। संस्कारः—ग्रामों में पुराने तथा नये आर्य घरों में ३० संस्कार कराये गये। दो स्थानों पर मान तथा दाउद में नई समाजें स्थापित हुईं।

गुरुदासपुरः—यह मण्डल ल० दीवानचन्द जी अगरवाल वकील, पं० देवीशरण भारद्वाज वकील गुरुदासपुर की अध्यक्षता में कार्य्य कर रहा है पं० दास मल प्रचारक सभा उप-मन्त्री का कार्य्य कर रहे हैं। वर्ष भर तथा १ बैशाख ८२ से चैत्र ८२ तक ५०३३ शुद्धियां कीगईं। गुरुदासपुर के ज़िले में २४ हज़ार चमार हैं जिन में से ५ हज़ार आर्य समाज की शरण गत वर्ष में आये। कुल चमार जो इस ज़िला में आर्य समाज की शरण में आये उन की संख्या १२ हज़ार के लग भग है। ९ स्थानों पर नये और पुराने आर्यों ने उत्सव मनाये यह उत्सव ग्रामों में मनाये जाते हैं यहां राजपूत ब्राह्मण आदि भी भारी संख्या में सम्मिलित होते हैं। इन उत्सवों पर दो स्थानो में शास्त्रार्थ भी हुआ इस के अतिरिक्त अन्य स्थानों में भी प्रशंसनीय कार्य हो रहा है। २० संस्कार कराये गये।

जम्मू प्रान्तः—

जम्मू प्रान्त के मेघ जिन की संख्या ५० हज़ार के लग भग है प्रायः सब शुद्ध हो गये हैं। अब विचार है कि रियास्त के बटवालों तथा चमारों को आर्य समाज की शरण में लाया जाये।

सभा की ओर से बटेहरा, ऊधमपुर, वस्कत देवी, रणबीरसिंहपुरा तथा रामनगर में शुद्ध हुए भाइयों के बच्चों के लिये पाठशालायें खोली गई हैं। जिन में २०० से अधिक बालक बालकायें शिक्षा ग्रहण करते हैं।

गत वर्ष पं० चेतराम ने आर्य समाज जम्मू की ओर से ५००० (पांचहज़ार) मेघों को शुद्ध किया।

फिरोज़परः— दलितोद्धार मंडल फिरोज़पुर ने ३ पाठशालायें बालमीकों तथा जटीकों के लिये खोली हुई हैं। सभा की ओर से १५) मासिक सहायता दी जाती है।

इन के अतिरिक्त जालन्धर मण्डल की ओर से करतारपुर समाज तथा अन्य स्थानों में रात्रि पाठशालाओं का प्रबन्ध किया हुआ है।

कार्य के विचार से धनकी आय संतोषजनक नहीं। चन्दों में केवल २५०६॥) रुपय आये परन्तु व्यय ७६५१॥ ≋) हो गये। आर्य पुरुषों को वेद प्रचार के इस आवश्यक कार्य के लिये दान करते समय ध्यान रखना चाहिये।

सामाजिक विकास वाद तथा आर्य धर्म व सभ्यता

(ले० श्री पं० धर्मदेव सिद्धान्तालङ्कार विद्यावाचस्पति, आचार्य, गुरुकुल मुलतान)

(१)

योरुप के हर्बर्ट स्पेन्सर, बैंजमिन किड इत्यादि प्रायः सब सुप्रसिद्ध समाज शास्त्रियों ने सामाजिक विकास वाद वा Social evolution theory का अपने ग्रन्थों में स्थान २ पर प्रतिपादन किया है। इन विद्वानों ने प्रत्येक धार्मिक और सामाजिक विषय में इसी विकास वाद को लागू करने का यत्न किया है। उनका विचार है कि पहिले लोग पत्थर, वृक्ष, वनस्पति, सूर्य्य, चन्द्र इत्यादि की पूजा किया करते थे। धीरे २ बहु देवता-वाद वा Poly-theism का प्रारम्भ हुआ बहु-देवता-वाद के अनन्तर हीन देवतावाद वा Henotheism की उत्पत्ति हुई जिसमें कि प्रत्येक देवता को स्तुति के समय तक सब से बड़ा मान कर उपासक स्तुति करने लगे। इसके पश्चात् monism वा अद्वैत-वाद की उत्पत्ति हुई जोकि केवल ब्रह्म को सत्य और अन्य सब पदार्थों को असत्य बतलाता है यह शुद्ध-एकेश्वर-वाद (Pure monotheism) से बिलकुल भिन्न है-जिसकी शिक्षा यह है कि एक ईश्वर को छोड़ कर जो सर्व व्यापक, सर्वज्ञ और सर्व शक्तिमान् है अन्य किसी भी जड़ वस्तु के आगे सर झुकाना वा प्रार्थना करना न केवल अनुचित बल्कि बड़ा भारी पाप है। कई विद्वानों के लेखानुसार सब से अन्तिम अवस्था नास्तिक वाद Atheism की है जिस में जगत् कर्त्ता ईश्वर की सत्ता से व्यक्ति इन्कार कर बैठता है और केवल भौतिक नियमों के द्वारा संसार की रचना की व्याख्या करने की चेष्टा करता है। धार्मिक विषय में विकास की दिशा उपर्युक्त प्रकार है। सामाजिक विवाह-संस्कार, रहन सहन, खान पान, सभा समिति, राज्य इत्यादि विषयों में भी क्रमश विकाश होता गया है अर्थात् प्रारम्भ में विवाह सम्बन्धी कोई भी नियम न था-धीरे २ बहु पत्नीत्व (Polygamy) और बहु पतित्व (Polyandry) का प्रचार हुआ—अन्त में होते होते वर्तमान सभ्य पाश्चात्य देशों में प्रचलित एक-भार्य्यता monogamy के नियम का विकास हुआ। रहन सहन के विषय में और खान पान के बारे में उनका कहना है कि पहले लोग गर्मियों में पत्तों से ढकी हुई छोटी २ झोपड़ियों और

सर्दियों में, भूमि में गढ़े खोद कर और उन पर बांसों की छत बांध कर रहा करते थे। धीरे २ उन्होंने हवादार बड़े २ मकानों और बङ्गलों में मौज से शान के साथ कुर्सी, मेज़, बिजली के लैम्प, पंखे इत्यादि साज समेत रहना सीखा। पहिले वे हड्डियों की सुइयों के द्वारा चर्म सीकर उन्हें पहिना करते थे—धीरे २ कई सहस्रों अथवा लक्षों वर्षों में उन्होंने अच्छे शानदार वस्त्र पहिनना सीखा वे प्रारम्भिक लोग केवल सौ तक गिनती कर सकते थे। परिवार के बड़े मुखिया को ही वे राजा के समान मानते थे परिवारों में स्त्रियों का शासन होता था। सम्पत्ति केवल पशुओं के रूप में उनके यहां मानी जाती थी—भूमि और सिक्कों के रूप में नहीं धातुओं के प्रयोग से (सिवाय ताम्र के) वे सर्वथा अपरिचित थे इत्यादि। इस सिद्धान्त को मानने वालों का अभिप्राय स्पष्ट शब्दों में प्रकट करने के लिये हम यहां पर Issac Taylor M A. Lit D. Hon. L. L. D. नामक एक विद्वान् कृत "The origin of the Aryans". नामक पुस्तक से निम्न लिखित उद्धरण देना आवश्यक समझते हैं जिसका भावार्थ लग भग ऊपर दिया जा चुका है। पृ० १३२ में वे महाशय लिखते हैं—

"The most recent results of Philological research may be briefly thus summarised. It is believed that the speakers of the primitive Aryan tongue were herdsmen who had domesticated the dog, who wandered the plains of Europe in waggons drawn by oxen, who were ignorant of any metal with the possible exception of native copper. In the summer they lived in huts, built of branches of trees in winter they dwelt in circular pits dug in the earth and roofed over with poles. They were clod in skins sewn together with bone needles; they were able to count up to a hundred. If they practised agriculture which is very doubtful, it must have been of a very primitive kind. The only social institution was marriage; but they were polygamists and practised human sacrifice. Whether they ate the bodies slain in war is doubted. Property consisted in cattle not in land."

उपर्युक्त उद्धरण बड़ा महत्व पूर्ण है क्योंकि समाज विकास वाद को मानने वाले विद्वानों के अभिप्राय का इसे एक तरह से निष्कर्ष कहा जा सकता है। इस सम्पूर्ण उद्धरण का फिर से अर्थ देना अनावश्यक है यतः उसका भाव पूर्व के लेख में दे दिया है जितने अंश का भाव वहां नहीं आया वह यह है कि प्रारम्भिक आर्य्य-भाषा-भाषी सब लोग कुत्ते पालते थे, वे झुण्ड बना कर रहते थे, बैलगाड़ियों में वे योरुप के मैदानों में विचरते थे। यदि वे खेती करते थे जिस

में कि बड़ा सन्देह है तो वह बहुत ही मामूली और प्रारम्भिक किस्म की होगी। केवल एक ही सामाजिक पद्धति उनके अन्दर प्रचलित थी और वह विवाह की थी पर वे लोग बहु पत्नीक थे। वे यज्ञों में मनुष्यों की आहुतियां भी डाला करते थे। युद्धों में मरे हुए पुरुषों के शरीरों को भी खाया करते थे या नहीं इस विषय में कुछ सन्देह है। इत्यादि

एक ओर तो सामाजिक विकास वाद के पोषक पाश्चात्य विद्वान् हमारे सामने पूर्वज आर्यों की सभ्यता का ऐसा का ा जङ्गलियों का सा चित्र खैंचते हैं और दूसरी ओर हम अपने स्वतंत्रानुशीलन से उन्हें धार्मिक सामाजिक, ऐहिक, दार्शनिक सभी विषयों में उन्नति के शिखर तक पहुँचा हुआ पाते हैं क्या हम अपने सारे अनुशीलन को पक्षपात पूर्ण और पाश्चात्यों के लेख को ही प्रामाणिक मान लें, इस विषय पर इस लेख माला में क्रमशः विचार होगा॥

(क्रमशः)

तेरे घर तक पहुंच न पाया।

राह में सोते सोते मैंने सारा काल बिताया॥

स्त्री पुत्र पिता माता जो कोई मिलने आया।
उस के संग बातों में मैंने सारा काल गंवाया॥

राह में सारे साज सजाये मैंने देखी माया।
उस ने हाय शराब पिला कर मुझ को नाच नचाया॥

माया के संग रहते मुझ को तेरा ध्यान न आया।

पुष्पाञ्जलि जो लाया था मैं उस को ही दे आया॥

आंख खुली तो देखा सूरज पश्चिम दिश में आया।
राह नहीं है सूझत चहुंदिस हाय अन्धेरा छाया॥

ईस्ट अफ्रीका में आर्यसमाज

श्रीयुत कृष्णदेव कपिल बी० ए०

संसार में महापुरुषों के विचार ही राज्य करते हैं। समय २ पर देश-उद्धार और संसार-सुधार के लिए विशेष आत्माएं जन्म लेती हैं, और अपनी अद्भुत आत्म-शक्ति से संसार में क्रान्ति उत्पन्न कर देती हैं। इस से संसार का इतिहास ही बदल जाता है। पतित जातियां उन्नत होती हैं। देशों में नया जीवन उत्पन्न हो जाता है और कुमार्ग पर चलती हुई कौमें सुमार्ग का अवलम्बन करने के लिए उद्यत हो जाती हैं। आज ऋषि दयानन्द ऐसे ही महापुरुषों की पंक्ति में सुशोभित हो रहे हैं। जब भारतवर्ष गाढ़ निद्रा में सो रहा था और अपने स्वत्व को खो बैठा था, अधर्म, अज्ञानता, आलस्य और अविद्या के कारण अधम अवस्था को प्राप्त हो चुका था, उस समय प्रभु की अपार कृपा से महर्षि दयानन्द का भारतवर्ष में शुभागमन हुआ। ऋषि कार्य-क्षेत्र में प्रविष्ट हुए तो चारों ओर नए विचार की ध्वनि गूंज उठी और समस्त आर्य जाति की मुर्दा हड्डियों में जीवन का संचार होने लगा। अंध-विश्वासों और अवैदिक संस्कारों में ग्रस्त भारतवर्ष ऋषि के सिंहनाद को सुन कर जाग उठा। और आर्य्यजाति के विचारों में परिवर्त्तन आरम्भ हुआ। ऋषि के आगमन से भारतवर्ष में वह क्रान्ति हो उठी जिसे रोकने के लिए बड़ी से बड़ी शक्ति भी असमर्थ हुई। दयानन्द-काल वास्तव में भारतवर्ष और आर्य जाति के इतिहास में नवकाल है। यह नया युग है जिसे कि भगवान् दयानन्द ने जन्म दिया।

महापुरुषों के विचार किसी देश विशेष तक परिमित नहीं होते। उन के विस्तार को कोई शक्ति सीमित नहीं कर सकती। उन की उत्पन्न की हुई जाति के सम्मुख बाधाएं उत्पन्न नहीं होने पातीं उन के विचार फैलते हैं और संसार पर आच्छादित हो जाते हैं। यही अवस्था भगवान् दयानन्द की हुई है। ऋषि की आवाज़ आज चहुं ओर फैल रही है। भारतवर्ष में ऋषि की स्पिरिट एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त तक धीरे २ बढ़ रही है। भारत से बाहिर अन्य देशों में भी उस महापुरुष का सिंहनाद अपना प्रभाव दिखला रहा है।

आर्य समाज ऋषि दयानन्द का प्रतिनिधि है। आज आर्यसमाज किस प्रकार इंगलैंड, अमेरीका, स्याम, ब्राह्मदेश, मारिशस फिजी, अफ्रीका इत्यादि देशों में पहुंच रहा है, इस के वर्णन के लिए यह लेख पर्याप्त नहीं। ऋषि दयानन्द के शिष्य अपनी शक्तियों के अल्प होते हुये भी किस पुरुषार्थ और यत्न से वैदिक धर्म का संदेश भारतवर्ष से बाहिर परदेशों में ले जा रहे हैं, इस की कथा अति मनोरंजक और आशाजनक है। अफ्रीका जैसे असभ्य और जंगली देश में भी आर्य समाज का नाम और काम आज विस्तृत हो रहा है। इस से बढ़ कर ऋषि के विचारों के विस्तार और विजय का क्या प्रमाण हो सकता है! केनिया-कालोनी अफ्रीका महादेश का एक छोटा सा प्रान्त है। इस प्रान्त में आर्य-समाज का प्रवेश कैसे हुआ और आज आर्यसमाज किस प्रकार अपने कार्यक्षेत्र को बढ़ा रहा है, आज अपने इस संक्षिप्त लेख में इस बात का ही वर्णन करने का प्रयत्न करता हूं। लगभग तीस वर्ष का समय हुआ कि इस प्रान्त की आर्थिक दशा को उन्नत करने और इस देश के असभ्य और जंगली निवासियों को सभ्य बनाने के विचार से सरकार ने रेलवे लाइन (जो आज युगण्डा रेलवे के नाम से प्रसिद्ध है) का बनाना शुरू किया यद्यपि उस समय से पूर्व भी अनेक भारतवासी अफ्रीका के किनारे (coast) पर व्यापारसंबन्धि कार्यों में लगे हुए वर्षों से निवास करते थे तथापि रेलवे लाइन के निर्माण काल से भारतीयों का अधिक संख्या में यहां आगमन हुआ। हज़ारों भारतीय मज़दूर और क्लर्क इस नए काम के लिये यहां पधारे और यहीं रहने लग गये। नये आने वाले भारतीय भाइयों की सामाजिक दशा शोचनीय थी। कोई भाग्यवान ऐसा होगा जो सब प्रकार के व्यसनों से पृथक हो। मांस, मदिरा, जूआ आदि दुराचार में ग्रस्त भारतवासी अत्यन्त अधम अवस्था में अपना जीवन व्यतीत करते थे। न किसी को धर्म का विचार, न जाति का ध्यान, आर्यजाति के गौरव और ऋषियों के निवास-स्थान भारतवर्ष की मर्यादा का तो किसी को भूले से भी विचार न था। व्यसनों की दासता में जीवन व्यतीत करते हुए भारतीय लोग अपने कारोबार में निमग्न थे। धन कमाने की धुन में भारतीयों का जीवन धर्म और सदाचार से कोरा बना हुआ था। दिन भर काम काज करते और सायंकाल का समय रंगरलियों खेलतमाशों, खाने पीने और आनन्द उड़ाने में बिताते थे। ऐसी दुरवस्था में ऋषि दयानन्द की आवाज़ का पहुंचाना और लोगों को धर्म की ओर प्रवृत्त

करना कितना कठिन कार्य था यह अनुभव ही किया जा सकता है। परन्तु ऋषि दयानन्द केवल भारत ही का सुधार करने के लिए नहीं आया था, उसे तो संसार भर का उपकार करना था।

अतः ऋषि की आवाज़ अत्यन्त मध्यम रूप में अफ्रीका के इस प्रान्त में भी पहुंची। नैरोबी इस प्रान्त की राजधानी है, यहां ही इन आरम्भ में आए हुए भाइयों में कुछ ऐसे पुरुष भी विद्यमान् थे जिन के हृदय में ऋषि दयानन्द की मूर्त्ति निवास करती थी। ऋषि के भक्तों ने इस प्रान्त के भारती भाइयों की दुर्दशा को अत्यन्त दुःख से देखा, और दिल ही दिल में उस का उपाय सोचने लगे। पहिले पहल ऋषि के शिष्यों की इस मण्डली ने अपने ही गृहस्थानों पर निजू (प्राइवेट) सत्संग लगाने आरम्भ किए विशेष यत्न और पुरुषार्थ से अपने आस पास के भाइयों को एकत्र करते और नित्य प्रति संध्या, हवन, भजन आदि के शुभ काय्यों में कुछ समय व्यतीत करते कुछ महीनों तक इस प्रकार नित्य गृह-सम्मेलन होते रहे। लोगों को धर्म की ओर प्रवृत्त करने का यह साधन कुछ समय इसी प्रकार चलता रहा। धीरे २ लोगों के हृदयों में धर्म की ओर रुचि बढ़ती गई ऋषि के इन वीर शिष्यों का यत्न निष्फल कहीं जा सकता था! समय आया, आर्यसमाज का यह सम्मेलन घरों से निकल कर विशाल क्षेत्र में प्रकट हुआ सबने मिल कर सन १९०३ के अगस्त महीने के आरम्भ में एक शुभ दिन आर्य समाज की स्थापना की घोषणा कर दी। वही दिवस इस प्रान्त में आर्य्यसमाज की स्थापना का पवित्र दिवस है जिस की याद में हर साल आर्य समाज नैरोबी का वार्षिकोत्सव अगस्त महीने के पहिले सप्ताह में मनाया जाता है। आर्य समाज की स्थापना हो गई। टीन के छप्परों में आर्य समाज के सत्संग लगने आरम्भ हो गए। लोगों में आर्य समाज की चर्चा भी होने लगी। केवल प्रचार ही नहीं, आर्यसमाज के स्थापक महोदयों के सदाचारी जीवनों का प्रभाव भी लोगोंको आकर्षित करने में अत्यन्त सहायक हुआ। मदिरा, मांस आदि विषयों की जहां लहरें चलती हों, वहां कुछेक पुरुषों के धर्म और सदाचारयुक्त जीवन दूसरों के सुधार में कितने सफल हुए, इस बात का प्रमाण उस आश्चर्य्यजनक परिवर्त्तन से मिलता है जो लोगों के जीवन में आर्य समाज के स्थापन-काल से आरम्भ हुआ।

अनेक भारतीय भाइयों ने मांस, मदिरा आदि को कभी भी हाथ न लगाने के प्रण

किये और आर्यसमाज की शरण में आकर अपने जीवन को पवित्र बनाने में कटिबद्ध होगए धन्य हैं वे माननीय पुरुष जिन के यत्न, पुरुषार्थ और सदाचार के कारण आर्यसमाज का इस देश में प्रवेश हुआ और लोगों के लिए इस संस्थाने पथदर्शक का कार्य किया ! आज तीस वर्ष के समय के बाद हम सैंकड़ों नवयुवकों के जीवनों को सुरक्षित पाते हैं क्योंकि उन्हें आर्यसमाज की छत्रछाया में निवास करने का सौभाग्य प्राप्त होरहा है । इन वर्षों में आर्यसमाज इस देश में कितना काम कर पाया है । यद्यपि इस के वर्णन के लिए अधिक स्थान की आवश्यकता है तथापि उस का संक्षिप्त वर्णन कर देना अति उचित और आवश्यक है ।

(१) लोगों में अधर्म और दुराचार के लिए घृणा उत्पन्न करके उन की मानसिक वृत्तियों को सदाचार और धर्म में प्रवृत्त कर देने का शुभकार्य ही कोई साधारण काय न था जो कि आर्यसमाज ने किया और लगातार कर रहा है। इस के अतिरिक्त भारतीयों की शिक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए स्त्रीशिक्षा के कार्य को इस देश में सब से प्रथम आरम्भ करने का सौभाग्य आर्यसमाज नैरोबी को ही प्राप्त है । १९१० में आर्यसमाज की आर्य कन्या पाठशाला की स्थापना हुई । यह सारी कालोनी में सब से प्रथम पाठशाला है जिस ने भारतीय पुत्रियों को सुशिक्षित बनाने का महान् काम आरम्भ किया । सैंकड़ों कन्याएं यहां से आज तक सुशिक्षित होचुकी हैं । आज तो सनातनधर्म पाठशाला, खोजा गर्ल स्कूल, सिक्ख पुत्री पाठशाला इत्यादि संस्थाएं इस कार्य में भाग ले रही हैं, परन्तु उस समय जब कि आर्यसमाज की स्त्री शिक्षा के प्रचार के विरुद्ध नैरोबी जैसे नगर में भी आर्यसमाजियों के विरोधियों की आवाज़ बुलन्द रहती थी, आर्यसमाज नैरोबी ही था कि कठिनाइयों का किञ्चिन्मात्र ध्यान न करते हुए इस कार्यक्षेत्र में प्रविष्ट हुआ । और आज उस शुभ कार्य के लिए जो श्रेय उसे प्राप्त हो रहा है, उस के लिए उन महानुभावों के लिए हृदय से बधाई की ध्वनि निकलती है जिन्हों ने इस कार्य में अपना तन, मन, धन लगाया था ।

(२) आर्यसमाज नैरोबी ने अफ्रीका देश में वैदिक धर्म प्रचार के लिए जितना यत्न किया है उस की ध्वनि तो आज भारतवर्ष तक पहुंच चुकी है जहां इस समाज के पुरुषार्थ से लाखों रुपये का दान इस देश से भारतवर्ष के आर्य-समाजों की भिन्न २ संस्थाओं को पहुंच चुका है, वहां इस देश में भी आर्य-समाज ने हज़ारों रुपया ख़र्च करके प्रचार के लिए विशेष यत्न किया है । भाई

परमानन्द जी एम ए, पण्डित पूर्णानन्द जी, स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी, पण्डित महाराणी शङ्कर जी, ब्र. ईश्वरदत्त जी, ब्र. सत्यव्रत जी, प्रोफेसर रामदेव जी और पं० चमूपति जी अनेक आर्यसमाज के प्रसिद्ध प्रचारक इस देश में लोगों को वैदिक धर्म का संदेश सुना चुके हैं। लोगों में आर्य समाज के सिद्धान्तों और शिक्षाओं के लिए प्रीति पैदा हो चुकी है। जनता की सहानुभूति आर्य समाज के साथ अधिक रूप से विद्यमान है। और बुद्धिमान् अन्य मतावलम्बी पुरुष भी आर्य समाज को इस बात का श्रेय देने में संकोच नहीं करते कि आर्य समाज ने ही इस प्रान्त में जागृति पैदा की है। पिछले दिनों जब सनातन धर्म सभा नैरोबी ने आर्य समाज नैरोवी के विरोध में अत्यन्त अश्लील प्रचार किया और वैमनस्य फैलाने में कोई कसर न उठा रक्खी, उन दिनों में आर्य समाज के वार्षिकोत्सव के समय यहां के एक बुद्धिमान् मुसलमान वैरिस्टर साहिब की वाणी से जो शब्द आर्य समाज के प्रचार को देख कर निकले थे वे इस बात के सूचक हैं कि आर्य समाज का प्रभाव कहां तक हो रहा है। वैरिस्टर साहिब ने फ़रमाया कि "इसमें कुछ भी शक नहीं कि आर्य समाज ही इस देश में कुछ काम करने वाली जमात है। सनातन धर्म में आज जान दीख पड़ती है परन्तु इसका श्रेय भी तो आर्य समाज को ही है। उसी ने सनातन धर्म सभा को ज़ीवन दिया है"। आर्यसमाज के प्रचार का ही आज यह प्रभाव है कि इस असभ्य देश में भी जहां कि अनेक प्रकार के मनुष्य निवास करते हैं वैदिक मर्य्यादाओं और संस्कारों का प्रचार हो रहा है। कोई समय था कि वैदिक संस्कारों का कोई यहां नाम भी नहीं जानता था, परन्तु आज तो उन हिन्दुओं के घरों से भी संस्कार-यज्ञों की ध्वनि और सुगन्धि निकलती है, जो कभी मांस और मदिरा में ही लवलीन थे। आर्य समाज की युवक सभा का नाइट-स्कूल हर एक मतावलम्बी को अनेक प्रकार की शिक्षा देने का कार्य कर रहा है यहां के नेटिवों (अफ्रीका निवासियों) की शिक्षा के प्रश्न को भी आर्य समाज ने अपने हाथ में लेने का यत्न किया है और वह दिन दूर नहीं कि आर्य समाज इस कार्यक्षेत्र में भी उत्तीर्ण होगा। इस समय आर्य समाज नैरोबी के सामने विशाल कार्य का प्रोग्राम है। ईस्ट अफ्रीका की आर्य प्रतिनिधि सभा ने इस देश में गुरुकुल जैसी महान् संस्था को स्थापित करने का निश्चय कर लिया है और उस के लिए तैयारियां आरम्भ करदी हैं। पं० चमूपति जी इस के लिए आन्दोलन कर गए हैं। गुरुकुल की स्थापना का काम जहां अत्यन्त महान् होगा वहां इस से आर्य समाज का गौरव भी बढ़ेगा॥

यह आर्य समाज का ही प्रयत्न है कि इस निहायत ही आवश्यक और महान् कार्य के लिए यह कटिबद्ध हुआ है । अफ्रीका देश का आर्य समाज अपनी शक्ति के अनुसार कार्य कर रहा है । केनिया कालोनी की राजधानी नैरोबी में आर्य समाज की शक्ति का प्रभाव है और उस के प्रचार की खूब धूम है । यहां इस का एक विशाल, सुन्दर, दर्शनीय मंदिर है । लगभग १२ वर्ष का समय हुआ कि मंदिर की आधार-शिला श्री महाराजाधिराज गाएकवाड़ के भ्राता श्री संपतराओ जी के कर कमलों से रखवाई गई थी । भारतवर्ष में इस मन्दिर के मुकाबिले का कोई बिरला ही मन्दिर होगा । इस कालोनी के छोटे २ स्थानों में भी आर्य समाज का प्रचार हो रहा है । न मालूम ऋषि दयानन्द की आवाज़ में क्या प्रभाव था कि आज उस महापुरुष की चलाई हुई यह संस्था अपना प्रभुत्व फैला रही है । यह उस ऋषि के सिंहनाद का फल है । वर्तमान समय के महापुरुष भगवान् दयानन्द की अद्भुत विचार-शक्ति का परिणाम है । आज उसके नाद को कौन रोक सकता है, उसकी ध्वनि की गूंज को कौन परिमित कर सकता है वह तो बढ़ रही है, और प्रभाव फैला रही है । समय आएगा कि उस ऋषि के यश और कीर्त्ति की ध्वनि समस्त संसार में विस्तृत हो जायगी। वैदिक धर्म सारे संसार पर आच्छादित होगा, और लोग एक स्वर से कहेंगे "बोलो जीवन-दाता और सन्मार्ग-दर्शक भगवान् दयानन्द की जय " ।

संपादकीय

हमारी नई अन्तरंग सभा

सभा का अधिवेशन हो लिया। सभा के सभासद तीन वर्ष के लिये निर्वाचित होते हैं। और यह नए चुनाव का प्रथम वर्ष था। इस में ११७ की उपस्थिति सचमुच आर्यों के आर्य समाज के कार्य में उत्साह का प्रमाण थी। हमें बताया गया है कि इस से पूर्व कभी चुनाव के प्रथम वर्ष में इतनी उपस्थिति नहीं हुई।

सभा का प्रथम विषय चुनाव था। इस वर्ष श्री रामकृष्ण जी सभा के पुराने प्रधान रुग्ण थे। सभा ने प्रथम प्रस्ताव में उन की 'अविरत निष्काम सेवा के लिये जो उन्होंने लगातार २१ वर्ष प्रधान के रूप में की है' कृतज्ञता का प्रकाश किया। अब उन के स्थान की पूर्ति का प्रश्न था। सभा ने सर्व सम्मति से रायबहादुर दीवान बद्रीदास एम ए एल. एल. बी. को जो हाईकोर्ट के वकील हैं प्रधान निर्वाचित किया। रायबहादुर ने अपनी योग्यता का प्रमाण पहिले ही अधिवेशन में दे दिया। प्रधान में जो गंभीरता, निष्पक्षपातता, बुद्धिमत्ता, धैर्य आदि गुण चाहियें, वे सब म० बद्रीदास जी में पूर्णरूप में विद्यमान हैं। हम सभा को अपने नए प्रधान के चुनाव पर बधाई देते हैं। प्रधान पद इस वार भी यथापूर्व जालन्धर ही के हिस्से रहा। जालन्धर के भाई विशेष वर्धापन के पात्र हैं।

उपप्रधान वही रहे जो पिछले वर्ष थे, अर्थात् श्री केशवदेव शास्त्री एम. डी, श्री मोहनलाल जी (शिमला), श्री प्रो० शिवदयालु एम ए।

मंत्री इस वार भी म० कृष्ण हुए। महाशय जी का स्वास्थ्य विकृत है परन्तु अवस्थाओं ने बाधित कर दिया कि यह भार एक वार फिर उन पर डाला जाए।

पं० भीमसेन विद्यालंकार पुस्तकाध्यक्ष और म० नोतनदास यथापूर्व कोषाध्यक्ष चुने गए।

अन्तरंगसभा के शेष सभासद निम्न लिखित महाशय निर्वाचित हुए: —

१. श्री रामदेव जी, २. श्री रामकृष्ण जी ३. श्री ठाकुरदत्त जी (अमृतधारा) ४. श्री मदनमोहनलाल जी ५. श्री गंगाराम जी (शिमला) ६. श्री विश्व-

अमरनाथ जी ७. श्री चमूपति जी, ८. श्री नारायणदत्त जी (देहली) ९ श्री राम-सिंह जी १०. श्री मूलराज जी ११. श्रीयुत इन्द्र विद्यावाचस्पति १२ श्री राय-मक्खनलाल जी १३ श्री मुक्तिराम जी उपाध्याय १४ श्री रामलाल जी।

आगामी वर्ष का आनुमानिक व्यय

सभा का दूसरा कार्य बजट पास करना था। आने वाले वर्ष के लिये निम्न लिखित आनुमानिक व्यय स्वीकार हुआः—

सभा का मुख्य कार्यालय	९६००)
दयानन्द धर्मशाला निर्माणार्थ	१२५००)
वेद प्रचार	४५१९४)
लेखराम स्मारक निधि	३०००)
आर्य विद्यार्थी-आश्रम	४३५०)
दलितोद्धार निधि	३८२०)
दयानन्दोपदेशक विद्यालय	१ ०००)
विदेश प्रचार	५००)
प्रेमदेवी होमकरण निधि	६०)
आचार सुधार निधि	८०)
गुरुकुल (कांगड़ी तथा इन्द्रप्रस्थ)	१६८७०२)
कन्या गुरुकुल, इन्द्रप्रस्थ	४२९००)

नगर कीर्तनादि के निरोध पर

आर्य समाज के सम्मुख आज कल सब से बड़ी समस्या सरकार द्वारा नगर कीर्तनों तथा उत्सवादि के विरोध की है। इस विषय पर साधारण सभा ने अपनी अन्तरंग सभा के पास किये तिथि २७ वैशाख १०२ के प्रस्ताव सं० १८ को स्वीकार किया। वह प्रस्ताव नीचे दिया जाता है: —

आर्य प्रतिनिधि सभा 'पञ्जाब' भारत वर्ष के यू० पी० पञ्जाब आदि भिन्न भिन्न स्थानों पर सरकारी अफ़सरों की ओर से आर्य्य समाजों के नगर कीर्त्तनों में किये गये अनुचित हस्ताक्षेप के प्रति असन्तोष प्रकट करती है। साथ ही धार्मिक स्वाधीनता पर किये गये आक्रमण का बल पूर्वक प्रतिवाद करती है।

सभा प्रान्तीय तथा भारतीय सरकार का इस ओर ध्यान खींचती है। और आशा करती है कि सरकार इस प्रत्यक्ष अन्याय पूर्ण कार्य को रद्द करने की अपने अफ़सरों को विशेष आज्ञा देगी।

सभा इस बात की घोषणा करती है कि आर्य समाज के प्रारम्भ से नगर-कीर्तन आर्य समाज के वार्षिकोत्सवों का आवश्यक अङ्ग है।

आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब की अन्तरङ्ग सभा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के इस सम्बन्ध में स्वीकार किये गये प्रस्ताव का समर्थन करती है। और सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा को निश्चय दिलाती है कि वह इस सम्बन्ध में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा जो आन्दोलन चलायेगी, उस में पूर्ण सहयोग देगी।"

सार्वदेशिक सभा का अधिवेशन भी उन्हीं दिनों उसी गुरुदत्त भवन में हुआ जहां पञ्जाब प्रतिनिधि सभा का अधिवेशन हो रहा था। सार्वदेशिक सभा ने उपसभा नियत कर दी है जो सत्याग्रह को वर्तमान स्थिति का अन्तिम वैध उपाय मान कर प्रचार के रास्ते में आ रही बाधाओं के प्रतिकार के उपाय निश्चित करेगी।

वेद प्रचार का अधिष्ठाता

पिछली बार इस पत्र के संपादक ने यह विचार प्रकट किया था कि वेद प्रचार विभाग को एक पृथक् अधिष्ठाता मिलना चाहिये जिसका उत्तरदातृत्व सीधा अन्तरंग सभा के प्रति हो। हर्ष का विषय है कि अन्तरंग सभा ने न केवल इस विचार को अपनाया है किन्तु उसे क्रियात्मक रूप भी दे दिया है। नई अन्तरंग सभा के प्रथम अधिवेशन में जो साधारण सभा के झट बाद हुआ श्री स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी महाराज को अधिष्ठाता नियत कर उनसे प्रार्थना की गई है कि कृपया इस पद को स्वीकार करें। स्वामी जी महाराज अब यह कार्य कर रहे हैं। आप सा प्रचार कार्य का अनुभवी आर्य जगत् में विरला ही कोई मिलेगा। भारत वर्ष के प्रायः सब प्रान्तों में आप गये हैं पञ्जाब आदि प्रदेशों का तो बहुत सा भाग आपके पावों के नीचे से निकल चुका है। विदेश प्रचार का भी आपको अपूर्व अनुभव है। आशा है, यह परीक्षण जो नूतन होने के साथ २ बड़े महत्व का भी है, अवश्य सफल होगा। अधिष्ठाता पूर्व भी नियत होते रहे हैं। उनमें से कई उपदेशक विभाग में से भी थे परन्तु उनकी और वर्तमान अधिष्ठाता की स्थिति में आकाश पाताल का अन्तर है। हमारी सम्मति यह है कि सभा के स्थिर नियमबद्ध सेवकों को, चाहे वह अवैतनिक हों, चाहे दयानन्द सेवासदनादि के आजीवन सदस्य हों, चाहे सवेतन कार्य करते हों, निर्वाचित होकर सभा के प्रबन्ध-सम्बन्धी पद नहीं संभालने चाहियें। यह कार्य दूसरे लोगों का है जो नियमित

सेवक नहीं। स्थिर सेवकों को ऐसे कार्य संभालने चाहिये जो निर्वाचनाधीन नहीं किन्तु जिन पर प्रबन्ध कर्त्री सभा द्वारा नियुक्त होती है। कारण कि निर्वाचनाधीन पदों को कोई स्थिरता नहीं। लोकमत में उतार चढ़ाव आते रहते हैं और स्थिर सेवकों को वर्ष भर में एक बार आ सकने वाले क्षणिक तूफान के सामने रखना न उन्हीं के साथ न्याय है न सेवा के साथ। परन्तु यह भी हमारा मत है कि सभा के कार्य-कलाप के प्राण स्थिर सेवक लोग ही होंगे। हम यहां राज्य प्रबन्ध का एक दृष्टान्त देना चाहते हैं। विलायत में न्याय विभाग का मुख्य शासक (Chief Justice) मुख्य न्यायाधीश नियत किया जाता है, निर्वाचित नहीं, परन्तु उसकी प्रतिष्ठा यह है कि पार्ल्यामेंट के दोनों हौस भी उसे पृथक् करना चाहें तो उससे त्याग पत्र देने की प्रार्थना करेंगे। जब तक कोई व्यक्ति चीफ़ जस्टिस है, अपने विभाग का पूर्ण रूप में स्वामी है। चर्च औफ़ इंग्लैंड के मुख्य बिशप भी नियत होते हैं, निर्वाचित नहीं। नियुक्ति के पश्चात् व्यवहार-दृष्टि से वह स्वतंत्र रहते हैं। हमारे अपने प्रान्तों में जितना प्रजातन्त्र आया है, उसी के अनुपात से सचिव अर्थात् मिनिष्टर लोकमत के प्रतिनिधि समझे जा सकते हैं, परन्तु प्रबन्धादि के स्थिर पदों पर सिविल सर्विस के लोग हैं। इतने उदाहरण इस लिये दिये कि प्रबन्ध के इस द्वैत में जो सिद्धान्त कार्य कर रहा है वह पाठकों के दृष्टिगोचर हो जाय। वह सिद्धान्त यह है कि नियम बद्ध सेवा Regular Service के लोगों को प्रजातन्त्र का भाग नहीं बनना चाहिये परन्तु सेवा के स्थिर स्थान सब उनके हाथ में होने चाहियें। हमारी सभा में अब तक यह विवेक नहीं हुआ। अपनी परिस्थिति के अनुसार हमें अपने आयोजन में इस सिद्धान्त को ढालना होगा। अन्यथा गड़बड़ की संभावना रहेगी। अब तक कार्य सरल था। सरलता से चल गया। अब आधिक्य के साथ संकीर्णता प्रवेश पा रही है। इस लिये सावधान होना चाहिये।

अधिष्ठाता की नियुक्ति में पग ठीक ओर उठाया गया है। उन सब समुदायों को यथा उपदेशक भाई, समाजों के अधिकारी आदि जो प्रचार कार्य से संबन्ध रखते हैं, इस नए आयोजन को सफल बनाने में सहयोग देना चाहिये।

इस आयोजन से जहाँ प्रचार विभाग को सारा समय इस के अर्पण करने वाला प्रबन्धक मिला है, जो इस के हित अहित पर पूर्ण विचार कर सकता है, वहां प्रचारकों के सिर पर उन में का एक प्रचारक आजाने से प्रचार कार्य की महिमा भी बढ़ गई है। यदि परीक्षण में सफलता हो गई तो आने वाले वर्षों में

मंत्री पद की समस्या भी सरल हो जायगा। हमें सब से बड़ी खुशी इस बात की है कि प्रथम अधिष्ठाता का वैयक्तिक प्रभाव इस पद की विशेष शोभा होगा जो आगे के लिये एक अच्छी परंपरा की नीव स्थापित कर जायगा।

अन्य अधिष्ठात्री सभाएं--

अन्तरंग सभा के नीचे अन्य भी कई कार्य विभाग हैं। उन को अधिष्ठात्री सभाएं निम्न प्रकार नियत की गईः—

१. आर्य विद्यार्थी आश्रम की प्रबंधकर्त्री उपसभा—

१. ला० विष्णुदत्त जी, २. म० कृष्ण जी, ३. म० मूलराज जी, ४. डा० खान-चन्द्रदेव जी, ५, पं० चमूपति जी. अधिष्ठाता—ला० विष्णुदत्त जी.

२. धनविनियोगिनी तथा भूमि विक्रय की उपसभा—

१. ला० नोतनदास जी, २ पं० ठाकुरदत्त जी शर्मा ३ ला० मोहनलाल जी नियोजक—ला० नोतनदास जी

"आर्य" तथा 'वैदिक मैगज़ीन"—

अधिष्ठाता ला० मूलराज जी B.A. B.T.

४. दयानन्दोउपदेशक विद्यालय की प्रबंधक उपसभा—

१. पं० ठाकुरदत्त जी शर्मा २ पं० चमूपति जी ३ प्रो० शिवदयाल जी, अधिष्ठाता—पं० ठाकुरदत्त जी शर्मा

५. पुस्तकालय की पुस्तक निर्द्धारिणी उपसभा—

१. पं० चमूपति जी, २ ला० विष्णुदत्त जी, ३ पं० भीमसेन जी विद्यालंकार

साप्ताहिक 'आर्य'

'आर्य' के साप्ताहिक बनाए जाने का प्रस्ताव दो बार सभा के सम्मुख आया। प्रथम तो जब म० काशीराम जी ने उपदेशकों के वेतन तथा मार्ग व्यय से रुपया काट कर सभा की ओर से एक उर्दू और एक हिन्दी साप्ताहिक निकालने का प्रस्ताव किया परंतु यह बात सभा को रुची नहीं। दूसरी वार आर्य के अपने बजट के साथ। इस समय सभा में भिन्न २ सम्मतियों का प्रकाश हुआ। 'आर्य'--संपादक को वक्तृता का अवसर न मिल सका। न अधिकारिवर्ग में से ही कोई अपना विचार प्रकट कर पाया। बहुत सम्मति से 'आर्य' का साप्ताहिक किया जाना स्वीकार हो गया और इसके लिये ५०००) रु० व्यय की मंज़री भी दी गई। हम प्रस्तावक महाशय का अपमान नहीं करते किन्तु संभवतः तथ्य ही का निवेदन करते हैं जब हम कहते हैं कि उन्होंने व्यय का अनुमान, पत्र का कलेवर, उसके मुद्रण का दर,

संपादन तथा प्रबन्ध की आवश्यकताओं और उनके व्यय का ब्यौरा बनाए बिना अटकल पच्चू रूप हो से निश्चित किया है। सफल हो जाने की अवस्था में किसी को खेद न होगा। परन्तु यदि साधनाभाव से अधिकारी लोग 'आर्य' को साप्ताहिक बनाने में असमर्थ रहे तो स्वयं प्रस्तोता महाशय को विचार करना चाहिये कि वह कैसे बेढब रूप से यह असह्य भार उन लोगों के कन्धों पर डाल गए हैं जो अपना पक्ष सभा में रख नहीं सके। मुद्रणालयों से दर मंगवाए जा रहे हैं, शेष साधनों के संग्रह का भी भरसक प्रयत्न किया जायगा। साधारण सभा के आदेश का पूर्ण रूप से पालन हो सके, इस से बढ़ कर अधिकारियों को और क्या आह्लाद हो सकता है। हमें इस समय प्रतिनिधियों का ध्यान केवल उनके गम्भीर कर्तव्य की ओर खींचना है। जिन्हें अपना विश्वास-पात्र समझ सभा के बुरे भले का उत्तरदाता बनाते हो, उनकी सम्मति जाने बिना धींगा धींगी एक कार्य, जिसका आपको भी अनुभव नहीं, उनके गले मढ़ देने की रीति न्याय की रीति नहीं। सम्मति देने का आपको पूरा अधिकार है परन्तु इस अधिकार का प्रयोग बहुत गहरा विचार चाहता है।

'आर्य'-संपादक की अपनी सम्मति जिस का प्रकाश वह बहुत वार पहिले भी कर चुका है। साप्ताहिक के पक्ष में न थी उस की प्रवृत्ति भी साप्ताहिक के संपादन में नहीं। समाचारों का संग्रह तथा समाज की सामयिक नीति के संबन्ध में आंदोलन करते रहने की अपेक्षा वह गहरे साहित्य का स्वाध्याय स्वयं तथा लेखकों सहित करने और पाठकों को कराने में अपने समय का व्यय करना अधिक उपयोगी समझता है। परन्तु यह बात भी 'आर्य' के साप्ताहिक बनाए जाने के रास्ते में बाधक नहीं हो सकती क्योंकि वर्तमान संपादक की प्रवृत्ति की सफलता ही तो आखिर 'आर्य' का उद्देश्य नहीं। संपादक सभा का सेवक है और सेवक भी यथाविधि आज्ञाकारी।

आगामिनी अन्तरङ्ग सभा के सम्मुख यह विषय अपनी पूर्ण सामग्री के साथ आयगा।

मसजिद और बाजा

आज बाजे के दर्शन मात्र से मसजिदों को उन्माद हो आता है। केवल जीती मसजिदों को ही नहीं, किसी दूसरे शरीर में जन्म ग्रहण कर चुकी पुरानी मसजिदों को भी। देहली में इन्हीं दिनों एक मद्रसे के आगे बाजा रोकने का इस लिये प्रयत्न किया गया कि यह

मद्रसा कभी मसजिद था। मुसलमानों का राग-द्वेष आज कल विचित्र रंगों में व्यक्त हो रहा है।

उधर कलकत्ते के मि० जी. एन चौधरी ने दैनिक फार्वर्ड में पत्र भेजा है कि — मैंने कलकत्ते की पुरानी ऐतिहासिक पुस्तकों और चित्रों की मैसर्ज़ कर एन्ड को० नामक दूकान से एक पुराना रंगदार चित्र प्राप्त किया है जिस में उसके नीचे दिये विवरणानुसार 'श्रीरंगपटम की मसजिद के अन्दर संगीत तथा वाद्य-शाला के लिये विशिष्ट भाग, चित्रित है। उस चित्र पर यह भी लिखा है कि यह चित्र टिपू सुलतान के समय का है। लेफ्टिनेण्ट जेम्स हण्टर ने यह चित्र उतारा और १८९४ ई० में एडवर्ड एडम ने इसे प्रकाशित किया।

प्रतीत यह होता है कि बाजे से मसजिदों को भय अभी होने लगा है। नई मसजिदों के साथ पुरानी मसजिदों की मृत आत्माएं भी अपनी कबरों में पड़ी हिल रही हैं। परमात्मा दोनों लोकों में स्वास्थ्य स्थापित करें।

आर्य गज़ेट का मांस प्रचार

आर्य गज़ेट के संपादक महोदय स्वभाव से 'साईं' प्रतीत होते हैं। उन्हों ने हमें अगले जन्म में अपनी वर्तमान शक्तियों से वंचित किये जाने का शाप दिया है। क्यों? इस लिये कि हम ने उन के ला० हरदयाल के मांसभक्षण विधायक लेख के उद्धरण का 'हेतु' उसका मांस विधान बतलाया था। आप ने इस पर हमारी बुद्धि को मुनि-बुद्धि कहा है, सो वह जानें। आप ने मांस विधान का संकेत बलात् अपनी ओर कर लिया है। यह तो डाढी में तिनके वाली बात है। 'हेतु' का अर्थ समझे हैं अभिप्राय। इसी से भ्रम में पड़े हैं। हम पूछते हैं, ला० हरदयाल ने अपने लेख में मांसभक्षण का विधान किया है या नहीं? न किया होता तो क्या आप उसका यही भाग उद्धृत करते? लेख का विषय तो शिक्षा था और वह आप के मंतव्य के विरुद्ध। 'हेतु' दार्शनिक शब्द है। उस का अर्थ अभिप्राय नहीं। आप कहते हैं: - 'हमारा मतलब यह था कि ला० हरदयाल जैसे विद्वान् ने माडर्न रिवियू जैसे जगत्-प्रसिद्ध मासिक पत्र में राम और कृष्ण के मांसाहारी होने के विषय में जो लिखा है, उस का आर्यसमाजी और हिन्दू विद्वान् मिल करके उत्तर दे सकें'। १० पौष १९८२ का आर्यगज़ेट हमारे सम्मुख है। ला० हरदयाल का लेख 'गोश्तखोरी के मुतअल्लिक ला० हरदयाल के ख्यालात' इस शीर्षक के नीचे उद्धृत किया गया है। उद्धृत भाग का मुख्य विषय मांस भक्षण का विधान है। राम कृष्ण का मांसाहार पोषक प्रमाण ही के रूप में वर्णित है। इस पर कोई युक्ति नहीं दी। रामायण महाभारत के

श्लोक नहीं लिखे। आर्य समाज के विद्वान् उत्तर किस का दें ? संपादक महाशय मांसाहार के विरोधी थे तो ला० हरदयाल से प्रमाण मांगते, युक्ति चाहते, पर यहां तो अभीष्ट ही-इस डर से कि कहीं वैदिक सिद्धान्त पर शक न लाने से मुसल्मानों के सदृश संकुचित हृदय न कहलाएं-आर्य विद्वानों के मुहं आना था। तो क्या ला० हरदायल के लेख में ननुनच न करना उदारता है और वेद पर विश्वास कर लेना अनुदारता ? और अब क्या स्वयं संपादक महोदय ने अपने हृदय से पूछ लिया है कि वह साधारण मांसाहार विषय पर विचार कराना चाहते हैं या केवल राम कृष्ण के मांसाहार पर ? संभव है साईंयों की बुद्धि भी विश्लेषकारिणी हो !

लाला जी की विद्वत्ता

ला० हरदयाल की विद्वत्ता ने संपादक साईं पर अधिक प्रभाव डाला है। भला इस उद्धरण में लाला जी को आप ने किस विषय का विद्वान् पाया या समझा ? मांसाहार संबन्ध में तो वैद्यक और धर्म ग्रन्थों के ज्ञान की मुख्य आवश्यकता है और राम कृष्ण के मांसाहारी होने, न होने के संबन्ध में पुरातन इतिहास की अभिज्ञता की। लाला जी के पत्रों में प्रकाशित लेखों में जिनपर संपादक साईं मुग्ध हुए हैं, इनमें से किसी विषयका गन्ध तक नहीं पाया जाता। न विवादास्पद लेख में ही उन्होंने इन विषयों का सहारा लिया है। तो फिर विद्वत्ता का प्रकृत में क्या अर्थ है ? यही कि किसी के गोप्यमत के अनुकूल प्रकट संमति दीगई है ? सम्मति के सामने संमति दी जा सकती थी। आप की ही सभा का कोई विद्वान् पास था तो उस से लिखा लेते ! या क्या सभा का मत और है और विद्वानों का कुछ और ? हम ने अब तक आर्य पत्रों का कार्य आर्य समाज के उत्तर पक्ष सहित विरोधियों के पूर्व पक्ष का प्रकाशन करना (यदि उसे प्रकाशित करना हो) समझा है । पूर्व पक्ष मात्र पर बल देना अपने सिद्धान्त का गुप्त विरोध करना है। यदि मांस भक्षण का पक्ष आप की सभा के लिये पूर्व पक्षही है तो इस हेय नीति का ज्ञान पूर्वक वा अज्ञानवश आप चिरकाल से अवलंबन करते प्रतीत होते हैं।

दोष भावना का है या भाषा का ?

ला० हरदयाल से निवृत्त होते ही संपादक जी ने ला० लाजपतराय और हसरत मोहानी के पुण्य नामों का निर्देश किया है। कहते हैंः—यह 'इस अहिंसा परमोधर्मः' के विरुद्ध लिख चुके हैं। किस अहिंसा परमोधर्मः के ? गत संख्या में आप ने लिखा है, गांधिवाद के। अपने मूल लेख में ला० हरदयाल के प्रकरण में

आप ने गांधिवाद का नाम तक नहीं लिया। अब इस के अर्थ कोई क्या समझे? वही मांसाहार जिस का प्रसंग था। हम भी चकित थे कि 'भला कोई आदमी गोश्तखोरी का औचित्य सिद्ध करने के लिये किसी मुसलमान का नाम पेश कर सकता है?' अब पता लगा कि आप के 'इस' की वृत्ति गांधिवाद की ओर थी, माँसाहार की ओर नहीं। यह विद्रोह आप की भाषा का है कि आप के वश में नहीं रही। संभवतः मन ही पर अंकुश नहीं। आप कुछ चाहते हैं और वह कुछ सोचता है। भला साईं के सिवा साईं के भावों को कौन समझे?

डाक्टर की घटना के वर्णन में आप ने 'अनुमान' का अर्थ 'हेतु' लिया प्रतीत होता है। कहिये डाक्टर के संबन्ध में आप को दैव स्फुरणा हुई थी कि वह मांसाहारी है? ईसाई और मांसाहारी पर्याय नहीं हैं। ऐसे ईसाई हैं जो मांस नहीं खाते। अब आप का बलात्कार से अनुमान किसी आन्तरिक असेव्यसेविनी प्रवृत्ति का फल नहीं तो क्या है? संभव है आप के लिये वह प्रवृत्ति अज्ञात हो, पर वह प्रवृत्ति है सही।

प्रादेशिक सभा मांस निषेधिनी?

बालि जी के मांस प्रचार को आपने 'खुदादाद अक़ल' का करिश्मा समझा है। इसे दयानन्द का अनुयायित्व भी कहा है। प्रभो! इन्हें दयानन्द से विमुख कर। इन की 'खदा'-दत्त अकल हर। अपने काम की बुद्धि दे। जिस सभा का मुख पत्र मांस त्याग के विरुद्ध पूर्व पक्ष मात्र पर सदा बल दे, किसी को अच्छा काम करता देखते ही अनुमान करे कि वह मांसाहारी है, भाव और भाषा का ऐसा धनी हो कि मुख्य गौण में भेद न करे, गाँधी की अहिंसा और साधारण मांस-त्याग में विवेक न कर सके, जिसके लाईफ़-मेम्बरों की 'खुदादाद अक़ल' को काम में लाने का केवल मात्र द्वार मांसाहार का विधान हो, उसे मांसाहार-निषेधिनी सभा कोई साईं ही कहे तो कहे, हम साधारण-भाषा भाषी नहीं कह सकते। साईं ब्रह्मज्ञानी (?) होते हैं अर्थात् वह कार्य करते भी हैं और उस से अलिप्त भी रहते हैं। पीते हैं और रसरहित रहते हैं। खाते हैं और उसका स्वाद नहीं लेते।

साईं की मौजें

हम साईं की मौज के एक दो ताज़ा नमूने पाठकों के सम्मुख रखते हैं जिससे उन्हें पता लगे कि किस तरंग में आर्य गज़ट का संपादन होता है:—

१४ ज्येष्ठ की संख्या में आया है:—'एक सबज़ी खोर हिन्दू इस बात पर नाज़ां होता रहेगा कि चिड़ियाँ, कौवों और कीड़ियों को रोटी दाने खिलाता

रहा है परन्तु उसे इस बात का कभी अफ़सोस न होगा कि उसने सारी उमर व्याज लेते वक्त गरीबों का खून चूसा है'। व्याज का आधिक्य बुरा : उससे कोई हटे या न हटे। मांसाहार एक हलका सा पाप है, इस व्यवस्था का लाभ तो कोई पाप--प्रवृत्त पुरुष उठा ही लेगा।

आगे चल कर कहते हैं:—

'शराब न पीना बनिस्वत गुलामी के कहीं ज़ियादा बुरा है'।

शराब न पीना बुरा है—यह केवल आर्य गज़ट के आचार शास्त्र ही की उपज हो सकती है।

'कोई कितना ही बहादुरी का काम करे लेकिन अगर वह भूल कर एक अण्डा भी खाले तो उसे फ़ौरन राक्षस का ख़िताब मिल जायगा।' २१ वैशाख

इस बहादुरी को शाबाश है जो भूल कर भी मुंह अंडों में मारती है—ना, एक अण्डे में।

२१ ज्येष्ठ की संख्या में एक जगह हमारे विषय में लिखा:—'गुस्से की आग में जल भुन कर कबाब हो गए'। फिर कहा 'आप की भी ख़ैर नहीं'। हम डर गए। एक और जगह पढ़ा, 'हम सबज़ीखोर'। तब कहीं जान में जान आई।

एडिटर महाशय व्यक्ति रूप में सबज़ी खोर होंगे? परन्तु 'आर्य गज़ट' का अन्तर्हृदय किसी और चीज़ का लोलुप है। खाता न हो पर मज़े ज़रूर लेता है॥

आर्य प्रतिनिधिसभा पञ्जाब, लाहौर

का

संक्षिप्त वार्षिक वृत्तान्त

सं० १९८२

वेद प्रचार विभाग

उपदेशक भजनीक

	पूर्व	नये आये	चले गये	वर्त्तमान
उपदेशक	३०	५	३	३२
भजनीक	२७	९	८	२८

उत्सव

१९७९	१९८०	१९८१	१९८२
१४०	१५७	१६८	१७८

नई समाजें

१९८१	१९८२
२९	३२

अवैतनिक उपदेशक

स्वामी स्वतंत्रानन्द जी, स्वामी गंगागिरी जी, पं० लोकनाथ जी, मा० रामलाल जी, पं० भूमानन्द जी, पं० भीमसेन जी विद्यालंकार।

पाठशालायें

जम्मू प्रन्त—बटेहरा, ऊधमपुर, जम्मू, रणवीरसिंहपुरा और रामनगर—५ पाठशालाएं हैं, जिन में २०० दलित विद्यार्थी शिक्षा पाते हैं।

फ़ीरोज़पुर दलितोद्धार मण्डल के आधीन २ रात्रि पाठशालायें हैं, जिन के लिये सभा से १५) मासिक सहायता दी जाती है।

दलितोद्धार मंडल

पंजाब दयानन्द दलितोद्धार मण्डल के आधीन निम्न प्रान्तीय दलितोद्धार मण्डल स्थापित हो चुके हैं:—

गुरुदासपुर, स्यालकोट, जालन्धर

फ़ीरोज़पुर, पटियाला, लाहौर

शुद्धि

ज़िला फ़ीरोज़पुर——	५०० ईसाई
,, लाहौर——	७०० बावरिये
,, गुरुदासपुर ,, स्यालकोट ——	६५०० चमार
,, स्यालकोट——	८४ मुसलमान ५०० डूम
,, स्यालकोट ,, शेख़ूपुर ——	२०० बरवाल

दलित जातियों के ३० स्थानों पर भिन्न २ प्रान्तों में उत्सव हुये। इस समय तक १२००० चमार आर्य समाज की शरण में आ चुके हैं।

सभा का मुख्य कार्यालय विभाग

प्रतिनिधि इस वर्ष १४६ आर्य समाजों की ओर से २१६ प्रतिनिधि थे।

	१९८१	१९८२	अधिकता
आर्यसमाज	१३९	१४६	७
प्रतिनिधि	२००	२१६	१६

कार्यालय

बजट आय	आय	बजट व्यय	व्यय
८०००)	७९८७।≡)७	८०००)	६८२३॥-)५

दशान्श

बजट आय	आय
२६००)	२१८७≡)

१९८१	१९८२
२६५६)	२१८७)

वेद प्रचार फ़ण्ड

आय सं० १९८१— २६७०४≡)॥।
" " १९८२— २५६६५-)

वेद प्रचार कोष { १९८१— ५९८०९)
१९८२— ६४०२१)

चार आना निधि

बजट	आय
२०००)	२४०९) १०

लेखराम स्मारक निधि

बजट ३००) आय ५२३॥-)॥
गत वर्ष " ३६७॥)।

कोष { १९८१———————————२८ ७७)
१९८२———————————३ ४३०॥=)७

निरीक्षण दायाद्य निरीक्षक ने १६८ आर्य समाजों और ८ जायदादों का निरीक्षण किया। २८५०॥) धन एकत्र करके सभा में भिजवाया

वैदिक मैगज़ीन के ६ तथा "आर्य" के १७ ग्राहक बनाये। ४ विवाह, ४ मुण्डन, २ नामकरण संस्कार तथा २ जन्म के यवनों की शुद्धि कराई।

रिपोर्ट

१. रावलपिंडी कमिश्नरी की समाजों में श्रद्धा तथा प्रेम अधिक मात्रा में है।

२. वेद मूल न होने की त्रुटि को अब दूर किया जा रहा है।

३. "ओ३म्" की ध्वजा कुछेक समाजों को छोड़ कर सब मन्दिरों पर है।

४ सभा के स्वीकृत रजिस्टर समाजें अपनाती जा रही हैं।

वैदिक पुस्तकालय

आय ३७०॥≡) व्यय २८१७॥=)॥

स्थायी सदस्य ४२ साधारण ३९

पुस्तक संख्या कुल १२७२१ है।

आर्य

ग्राहक संख्या ४००

आय १६०३=) व्यय २३३०|≡)१ घाटा ७२७|)१०

वैदिक मैगज़ीन

ग्राहक २०५

आय १४६५) व्यय २९८८)

दयानन्द सेवा सदन

संवत् १९८८ में निम्न ६ सदस्य थेः—

१. प्रो० रामदेव जी, २. पं० चमूपति जी, ३ डा० राधाकृष्ण जी, ४. पं० बुद्धदेव जी, ५ पं० सत्यव्रतजी, ६ पं० ज्ञानचन्द्र जी

लघु पुस्तक

विक्री आय १४६॥=)

वैदिक अन्वेषण

दयानन्द वेदभाष्य कोष की तैयारी का काम जारी रहा। पं० यश:पाल जी, पं० राजेन्द्र जी दो स्नातकों ने कार्य किया। ७१९॥=) व्यय हुआ, अब कार्य समाप्त हो चुका है। कुल फुलस्केप साइज़ के लगभग ३·०० पृष्ठ हैं। अफ़रीका से ४७४) इस कार्यार्थ प्राप्त हुए।

पारितोषिक

वेद के सम्बन्ध में उत्तम पुस्तक लिखने पर पं० चन्द्रमणि जी को 'निरुक्तभाष्य" के द्वितीय भाग पर १००) पारितोषिक दिया गया।

उपदेशक परीक्षा

इस वर्ष उपदेशक विद्यालय तथा सभा की परीक्षाओं में समानता होने के कारण इन परीक्षाओं का प्रबंध भी श्री आचार्य दयानन्द उपदेशक विद्यालय के सुपुर्द किय गया।

५ परीक्षा केन्द्र नियत थे। बाहर के ९ परीक्षार्थी सम्मिलित हुये।

	प्रविष्ट	उत्तीर्ण	अनुत्तीर्ण
सिद्धान्त विशारद..........	३	१	२
,, भूषण प्रथम खण्ड	५	४	१
,, ,, द्वितीय ,,	१	१	०

उपदेशक विद्यालय

प्रवेश समय ९ विद्यार्थी थे, वर्षान्त पर कुल संख्या २४ थी। जिन में १ शास्त्री, ५ मैट्रिक, २ गुरुकुल-अधिकारी, १ एफ. ए. तथा १५ अन्य योग्यता के थे। वर्ष के मध्य में समय समय पर विद्यार्थी प्रविष्ट होते रहे। और कुछ विद्यालय त्याग गये। वर्षान्तपर इस प्रकार कुल संख्या २४ शेष रह गई।

दान से ११२२) आय हुई।

शिक्षक वर्ग

श्रीस्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज आचार्य
,, वेदानन्द तीर्थ जी मुख्याध्यापक
श्री पं० धर्मवीर जी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य अध्यापक
मौलवी मुहम्मद हसन अरबी अध्यापक

प्रबन्धकर्त्री उपसभा

पं० ठाकुरदत्त जी शर्मा अधिष्ठाता
प्रो० शिवदयाल जी
पं० जगन्नाथ जी निरुक्त रत्न

परीक्षायें

विद्यालय की परीक्षायें फाल्गुण मास में हुई-निम्न परीक्षाओं के १४ परीक्षार्थियों ने परीक्षा दी:—

	प्रविष्ट	उत्तीर्ण	अनुत्तीर्ण
सिद्धान्तभूषण प्रथम खण्ड	९	८	१
,, ,, द्वितीया खण्ड	३	३	०
,, शिरोमणि प्रथम खण्ड	२	२	०

उपाधिवितरण तथा नया प्रवेश उत्सव

उपाधि वितरण तथा नये प्रवेश के लिये रामनवमी ९ वैशाख १९८३ को गुरुदत्तभवन में उत्सव मनाया गया। और उत्तीर्ण विद्यार्थियों को उपाधि दी गई उत्सव के प्रधान श्री पं० चमूपति जी M. A. "आर्य-सेवक" थे।

हमें शोक है कि गुरुकुल के अधिकारी परीक्षोत्तीर्ण श्री पं० ऋषिदत्त जी जिन्हों ने विद्यालय की सिद्धान्तभूषण की परीक्षा दी थी, उनका परीक्षा के कुछ बाद ही देहान्त हो गया। प्रमाण पत्र भेजे जाने पर वापिस आने से हमें यह समाचार ज्ञात हुआ।

निर्धन विद्यार्थी आश्रम	प्रो० शिवदयाल जी अधिष्ठाता
	म० ज्ञानचन्द्र जी अध्यक्ष

४६ विद्यार्थियों के लिये स्थान था।

४६ विद्यार्थी रहते रहे।

नई भोजनशाला तथा पाकशाला बनाई गई। डा० किशोरीलाल जी अग्रवाल M. B. B. S. अवैतनिक चिकित्सा करते रहे।

आय ३५३४=) व्यय ४२५६≡)॥ घाटा ७२१॥-)॥

वसीयतें | म० रामशरणदास जी देहली निवासी ने इस वर्ष १०००) की वसीयत निम्न शर्तों पर सभाके नाम की, कि जीवनकाल तक १०३०) का सूद उन्हें मिलता रहे। तत्पश्चात् $\frac{1}{3}$ भाग असल में, $\frac{1}{3}$ कन्या गुरुकुल और $\frac{1}{3}$ गुरुकुल कांगड़ी में नमक, तेल के व्यय के लिये दिया जाय।

साधारण अधिवेशन | १ लाहौर ति० १०, ११ ज्येष्ठ १९८२

अन्तरङ्ग सभा | ९ अधिवेशन हुये।

बजट कुल २८५८६६) का बजट था।

आर्य वेद प्रचारविभाग	मद्द	१९८०	१९८१	१९८२
	वेद प्रचार	३०२५०)	२६७०४)	२५६६५)
	दशांश	२५[illegible])	२६५६)	२१८८)
	चार आना	१७०३)	१[illegible]७१)	२४०९)
	अन्य	९६०२)	९००९)	६७:)
	योग	४४०५७)	३९६४०)	३०९२४)

कुल आय व्यय	मद्द	१९६	१९९	१९८२
	आय	३४३१९९)	४३१४०५॥-)॥।	३५४३६३-)।
	व्यय	२३०५३९)	३२८७·[illegible]≡)	३४२·९३॥=)

शेष पत्र	मद्द	१९८०	९८१	१९८२
	वेद प्रचार विभाग	२६६९९९॥≡)२	३६·४४२।=)॥	३९८६३१॥=)
	गुरुकुल विभाग	६८६६०२-)२	६९५८३२)१	६५४१६७।=)
	योग	९५३६०१॥।)४	१०५६२७४॥।=)१	१०४२७९८॥=)??

आर्य्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब, गुरुदत्तभवन ला... थी।

आय व्यय मद्धे मास चैत्र १९८२। १०१

निधि	बजट आय	इस मासकी आय	इसवर्ष की आय	बजट व्यय	इस मास का व्यय	इस वर्ष का व्यय
मुख्य कार्यालय सभा दशान्श	२६००)	८५५॥=)७	२१८७।≡)७	६४१०)	६३७॥≡)८	५४३९॥≡)२
दायाद्य रक्षा				८६०)	६६=)॥।	७२०॥)।
पंखार्थ			१५०)			१३॥=)
सत्यार्थप्रकाश आज्ञा			१२५)			
ग्लिम्पसेज़ आफ़ दयानंद		१६।=)	१००)			
गुरुकुल से दत्तांश	१२००)		१२००)			
लेखराम निधिसे दत्तांश	५०)	५०)	५०)			
विद्यार्थी आश्रम से „	५०)	५०)	५०)			
दलितोद्धार से „	१५०)	१५०)	१५०)			
उपदेशक विद्यालय दत्तांश	२००)	२००)	२००)			
पंचमांश सार्वदेशिक सभा				५३०)	५३०)	५३०)
वैदिक दर्शन		२५)	२५)			
वेद प्रचार से दत्तांश	३७५०)	३७५०)	३७५०)			
मुख्य कार्यालय का आय व्यय		७६८७≡)	७९८७।≡)७		६८२३॥।-५)	६८२३॥-)५
योग		२८६०≡)			५५५३॥=)	
कार्यालय वेदप्रचार				१५६०)	१२८)	७८३॥)
वैदिक पुस्तकालय	५००)	२०)	३७०॥≡)	५००)	४८७॥=	२८१७॥=)॥
आर्य	३०००)	१५३≡)	१६०३=)।	०००)	२७६॥।)	२३३०।≡)१
चाराना निधि	२०००)	४०७-)॥	२४०६)१०			
ट्रैक्ट	२००)	८१)	१४६॥=)			
वेतन उपदेशक				१७०८०)	१०५१॥-)।	२७४७॥=)८
मार्ग व्यय				६४००)	१३४८।≡)॥	६९७३।-)॥।
बीमा जीवन				६०)	-७३॥-)	५७॥-॥
वैदिक कोष		४७४)	४७४)	१२००)	५५॥≡)।	७१९॥=)
सहायता माता पं० गणपति शर्मा				२४)	१२)	·४)
प्रचार में समाजों की सहायता				६००)	७११॥≡)	७१?॥≡)
बोनस में जमा				८००)	८००)	८००)
मुख्य कार्य्यालय सभा को दत्तांश					३७५०)	३७५०)
योग		११३५।)॥	५००३॥।)१		८५५१।)	३१७१६।)॥।

निधि	बजट आय	इस मास की आय	इस वर्ष की आय	बजट व्यय	इस मास का व्यय	इस वर्ष का व्यय
वेद प्रचार	२६७०४)	८४२९॥≡)१०	२५६६१ -)			
स्थिरराशि पर सूद		५२५८॥≡)	५२५८॥≡)			
योग		१३६८८।=)१०	३०९२४)			
लेखराम स्मारकनिधि	३००)	२६७१॥-)	२९७८-)७			
वेतन उपदेशक				२०००)	२०६'≡)७	३११-)५
मार्ग व्यय				५००)		४७॥)
गुज़ारा विधवा पं० तुलसीराम				१२०)	१०)	१२०)
,, ,, वज़ीरचन्द				९६)	८)	९६)
सभा को दत्तांश				५०)	५०)	५०)
योग		२६७१॥-)७	२९७८-)७		१३८≡)७	६२४॥-)५
सूद बैंक		१॥)	३६३६६॥)५		१३१४॥-)॥	३६३६६॥)५
,, क़र्ज़ा		२०७३॥)८	४२५०≡)८		४२५०≡)८	४२५०≡)८
भूमि आय व्यय		३३४)	८९॥-)		५९८॥≡)॥	८९१॥-)
किराया मकान		५४॥)	११३)		११३)	११३)
योग		२४६४।)८	४१६११-)१		१८१०३)११	४१६२१-)१
अमानत अन्य संस्थायें		५९०७॥)	७२५६॥)		३८४≡)	७५३२।)२
,, आर्यसमाजें		३३७२॥)॥	६३८७॥≡)॥		२९९५॥)८	५५७७।-)=
,, वैदिक पुस्तकालय			७०)			४०)
,, विद्यार्थी आश्रम		१४)	५१६)		५६)	६३०)
,, अम्बालाल दामोदरदास		२४५)	२४५)		१६५)	२१५॥)
योग	९६३९।)॥	१४४७५।≡)॥			३६००॥≡)८	१३९९५॥-)१०
वसीयत निहाल देवी जींदाराम		५१४≡)१०	५२८३≡)१०		५०४)	९८६।-)।

निधि	बजट आय	उस मास की आय	इस वर्ष की आय	बजट व्यय	इस मास का व्यय	इस वर्ष का व्यय
सीयत स्वामी विद्यानन्द जानकी बाई		५६९॥=)७	१५६६॥=)७			१८॥)
०पूर्णानन्द जानकी देवी		६११॥-)।	६११॥-)।		५०)	७२०)
म० ओचीराम		३००)	३००)		२५)	३००)
म० रामशरण दास		१७)	१०३९=)			३२=)
म० ईश्वरदास		३८३॥-)	३८३॥-)			१००)
योग	२४२६॥)८	६२७॥=)७			५७६)	२१५६॥≡)।
दलितोद्धार	१००००)	२५८≡)	२५०६=)।	१००००)	८५४)=	७६५१॥≡)८
राजपूतोद्धार		२२)	१३६=)		३७।≡)।	६५२२॥=)३
प्रोवीडएट		३५६॥-)।	१६८०॥≡)८			४३५॥-)
उपदेशक विद्यालय	९०००)	५०२६)	४०३३≡)॥	६००७)	१४८४॥≡)॥	२६०६९॥≡)२
आर्य विद्यार्थी आश्रम	४५००)	२४४८≡)	३५३४=)	४५००)	१०८६)	४२५६-)॥
गुरुदत्त भवन आश्रम शाला		२७६८।।)	३०१८॥।)			
अज्ञात निधि		४०८३≡)।	६१५५)		४१३२॥)।	८८००॥)।
शताब्दी		॥)	४७६॥≡)		२०)	६९॥-)
वेदामृत			५४५१॥≡)			
उपदेशक विद्यालय स्थिर कोष			२००३०)			
विदेश प्रचार	२०००)	२६०-)।	२२५॥≡)॥	१५००)		१८॥)
सभा के सेवकों की सहायता		६७॥	६७।)			६७॥)
शिक्षा समिति		२५)	२६५)			
उपदेशक विद्यालय शाला		५००)	२११०)		=)	३३।-)
प्रेमदेवी होमकरण भण्डार	९०)	६०)	६०)	९०)		९०)

निधि	बजट आय	इस मास की आय	इस वर्ष की आय	बजट व्यय	इस मास का व्यय	इस वर्ष का व्यय
आसाम प्रचार						५३॥=)
रामचन्द्र स्मारकनिधि		८-)	३६५॥-)॥			२३४-)।॥
असाधारण निधि		१०)	२७)			
कन्यागु०कु०वेदप्रचार		८०१=)	८०१=)			
आचार सुधार		८४)	८४)			
बोनस		६५७॥≡)॥।	१०८३॥-)।			
गुरुकुल मुलतान			५९=)			
मद्रास प्रचार			७०)			
मुख्य कार्यालय सभा		७९८१≡)१	७६८७≡)१		६८२३॥-)५	६८२३॥-)५
दयानंद व्याख्यान माला		६४।)	६४॥)			
योग		२२८२६≡)१०	८५३३२।=)		१४७४६॥≡)	६१२५८॥≡)१
गुरुकुल महानिधि		३६७०४॥≡)॥।	१६७५२२।-)८		२११२२)।	५७५३५।-)४
,, स्थिर छात्रवृत्ति			६११६५॥-)			
,, अस्थिर ,,		८।≡)॥	४०८॥≡)॥।			
,, उपाध्याय वृत्ति			५८४०५)॥			
,, शालानिधि			६४११६=)			
,, अन्य दान		५००)	१५५०१५)			
,, दानभूमि तथा हिस्सा बैंक			१८३४३)			
कन्यागुरुकुल इंद्रप्रस्थ		६०६४।=)।	३१६३८॥-)॥।		४६५०॥-)।	३३३८५॥-)।
योग		४६२२६०॥=)।	५६३६१७≡)२		२०३७२॥-)।	१६०६२०॥=)७
सर्व योग		९८२१५=)१	७५१८०।=)१		५०४१८। =॥	३४२२६४॥=)
गत शेष		१४३६४०६।≡)३	१०१६२७६।=)१०			
योग		१५३७१२१॥-)१	१८०६४५७।)११			
व्यय		७०४५८॥=)।	३४२२६४॥=)			
शेष		१४६७१६२॥=)११	१४६७१६२॥=)११			

शेष पत्र वेद प्रचार आदि विभाग मद्ध मास चैत्र १९८२ दया० १०१

निधि	धन	जहां धन लगा हुआ है	निधि
वेद प्रचार	६४०२०॥=)२	ऋण श्यामल लालचंद बटाला	२७३२-)॥।
दयानन्द सेवा सदन	१४१०)	,, वीरभान सीताराम आदि चन्नूमियां	१२३१॥)
लेखराम स्मारक निधि	३०४३०॥=)७	,, जगन्नाथ आदि अमृतसर	२१५६२॥=)७
विदेश प्रचार	२७१६५॥।=)२	,, सुन्दरलाल आदि अबोहर	६००३)४
गुरुदत्तभवन आश्रम शाला	७६३५६-)॥।	,, आर्य विद्यार्थी आश्रम	११५१०≡)॥
गुरुकुल मुलतान	५१७५=)	,, डा. मथुरादास आदि मोगा	६६१८॥।=)॥।
प्रोवीडेंट	७१५८॥।-)१	,, रूपलाल लाहौर	४४१०॥≡)।
बोनस	७४४५॥=)५	,, धर्मदत्त उपदेशक	८८।)२
अमानत वैदिक पुस्तकालय	३०६)	,, केसरचन्द	२०३≡)
,, आर्य समाजें	१८५०६।=)।	,, आर्य समाज ऊधमपुर	५००)
,, अन्य संस्थायें	१०४१४।)५	,, मथुर शर्मा	२०१।)
,, अम्बालाल दामोदरदास	४११३॥)	एजेन्ट अकोंट	१८७[illegible]≡)॥।
,, ईश्वरदास	६६८१॥-)।	अगाऊ	३५००)
,, विद्यार्थीआश्रम	५३०)	इम्प्रैस्ट	५००)
कन्या गुरुकुल	१४२५६=)	शीश हल भूमि	१५०३५॥)॥
प्रेमदेवी होमकरण भण्डार	१५३४।)	शुजाबाद भूमि	५०००)
दयानन्द व्याख्यान माला	११४०।=)	गुरुदत्तभवन आश्रम शाला	८०७८[illegible]।≡)१०
आचार सुधार	१४८[illegible]॥-)	सेंट्रल बैंक Floating	५[illegible]५[illegible]≡)१०
अज्ञात निधि	४४३-)।	पंजाब नेशनल बैंक Floating	३४६=)
सभाके सेवकोंकी सहायता	५००)	,, F.D.	२,२०६५२=)॥।
राजपूतोद्धार	१८८६॥)११	अमानत बिजली कम्पनी	१२०)
दलितोद्धार	१४५०-)८	पोस्टल कैस सार्टीफ़िकेट	७५००)
मद्रास प्रचार	४५६=)		
विद्यार्थी आश्रम	१६८५≡)२		
दयानन्द जन्म शताब्दी	६१७-)।		
वेदामृत	५०५१॥≡)		३६८६३१॥=)।

शेष पत्र गुरुकुल विभाग मद्धे मास चैत्र १९८२ दयां ० १०१

निधि	धन	जहां धन लगा हुआ है	धन
वसीयत पं० पूर्णानन्द	७४७६।)	गुरुकुलभूमि	१६:६३)
ध ,, निहालदेवी जीन्दाराम	५६० -)५	,, मकानात	१ ४९६१≡)॥।
,, रामशरणदास	१०.७)	,, इन्द्रप्रस्थ मकानात	७७१५३।-)॥।
,, विद्यानंद जानकीबाई	२४९९॥=,७	,, मायापुर भूमि	१२७४९॥=)॥
,, ओचीराम	५०२५)	,, अमरोहा भूमि	१९००)
रा:.चंद्र स्मारक निधि	७४४।।।≡)॥	,, धर्मशाला कोठी	:७७०६)।।।
आसाम प्रचार	५.।।।≡)	,, शीशमहलभूमि	:५०८:॥=)
अंडमन ,,	७०)	,, रेलवे रोड लाहौर भूमि	२४४९५)
उपदेशक विद्यालय	१३७९२।)७	ऋण चौ० रामकृष्ण देव-बन्धु	६०००)
,, ,, स्थिर कोष	६००००)		
,, ,, शाला	२११०)	,, चौ० ठाकुरदास धर्म-शाला	१०९।)।
शिक्षा समिति	२ १॥≡)		
असाधारण निधि	२७	,, डा० मथुरादास आदि मोगा	१३२३७॥-)॥
मुख्य कार्यालय सभा	११६३॥=)२		
योग	३९८६३१॥=)।	,, म० बाबूराम लुधियाना	१०४४॥:=, ॥
गुरुकुल महा निधि	३ ५४९६ -)१	,, लाहौर बिजली कम्पनी	५००००)
,, स्थिर छात्र वृति	१८११७६॥)२	,, गुरुदत्त भवन	:७०००)
,, अस्थिर ,,	२२१८५१।-)॥।	डायमेंड फ़िलोर कम्पनी	१००)
,, आयुर्वेद	३०८६९॥=)।	पञ्जाब कोआप्रेटिव बैंक	५०)
,, उपाध्याय वृति	१७२९४९= ५	आर्य कम्पनी	२०९)
,, स्थिर कोष	८२८१=)	प्रोमेसरी नोट	१०००)
,, शाला निधि	६४१'६=)	ट्रस्ट आफ़इन्डिया	८००)
,, अन्य दान	१५५०१५)	पंजाब नेशनल बैंक F.D.	३४२३३८॥-)।
,, दानभूमि तथा हिस्सा बैंक	१८३४३)	गुरुकुल धरोहर	२१६६९?=)८
		कन्या गुरुकुल धरोहर	-९५७॥≡ ।।।
कन्या गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ	-५६७≡)	पंजाब नेशनल बैंक Floating	४३५॥।-)
योग	१०६८५३१)८	योग	१०६८५३१)८

आर्य्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, गुरुदत्त भवन लाहौर

ब्योरा आय व्यय मद्धे मास वैशाख सम्वत् १९८३

निधि	बजट आय	इस मास की आय	इस वर्ष की आय	बजट व्यय	इस मास का व्यय	इस वर्ष का व्यय
कार्यालय वेद प्रचार					१२८)	१२८)
वैदिक पुस्तकालय		२०)	२०)		१२६।)	१२६)
आर्य्य		४१।≡)	४१≡)		१६४॥)	१६४॥।)
चार आना निधि		५४)	५४)			
ट्रैक्ट		१॥)	१॥)			
उपदेशक वेतन					१०६४॥)११	१०६४॥)११
मार्ग व्यय					२६॥-)	२६॥-
बीमा जीवन					४४-)	४४-)
वैदिक कोष					५०)	५०)
योग		११७॥।≡)	११७॥≡)		१६३४।=)११	१६३४।=)११
वेद प्रचार		१५९३॥-)	१५९३॥-)			
मुख्य सभा कार्यालय					४६०=)	४६०=)
दशांश		५८४।)।	५८४।)।			
दायाद्य रक्षा					७०॥≡)।	७०॥≡)।
योग		५८४)।	५८४)।		५३१-)।	५३१-)।
लेखराम स्मारक निधि		२०।)	२०।)			
,, उपदेशक वेतन					१०५॥≡)१	१०५॥≡)१
गुजारा विधवा पं० तुलसीराम					१०)	१०)
,, पं० वजीरचन्द					८)	८)
योग		२०।)	२०।)		१२३॥≡)१	१२३॥≡)१
सूद बैंक					११॥।)१	११॥।)१

निधि	बजट आय	इस मास की आय	इस वर्ष की आय	बजट व्यय	इस मास का व्यय	इस वर्ष का व्यय
अमानत अन्य संस्थायें		२७४५॥।)५	२७६५॥।)५		७६८३॥।)५	७८६३॥।)५
,, आर्य समाजें		३५५)	३५५)		१४)	१४)
विद्यार्थी आश्रम					२८०)	२८०)
ईश्वर दास					७५)	७५)
		३१००॥।)५	३१००॥।)५		८०५२॥।)५	८०५२॥।)५
त प० पूर्णानन्द					५०)	५०)
,, म० ओचीराम					२५)	२५)
,, ,, सुचेतसिंह					४।≡)	४।≡)
योग					७६।≡)	७९।≡)
देशक विद्यालय		७४)	७४)		१८६।)	१८६।)
विद्यार्थी आश्रम					२५७॥।)।	२५७॥।)।
संतोद्धार		३६॥।=)	३६॥।=)		२१५≡)॥	२१५।≡)॥
राजपूतोद्धार					२२४॥=)४	२२४॥=)४
असाधारण निधि		६)	९)			
रक्षा समिति		२०)	२०)		२२॥)	२२॥)
प्रोवीडेन्ट		१४२॥)४	१४२॥)४			
...स		२४।=)	२४।=)			
अज्ञात निधि		३२२)	३२२)		१३॥)	१३॥)
योग		६४१॥।)४	६३१॥।)४		९२०=)१	६२०=)१
कन्या गुरुकुल इंद्रप्रस्थ					३६१५॥।≡)॥	३६१५॥≡)॥
... योग		६०४८॥-)	६०४८॥-)		१५२६६।)४	१५२६६।)४
...		१४६७१६२॥=)११	१४६७१६२॥=)११			
		१४७३२११≡)११	१४७३२ १≡)११			
		१५२६९।)	१५२६६।)४			
		१४५७९४१॥।≡)७	१४५७६४१॥≡)७			

आर्यसमाज के उच्चकोटि के विद्वानों की पुस्तकें

सन्यासी महात्माओं की ओर से आत्मप्रसाद।

(१) **श्री स्वामी सत्यानन्द जी**—दयानन्द प्रकाश १॥) संध्यायोग ।-) सामाजिक धर्म ।) दयानन्द वचनामृत ॥=) ओंकार उपासना =) सत्योपदेश माला १)

(२) **श्री नारायण स्वामी जी**—आत्म दर्शन १॥) आर्य समाज क्या है ।-) प्राणायाम विधि =) वर्णव्यवस्था पर शंकासमाधान =)

(३) **श्री स्वामी अच्युतानन्द जी**—व्याख्यानमाला (संस्कृत में) संस्कृत में योग्यता प्राप्त करने के लिये ॥=) आर्याभिविनय द्वितीय भाग सजिल्द ।-)॥ एक ईश्वरवाद -) प्रार्थना पुस्तक

(४) **श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी**—आर्य पथिक लेखराम १।) मुक्ति सोपान ॥=)

(५) **श्री स्वामी सर्वदानन्द जी**—आनन्द संग्रह, परम आनन्द की प्राप्ति के सब साधन इस में दिये गये हैं १)

(६) **श्री स्वामी अनुभवानन्द जी**—भक्त की भावना, बहुत बढ़िया पुस्तक है मू० केवल॥)

भक्ति दर्पण अथवा आत्म प्रसाद।

इस में भक्ति मार्ग के सभी साधन दे दिये गये हैं। प्रत्येक स्त्री, पुरुष, बच्चे, बूढ़े को हर समय जेब में रखनी चाहिये। पाकिट साईज सुनहरी जिल्द मू० ॥)

स्कूलों तथा पाठशालाओं में बच्चों को उपहार में देने योग्य उत्तम पुस्तक है। आर्य समाज के बड़े २ विद्वानों ने इसे बहुत पसन्द किया है।

आर्यप्रतिनिधि सभा द्वारा स्वीकृत।

—आर्य प्रतिनिधि सभा ने आर्य समाजों के लिये हिसाब किताब, मासिक चन्दा, संस्कार, पुस्तकालय, वस्तुभण्डार, साप्ताहिक सत्संग तथा वार्षिक वृत्तान्त के लिये १० प्रकार के रजिस्टर और फर्म स्वीकार किये हैं, जो प्रत्येक समाज को प्रयोग में लाने चाहियें। यह रजिस्टर सजिल्द तथा एक वर्ष से अधिक समय के लिये पर्याप्त हैं। मू० केवल ६)

—शुद्धि के प्रमाण पत्र—जो सभा द्वारा स्वीकृत हैं, अति सुन्दर रंगीन छपवाए गए हैं, प्रमाण पत्र का एक भाग समाज के पास रहेगा। और दूसरा भाग काट कर शुद्ध हुए व्यक्ति को दिया जाता है। १०० फार्मों की एक कापी का मू० १॥=), ५० फार्मों की कापी ॥=)

—आर्यसमाज के प्रवेश पत्रों तथा नियमों की १०० फार्मों की सुन्दर कापी ॥=), रसीद बुक ।) हिन्दी, अंग्रेज़ी, उर्दू नियम ।=) सैंकड़ा ॥

साप्ताहिक सत्संग के लिये सत्संग गुटका =) भजन संकीर्तन -)

राजपाल—अध्यक्ष, आर्य पुस्तकालय तथा सरस्वती आश्रम, लाहौर।

Registered No. L.1424. रजिस्टर्ड नं० एल १४२४

ओ३म्

भाग ७ जुलाई १९२६
अङ्क ४ श्रावण १९८३

आर्य्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का मासिक पत्र

सम्पादक—चमूपति

प्रार्थना

ओ३म् इन्द्रं वर्धन्तोऽप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ।
अपघ्नन्तोऽराव्णः ॥ ऋग्वेद ।

हे प्रभु ! हम तुम से वर पावें ।
विश्व जगत् को आर्य्य बनावें ॥
फैलें, सुख सम्पत् फैलावें ।
आप बढ़ें, तव राज्य बढ़ावें ॥
वैर-विघ्न को मार मिटावें ।
प्रीति-नीति की रीति चलावें ॥

विदेश से ५ शि० एक प्रति का ।≈) वार्षिक मूल्य ३) पेशगी

बाबू जगत्नारायण प्रिन्टर व पब्लिशर के अधिकार से विरजानन्द प्रेस लाहौर में छप कर प्रकाशित हुआ ।

विषय सूची

संशोधन

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१	गमदो	समदो
२४	२१	प्रणी	प्राणी
,,	२५	भूले-	लूले

* ओ३म् *
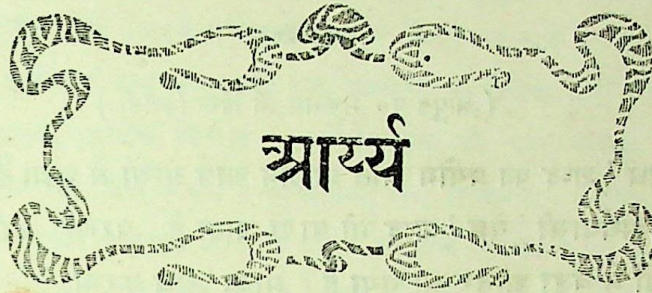
भाग ७] लाहौर—श्रावण १९८३ जुलाई १९२६ [अंक ४

[दयानन्दाब्द १०२]

वेदामृत

विजय प्रार्थना

धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम ।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥

यजु० २९ । ३९

निज अस्त्रों की नोक पर,
दिग्दिगन्त लें धाम ।
खो खो कर गो अश्व धन,
रिपु दल हो हत काम ॥

पंच मेध रहस्य

(श्रीयुत प० भक्तराम जी डिंगा निवासी)

' मेध ' शब्द का प्रयोग अति प्राचीन आर्ष ग्रन्थों में हुआ है। नवीन ग्रन्थों में इस का अर्थवाची ' यज्ञ ' शब्द भी पाया जाता है, परन्तु नवीन प्रयोगों में इस के अर्थों में बड़ा अन्तर आ गया है। प्रायः ' वध करना, ' ' बलि देना ' इस शब्द के मुख्यतया अर्थ लिए जाते हैं।

'एशियाटिक सोसाइटी बङ्गाल' के जन्मदाता प्रो० विलसन ने ' उत्तर रामचरित ' नामक नाटक पर टिप्पण करके सब से पहले अंग्रेज़ी पढ़े लिखों में इस भाव का प्रचार किया कि प्राचीन आर्य यज्ञों में गोमांस वर्ता करते थे। उक्त संस्था के एक अधिवेशन में श्री बा० राजेन्द्र लाल मित्र ने एक निबन्ध पढ़ा। उस में उस ने यह सिद्ध करने का साहस किया कि प्राचीन आर्य लोग गोमांस का प्रयोग प्रत्येक धार्मिक काम में करते थे। विवाहों, श्राद्धों तथा आतिथ्य समयों पर सब के सन्मुख गोवध किया जाता था। पश्चात् उस के मांस को उपयोग में लाया जाता था। कविकुल शिरोमणि प० कालिदास के काव्यों के आधार पर अन्य बङ्गाली पण्डितों ने भी इसी प्रकार के परिणाम निकाले हैं।

आज कल मुसलमानों के बहुत से लेखक इन पण्डितों के परिणामों के आधार पर आर्य जनता को बहका रहे हैं। इनमें 'दरवेश' के संपादक ख़्वाजा हसन निज़ामी और 'सूफ़ी' के संपादक मलक महम्मदुद्दीन उल्लेखनीय हैं।

अब हमारे सन्मुख ये प्रश्न हैं कि क्या वास्तव में हमारे पूर्वज गो आदि पशुओं को यज्ञों में मारा करते थे ? क्या आतिथ्य समय मांस का प्रयोग करने की प्रथा थी ? क्या इस सम्बन्ध में वेद कोई विधान करते हैं ? क्या प्राचीन साहित्य इस की पुष्टि करता है ?

यदि नहीं तो ये प्रथाएं कब और कैसे प्रचलित हुईं ?

इस अति गम्भीर और सारगर्भित विषय पर जब तक इतिहास वेत्ता पूरे प्रयत्न और पूर्णानुवेषणा से विचार करने का सूत्रपात नहीं करते तब तक इस का पूरा २ ज्ञान होना यदि असम्भव नहीं तो अति कठिन अवश्य है। मैं अपने विचारों को प्रकट करने का साहस

करता हुआ आशा करता हूं कि अन्य विद्वान् भी इस पर अवश्य ध्यान देकर कृतार्थ करेंगे ताकि इस विषय पर पूर्ण विचार किया जा सके।

सब से पूर्व इस बात पर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है कि अनेक मत-मतान्तर, धार्मिक विचार, रस्मों-रिवाज जो इस समय हमारे देश में प्रचलित हैं उन की जांच करके उन्हें असली धर्म सम्बन्धी कर्तव्यों से पृथक् किया जाए। वे प्रथाएं अङ्गाङ्गी भाव से हमारे धार्मिक संस्कारों में ऐसे सम्मिलित होचुकी हैं कि उन का जुदा करना हिन्दु धर्म के मानने वालों के लिये एक अत्यन्त कठिन काम हो रहा है। उदाहरण के तौर पर एक फलित-ज्योतिष को ही लीजिए। नवग्रह पूजा तथा राशिचक्र प्रत्येक हिन्दु संस्कार के अन्दर, कोई काम क्यों न हो, धार्मिक हो चाहे व्यावहारिक, प्रत्येक में इन के बिना कार्य निर्वाह नहीं होसकता जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त प्रत्येक स्थान पर प्रत्येक कार्य में हिन्दुओं को इन की आवश्यकता है–बुध, शुक्र, शनि सूर्य, चन्द्र, राहु और केतु, मंगल, और बृहस्पति सब कार्यों में बाधक होते हैं। मेष, वृष, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन, मकर, कुम्भ, मीन और मिथुन इन १२ प्रकार की राशियों के आधार पर ही सारा कार्य चल रहा है। कोई गृह बनाना हो, परदेश जाना हो, विवाह का कार्य आरम्भ करना हो, कोई छोटा अथवा बड़ा कार्य करना हो इस बात का पूर्व ही अन्वेषण किया जाता है कि कोई ग्रह क्रूर तो इस समय नहीं, चन्द्र चौथे अथवा आठवें या बारहवें तो नहीं, मंगल, बुध अथवा शनि ठीक २ तो हैं। इन का फल अमुक राशि में तो बुरा नहीं। मानों इस समय हिन्दु धर्म में यह फलित ज्योतिष ही सब कुछ है। क्या कभी किसी हिन्दु नेता ने इस पर विचार किया है कि कब से इस अभागे देश में यह फलित ज्योतिष चला और किस ने चलाया? इस समय प्रत्येक कार्य में इस को व्यापक जान कर कोई साधारण पुरुष कभी विचार भी नहीं कर सकता कि यह फलित ज्योतिष विदेशियों का इस देश में लाया हुआ है जिस को हम इस समय ऐसा अपना रहे हैं कि इस से पृथक् होना कठिन प्रतीत होता है। परन्तु जब हम प्राचीन इतिहास पढ़ते हैं तो पता चलता है कि प्राचीन वैदिक साहित्य में इसका कहीं नाम तक भी नहीं पाया जाता, वैदिक संस्कारों तथा गृह्यसूत्रों में कहीं इन का वर्णन भी नहीं, वहाँ तो सर्व कार्य नक्षत्रों और तिथियों द्वारा चलते हैं। नक्षत्र संख्या में २७ कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा इत्यादि हैं और तिथिएं प्रतिपदा, द्वितीया आदि अमावस्या और पूर्णमासी

सोलह हैं प्राचीन समय सर्व कारोबार तथा व्यवहार इन्हीं के आधार पर चलते थे। ऋतुओं के परिवर्तन, यज्ञों का अनुष्ठान, कृष्ण और शुक्ल, अमावस्य और पौर्णमासी यज्ञ जितने धार्मिक काम होते थे सब के सब इन्हीं तिथिओं और नक्षत्रों द्वारा चलते थे। फिर यह प्रथा कब से चली? इस का विचार करते हुए शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित जोकि ज्योतिष शास्त्र के एक अद्वितीय मान्य विद्वान् हैं अपनी पुस्तक में इस विषय को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि यवन ज्योतिष और भारतीय ज्योतिष के शास्त्रवेताओं ने अपनी विद्या एकत्र की और राश्यंशादि घटित ग्रह गणित का आरम्भ किया। सारांश, यूनानी ज्योतिष की सहायता से और उसी के आधार पर उज्जैन में प्रचलित ज्योतिष की रचना की गई। इसी लिए सब भारतीय ज्योतिषकार उज्जैनके रेखांश को शून्य रेखांश वैसे ही मानते हैं जिस प्रकार अंग्रेज ज्योतिषी ग्रीनविच के रेखांश को शून्य मानते हैं। उज्जैन में एक राजरचित प्राचीन वेधशाला भी थी और वहीं पर वर्तमान ग्रह ज्योतिष की नींव डाली गई, परन्तु प्राचीन वैदिक युगादि की कल्पना और गणित, ग्रीक लोगों से सर्वथा भिन्न है। इस प्रकार इतिहास की दृष्टि से मालूम होता है कि हिन्दुस्तान में राश्यंशादि गणित का प्रचार ईस्वी सन् के लगभग ३०० वर्ष पहले हुआ था।

सब विद्वान् इस बात में सहमत हैं कि इस समय से पूर्व हम लोगों में राशियों का प्रचार न था। मेष, वृषभ इत्यादि राशियों के नाम और ग्रीक लोगों में प्रचलित राशियों के नाम समान हैं और उनकी आकृतियों की कल्पना भी समान है। इस से स्पष्ट सिद्ध होता है कि यह राश्यंश यवन और शक लोगों ने आर्यावर्त में प्रचलित किया इस से पूर्व इस का प्रचार नहीं था। यहांतक कि बौद्ध धर्म-ग्रन्थ त्रिपिटक में भी राशियों का उल्लेख नहीं है। किसी काल का निर्देश करने के लिये उसमें नक्षत्रों ही का प्रयोग किया है जैसे—"पुष्येण संप्रयातोऽस्मि श्रवणे पुनरागत:" अर्थात् मैं पुष्य नक्षत्र पर गया और श्रवण पर लौट आया। इस प्रकार के अनेक प्रमाण बौद्ध ग्रन्थों में उपस्थित हैं। इस से पता चलता है कि वर्तमान का ग्रह ज्योतिष उस समय नहीं था।

महाभारत के पाठक अच्छी प्रकार जानते हैं कि महाभारत के कौरव पाण्डव युद्ध में यवन और शक लोग अपनी २ सेना सहित पधारे थे, और इस युद्ध में इन्होंने अच्छा भाग लिया था। पश्चात् शक लोग आर्यावर्त में राज्य शासन

की नियत से आए और उन्हों ने उज्जैन को अपनी राजधानी बनाया। अद्य पर्यन्त दक्षिण देश में शक संवत प्रचलित है वर्तमान ज्योतिष के सम्पूर्ण ग्रन्थ जो कि उसी समय बनाए गए, राश्यंश के आधार पर बनाए गए हैं। प्राचीन पञ्च सिद्धान्त, ब्रह्म सिद्धान्त, आर्य्य सिद्धान्तादि उसी समय संगृहीत हुए प्रतीत होते हैं।

यह एक ऐसा उदाहरण है जो किसी तर्क से खण्डित नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार विदेशी शक और यवनों ने हमारे देश में ज्योतिष को प्रचलित किया और उसी के आधार पर संस्कृत में अनेक ग्रन्थ रचे जाकर प्रचलित हुए, ठीक उसी प्रकार विदेशी अनेक पाप जनक रस्मों-रवाज को इस देश में ग्रहों और देवताओं के नाम पर करने लगे उन्हें संस्कृत के पण्डितों द्वारा धर्मग्रन्थों में मिश्रित कराया गया। मूसा और इबराहीम के समय की सब कुरबानियों को जो पुराने अहदनामे में अब तक बराबर चली आती हैं तथा जिन्हें वे लोग ईश्वर (खुदा) के नाम से किया करते थे—यहाँ तक कि इबराहीम ने अपने इकलौते पुत्र की कुरबानी करने की तय्यारी की- वही सब कुरबानियां आर्यावर्त में आकर उन्हीं द्वारा प्रचलित हुई । उन्हें ही हम गोमेध, अश्वमेध और नरमेध के नाम से संस्कृत के नवीन ग्रन्थों में पाते हैं। इस से यह भी प्रतीत होता है कि ये सब नाटकादि ग्रन्थ या तो उस समय बनाए गए या उस के पीछे बनाए गए।

कालीदासादि सब कवि उसी समय के संस्कृत के विद्वान् हैं जिन के आधार पर यह सब पशुहिंसा प्राचीन आर्यों के नाम से प्रसिद्ध की जाती है।

यतः ये सब ग्रन्थ संस्कृत में रचे गए और मध्यकालीन लोग बिना सोचे और बिचारे संस्कृत के ग्रन्थों को वेदवत् पूजने के स्वभाव वाले होगए थे, इसी कारण नवीन मुसलमान राजाओं तथा अंग्रेजों ने भी अपनी २ प्रतिष्ठा को हिन्दु धर्म में प्रचलित कराने एवं हिन्दु के दिल और मस्तिष्क पर अपना सिक्का बिठाने के लिये महम्मद और मुसलमान तथा अंग्रेज़ राजाओं की महिमा को संस्कृत में लिखवाया जिस के उदाहरण 'भविष्य पुराण' के पढ़ने वाले अच्छी प्रकार जानते हैं। "अस्तु" इस सारे कथन का तात्पर्य यह है कि उस समय के राज्य शासकों ने संस्कृत द्वारा अपने मतों का प्रचार करना ही अभीष्ट जान कर भारत के प्रचलित ग्रन्थों में मिलावट करा दी।

बाबू राजेन्द्रलाल मित्र भी अपने उस निबन्ध में स्पष्ट लिखते हैं कि यह हिन्दुओं की धार्मिक रस्म यहूदियों, यूनानियों और शकों की धार्मिक रसूमात के साथ ठीक २ मिलती जुलती है। क्या यह साफ और स्पष्ट प्रमाण नहीं कि उस समय के यवनों और शकों ने आर्यावर्त में इन कुरबानियों को चलाया और इस अभागे देश ने उन बुरी बातों को भी फलित ज्योतिष के समान अपनाया।

एक और ऐतिहासिक प्रमाण देकर दर्शाया जाता है कि भारत के प्राचीन ब्राह्मण गौ के मांस से कभी यज्ञ नहीं करते थे। 'सूत निपात' नाम का एक बौद्ध धार्मिक ग्रन्थ है जिस में एक प्रकरण है, जिस का नाम "ब्राह्मण धार्मिक सूत" है इस प्रकरण में बुद्ध भगवान् के चेलों ने बुद्ध भगवान् से प्रश्न किया कि प्राचीन ब्राह्मण कैसे थे? इस प्रश्न के उत्तर की परम्परा में बुद्ध भगवान् के कतिपय पाली वाक्यों का अंग्रेज़ी तथा हिन्दी अनुवाद यहाँ उद्धृत किया जाता है। यथा–

"Having asked for rice, beds, garments, butter and oil, and gathered them justly, they made sacrifice out of these, and when the sacrifice came on, they did not kill cows.

Like unto a mother, a father, a brother and other relative, the cows are our best friends in which medicines are produced. They give food and they give strength, they likewise give complexion and happiness, knowing the real state of this they did not kill cows. Gods, the fore-fathers, Indra, the Asuras and the Rakshas cried out, this is injustice because of the weapon following on the cows. There were formerly three diseases, desire, hunger and decay, but from the slaying of cattle there came ninety-eight."

अर्थात् ब्राह्मण लोग चावल, बिस्तर, पहनने के वस्त्र, घी और तेल को न्यायानुसार प्राप्त कर इन्हीं वस्तुओं द्वारा यज्ञ करते थे और यज्ञ में वे लोग गोघात नहीं करते थे।

माता, पिता, भाई तथा अन्य सम्बन्धियों की तरह गौएं भी हमारे श्रेष्ठ सखा हैं जिन में कि औषधियां पैदा होती हैं।

गौएं अन्न और बल देती हैं, इसी प्रकार वे सुरूपता और आनन्द देती हैं, इसे जानते हुए वे गोघात कभी न करते थे॥

देव, पितृ, इन्द्र, असुर और राक्षस चिल्ला उठे कि यह तो भारी अन्याय है कि गौओं पर शस्त्रपात हो।

पूर्वकाल में तीन ही रोग थे। इच्छा, भूख और मृत्यु, परन्तु पशुघात के कारण ६८ रोग पैदा होगए।

बुद्ध भगवान के इन उधृत वाक्यों से स्पष्ट पता लगता है कि बुद्ध भगवान् के समय में यद्यपि यज्ञों में पशुवध किया जाता था, परन्तु उस से पूर्वकाल के ब्राह्मण यज्ञों में पशुओं को नहीं मारते थे। इसी प्रकार म० आर. सी. दत्त कृत इतिहास में लिखा है कि बुद्ध भगवान् अपने शिष्यों को उपदेश करते थे कि "हे आर्य लोगो! मैं तुम्हारे ही प्राचीन पुरुषों का प्राचीन धर्म, अहिंसा का प्रचार करता हूं"। एक स्थान पर दत्त महाशय लिखते हैं कि अमरीका के मेक्सीकू को प्राचीन आर्य जाति यज्ञों में मक्की, धान डाला करती थी, मांस कभी नहीं डालती थी।

बाबू राजेन्द्र लाल मित्र अपनी बनाई पुस्तक "प्राचीन आर्यों के क्रिया-कर्म की प्रथा" में लिखता है कि "एक समय आर्यावर्त में ऐसा था जब कि पशु हिंसा करते समय यहां के लोग ज़रा भी तरस नहीं करते थे और मांस न केवल खाने की उत्तम वस्तु गिनी जाती थी और न केवल आतिथ्य का चिह्न माना जाता था-जिस प्रकार पुराने यहूदी अपने पूज्य अतिथियों के लिये मोटे बछड़े को मारते थे, प्रत्युत उस समय के गुरु, आचार्य, ब्रह्मनिष्ठ हिन्दु मानते थे कि गोमांस मृत शरीर के साथ दह करना आवश्यक है। इस कारण वह श्मशान भूमि पर मुरदे के साथ जलाने के लिये गौ को अवश्य मारते थे।

क्या यह बात स्पष्टतया सिद्ध नहीं कर रही कि यह सब प्रचार यहूदी लोगों ने इस देश में आकर किया।

राजेन्द्र बाबू स्वयं इसी पुस्तक में लिखता है कि "इस प्रकार के वर्णन और उदाहरण सब के सब नाटक, कथानक और उपन्यास ग्रन्थों से लिए गए हैं।

मैंने पूर्व सिद्ध करने का यत्न किया है कि नाटकों और उपन्यासों का समय वही है जिस में यवनों ने आर्यावर्त में आ कर राज्य स्थापन किया था और अपने प्यारे माने हुए धर्म का इस देश में पुस्तकों, लेखों तथा पण्डितों द्वारा प्रचार करना आरम्भ कर दिया था। क्या कोई विद्वान् विचारवान् प्राचीन वैदिक आर्यों के मत को जानने के लिये इन आधुनिक नाटकों तथा

उपन्यासों के आधार पर अपनी सम्मति बना सकता है ? यह सब पुस्तकें केवल आज से २००० वर्ष के आगे पीछे की बनाई हैं।

शेष रहीं वर्तमान मनुस्मृति और उस के टीकाकार, जिस के आधार पर बहुत कुछ श्राद्धादि में मांस का प्रचार माना गया है और विशेष करके —

तं प्रतीतं स्वधर्मेण ब्रह्मदायहरं पितुः
स्रग्विणं तल्प आसीनमर्हयेत्प्रथमं गवा ॥ मनु० ३-३ ॥

इस श्लोक पर बाबू जी लिखते हैं कि "जब ब्रह्मचारी अपने कर्तव्यों को उत्तम रीति से नियम पूर्वक पूर्ण कर चुके तो फिर उस (ब्रह्मचारी) को उत्तम विस्तरे पर जो फूलों के हारों से सजाया गया हो बिठाना चाहिये और मधुपर्क की रीति से उस के पिता को चाहिए कि सब से पूर्व उस को गो-प्रदान करे, इस के साथ ही वह लिखते हैं कि राजाओं और उत्तम पूज्य अतिथियों के आतिथ्य के लिये मधुपर्क के साथ गो मांस भी होना चाहिए।

श्री बाबू जी लिखते हैं कि "जिस टीकाकार के आधार पर हम यह अर्थ कर रहे हैं वह टीकाकार विवाह के संस्कार में गोप्रदान के मन्त्रपर लिखता है कि एक अतिथि जो इस योग्य समझा जाता था कि उस का शुभागमन अत्यन्त समारोह के साथ किया जावे वह या तो आचार्य, गुरु, सन्यासी राजपुत्र, अथवा वह होना चाहिए जिस के आगमन पर गौ को मारने के लिये बांधे रखना चाहिए और यही कारण है कि उस अतिथि को गोघ्न अतिथि' गौ मारने वाला कहते हैं।"

कितने शोक की बात है कि जिस भाव को मनुस्मृति के किसी भी पद अथवा वाक्य से कोई भी विद्वान् संस्कृत के जानने वाला नहीं निकाल सकता उस को टीकाकार अपनी ओर से लगा कर भ्रष्टार्थ कर देते हैं। प्राचीन काल में समावर्तन संस्कार के समय जब ब्रह्मचारी गुरुकुलों से विद्याध्ययन कर विवाह करने की इच्छा से घर वापस आते थे उस समय मनुस्मृति-कार लिखते हैं कि बालक का पिता अथवा आचार्य सब से पूर्व ब्रह्मचारी को गौ देवे। जिस ब्रह्मचारी को मनु ब्रह्मचर्य काल में हर एक प्रकार के मांस मदिरादि पदार्थों से पृथक रहने का उपदेश दे चुका है उस को आते ही गो मांस खाने की आज्ञा दे इस से बढ़ कर और क्या अनर्थ हो सकता है ?

(शेष आगे)

परमाणुवाद का रहस्य

(लेखक—विद्याभास्कर वेदरत्न प० उदयवीर शास्त्री न्याय-तीर्थ, सांख्यतीर्थ, वेदान्त विशारद)

गत दिसम्बर की सरस्वती में 'परमाणुवाद' विषय का एक लेख प्रकाशित हुआ है। उस के लेखक श्रीयुत शम्भुनाथ जी त्रिपाठी व्याकरणाचार्य हैं। आपने इस लेख में परमाणुवाद की प्रक्रिया का प्रतिपादन करते हुए, वेदान्त सिद्धान्त के अनुसार इस वाद में अनेक न्यूनताएँ दिखलाई हैं। इस लेख को पढ़ने के ठीक तीन महीने बाद मार्च मास की सरस्वती में पुनः इसी विषय पर कुछ 'विचार विमर्श' प्रकाशित हुआ है। इस विमर्श में प्रथम श्री रामचन्द्र शर्म्मा 'काव्यकण्ठ' ने मूल लेख की आलोचना की है, और उस के साथ ही मूल लेखक महोदय ने उस आलोचना का यथार्थ उत्तर भी दिया हुआ है। इस में कोई सन्देह नहीं कि 'काव्यकण्ठ' जी की आलोचना बहुत ही चिन्त्य है, उस को पढ़ कर यही विचार उत्पन्न होते हैं, कि यदि 'काव्यकण्ठ' जी 'दर्शन कण्ठ' होकर समालोचना लिखते, तो बहुत अच्छा होता। मूल लेखक महोदय ने उस का उत्तर भी यथोचित देदिया है, इस लिये उस के सम्बन्ध में हमें और कुछ अधिक नहीं लिखना। किन्तु मूल लेख के विषय में कुछ वक्तव्य अवश्य है। इस में सन्देह नहीं, लेख बहुत विचार पूर्वक लिखा गया है, परन्तु अनेक स्थलों पर उस के साथ हमारा मतभेद है।

सब से प्रथम त्रिपाठी जी ने वैशेषिक सिद्धान्त के अनुसार परमाणुवाद प्रक्रिया का अच्छी तरह उल्लेख किया है, वह सब लेख प्रायः यथार्थ ही है। उस के अनन्तर भिन्न २ शीर्षक दे कर, वेदान्तियों ने इस वाद पर जो आक्षेप किये हैं, उनका उल्लेख है। ये सब ही आक्षेप ब्रह्मसूत्र के द्वितीय अध्याय के द्वितीय पाद के ११ वें सूत्र से लेकर १७वें सूत्र तक के शाङ्कर भाष्य में विस्तार पूर्वक वर्णन किये गये हैं। उसी में से किन्हीं पंक्तियों का भावानुवाद कर इन आक्षेपों का उल्लेख किया गया है।

उन में सब से प्रथम आक्षेप का शीर्षक है—'परमाणुवादी का कार्य कारणात्मक नियम ठीक नहीं'। इस के नीचे त्रिपाठी जी लिखते हैं—"द्रव्याणि द्रव्यान्तरमारभन्ते गुणाश्च गुणान्तरम्, इस वैशेषिक सूत्र के अनुसार 'कारण में जो

गुण होते हैं वही कार्य में गुणों को उत्पन्न करते हैं, अर्थात् कारण में जो गुण होते हैं वही कार्य में आते हैं" इत्यादि। हमारे विचार में त्रिपाठी जी यहां थोड़ी सी गड़बड़ कर गये हैं। वैशेषिक सूत्र को उद्धृत करके जो अर्थ उन्होंने पहिले ही लिख दिया है, वह ठीक है, और 'अर्थात्' के आगे जो पंक्ति उन्होंने लिखी है, वह ठीक नहीं है। क्योंकि वैशेषिक सिद्धान्त के अनुसार कारण के गुण कार्य में नहीं चले आते, प्रत्युत कारण के गुण कार्य में गुणों को उत्पन्न कर देते हैं। इस बात को और भी स्पष्ट इस तरह किया जा सकता है,—किसी काय के कारण तीन प्रकार के होते हैं—समवायि; असमवायि और निमित्त। इसकी विशेष व्याख्या करते हुए यहां केवल इतना लिखना पर्याप्त है, कि गुण प्रायः किसी कार्य के असमवायि कारण ही हो सकते हैं, इस प्रकार कारण (समवायि कारण) का गुण कार्य के गुण का सदा ही असमवायि कारण होता है क्योंकि परमाणुवादी कार्य कारण में परस्पर सर्वथा भेद मानता है, इस लिये असमवायि कारण रूप—कारण (समवायि कारण) गत गुण, स्वरूप से ही कार्य में नहीं जा सकता, प्रत्युत अपने समान जातीय या असमान जातीय गुणान्तर को उत्पन्न कर देता है, इस लिये आप का यह कहना कि 'कारण में जो गुण होते हैं वही कार्य में आते हैं' वैशेषिक सिद्धान्त के अनुसार असंगत मालूम होता है। इस के अतिरिक्त वैशेषिक का जो सूत्र आपने ऊपर उद्धृत किया है, उस में भी 'गुणाश्च गुणान्तर मारभन्ते' ये पद हैं, 'आरभन्ते' का अर्थ उत्पन्न करना ही होता है, कार्य में स्वरूपेण संक्रान्त होना नहीं।

आगे आप लिखते हैं—'परमाणुवादी का यह कहना ठीक नहीं।' श्रीमान् जी! परमाणुवादी के सिर पर आप अपने इस मनगढ़न्त सिद्धान्त को क्यों थोपते हैं, यह तो आपका ही सिद्धान्त है, परमाणुवादी कब कहता है कि कारण में जो गुण होते हैं वही कार्य में आ जाते हैं। वह तो आरम्भवादी है।

आगे आप लिखते हैं—'और उस के अनुसार यह कहना कि "आकाशादि जड़ वस्तुओं का चेतन ब्रह्म कारण नहीं हो सकता" और भी विरुद्ध है। "कारण के ही गुण कार्य में आते हैं" यह ब्रह्मवादी को भी स्वीकार है।' ठीक है, ब्रह्मवादी को यह अवश्य स्वीकार होगा, और सम्भवतः आप को भी स्वीकार हो, परन्तु परमाणुवादी को यह स्वीकार नहीं है। रही यह बात कि 'आकाशादि जड़ वस्तुओं का चेतन ब्रह्म कारण नहीं हो सकता' यह वैशेषिक का कथन और भी

विरुद्ध है, सो कैसे ? इस विरोध को आपने यहां स्पष्ट करने की कृपा नहीं की। हमारा विचार है कि वैशेषिक का यह कथन सर्वथा यथार्थ है। विचारणीय बात यह है कि चेतन ब्रह्म जगत् का कौन सा कारण नहीं हो सकता ? परमाणुवादी के मत में कारण तीन प्रकार के हैं, जैसा कि हम पहिले दिखला चुके हैं—समवायि, असमवायि और निमित्त। परमाणुवादी ब्रह्म को जगत् का समवयि कारण नहीं मानता, समवायि कारण का ही दूसरा नाम उपादान कारण है। अर्थात् परमाणुवादी का यह स्पष्ट सिद्धान्त है कि ब्रह्म जगत् का उपादान नहीं हो-सकता। क्यों नहीं हो सकता ? इस बात को सिद्ध करने के पहिले, यह लिखना आवश्यक है कि वेदान्ती भी वस्तुतः ब्रह्म को जगत् का उपादान नहीं मानता। इस नई बात को सुन कर शायद आप को कुतूहल हो, परन्तु यहां पर वेदान्त के अन्य वचनों को उद्धृत न कर, त्रिपाठी जी के शब्दों से ही मैं इस बात को उपस्थित करना चाहता हूं। आप लिखते हैं—'परन्तु उस का चेतन ब्रह्म काल्पनिक उपादान है, तात्त्विक नहीं। जैसे सर्प के विभ्रम का उपादान रस्सी है, यह तो अविद्या का माहात्म्य है कि उसे ब्रह्म जगदाकार देख पड़ रहा है। जैसे ठीक प्रकाश न होने पर रस्सी का साँप मालूम होना।' त्रिपाठी जी की इन पंक्तियों का अर्थ समझने में हमें बहुत परिश्रम करना पड़ा है, हम जो अर्थ समझे हैं, वह स्पष्टतया इस प्रकार लिखा जा सकता है—चेतन ब्रह्म जगत् का काल्पनिक उपादान है, तात्त्विक नहीं, फिर तात्त्विक उपादान कौन है ? तात्त्विक उपादान है अविद्या। जैसे रस्सी में साँप का भ्रम होता है, यहाँ पर रस्सी साँप का काल्पनिक उपादान है, और तात्त्विक उपादान है अज्ञान या अविद्या। 'उसे ब्रह्म जगदाकार देख पड़ रहा है' उसे किसे ? यह कुछ ठीक समझ में नहीं आ सका। उपर्युक्त लेख से यह स्पष्ट है कि जगत् का वास्तविक उपादान अविद्या ही है। ब्रह्म विचारे को तो बलात्कार ही उपादान बना दिया गया है, इसी लिये उस के साथ शब्द जोड़ना पड़ता है 'काल्पनिक'। काल्पनिक का यही अर्थ है कि जो जैसा न हो उस को वैसा वर्णन करना क्योंकि ब्रह्म वस्तुभूत उपादान नहीं है, इसी लिये उस के साथ काल्पनिक शब्द लगाना आवश्यक है। इसी बात को यदि कुछ गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा, कि जो वेदान्तियों का काल्पनिक उपादान है, वही परमाणुवादी का निमित्त कारण ईश्वर है। इसी में ब्रह्मवादी और परमाणुवादी के मत पर्यवसित हैं। ब्रह्मवादिता इसी में है कि वह ब्रह्म को जगत् का उपादान ही कहता चला जावे, चाहे वह काल्पनिक

ही मानना पड़े। और परमाणुवादी की भी परमाणुवादिता इसी में है कि वह परमाणु को जगत् का वास्तविक उपादान कह कर ब्रह्म को निमित्त कारण मान लेवे।

अब आप अविद्या की ओर आईये। वेदान्ती अविद्या को ही जगत् का वास्तविक उपादान मानता है। अविद्या क्या वस्तु है? इस विषय पर मैं यहां विचार नहीं करूंगा, इतना कह देना आवश्यक है, कि अविद्या, माया, प्रकृति या परमाणु ये सब ही शब्द, हम को किसी एक केन्द्र की ओर आकर्षित करते हैं, और वह है इस जगत् का उपादान कारण। वह वस्तु ब्रह्म से सर्वथा भिन्न है। इसी लिये वैशेषिक का यह कहना युक्तिसंगत है, कि आकाशादि जड़ वस्तुओं का चेतन ब्रह्म उपादान नहीं हो सकता। और इस बाद को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सब ही दार्शनिक मानते हैं।

आगे त्रिपाठी जी लिखते हैं—'प्रथम एक बार ऐसी प्रतीति हो जाने पर आगे जो कार्यकारणात्मक वस्तुओं की प्रतीति शृङ्खला चलती है उस में उक्त नियम अक्षरशः घटित होता है।' इन पंक्तियों का कुछ स्पष्ट अर्थ समझ में नहीं आसका। सम्भवतः यह अभिप्राय मालूम होता है—एक बार पहिले कहीं साँप को देख लिया जाय, और रस्सी को भी एक बार कहीं देख लिया जाय। इस के अनन्तर ही फिर कभी रस्सी में साँप का भ्रम होता है, और वेदान्तियों की अविद्यामूलक कार्यकारणात्मक प्रतीति शृङ्खला भी इस के बाद ही संगत होती है। खूब रहे, त्रिपाठी जी। यह आप क्या कह गये। अनिर्वचनीयता ख्याति को सिद्ध करने लगे थे, पर आप सिद्ध कर गये अन्यथा ख्याति को। भला आप सोचिये, वादी आप की इतनी रियायत क्यों करेगा कि पहिले एक बार तो आप को वैसे ही प्रतीति हो लेने दे, और फिर आप की आज्ञानुसार अविद्या-मूलक प्रतीति मानने लगे। उस को बाद की प्रतीति शृङ्खला को भी पूर्ववत् ही मान लेने पर क्या कुछ डर मालूम होता है। आप ज़रा सोचें, यहां आप वैशेषिक की अन्यथा ख्याति को ही सिद्ध कर गये हैं। सच वही है, जो सिर पर चढ़ कर बोले। आप क्या! इस मार्ग का अवलम्बन तो बौद्धों के खण्डन में भगवान् आदि शङ्कराचार्य ने भी किया है।

अस्तु, अब हम उसी प्रकृत में आते हैं, जिस मूल को लेकर परमाणुवादी का कार्य कारणात्मक नियम असंगत बताया गया है। और वह है, द्व्यणुक तथा

त्र्यणुक आदि की उत्पत्ति का प्रकार। त्रिपाठी जी लिखते हैं—'काले सूतों से काला ही वस्त्र बनता है, सफ़ेद नहीं। ठीक देखा जाय तो इस नियम का अभिमान रखने वाला परमाणु वाद इस के विरुद्ध है।' वह किस तरह? इस बात को समझाने के लिये त्रिपाठी जी लिखते हैं—'उदाहरणार्थ परमाणुओं से उत्पन्न द्व्यणुक में अणुत्व और ह्रस्वत्व ये दो नये गुण मानना जो कि उस के कारण--परमाणुओं में नहीं थे। और द्व्यणुकों से उत्पन्न त्र्यणुक में महत्त्व और दीर्घत्व गुण बतलाना। ये उक्त नियम से विपरीत हैं।' यह उक्त नियम वही है, जिस का उल्लेख 'द्रव्याणि द्रव्यान्तर मारभन्ते' इत्यादि वैशेषिक सूत्र को लिख कर सब से प्रथम किया गया है। उस नियम से यह द्व्यणुक त्र्यणुक आदि की उत्पत्ति विपरीत क्यों है? इस का समाधान करते हुए त्रिपाठी जो लिखते हैं—क्योंकि ये गुण कारण—परमाणुओं में तो थे नहीं, फिर कार्य में कहां से आ गये। उस में जो गुण थे उन्हें ही कार्यद्व्यणुक त्र्यणुक में आना चाहिये।' हमारा विचार है कि त्रिपाठी जी को यहां पर फिर वही भ्रम हो गया है, जोकि प्रथम ही वैशेषिक सूत्र का अर्थ लिखते हुए 'अर्थात्' के आगे हो गया था। परमाणु वादी का यह सिद्धान्त नहीं हैं, कि कारण का गुण स्वरूप से ही कार्य में आ जाता है, वह तो इसी बात को मानता है कि कारण का गुण कार्य में अपने समान जातीय या असमान जातीय गुण को उत्पन्न कर देता है। क्योंकि परमाणुवादी आरम्भवादी है।

आपका दावा तो यह है कि आप परमाणुवादी के कार्य कारणात्मक नियम को उसी को निर्दिष्ट प्रक्रिया से असंगत सिद्ध करें, परन्तु आप उसका सर्वत्र अन्यथा ही निर्देश कर देते हैं. भला यह कहां का न्याय है! आप पूछते हैं-कार्य द्व्यणुक और त्र्यणुक में अणुत्व और महत्त्व कहां से आ जाते हैं, उस के कारण में तो होते नहीं। सुनिये, कहां से आ जाते हैं। यह बात हम पहिले निवेदन कर चुके हैं कि कारण के गुण कार्य में अपने समान जातीय और असमान जातीय गुणों को उत्पन्न करते हैं। वैशेषिक इसका भी नियम करता है कि कौन सा गुण समान जातीय, कौन सा असमान जातीय और कौन सा उभय जातीय गुणों को उत्पन्न करता है। 'रूपरसगन्धानुष्णस्पर्श शब्दपरिमाणैकत्वैकपृथक्त्वस्नेहाः समानजात्यारम्भकाः। सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चासमानजात्यारम्भकाः। संयोगविभागसंख्यागुरुत्वद्रवत्वोष्णस्पर्शज्ञानधर्माधर्मसंस्काराः समानासमान जा-

स्यारम्भकाः'। (गुणनिरूपण का प्रशस्तपादभाष्य)। इस प्रकार वैशेषिक मत में गुणोत्पत्ति के प्रति गुणों का नियम। इनमें से संख्या उभय जातीय गुणों को उत्पन्न करती है। दो परमाणुओं से द्व्यणुक बनता है, परमाणुगत द्वित्व संख्या ही द्व्यणुक में अपने असमान जातीय अणुपरिमाण को पैदा करती है। तीन द्व्यणुकों से एक त्र्यणुक बनता है, तीन द्व्यणुकों की बहुत्व संख्या ही त्र्यणुक में अपने असमान जातीय महत्त्व गुण को उत्पन्न करती है। आरम्भवाद के मानने वाले परमाणुवादी को इस बात के मानने के लिये आप किस तरह बाध्य कर सकते हैं कि वह त्र्यणुक गत महत्व को द्व्यणुक में भी माने। हां, यह बात उसको मान्य हो सकती हैं कि जो भी महत्त्व का कारण गुण है, वह अवश्य द्व्यणुक में रहता है, और द्व्यणुक में ही रहता हुआ वह त्र्यणुक में महत्त्व को उत्पन्न कर देता है, वैशेषिक मत से यह सर्वथा असम्भव है कि कारण का ही गुण कार्य में आ जावे। इस लिये आपका यह दावा ग़लत है कि परमाणुवाद अपने ही कार्य कारणात्मक नियम के विरुद्ध है। परमाणुवाद को आप इतना अयुक्तिक न समझें, कि वह अपनी ही प्रक्रिया से असंगत सिद्ध हो जाय। ऐसी अवस्था में परमाणुवादी आपसे या किसी भी वेदान्ती से पूछ सकता है, कि जब आप आकाशादि जड़ जगत् का उपादान ब्रह्म को मानते हैं, तो बताईये, कि ब्रह्म में ऐसी कौन सी वस्तु है, जो आकाशादि में जड़ता को उत्पन्न कर देती है। वेदान्ती इस का उत्तर, सिवाय इसके कि यह अविद्या का ही माहात्म्य है, और क्या दे सकता है? इस लिये परमाणुवादी के कार्यकारणात्मक नियम को आप उसी की प्रक्रिया से असंगत सिद्ध नहीं कर सकते।

इसके अतिरिक्त जो यह आक्षेप वेदान्ती ने परमाणुवादी पर किया है, वह वेदान्ती पर भी उसी तरह किया जा सकता है। वेदान्ती चाहे ब्रह्म को उपादान माने या माया को, इस पर मैं इस समय कोई विचार नहीं करता। वह जिस को भी उपादान मानता है क्या वह भी इसी स्थूल जगत् के समान, स्थूल सक्रिय सगुण और नश्वर आदि है? यदि नहीं, तो वेदान्ती बतावे कि इस जगत् में वे धर्म कहां से आगये? वेदान्ती के पास इसका भी उत्तर, सिवाय अविद्या के माहात्म्य के, और कुछ भी नहीं है।

इसके आगे त्रिपाठी जी ने यह शीर्षक दिया है - 'परमाणु नित्य, निरवयव और सूक्ष्म नहीं हो सकते'। क्यों नहीं हो सकते? इस पर विचार करते हुए त्रिपाठी जी आगे लिखते हैं—'पार्थिव परमाणुओं में चार, जलीय में तीन,

तैजस में दो, वायवीय में एक गुण इस तरह उत्तरोत्तर एक की अपेक्षा दूसरे में न्यून गुण—मानने से परमाणु अनित्य, स्थूल और सावयव सिद्ध होते हैं'। यह आक्षेप वेदान्त अध्या. २, पाद. सू. १५, १६ के शाङ्कर भाष्य के आधार पर किया गया है। परन्तु आप को यह मालूम होना चाहिये, कि परमाणुवादी पार्थिव परमाणुओं में चार नहीं, चौदह गुण मानता है, इसी तरह जलीय परमाणुओं में भी चौदह ही गुण मानता है; तैजस में ग्यारह और वायवीय में नौ गुण होते हैं। इस लिये आप का प्रतिपादित क्रम परमाणुवादी के सिद्धान्त से असंगत है। आप अपने क्रम को पुष्ट करने के लिये युक्ति देते हैं 'क्योंकि गुणों की कमीवेशी से आकार में भी न्यूनाधिकता होगी। आकारवृद्धि के विना गुण में वृद्धि नहीं होती'। यह आपने अभूत पूर्व और अश्रुत पूर्व व्याप्ति की कल्पना की है। आकार से आपका अभिप्राय लम्बाई चौड़ाई आदि से मालूम होता है, दूसरे शब्दों में इसे परिमाण कह सकते हैं। त्रिपाठी जी की यह व्याप्ति सर्वथा व्यभिचरित है। परमाणु परिमाण वाले पार्थिव या जलीय अवयव में चौदह गुण रहते हैं, और विभु परिमाण वाले आत्मा में भी चौदह ही गुण रहते हैं आप के विचार से ये दोनों पदार्थ समानपरिमाण होने चाहियें। विभु आकाश में छः ही गुण रहते हैं, आप के विचार से वह परमाणु से भी छोटा होना चाहिये, या परमाणु उससे भी बड़ा होना चाहिये। आपने जो छोटी बड़ी पुस्तक का दृष्टान्त दिया है, वह विषम है। क्योंजि पुस्तक चाहे छोटी हो या बड़ी वह पार्थिव होने से समान गुण रखती है। परिमाण या गुरुत्व आदि को न्यूनाधिकता अवयवों की न्यूनाधिकता से होती है, गुणों की न्यूनाधिकता से नहीं। इस लिये परमाणुओं में जो आप गुणों के तारतम्य से स्थूलता सिद्ध करना चाहते हैं, वह सर्वथा अयुक्त है। और इसी लिये गुणों की न्यूनधिकता होने पर भी परमाणु की परमाणुता में कोई बाधा नहीं आसकती। ऐसी स्थिति में आप का यह कहना, कि—'यदि इस वैषम्य को दूर करने के लिये चारों में एक ही तरह के बराबर गुण मानें तो पृथ्वी में रस का, वायु में रूप का उपलम्भ होना चाहिये' इत्यादि सर्वथा असंगत है। पृथ्वी में तो रस का उपलम्भ होता ही है, यह आप आपत्ति क्या दे रहे हैं। उन की दशा कोई नहीं बिगड़ती, आप इस से निश्चिन्त रहें, वे (पार्थिवादि परमाणु) हर हालत में चार ही प्रकार के रहते हैं। आगे आप एक बड़ी विचित्र बात लिखते हैं—'यही नहीं, न्यूनाधिक गुणों के होने से परमाणुओं में अनित्यत्व का एक और दोष आता है'। इस का स्पष्ट तात्पर्य यही है कि परमाणु अनित्य हैं, क्यों? गुणों के न्यूनाधिक होने से। त्रिपाठी जी! इस व्याप्ति का आप को प्रसव कहां से हुआ? यदि गुणों की न्यूनाधिकता को ही अनित्यत्व का प्रयोजक मान

लिया जाय, तो आप कोई वस्तु नित्य बतावें ? गुणों की न्यूनाधिकता सर्वत्र होने से किसी भी पदार्थ को आप नित्य न मान सकेंगे। अगर सच देखा जाय तो अनित्यत्व का प्रयोजक कारणवत्त्व है, अर्थात् जिस के कारण हो सकें, वह अनित्य, और जिस के कारण न हो सकें, वह नित्य समझना चाहिये। आप कहेंगे कि हम ब्रह्म के अतिरिक्त किसी को भी नित्य नहीं मानते। यह ठीक है, पर आप के कहने ही से तो काम न चलेगा। परमाणुवादी के मुक़ाबले में आप को यह सिद्ध करना भी ज़रा टेढ़ी खीर है कि ब्रह्म के अतिरिक्त कोई भी वस्तु नित्य नहीं, इस लिये गुणों की न्यूनाधिकता या गुणों के होने से ही, आप जो परमाणुओं की अनित्यता सिद्ध कर रहे हैं, वह असंगत है। इस प्रकार परमाणुवादी का यह सिद्धान्त, कि परमाणु नित्य निरवयव और सूक्ष्म हैं, सर्वथा युक्तिसंगत है।

"निघरे नाथ"

(श्रीयुत चमूपति 'आर्य सेवक')

निघरे नाथ ! बसो मन मेरे। टेक

मैं बैठी हूं बाट जोहती।
आशा उठ उठ हृदय मोहती।
अब नहिँ तुम बिन कुटी सोहती॥
करो सनाथ बसो मन मेरे॥

कब तक तुम यों रुष्ट रहोगे।
विनय हमारी नहीं सुनोगे।
भोले ! द्वार द्वार भटकोगे।
जोडूं हाथ बसो मन मेरे॥

मचल मचल बातें करते हो।
रूठ रूठ कर चित हरते हो।
उठ जाऊं ? क्या पग धरते हो ?
मैं नहिँ साथ बसो मन मेरे॥

लो ! यह घर सब हुआ तुम्हारा।
लो ! मैं करने लगी किनारा।
छूलूं अन्तिम चरण तुम्हारा ?
हूँ नत-माथ बसो मन मेरे॥

मुद्र्यमाण अष्टाध्यायी भाष्य ऋषि दयानन्द कृत नहीं है

(लेखक—स्वामी वेदानन्द तीर्थ)

'आर्य' के आषाढ़ मासाङ्क में प्रकाशित "अष्टाध्यायी का ऋषिकृत भाष्य" शीर्षक लेख पर म० भगवद्दत्त जी बहुत क्षुब्ध हुए हैं, और उस क्षोभ के कारण वे औचित्य की सीमा का भी उल्लंघन कर गए हैं। जो पण्डित कहलाने वाले लोगों के लिए शोभाजनक नहीं। उस में उन्हों ने अनेक अशिष्ट, असभ्य, आर्य-विगर्हित, धार्मिकविनिन्दित वाक्य लिखे हैं। हमें उस से कोई दुःख नहीं, क्लेश नहीं। हमारे लिए यह कोई नूतन बात नहीं। पलचर समुदाय तो सदा से विद्वान् पुरुषों को गाली देता आया है। इस सम्प्रदाय के कई महानुभाव ऋषि को साइंस (पदार्थ विद्या) में अपने सामने बच्चा समझते हैं। इसी समुदाय के अग्रगण्य लोग परलोकवासी धर्मवीर महाधन प० लेखराम जी को "पेशावरी गुण्डा" नाम से पुकारते रहे हैं। यह तो हुई पुरानी बातें, जिन पर प्रकाश डालने की विशेष आवश्यकता नहीं। अभी थोड़े दिन हुए, इन के महामान्य नेता ने पूज्य वर श्रीस्वामी मुनीश्वरानन्द जी महाराज के सम्बन्ध में "यह मुष्टण्डा साधु कौन है ?" ऐसे मधुर शब्द उच्चारण किए थे। तो यदि अपने गुरुओं के चरण चिह्नों पर चलते हुए सुयोग्यवर भगवद्दत्त जी हमें गाली दें तो इस में आश्चर्य ही क्या है ? इस में मेरी तो कोई क्षति नहीं, अपितु प्रतिष्ठा ही है। क्योंकि इस से इस समुदाय के गालीपात्र महानुभावों की श्रेणी में हमारा प्रवेश होजाता है। हां कदाचित् लोग इन्हें इन के व्यवहार पर साधुवाद न दें, तो कोई आश्चर्य नहीं। इन की गालियां पढ़ कर हमें एक पुरातन कथा याद आई है, वह इन के सर्वथा अनुगुण है—अतः उसे लिख देना आवश्यक है —

महात्मा बुद्ध के पास एक वार एक मनुष्य आया और उन्हें गाली देने लगा। महात्मा शान्ति से बैठे रहे, उस की किसी बात पर, किसी चेष्टा पर किञ्चित् भी क्षुब्ध न हुए, विचलित न हुए, स्वभाव सुलभ शान्ति को न त्यागा। गाली देता देता वह मनुष्य थक गया और चुप होगया। महात्मा बुद्ध ने उसे चुप तथा श्रान्त देख कर कहा —'वत्स बैठ जाओ, आप थक गए हैं।' वह मनुष्य महात्मा के इस व्यवहार से बहुत लज्जित हुआ, और मुख नीचा करके बैठ गया।

महात्मा जी ने उसे कुछ उपदेश किया और उसी प्रसंग में उस से पूछा, 'यदि कोई किसी के पास कुछ भेंट लाए, और वह भेंट लेने से इनकार करदे, तब उस वस्तु का क्या करना चाहिए' उस ने कहा -'महाराज ! जो लाया है, वह अपने पास रखे'। महात्मा ने कहा—'यह गाली रूप उपायन जो तुम मेरे लिए लाए हो, मुझे स्वीकार नहीं, मैं नहीं लेना चाहता हूं।'

ठीक इसी भांति हमारे लेख का उत्तर न देकर श्रीयुत भगवद्दत्त जी ने गाली देने का परिश्रम किया है। शोक है हम उन के इस परिश्रम को सफल करने में नितान्त असमर्थ हैं और 'त्वदीयं वस्तु गोविन्दं तुभ्यमेव समर्पये' कह कर उन के इस उपहार को अस्वीकार करते हैं।

हमारे लेख में मुख्य बात यह थी कि अजमेर-वैदिक यन्त्रालय में (श्रीभगवद्दत्त जी के मत में 'यन्त्रणालय' में, बलिहारी इस पाण्डित्य की जो अष्टाध्यायी भाष्य छापा जा रहा है, वह ऋषि दयानन्द कृत नहीं है।' इस के लिए हमारा हेतु है कि ऋषि दयानन्द सरस्वती स्वप्रणीत सत्यार्थ प्रकाश में 'अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा" श्लोक से आरम्भ होने वाली शिक्षा को त्याज्य ग्रन्थ बताते हैं और विवादास्पद अष्टाध्यायी भाष्य में उसी त्याज्य ग्रन्थ के प्रमाण दे रखे हैं।

श्रीमान् भागवद्दत्त जी को भी यह बात खटकी है, अतएव वे इस अष्टाध्यायी भाष्य के पृष्ठ १९ में टिप्पणी में लिखते हैं 'ऋषि दयानन्द सरस्वती इस "पाणिनीय" शिक्षा को पीछे से अस्वीकार करने लग पड़े थे।' परन्तु महाशय जी की यह भ्रान्ति है। ऋषि ने इस श्लोकमय शिक्षा को कभी प्रमाण मानाही नहीं 'पीछे से'? अस्वीकार करने के अर्थ ही क्या? सत्यार्थप्रकाश का पहला संस्करण सन् १८७५ ई० में बनारस में छपा, उस के ७५ वें पृष्ठ पर 'अथ पठन पाठन विधिं वक्ष्यामः। प्रथम तो अष्टाध्यायी को पढ़े' इस के पश्चात् धातु पाठ, उणादि कोष और गण पाठ के पढ़ने पढ़ाने का प्रकार लिख कर लिखते हैं—"इस प्रकार से १६ वा १८ मास में पाणिनि मुनि के किये ४ चार ग्रन्थों को पढ़लेगा।"

इस के विपरीत वर्त्तमान सत्यार्थ प्रकाश में "प्रथम पाणिनिमुनिकृत शिक्षा जोकि सूत्ररूप है" (सत्या० प्र० पृष्ठ ६६, १४ सं०) लिखते हैं। सज्जनो! सोचिए तो सही, यदि ऋषि को किसी समय श्लोकयुक्त शिक्षा ग्रन्थ अभिमत होता, तो वे सत्यार्थ प्र० के प्रथम संस्करण में अवश्य पाठ्य ग्रन्थों में उस की गणना करते। किन्तु ऐसा किया नहीं, इस से स्पष्ट सिद्ध है कि ऋषि को

यह ग्रन्थ कभी अभिमत न था, अतः इस के प्रमाणों से युक्त 'अष्टाध्यायीभाष्य' ऋषिकृत नहीं। एक युक्ति और लीजिए, इस 'अष्टाध्यायी भाष्य' में बिना प्रसंग के भी महाभाष्य के अवतरण दे रखे हैं।

उदाहरण के लिए केवल एक ही लिखना पर्य्याप्त है—'अइउण्' सूत्र पर शब्दलक्षण महाभाष्य से उद्धृत किया है। इस का यदि कोई अवसर था तो 'अथ शब्दानुशासनम्' किन्तु वहां न करके अइउण पर किया है और फिर वहां प्रसंग नहीं मिलता। इस से पूर्व वाक्य निराकांक्ष हो चुका है। 'अथ शब्दानुशासनम्' पर तो स्वाभाविक ही शब्दलक्षण की जिज्ञासा होती है? क्या ऋषि दयानन्द सरस्वती ऐसे महाविद्वान् को प्रसंगाप्रसंग का बोध भी न था। हम ऋषि पर ऐसा 'अलीकतम' लांछन लगाने को तय्यार नहीं।

और लीजिए, श्री भगवद्दत्त संपादित अष्टाध्यायी भाष्य के पृष्ठ २ पर 'ऋलृक्' सूत्रभाष्य में लिखा है "तस्य च पूर्वत्रासिद्धमिति लत्वं सिद्धम्" क्या कोई वैयाकरणंमन्य इसे शुद्ध मान सकता है, पूर्वत्रासिद्धं सूत्र से 'लत्व' असिद्ध होता है या सिद्ध? इस का ज्ञान तो उसे हो सकता है, जिस ने विधिपूर्वक व्याकरण का अध्ययन किया हो। संस्कृत से कोरा मनुष्य इन बातों को क्या जानेगा। प्रतीत होता है कि ऋषि के किसी पौराणिक लेखक की यह करतूत है।

श्री भगवद्दत्त जी स्वामी जी महाराज की चिट्ठियों का हवाला देते हैं, ऋषि के जीवन चरित्र का प्रमाण देते हैं, परन्तु उन सब से तो यह कहीं भी नहीं सिद्ध होता, कि ऋषि का किया भाष्य वही है, जो आप छाप रहे हैं। आक्षेप तो महाशय जी केवल इतना ही है कि जो भाष्य आप मुद्रित करा रहे हैं, वह ऋषिकृत नहीं। प्रश्न हो सकता है, ऋषिकृत भाष्य गया कहां, इस के विषय में निश्चय पूर्वक कुछ न कह कर केवल इतना ही कह सकते हैं कि कदाचित् श्री मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या ले गए, वे स्वामी जी की बहुत सी हस्त-लिखित पुस्तकें घर उठवा ले गए थे (देखो-श्री महात्मा मुंशीराम संकलित "ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार" की भूमिका पृष्ठ ८ पंक्ति १३-५)।

असावधानता वश सं० १९३५ के स्थान में हमारे लेख में सं० १९३३ छप गया है, इस पर महाशय जी ने हमें यह बेतुकी सुनाई हैं, कि तौबह ही भली। किन्तु क्रोध में आ कर प्रकृत बात का विचार नहीं किया, करते भी कैसे, क्रोध तो मनुष्य की बुद्धि हर लेता है। महाशय जी! बात तो वही रही, जो हम कहते हैं, अर्थात् सं० १९३६ में शिक्षा ग्रन्थ मुद्रित हुआ, अष्टाध्यायी भाष्य आप के

कथनानुसार १९३५ में आरम्भ होता है, तब तो अष्टाध्यायी का सुधार लेना बहुत सरल था। महाशय जी! ऋषि असावधान न थे।

हम क्या पढ़े हैं, क्या पढ़ाते हैं, इस से प्रकृत विषय का कोई सम्बन्ध नहीं, अतः इस सम्बन्ध में आप के असम्बद्ध लेख की उपेक्षा करते हैं।

भगवद्दत्त जी ऋषि दयानन्द सरस्वती के कट्टर शत्रु हैं। वाचक वृन्द! इस से चौंकिएगा नहीं। मेरे पास प्रमाण है, और वह श्री भगवद्दत्त का अपना लेख। अष्टाध्यायी के प्रथमांक में "पाठकों से निवेदन" शीर्षक के नीचे 'नवीन ग्रन्थों के श्रीस्वामी जी महाराज द्वारा खण्डित वेदों पर अनेक ऐतिहासिक प्रमाण दिए जाएंगे। पाठकवर्ग! जिन शब्दों को हम ने मोटा कर दिया है, वे विशेष ध्यान देने योग्य हैं। क्या कोई ऋषि भक्त आर्य समाजी यह लिखने का साहस कर सकता है? जिस आदित्य ब्रह्मचारी ने सारी आयु वेद प्रचार, वेदों पर किये गए मिथ्याक्षेपों के उत्तर देने में गुजारी हो, उस के सम्बन्ध में "श्रीस्वामी जी महाराज द्वारा खण्डित वेदों पर" श्री भगवद्दत्त ही लिख सकते हैं, उसके लिखने की 'मूर्खता' 'धृष्टता' हम नहीं कर सकते। हम ऐसा घोर अनृत भाषण नहीं कर सकते। हमें ज्ञात है कि यह पहले भी एक ऐसी चिट्ठी ऋषि दयानन्द के नाम से प्रकाशित कर चुके हैं। जो न तो ऋषि की लिखी है और न ही उस पर ऋषि के अपने हस्ताक्षर हैं। किन्तु इन का कोई अभीष्ट सिद्ध होता था, अतः उसे छाप दिया। पाठक! यह है रिसर्च का सार! यह है ऋषि के प्रति भक्ति! इस से प्रतीत होता है कि भक्ति दिखा कर ऋषि के नाम पर गड़बड़ करना चाहते हैं।

अन्त में आप ने हमें व्याकरण में शास्त्रार्थ के लिए ललकारा है। किन्तु उस से पूर्व पंक्ति में अपना व्याकरणानभिज्ञ होना स्वयं स्वीकार कर चुके हैं। जब आप अपने को वैयाकरण नहीं मानते, तो उस विषय में शास्त्रार्थ क्या कीजिएगा, उस में भी ऐसी ही गाली दीजिएगा। यदि ऐसी गाली देनी हो, तो हमारा उत्तर सुन लीजिए, इस का अर्थ किसी से पूछ लीजिएगा-हम न लिखेंगे—

"अलं महात्मभिःसह कलहेन? क्यों। मनुष्यैः सह संवादो मादृशानां हि शोभते। देवास्तु नर रूपेण न इमे भान्ति वादिनः॥"

अन्त में एक बात आप से पूछ लेना अनुचित न होगा। कृपा कर के गाली न दीजिएगा—उत्तर दीजिएगा—। इस भाष्य का संपादन तो आपने आरम्भ किया था और दो अंक आपने प्रकाशित भी कर दिए थे। तो फिर श्री रघुवीर जी को संपादन कार्य्य पर क्यों लगाया गया। और आप के संपादित दोनों अंक रद्दी में क्यों फेंक दिए गए? इस में कोई रहस्य तो नहीं?

आर्य समाज संसार के कोने २ में वेद का प्रचार करेगा

श्रीयुत पूज्यपाद नारायण स्वामी जी प्रधान

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की महत्व पूर्ण घोषणा का सार

धर्मान्ध मुसलमानों ने और सरकार के गोरे कर्मचारियों ने पुनः आर्य समाज के विरुद्ध घृणा का गुप्त षड़यन्त्र सा स्थापित कर लिया है क्योंकि इनको निश्चय है कि अब जहां मुसमानों को इस बात का अवसर नहीं मिल सकता कि वे काफरों को अपने मत में मिला कर बहिश्त के अधिकारी बन सकें, वहां सरकारी गोरे अफ़सरों को भी विश्वास हो गया है कि ऋषियों की भूमि में जहां वैदिक संस्थाएं उन्नति के शिखर पर विराज कर धर्म के मधुर फल जनता के समक्ष रखती रहीं तथा जहां के चक्रवर्ती राजा सकल जगत् पर शासन करते रहे, स्वस्थ राष्ट्रियता और देश भक्ति के अतिरिक्त और किस वस्तु की वृद्धि हो सकती है। क्योंकि वे इस बात को कदापि विस्मरण नहीं कर सकते कि उत्तर भारत में आर्यों ने व्यक्तिगत रूप से असहयोग सेना में खुले तौर पर भरती होकर अपनी मातृभूमि के लिए अत्यन्त कष्ट सहन किये थे।

भगवान् दयानन्द ने शुद्धि का जो आन्दोलन चलाया था इससे मुसलमानों के हृदय जल रहे हैं क्योंकि अब वे उन हिन्दुओं को अपने पाश में नहीं बांध सकते जिन्होंने किसी कारणवश एक वार किसी मुसलमान के गृह से पानी पी लिया हो अथवा खाना खा लिया हो। आर्य समाज ने सहस्रों दलितों को साथ मिला कर उनकी सामाजिक अवस्था को ऊँचा कर दिया है।

अब इनको बहका कर इसलाम में प्रविष्ट नहीं किया जा सकता। पूज्य स्वामी दयानन्द और उनके अनुयाईयों के प्रचार ने पतित और गैर इस्लामी इसलाम की जड़ों को हिला दिया है। अकाट्य और अप्रतिहत तर्क, युक्तियों, तीव्र कटाक्षों, निर्दय प्रहारों और सामयिक ठोकरों और प्रभावशाली तथा वेधक व्यंगों ने अपना कार्य किया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि इसलाम को ग्रहण करने वालों की बढ़ती हुई संख्या कम हो गई है और मत-परिवर्तन रुक गया है, तथा सहस्रों भारतीय मुसलमानों को बहु विवाह, विषय वासनाओं को

उत्तेजित करने वाले बहिश्त और भयंकर नरक पर विश्वास नहीं रहा। मिस्टर सय्यद अमीरअली, मिस्टर खुदा बखश एम. ए और खवाजा कुमालदीन आदि महोदयों के नाम उदाहरण रूप में प्रस्तुत किए जा सकते हैं। इनका इसलाम प्रचलित इसलाम से कोई समानता नहीं रखता प्रत्युत इस पर शास्त्रीय आदर्शों का रंग चढ़ चुका है।

'टाईमज़' (Times) का संवाददाता वस्तविक स्थिति को प्रकट करता है जब वह स्वीकार करता है कि जिन स्थानों में मुसलमानों ने चिरकाल से अपना मत फैलाने तथा हिन्दुओं को मुसलमान बनाने का ठेका ले रखा था उन में आर्यों के शुद्धि आन्दोलन की प्रबल बाढ़ से मुसलमानों के हृदय बहुत उत्तेजित हो गए हैं"

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा घोषित करती है कि आर्य समाज संसार के कोने २ और खंड २ में वैदिक धर्म के प्रचार के लिए और तमाम सम्प्रदायों तक अपने धर्म की महिमा का विस्तार करने के लिये स्थापित है। मुसलमान वा अन्य मित्रों की ओर का कोई डर या धमकी उसको उस मार्ग से विचलित नहीं कर सकती जो उसके प्रवर्त्तक ने उसे दर्शाया है। आर्य समाजी ऋषि दयानन्द को कम से कम उस दृष्टि से देखते हैं जिस दृष्टि से मुसलमान भाई रसूलपाक को। वे स्वामी दयानन्द के पवित्र व्यक्तित्व पर किसी प्रकार का हमला सहन नहीं करेंगे।

"सत्यार्थ प्रकाश" इस समय के आर्यों की स्मृति वा शरैयत है। उनके लिए वह वैसा ही प्रमाणिक है जैसी कि मुसलमानों को शरैयत। इस लिए आर्य समाजी उसकी रक्षा हर मूल्य पर करेंगे और किसी भी कुर्बानी को बड़ा न समझेंगे।

उत्सवों तथा नगर कीर्तनों के बन्द किए जाने के सम्बन्ध में 'सार्व देशिक आर्य प्रतिनिधि सभा मुसलमानों को चेतावनी देती है कि अत्याचार की कोई धमकी आर्यों को उनके धार्मिक अधिकारों की रक्षा तथा उनके रस्मों के अनुष्ठान से नहीं रोक सकती। मुसलमान मुल्लाओं के प्रस्तावों पर चूंकि सरकार के अफसरों ने नगर कीर्तन के जलूसों में हस्ताक्षेप किया है, इस लिए आर्य समाजी धर्म की स्वतन्त्रता के जन्म-सिद्ध-अधिकार के रक्षा में आत्म-बलिदान देंगे, कष्ट तथा आपत्तियों का स्वागत करेंगे और तब तक चैन नहीं लेंगे जब तक कि अत्याचार का निराकरण न हो जाए।

स्वर्ग संलाप।

पाश्चात्य सभ्यता और हम।
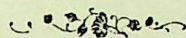
(श्रीमती सरलादेवी)

बहिनों! यों तो महिला संसार में अविद्या देवी ने भारत के कोने कोने में डेरा डाल रक्खा है पर और स्थानों की अपेक्षा पंजाब में यह हाथ झाड़ कर पीछा कर रही है। पंजाब में विद्या का प्रचार बहुत कम है। जो थोड़ी सी पाठशालाएँ खुली हुई भी हैं उनमें अक्षरों के ज्ञान मात्र विद्या के पर्दे में अविद्या देवी का अकंटक साम्राज्य है।

पंजाब में पुरुष अधिकाँश विदेशी भाषा पढ़ते हैं। उर्दू को गले का हार बनाते हैं। इस लिए यदि वे विदेशी सभ्यता को अपनाएँ तो उनका अधिक दोष नहीं, क्यों कि प्राचीन सभ्यता और संस्कृति का गौरव उन्हें मालूम नहीं है। पर स्त्री-जगत ने अपनी राष्ट्र भाषा हिन्दी का गौरव बढ़ाया है। एक प्रकार उन्हीं के द्वारा पंजाब में उसका अस्तित्व है। नहीं तो पाश्चात्य सभ्यता की एक लहर में वह कभी की बह गई होती। अधिक दुख की तो यह बात है कि हमने भी अपने किए कराए काम पर पानी फेर दिया। जहां हमें प्राचीन सभ्यता को अपनाना चाहिए था, वहां आज हम विदेशी सभ्यता के भंवर में चकरा रही हैं। उसकी चकाचौंध में चौंधिया कर असलीयत को भूल रही हैं इससे अधिक हमारे लिए और क्या लज्जा की बात हो सकती है?

पाश्चात्य सभ्यता का और अंग्रेज़ी फ़ैशन का हम पर ऐसा झोल चढ़ा है, जिससे छुटकारा पाना कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव सा प्रतीत होता है। फ़ैशन का बुख़ार बुरी तरह हम पर आक्रमण कर रहा है। भड़कीला भेस बूट, जुराब और दूसरी फ़ैशन की चीज़ों के अतिरिक्त आंखों की रोशनी बढ़ाने के लिए हमें आखों पर चश्मा ज़रूर चढ़ाना पड़ता है, नहीं तो हमें किताब के अक्षर ही धुंधले दिखलाई देते हैं। किसी प्रकार पुरुष हम से आगे न निकल जायं, मानों यह हमारी धारणा बन गई है। उनसे आगे दौड़ कर निकल जाने की बलवती इच्छा हमारे प्रत्येक काम से टपकती है। हमने इनसे कई बातों में तो

बाज़ी मार ली है, पर हां अभी कालर टाई लगाने में ज़रूर पीछे हैं। इस के लिए हम फ्रांस की महिलाओं को ही दोषी समझती हैं। उन्हों ने अभी तक क्यों नहीं कालर टाई बाँध कर श्री गणेश किया। हम तो उनकी ही नक़ल हैं इसलिए हमारा अधिक दोष नहीं।

यह तो सभी मानने लगे हैं कि भारत वर्ष के मनुष्य इन फ़ैशनों के फेर में पड़ कर स्त्री बन गए हैं। उनमें कोमलता, भीरुता और डरपोकपन आ गया है। वीरता की बातों से बुख़ार चढ़ जाता है। भला हो लार्ड कर्ज़न का जिसने मूंछ भी सफ़ा कराके मर्दों के रास्ते का रोड़ा अलग कर दिया, नहीं तो कभी न कभी उमंग आ ही जाती। अब इधर से भी छुट्टी मिली।

देखो! जब फ़ैशन के झमेले में मर्द स्त्री बन गए। आत्मगौरव को खो दिया। कायरता को गले से लगा लिया और स्वदेशाभिमान को छोड़ अपमान के गहरे गढ़े में गिर गए तो फिर स्त्रियों का क्या कहना। वे तो स्वभाव से ही डरपोक, भीरु और निर्बलता की जीती जागती मूर्ति होती हैं। स्वदेशाभिमान और जातीय गौरव तो उनकी कल्पना से बाहर की चीज़ें हैं। तो फिर ऐसी दशा में हम अपने को पाश्चात्य सभ्यता के प्रवाह में बहाकर किस ठिकाने लगेंगी। यदि हम इसी प्रकार फ़ैशन की तरल तरंगों में बहती रहीं और हमने अपने को पहचान कर किनारे लगाने का उद्योग न किया तो याद रक्खो सारा बेड़ा डूब जायगा।

उठो! जागो!! होश सम्भालो!!! इस पाश्चात्य सभ्यता की आँधी में अंधे बन कर प्राचीन आदर्श को न छोड़ो। तुम्हारे ऊपर भारत वर्ष का भविष्य अवलम्बित है तुम्हीं भारत वर्ष को गुलामी के गढ़े से निकालने और परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त कराने के लिये वीर सन्तानें पैदा करोगी। जैसी माता होती है वैसी ही सन्तान बनती है। यदि माता डरपोक और कातर होगी तो सन्तान भी बुज़दिल और निरुत्साह होगी। यदि माता वीरा, धीरा और आत्माभिमानिनी होगी तो सन्तान में भी यह गुण अवश्य होंगे। वह समय याद करो जब भारत वर्ष में विदेशी आक्रमण कारी हमें लूटते खसोटते थे। पर हम किस प्रकार तलवार से उनका स्वागत करती थीं। युद्ध में बराबर पुरुषों का हाथ बटाती थीं। इसी से हमें 'अर्धांगिनी' शब्द से सम्बोधित किया जाता था। सुबुक्तगीन ने पंजाब पर आक्रमण किया। राजा जयपाल ने उसको रोका और लौटा दिया। हमने भी

अपने गहने बेच बेच कर विपुल धन दिया और युद्ध की सामग्री एकत्र की। इसी एक उदाहरण से देखो आज हम कितनी बदल गई हैं। ये पहली बातें स्वप्नवत् जान पड़ती हैं।

आज तक पंजाब का मस्तक सब प्रान्तों से ऊँचा रहा है। इस ने हक़ीक़त, लेखराम जैसे धर्म पर बलि हो जाने वाले वीरों को जन्म दिया है। गुरु नानक देव ने इसी की गोद में परवरिश पाई थी और गुरू गोविन्द सिंह ने भी इसी की छाती पर बाल-क्रीड़ाएँ की थीं। फिर यहीं उन्हों ने ख़ालसा को जन्म देकर देश को महान् संकट से बचाया था। पर हम आज अकर्मण्य, फ़ैशन पै लट्टू और विलास-प्रिय सन्तान पैदा कर रही हैं। गुलामी से हमें इतना प्रेम हो गया है कि स्वाधीनता के असली भाव हम नहीं समझ पातीं।

प्यारी बहिनों! अब अपने को उठाओ। पाश्चात्य सभ्यता के भंवर से अपने को निकालो। सच्ची देवी बनकर फिर से देश पर न्योछावर होने वाली आत्माओं को जन्म दो, तभी हम भारत देश के ऋण से मुक्त हो सकती हैं। नहीं तो भारतवर्ष को और भी गुलामी की ज़ंजीरों में कसने का, उसकी परतंत्रता की अवधि बढ़ाने का हम पर ही सारा उत्तरदायित्व होगा। जिस से आने वाली नस्लें हमको बुरी निगाह से देखेंगी और इतिहास के पन्नों में हमारा नाम काले काले अक्षरों में लिखा दिखलाई पड़ेगा।

पर्दा और पंजाब

पञ्जाब में पर्दे की प्रथा कभी खूब प्रचलित थी, परन्तु समाज सुधारकों के अथक उद्योग से वह अब दूर हो रही है। लगातार प्रयत्न से किसी हानिकारक सामाजिक प्रथा का जड़ से दूर हो जाना कोई असंभव बात नहीं है। दक्षिण में पर्दा कभी गया ही नहीं, वहां पर्दे का अभाव प्राचीन भारत की स्वाभाविक अवस्था का द्योतक है। पञ्जाब में नई रोशनी के प्रभाव से तथा वेद के अनन्य भक्तों के उत्साह से इस प्रथा में प्रतिदिन कमी तो आरही है परन्तु पर्दे की बुराई उठने के साथ २ किसी अंश तक पश्चिमी स्वच्छन्दता की झलक भी दिखलाई देती है। साथ ही हमारे प्रान्त की नागरिक महिलाओं के कृत्रिम फ़ैशन भी पश्चिम के प्रभाव का स्पष्ट प्रकट करने वाले हैं। हमें स्त्रियों के लिये स्वतन्त्रता देनी चाहिए न कि 'स्वच्छन्दता'। स्वतन्त्रता जितनी ही लाभदायक है, स्वच्छन्दता उतनी ही हानिकारक है। स्त्रियों का सौन्दर्य निस्सन्देह उन का ईश्वर प्रदत्त भूषण है परन्तु कृत्रिम फ़ैशन उस सौन्दर्य को बढ़ाता नहीं अपितु घृणास्पद बना देता है।

विवाह का समय

"हेल्थ एण्ड स्ट्रेन्थ" नाम के पत्र में डा० टीएकेबन पारिङ्गटन लिखते हैं कि "मानव-जाति की भलाई के लिये, युवावस्था में लड़के लड़कियों की शादी करना एक प्रकार से अनिवार्य है। संसार के बड़े २ शारीरिक-विज्ञान विशारदों का कहना है कि स्त्री २० वर्ष की आयु में और पुरुष २४ वर्ष की आयु में यौवनावस्था को प्राप्त होता है। प्रसिद्ध डाक्टरों का कहना है कि २० की आयु में शादी-शुदा कन्याओं की अपेक्षा जिन लड़कियों का विवाह १६ वर्ष की अवस्था में होगा, उन के बच्चे अपनी आयु के प्रथम वर्ष में ही ४ से लेकर ६ प्रतिशत तक अधिक मरेंगे। और इसी प्रकार २४ वर्ष की अवस्था में विवाहित युवकों की अपेक्षा २० वर्ष की आयु में विवाहित युवकों से उत्पन्न सन्तान अपनी आयु के प्रथम वर्ष में ही ६ से १० फी सदी तक अधिक मरेगी। माता पिता को अपनी सन्तान के जन्मसिद्ध अधिकारों पर बालविवाह के द्वारा कुठाराघात नहीं करना चाहिए॥

सन्तान सुधार का साधन

यों तो भारत में स्वांग, नाटक, लीला और रास आदि व्यसनों की पहिले ही खूब भरमार थी तिस पर पश्चिमी संसर्ग ने हमारे लिए विलास के नवीन साधन उपस्थित कर के हमारे जीवनों को और भी कृत्रिम बना दिया है। भारत की दरिद्रता पहले ही भयावह है तिस पर लोगों की अमितव्ययता देश के भविष्य को अंधकारमय बना रही है। लोग न केवल भौतिक धन ही खोते हैं, प्रत्युत सदाचार-धन से भी हाथ धो बैठते हैं। स्वास्थ्य का तो कुछ न कहो। प्रकृति नियमों का उल्लंघन करने वाले को कठोर दण्ड देती है। इसी लिए आज कल ९९ प्रतिशत लोग किसी न किसी प्रकार के रोग में ग्रसत हैं। देश के लाल जिन पर मातृभूमि की सारी आशाएं बन्धी हैं बड़े वेग से वर्तमान खेल तमाशों के पाश में लिपट रहे हैं। सिनेमा, थिएटर और सरकस आज हमारे नवयुकों के जीवन के आवश्यक अंग बन रहे हैं। माता-पिता की गाढ़े पसीने की कमाई को पानी की तरह बहा देने में उन्हें कुछ भी संकोच नहीं है। घरके बड़े जब किसी तमाशे में जातेहैं तब छोटों को भी साथ ले जाते हैं। इस से बच्चों की बड़े शौक से तमाशे देखने की प्रवृत्ति बन जाती है। कभी २ तो उदरंभर-निर्लज्ज-एक्टरों पर रीझ कर हमारे भाई अपने बच्चों के हाथ से उन्हें पुरस्कार दिलवाते हैं। आज बच्चों को कुसंगति के कूप में गिराने का महान् साधन यदि कोई है तो रास, स्वांग, सिनेमा और थियेटर आदि

ही हैं। माता पिता के कर्तव्य महत्त्व-पूर्ण हैं। सन्तान का सुधार उन का मुख्य काम है। माता पिता यदि स्वसन्तान का कल्याण चाहते हैं तो उन्हें अपने आप को तथा अपनी सन्तान को तमाशों के व्यसन से बचाना चाहिए। कुसंगति के कटु फलों को यदि चखना नहीं चाहते तो अपनी सन्तान की दिनचर्या पर कड़ी दृष्टि रखनी पड़ेगी।

झोली

१२ वर्ष की उम्र का सम्पादक

पैखम लंडन के कैटर स्ट्रीट की पाठशाला की ओर से "न्यू स्कूल बाय" नामक एक समाचार पत्र निकलता है। वर्तमान में इस के सम्पादन का भार हैरीसीड नाम के १२ वर्षीय बालक पर डाला गया है। पत्र सचित्र है, एक कहानी और दो कार्टून प्रत्येक अंक में अवश्य रहते हैं। कई व्यापारियों ने अपने विज्ञापन स्थिर रूप से दे रखे हैं। पत्र की प्रति दिन खूब उन्नति हो रही है॥

महात्मा बुद्ध की प्रथम मूर्त्ति

भारत के पुरातत्व विभाग के अन्वेषक (Archiological Surveyor) राव बहादुर साहनी को पुरातत्त्व-विभाग संबन्धी एक महत्वपूर्ण शिला लेख मिला है। उस से यह निश्चित होता है कि इलाहबाद प्राँत में 'कोसम' ग्राम के निकट-वर्ती विशाल खण्डहर वास्तव में प्रसिद्ध कौसांबी नगर के ही हैं। गौतम बुद्ध ने नवमी वार कौसांबी में एकान्त वास किया था। यहीं उन के जीवन काल में संदल की लकड़ी से उन की प्रथम मूर्ति बनाई गई।

मासिक 'महा बोधी'

पतलून महिमा

आज से लगभग १२० वर्ष पहले पुरुषों में आधुनिक पतलूनों का पहरना प्रचलित हुआ था। तत्काल ही एक सज्जन के लिए पतलून का प्रयोग आचार विरुद्ध तथा अयोग्य कह कर निन्दित ठहराया गया। वे उस समय के आकृति-

कारियों (the Reds) का निशान थीं। यह बात प्रसिद्ध है कि ड्यूक आफ वेलिंगटन को पतलून पहरने के कारण 'अलमक' में प्रविष्ट होने की आज्ञा नहीं दी गई। केम्बृज के ट्रनटी कालेज के विद्यार्थियों को यह चेतावनी दी गई थी कि जो विद्यार्थी मन्दिर अथवा कालेज में उपस्थिति के समय निषिद्ध वस्त्रों को धारण किए होगा उसे अनुपस्थित समझा जायगा। १८२० में अंग्रेज़ नानकनफार्मिस्टों (English non-conformists) ने यह निश्चय किया कि किसी दशा में पतलूनधारी पादरी वेदी पर न चढ़े। पतलून को प्राय: तर्क विरुद्ध लिबास माना जाता है। इस में हम बिना घुटनों के झुकाए अच्छी तरह चल नहीं सकते। इस से न केवल घुटनों के स्थानों से रहित वस्त्र धारण किए जाते हैं किन्तु मोड़ के ऐसी स्थिति में होने पर बल दिया जाता है जिस से घुटना झुकाना संभवतया अति कठिन हो जाए। कालर, कोट, वास्कोट, जाकट और पतलून अतिव्ययी अस्वस्थकर और भद्दे वस्त्र हैं। कोट की अनोखी कटाई से कई वृद्ध पुरुषों के शिर आगे को झुके देखे गए हैं। स्त्रियां और मल्लाह यद्यपि गर्दन को नंगा रखते हैं तो भी वे कालरधारियों की अपेक्षा अधिक स्वस्थ रहते हैं।

हमें वेष में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हमारे शरीर के भिन्न २ जोड़ हैं, जो झुका भी करते हैं। आजकल हमारे वस्त्र निर्जीव मूर्तियों को शोभा दे सकते हैं अथवा दरज़ी की दुकान की सजावट का हेतु हो सकते हैं हमारे वस्त्र चलने फिरने में बहुत बाधा डालने वाले हैं। जल वायु के अनुसार जितना भाग नग्न रह सके उतना रखना चाहिए। डाक्टर लोगों का कथन है कि हम अपने आप को आवश्यकता से अधिक ढांपते हैं जिस से सीधा प्रकाश जो हमारे स्वास्थ्य के लिए अति लाभकारी है हम तक नहीं पहुंच पाता। यह देखा गया है कि पुरुष के पहरावे में परिवर्तन छोटी श्रेणियों से ऊपर की ओर आया है। हमारा चोगा हमें राजसभाओं से नहीं मिला वरन् इस का जन्म १८ वीं शताब्दी के अंग्रेज़ किसानों की स्वारी के कोट से हुआ है। पतलून हमें फ्रांसीसी काश्तकार से मिली है। हमारे कालरों का जन्म श्वेत गिरजा घरों (White-chapel) द्वारा हुआ है। हम वेष की प्रथाएं जनसाधारण से ग्रहण करते हैं।

'पबलिक ओपीनयन'

परलोक

श्री विश्वनाथ दामोदर ऋषि बी० ए० एल्-एल्० बी० रचित 'सुभद्रा' नामक परलोक विद्या संबन्धी पुस्तक का परिचय देते हुए श्री० पं० शालग्राम जी शास्त्री 'माधुरी' में लिखते हैं:—

"ऋषि जी का कहना है कि मरने में किसी को कुछ कष्ट नहीं होता। मरे हुए बालकों के लिये वहां (परलोक में) अत्युत्तम प्रबन्ध है। छोटे से छोटे बच्चों के लालन-पालन के लिये वहां दाइयाँ मौजूद हैं। वे कभी-कभी सोती हुई माता के पास उस बच्चे को ले भी आती हैं, और थोड़ी देर उस के पास उसे लिटा कर प्रेमाकर्षण कराती हैं। यहां (इस लोक) को तरह वहां भी बच्चे बड़े होते हैं। उन के पढ़ाने—लिखाने के लिये अत्यन्त उत्कृष्ट पाठशालाएँ हैं। अध्यापक और अध्यापिकाओं की योग्यता अकथनीय है। रहने को सुन्दर, स्वच्छ मकान खाने को अच्छे-से—अच्छा भोजन और पहनने को उत्तमोत्तम वस्त्र मिलते हैं। पढ़ने को पुस्तक, स्लेट, पेंसिल आदि सब कुछ मिलता है। परीक्षाएं भी होती हैं, और इनाम में खिलौने और मिठाइयों के दाने भी मिलते हैं। सैर के लिये मनोरम बाग बगीचे ओर सवारी के लिये मोटरें तथा साइकिलें भी हैं। जो लोग यहां से जाते हैं उनके लिये पहले ही से मकान तैयार रहता है। खाने पहनने के लिये सब प्रबन्ध 'गुरु' कर देते हैं। किसी को कोई दिक्कत नहीं उठानी पड़ती। हां, मन्दिर में सब को जाना पड़ता है। आरती के समय वहां उपस्थिति आवश्यक है। जप, तप, पुराण—श्रवण और राम-नाम तथा हरिकीर्तन सब को करना होता है। मूर्ति-पूजा के विरोधियों की क्या गति होती है, यह नहीं बताया गया। परन्तु वहां दंड मिलने की बात कही गई है। 'गुरु' जब बहुत नाराज़ होते हैं, तो पृथ्वी पर भेजने की आज्ञा देते हैं। उस समय प्राणी बहुत दुखी होता है, और उस सुखमय स्थान को छोड़ कर यहां आना नहीं चाहता। 'गुरु' बड़े दयावान् होते हैं वे क्षमा भी कर देते हैं। पढ़े—लिखे लोगों की वहां बड़ी कद्र होती है। बड़ी अवस्था में कुमारी लड़कियों का विवाह भी होता है, परन्तु विधवा-विवाह नहीं होता। अंधे, भूले, लंगड़े आदि जो मरते हैं, उन के सब अंग मरने के बाद दुरुस्त हो जाते हैं।

वि० दा० ऋषि के इस फ़िसाने को सुन कर तो यही जी चाहता है कि यहां से लोगों को मय बाल-बच्चों के चल कर वहीं रहना चाहिये। न पढ़ाई, लिखाई की फ़िक्र, न फ़ीस की चिन्ता; न मकान का किराया देने की ज़रूरत, और न खाने पहनने की चीज़ों के दाम देने की आवश्यकता। दिन रात धार्मिक चर्चा और

धार्मिक पुस्तकों का सतसंग। फिर और क्या चाहिये? परंतु ऋषि जी रास्ता बताएं, तब तो।

हां, वहां स्वराज्य—चर्चा होने की बात भी कही गई है। परन्तु दलित, दरिद्र, भुक्खड़ों के दिमाग़ में जन्म लेने वाले इस भूत (स्वराज्य) की उत्पत्ति वहां के आनन्द-निमग्न प्राणियों के मन में क्यों कर हुई, यह बात समझ में नहीं आई। संभव है आगे कोई परलोक वासी आत्मा आ कर यह बता जाय कि वहां इसी लोक के स्वराज्य की चर्चा हुआ करती है। वहां वालों को तो इस की कोई आवश्यकता ही नहीं।

हंसी का पेड़

अरब में एक पेड़ होता है जिस में लाफिंग गैस' के सारे गुण होते हैं। इस के फूल चमकीले पीले और बीज काले मटर जैसे होते हैं। लोग बीजों को सुखा कर पीस लेते हैं। पिष्ट बीजों को ज़रासा सूंघ लेने से मनुष्य हंसने तथा नाचने लगता है। जब तक थक या सो न जाय तब तक यही दशा रहती है। इस लिये इस पेड़ का नाम (The Laughing plant) पड़ गया है।

'संजीवन'

'यम नियम और हमारा कर्तव्य'

(श्रीयुत मुक्तिराम उपाध्याय)

दोहा—केवल योगी के लिये, नहीं यम नियम-विधान।
धारण कर उपदेश दे करो देश-उत्थान॥

उठो देश को देश वालो उठाओ।
गिरा जा रहा है बचाओ बचाओ॥ ध्रुव॥
सदाचार को मार नीचे गिराया।
दुराचार ने आन डेरा जमाया॥
भलीभद्रता का ठिकाना नहीं है।
निरी नीचता फैलती जा रही है।
जगो जाति की सभ्यता को जगाओ॥ १॥

यम—अहिंसा

दया हाथ में शस्त्र को देख दौड़ी॥

सुहृद्भाव की द्वेष ने आंख फोड़ी।
घड़ी मानवी मेल की मन्द आई॥
छुरी जन्तुओं के गले पर चलाई।
अहिंसा सिखा दीन प्राणी छुड़ाओ॥ २॥

सत्य

नहीं चित्त से मेल वाणी मिलाती॥
वहां और है और बाहर सुनाती।
न विश्वास का वंश देता दिखाई॥
अविश्वास ने दुन्दुभी आ बजाई।
इसे सत्य को धार मारो भगाओ॥ ३॥

अस्तेय

ठगी का चला देश में जो कुठारा॥
गया कांपता भाग वाणिज्य प्यारा।
सुनी कर्म की ना गुणों की दुहाई॥
हुई चौर्य्य की सभ्यता से सगाई।
धुलें पाप अस्तेय-गङ्गा नहाओ॥ ४॥

ब्रह्मचर्य्य

न हों इन्द्रियों में फंसे लोग सारे॥
दमी भीष्म से देश के हों दुलारे।
पढ़ें वेद विज्ञान का सार जानें॥
सभी वर्ण आचार को मुख्य मानें।
बनें ब्रह्मचारी सभी यों चिताओ॥ ५॥

अपरिग्रह

न होना कभी दान लेवा भिखारी॥
बनो कर्म के वीर सच्चे पुजारी।
पड़े जाति से वस्त्र आहार लेना॥
कभी तो तभी चौगुना काम देना।
यही है अनादान का गीत गाओ॥ ६॥

नियम—शौच

बना शुद्ध है मांस सा भ्रष्ट खाना।

कभी गर्मियें दुःख दें तो नहाना ॥
नहीं चित्त को ध्यान-गङ्गा पठाते ।
बना शुद्धि के गीत कोरे सुनाते ।
उड़ा ढोंग ये शौच सच्चा सिखाओ ॥ ७ ॥

सन्तोष

मिले न्याय से ईश के बीस दाने ।
मुझे, मोद से आज वे ही उड़ाने ।
बिना कर्म के भोग कैसे मिलेगा ।
पराया लिया मोड़ देना पड़ेगा ।
यही मर्म सन्तोष का आ सुनाओ ॥ ८ ॥

तप

कड़ी धूप हो शीत हो या झड़ी हो ।
दुधारा लिये राजसत्ता खड़ी हो ।
छुरी से पड़े पेट चाहे चिराना ।
नहीं धर्म से पैर पीछे हटाना ।
तपस्या यही धार ऊंचे कहाओ ॥ ९ ॥

स्वाध्याय

पढ़ें धर्म के ग्रन्थ का पाठ सारे ।
बुरे नाटकों की कथा को बिसारें ।
करें वाद सिद्धान्त का सार जानें ।
इसे जीवनी का बड़ा अङ्ग मानें ।
यही पाठ नारी नरों को पढ़ाओ ॥ १० ॥

ईश्वर प्रणिधान

उषाकाल को व्यर्थ कोई न खोवे ।
निराकार के ध्यान में मग्न होवे ।
निशारम्भ में भी इसे ना भुलावे ;
पिता ईश की ज्योति से ज्योति पावे ।
सिखा भक्ति यों सज्जनों को तराओ ॥ ११ ॥

संपादकीय
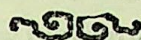
गुरुकुल की पचीसी

आर्य समाज के इतिहास में 'गुरुकुल' एक महत्व पूर्ण अध्याय है। इस का लेख सुवर्ण के अक्षरों में हुआ है। भोगवादी पाश्चात्य सभ्यता की वर्तमान युगीय बाढ़ में ब्रह्मचर्य की चट्टान पर देश तथा जाति को ला खड़ा करना कुछ थोड़ी वीरता नहीं। विदेशी वेश, विदेशी भाषा विदेशी भाव भंगि को दूर कर उस के स्थान में पुरानी आर्यावर्त्त की सरल सुहावनी चाल ढाल को अपनवाना गुरुकुल के श्रेय का सर्वसम्मत हेतु है। उच्चसे उच्च शिक्षा का माध्यम आर्य भाषा बनाई जा सकती है—यह स्वप्न ही किसे आना था। धोती और कुर्ते में उपाध्याय और वह भी पाश्चात्य पौरस्त्य दोनों विद्याओं के! यह चमत्कार गुरुकुल ही ने तो किया। धर्मभक्ति और देशभक्ति, विश्वप्रेम और जाति प्रेम— यह दो गीतियां एक साथ एक ही लय में गाई जा सकती हैं, इसका क्रियात्मिक उदाहरण आर्य समाज ने दिया और आर्य समाज में भी आर्यसमाज की मुख्य शिक्षा संस्था गुरुकुल ने। गुरुकुल ने भारत और भारतेतर देशों के शिक्षा सम्बन्ध विचारों में क्रान्ति उपस्थित की है।

अगले वर्ष इस गुरुकुल की पचीसी है। जहां अनेक अन्य संस्थाएं इन्हीं या इन में से कुछेक आदर्श लेकर क्रिया-क्षेत्र में अवतीर्ण हुईं और परिस्थितियों की प्रतिकूलता में क्षण भंगुर झलक से अधिक स्थायी सत्ता का परिचय न दे सकीं, गुरुकुल इन बाढ़ों में खड़ा है, इस निराशा-निशा के भयावने अन्धकार में ढारस का ज्योतिः स्तंभ बना चमकता है। इस का जीवन उमंगों का जीवन है। इस की सत्ता आशाओं की सत्ता है। सफलता से आंख लड़ाई है। भारत की मुक्ति, संसार का उद्धार इस का लक्ष्य है।

गुरुकुल के इतिहास के साथ कितने महानुभावों के जीवन के मुख्य भागों का सम्बन्ध है। श्री स्वा० श्रद्धानन्द और गुरुकुल को एक दूसरे से अलग करना किसी अत्यन्त विश्लेष-कारिणी बुद्धि द्वारा साध्य हो तो हो। भारत तो भारत, इस के बाहर भी श्रद्धानन्द और गुरुकुल पर्याय हैं। इन से उतर कर हमारी दृष्टि में आचार्य राम देव गुरुकुल हैं और गुरुकुल रामदेव। इन्हें हम गुरुकुल का भिखारी कहें, उपाध्याय कहें, आचार्य कहें, गुरुकुल एक सिद्धि है और वह उस के साधक। इन दो व्यक्तियों का गुरुकुल से एकात्म्य जगत्प्रसिद्ध है। पं० विश्वम्भरनाथ गुरुकुल

में इतने पैठे हैं कि गुरुकुल के बाहर इन का तो अपना नामही कम जाना गया है। गुरुकुल का यह आत्म—लोपी शासक जब आंखों के सामने आता है तो आर्य निःस्पृहता मानो मूर्त प्रतीत होती है। यहां यश ने भी बहुतेरी टक्करें मारलीं कि और नहीं तो चरण-चुंबन ही करलूं पर गामाशाही जूते से ठुकरा दिया गया। गुरुकुल ! तू धन्य है। तेरे सेवक धन्य हैं। जिसने इन महान् आत्माओं को अपनी सेवा में खेंचा है, उसकी चुम्बक-शक्ति में किसे सन्देह है। शक्ति बढा और संसार का विजय कर। पचीसी प्रथम ब्रह्मचर्य है। आरम्भिक साधना की अवधि है। इस के पीछे सिद्धिकाल आएगा।

आओ इस २५ वर्ष के परिश्रम के पश्चात् अपनी प्रगति पर सन्तोष की अथवा समीक्षा की दृष्टि डालें। भावि के कर्तव्य की महत्ता को समझते हुए साधन-संपत्ति को बढाएं। धन लाएं, तन लाएं और मन लाएं। इसी में पचीसी की सफलता है।

प० बुद्धदेव अफ्रीका को

१७ आषाढ़ की सायंकाल श्री बुद्धदेव जी ने लाहौर से अफ्रीका के लिये प्रस्थान किया। एक दिन पूर्व आर्य समाज मन्दिर में उनके सम्मानार्थ फल-भोज हुआ था। प्रस्थान के समय आर्य समाज के सदस्यों और उनके परिवार के स्त्री पुरुषों ने उन्हें सत्कार पूर्वक विदा किया। उनकी सहधर्मिणी श्रीमती सुशीला देवी ने उनके गले में एक सुन्दर पुष्पमाला डाली जिसका मनोहारी ग्रन्थन पत्ती पत्ती के मुख से परिश्रमशील पत्नी-प्रेम का अपूर्व परिचय दे रहा था। देवी ने अपने पतिदेव के चरणों को प्रेमाश्रुओं से भिगो दिया। उनकी व्यथा का निमित्त संभवतः सहधर्मिता के इस अंश की पूर्ति में अपने भाग के अभाव का दुःखद अनुभव हो। जिस यात्री के साथ अपनी प्रणयिनी पत्नी का पुनीत प्रणय है, सहकारियों का सुखद स्नेह है, उसका पथ सफलता का पथ न हो तो और किसका हो।

यह समुद्र के इस पार की बातें हैं। लेखक अभी दूसरी ओर से आया है। उसके लौटने से पूर्व स्थान २ पर आग्रह किया गया कि उसके उत्तरयात्री श्री प० बुद्धदेव ही हों। कहीं २ दर्शन लालसा इतनी आतुर हुई कि लौटने की अनुज्ञा के साथ यह बन्धन लगा दिया जाता कि मेरे जहाज़ में पग रखने के साथ २ पण्डित जी का पांव अफ्रीका की भूमि पर अवश्य पड़ जाना चाहिये। अफ्रीका के आतिथ्य का अनुभव इस लेखक को है। पण्डित जी का स्वागत समाजों के सदस्य करेंगे, घरों में गृह-देवियां करेंगी। भावुक भारती करेंगे। पण्डित जी कवि हैं। अफ्रीका के दृश्यों का और इनका परस्पर संमोहन होगा। श्याम देश की चमकीली उषाएं और संध्याएं दर्शक के हृदय की एक अविस्मरणीय स्मृति हैं। पण्डित जी उनसे खेलेंगे और वह पण्डित जी से।

यह हुई उत्सुकता परिचय से पूर्व की। पंडित जी का सौजन्य सोने में सुहागे का काम कर जायगा। तीव्र बुद्धि के साथ विमल सरलता का निवास विरली छातियों में होता है। प० बुद्धदेव बुद्ध भी हैं और देव भी। एक बार इनके संसर्ग में आओ और हमेशा के लिये इनके न बन जाओ, तो सच मुच ठूंठ हो, सूखे काठ हो। परमात्मा ने पाण्डित्य के साथ मनोहर आलाप दिया है। वेदनाओं का पुंज हृदय दिया है। मन सोचता है, हृदय भीज जाता है। वाणी फूट पड़ती है। इसे कहते हैं व्याख्यान-दाता बुद्धदेव।

पं० बुद्धदेव की यात्रा प्रकाण्ड पाण्डित्य की यात्रा होगी, सहृदय साधुता की यात्रा होगी, व्याख्यान-वारिद वाणी की यात्रा होगी। पवित्र साधुता का यह बादल जहां जायगा, अमृत बरसाएगा। इसकी गर्ज पाप नाशिनी होगी, इसकी वाणि-वर्षा मूर्त चाशनी। गुरुकुल माता का यह सुपुत्र कुल माता के नाम को चमकाएगा। दयानन्द सदन का यह सदस्य सदन को चार चांद लगायगा। आर्य समाज का नाम करेगा और वेद वाले का काम। प्रभो! आशीर्वाद दो, यह पुण्य आशाएं पूर्ण हों।

साईं की सदा

आर्य गज़ट के 'साईं' ने हम पर दो परस्पर विरोधी दोष लगाए हैं:—(१) 'आप गंभीर विचार में उपहास से काम लेते हैं' (२) 'आप को मांसाहारियों पर इतना क्रोध आता है कि आप की वृत्ति उन से कहीं अधिक हिंसक होजाती है'। मांसाहारियों की वृत्ति भी हिंसक होने लगी है क्या? 'साईं' को क्या पता कि क्रोध और उपहास इकट्ठे नहीं चलते? हम 'आर्य गज़ट' उठाते ही उस समय हैं जब मस्तिष्क थका हुआ हो, गंभीर विचार से मन उका जाय, हलके अध्ययन की आवश्यकता हो। हम मुक्त कण्ठ से स्वीकार करते हैं कि 'साईं' ने हमें कभी ऐसी दशा में निराश नहीं किया। कोई नोट पढ़ जाओ, हंसी विवश आती है। कहीं बुद्धि पर उपहास है, कहीं वेद पर, कहीं शास्त्र पर, कहीं ऋषि पर। और इसे 'साईं' की परिभाषा में कहते हैं 'गंभीर विचार' जिस में उपहास न होना चाहिये। अच्छा 'साईं'!

देखिये १८ आषाढ़ की संख्या को। लिखा है:—

'गुरुकुल आर्य समाज का (?) मनसूरी का नगर कीर्तन बन्द कर दिया गया। आचार्य राम देव इत्यादि हुक्काम के पास जाकर गिड़गिड़ाए। (गिड़गिड़ाने का अर्थ है प्रतिवाद? काले जो प्रथा है) यह (?) और इस प्रकार की

अन्य घटनाओं को दृष्टिगोचर कर हमने यह तहरीर किया था (कहां ? आर्य गज़ट में तो नहीं, हृदय-पट पर हो तो हो) कि शराब न पीने वाले, सब्ज़ी के भगत, ब्रह्मचर्य के पालक और वेदों के पाठी भी राजनैतिक दासता के कारण शराब पीने वाले शासकवर्ग का दर्वाज़ा खटखटाते हैं । (शासकवर्ग पर शराब पीने का निष्काम दोषारोपण क्या पलचरों का वैर त्याग है ?) इस लिये शराब न पीने और राजनैतिक दासता की दो बुराइयों में से एक को चुन लेना पड़े तो निश्चय पूर्वोक्त को तर्जीह दी जायगी' ।

'आर्य' संपादक की खोपड़ी जली है जो इस का अर्थ समझ जाए ? शराब न पीना भी बुराई (?) राजनैतिक दासता भी बुराई (?)। यह क्या नया आचार शास्त्र नहीं ? फिर इन में का विकल्प आर्य गज़ट के सम्मुख रखा गया । क्या हम पूछ लें किस ने रखा ? शराब पीने वाले शासक वर्ग ने ? आपने तर्जीह दी शराब न पीने को। भूल कर भी बुद्धिमत्ता की बात की । बधाई हो । परमात्मा आप को तर्जीह का अर्थ न जानने दें । शराब न पीने को बुरा (?) कहते हुए भी यदि आप इसी बुराई (?) को तर्जीह देते रहें तो पलचर नहीं, फलचर हैं । इन शब्दों का अर्थ फिर कभी समझ लेना। और फिर सब्ज़ी की भक्ति, ब्रह्मचर्य पालन और वेद-पाठ'—इन की मुहारनी भी तो साथ रटी थी, ये भी बुराइयां हैं क्या ? इन में से किस को तर्जीह मिली ?

उपर्युक्त सन्दर्भ के आगे एक शेर लिखा है और कहा है कि 'संपादक महाशय (अर्थात् हम) इसे स्वयं दुरुस्त कर सकते हैं । संपादकता का यह स्वांग खूब है। एक शेर क्या, सारा लेख ही हम ठीक कर दिया करें परन्तु छपा पीछे करे तब ना । या पाठकों के पास भी पत्र संशोधनार्थ भेजा जाता है ? 'साईं' ! हमें इसी, न समझे जाने वाली, भाषा ही में तो मज़ा आता है। भाषा सुधर गई, इस ग़रीब में कुछ भाव आगया तो 'साईं' की सदा जाती रहेगी। वह संपादकता होगी, स्वांग न होगा।

बे सिर पैर का बौद्ध धर्म

लीजिये ! लाला हरदयाल की विद्वत्ता का नया आविष्कार है बौद्ध धम की श्रेष्ठता। आप का लेख 'वन्देमातरम्' की १७ जून की संख्या और 'मिलाप' की भी इस तिथि के किसी आस पास की संख्या में छपा है। 'प्रताप' ने इस वार सारा लेख रद्द कर देने की धृष्टता की है। लाला महाशय ने वर्तमान धर्म संस्थाओं में बौद्ध धर्म को सर्वोत्कृष्ट कहा

है। उसकी सब से बड़ी विशेषता यह बताई है कि वह परमात्मा और आत्मा को नहीं मानता। पुनर्जन्म और अहिंसा के सिद्धान्तों के परित्याग और निर्वाण का अर्थ ऐहिक अभ्युदय ग्रहण करने की मन्त्रणा भी दी है। इस तरह का कटा छटा बौद्ध (?) या अबौद्ध (? धर्म संसार के सम्मुख अंगीकारार्थ प्रस्तुत किया है। अब 'आर्य गज़ट' की क्या सलाह है? ला० हरदयाल 'अलूल जलूल आदमी' तो है नहीं कि उनकी बातों पर ध्यान न दिया जाए। उनका शिक्षा संबंधी परामर्श इस लिये हेय हुआ कि उस के स्वीकार करने से शासन से टक्कर खानी होती है। इस बेसिर पैर के बौद्ध (?) धर्म के रास्ते में शासन की ओर से बाधा न होगी। आइये, फिर पढ़िये कलिमा — हरदयालुं शरणं गच्छामि। ना, हम भूल गए, विद्वन्मण्डल को बुलाइये, इस का उत्तर दें। मांसाहार विषय में श्रीयुत बाली ने आप की इच्छा पूर्ण की थी। अब कोई और विद्या और बुद्धि का धनी, दयानन्द का नाम लेवा, कालेज समाज का महारथी मैदान में आए और लाईफ मेम्बरों की स्वतन्त्र विचार संबन्धी विशेषता को सार्थक करे।

साईं! अब हम समझ गए, आपने ला० हरदयाल के लेख का उत्तर ही तो चाहा था और दिलवाया भी उत्तर ही।

चमूपति

एक नया जगद्गुरु

इस नवीन वैज्ञानिक युग में जगद्गुरु भी सम्मतियों से चुने जाने लगे। पाठक गण! चकित न हूजिए। गत मास थियोसोफिकल सोसायटी का जो वृहदधिवेशन लण्डन में हुआ था उस का वृत्तान्त पढ़ जाइए। उस में ३ सदस्यों के विरोध और ६०० सदस्यों की अनुमति से श्री कृष्णमूर्त्ति संसार के वर्तमान जगद्गुरु निर्वाचित हुए हैं। श्रीमानों का लालन पालन उक्त समाज की कर्त्री धर्त्री श्रीमती बसन्ती देवी ने किया है। बड़े परिश्रम से सब जातियों के गुण श्रीमानों के जीवन में प्रविष्ट किए गए हैं। श्रीमती जी की चिरकाल की कामना आखिर श्रीमती के साहस ने पूरी करदी।

दलितों से सहानुभूति

कानपुर में गतमास लगभग २०० पण्डितों की एक विशेष सभा हुई। उस में लंबे तथा सहानुभूति-पूर्ण वादविवाद के उपरांत सर्व सम्मति से व्यवस्था दी गई जिस का आशय यह था कि दलित हिन्दुओं के साथ अत्यन्त-प्रेम-पूर्वक व्यवहार किया जाए तथा उन की शिक्षा, आचार और अर्थ सम्बन्धी अवस्थाओं को उन्नत करने के लिए पूरे सुभीते दिए जाएँ। अब

हिन्दुओं को अपनी आन्तरिक दुर्बलताओं के मिटाने की चिन्ता होने लगी है। लक्षण अच्छे हैं।

जीवन रहस्य

शारीरक स्वास्थ्य के लिए पाचन शक्ति का ठीक २ कार्य करना अत्यावश्यक है। जो व्यक्ति अपने अनाचार से अपनी पाचन-शक्ति को मन्द कर लेता है वह अनेक रोगों का दास बन जाता है। जीवन का आनन्द उसे नाम मात्र को भी अनुभव नहीं होता। जातियों को पाचन-शक्ति के मन्द पड़ने पर उनका जीवन भी विकृत हो जाता है और वे शीघ्र विनाशोन्मुख हो जाती हैं। वृद्धा-आर्य-जाति को जन्म-मूलक ज़ात पात के ग्रह ने एक प्रकार से ग्रस लिया है, इस की जीवनी शक्ति को मन्द कर दिया है। अपनी रक्षा करना आज इस के लिये एक समस्या बन गई है। संगठन एक शक्ति है जो परस्पर समानता भ्रातृभाव और न्यायकारिता आदि सद्गुणों से विकसित होती है। ये भाव वर्तमान कृत्रिम जातों की संकुचित परिधि को मिटाए विना त्रिकाल में उद्भूत नहीं होंगे। फिर संगठन की संभावना कैसे हो सकेगी?

आर्य समाज! तुझे आर्यजाति को जीवित रखने की चिन्ता सदा विह्वल करती है। तेरा अनिवार्य कर्त्तव्य है कि तू जन्म मूलक संकुचित क्षेत्रों को छोड़ कर गुण कर्म स्वभाव के विशाल क्षेत्र में क्रियात्मक रूप में पदार्पण करे। इस से जहां आर्य जाति का कल्याण होगा वहाँ आर्य समुदाय में भी एक अद्भुत जीवन का विकास होगा। यही जीवन-रहस्य है।

रावलपिण्डी का दंगा

कई मासों से हमारे रावलपिण्डी के मुसल्म देश भाईयों को मुल्लाओं ने उत्तेजक वक्तृताओं द्वारा उकसा कर एक साज़िश के लिए तय्यार किया था। वह साज़िश ही गत दंगे का कारण हुई। अवसर भी अच्छा मिला। गुरु अर्जुनदेवकी पुण्यस्मृति का दिवस था। सिक्खों ने बाजे गाजे के साथ यात्रा निकाली। मसजिद के सामने से बाजे बजाते यात्रा का गुज़रना मुसलमानों को अखरा। उन का पारा चढ़ गया। उन्होंने जलूस में सम्मिलित सिक्ख देवियों को छेड़ने की चेष्टा की तथा सिक्खों के धर्मस्थान में जाकर उन्हें सामुख्य के लिये आह्वान करने की धृष्टता की। फिर क्या था। शहर के भिन्न २ मुहल्लों में परस्पर संग्राम छिड़ गया। जिस का परिणाम यह हुआ कि १४ की मृत्युहुई और कई घायल हुए। मुसल्मानों के एक दल ने गंजमण्डी को आग लगा दी जिससे लगभग दो करोड़ रुपये की हिन्दुओं को हानि हुई। हिन्दुओं को तो

खाहमखाह बरबाद किया गया और तो और सरकारी कर्मचारियों ने भी मण्डी के नाके बन्द कर लिये और किसी हिन्दू को अपने माल की रक्षा करने का अवसर न दिया। सरकार को दंगे की संभावना थी। इसलिए उसने प्रबंध कर लिया जिस से जम कर लड़ाई न हो सकी। इस दंगे में मुसलमानों की हत्या अधिक हुई और माली नुकसान हिन्दुओं का अधिक हुआ। हिन्दुओं की आर्थिक हानि के लिये सरकार के कर्मचारी ही उत्तर दायी ठहरते हैं।

ये दंगे जितनी जल्दी मिटाए जा सकें उतना ही अधिक देश के लिए हितकर है। परन्तु हमारे भाईयों को दंगा करने से पूर्व या किसी बच्चे या देवी पर बलात्कार करने से पूर्व विचारना चाहिए कि हिन्दु कोई मुर्दा नहीं हैं, उन में जीवित समाज हैं। उन्हें 'शठे शाठ्यम्' की नीति भी आती है।

मुल्ला लोगों ने इसलाम को पर्याप्त हानि पहुंचाई है और अभी तक वे बाज़ नहीं आते। उनकी धर्मान्धता जितनी जल्दी दूर की जा सके, की जानि चाहिए। साधारण जनों को उन के इन्द्रजाल में न आना चाहिए। मुसलमानों को भारत-भक्ति की दीक्षा लेनी होगी तब जा कर कहीं राष्ट्रियता के दर्शन होंगे।

प्रतिवाद दिवस। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा बनाई गई आर्य धर्मसंरक्षणी सभा का परिचय हमारे पाठकों को है। पंजाब प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा के साधारण अधिवेशन के दिनों में उक्तसभा का निर्माण हुआ था। इस सभा का उद्देश्य आर्य समाज के नगर कीर्तन आदि के निरोध का प्रतिवाद करना है। सभा ने अपना कार्य आरंभ कर दिया है। इस सभा के मन्त्री महाशय श्री आचार्य रामदेव जी आर्य समाजों के मन्त्रियों के नाम एक पत्र भेजते हैं, जिस में प्रत्येक स्थान की आर्य (हिन्दू) जनता की एक सार्वजनिक सभा द्वारा निम्न लिखित प्रस्ताव स्वीकृत कराए जाने का आदेश करते हैं। इस सार्वजनिक प्रतिवाद के लिए रविवार १० श्रावण १०२ द० तदनुसार २५ जूलाई १९२६ ई० के दिन नियत किया गया है। सब आर्यसमाजों को उत्साह पूर्वक यह प्रतिवाद-दिवस मनाना चाहिए और इसे आने वाले संग्राम की आरंभिक तैयारी समझना चाहिए। प्रस्ताव यह हैः—

"——शहर के सम्पूर्ण हिन्दुओं (आर्यों) की यह सम्मिलित सभा यह उद्घोषित करती है कि नगरकीर्तन आर्य्य समाज के उत्सवों का अवश्यक अङ्ग है और सदा से रहा है और इस लिए यह अनुभव करती है कि सरकार ने मसूरी,

हापड़, मुहीम इत्यादि स्थानों पर आर्य समाज के नगरकीर्तन बन्द कर समाज के धार्मिक स्वतन्त्रता के अधिकारों को बुरी तरह हानि पहुंचाई है जिस के विरुद्ध यहां के समस्त हिन्दू (आर्य) सरकार के इस नीति रहित कार्य के प्रति अत्यन्त असन्तोष प्रकट करते हैं और आशा करते हैं कि भारतीय सरकार अत्यन्त शीघ्र इस अनीति को दूर कर समाज के जन्म सिद्ध अधिकारों की रक्षा करेगी और बढ़ते हुए असन्तोष को दूर करेगी। इस के साथ ही यह सभा सार्वदेशिक सभा को विश्वास दिलाती है कि आर्यों के धार्मिक अधिकारों की रक्षा के लिए यदि कोई संग्राम छेड़ना पड़ा तो उस में जिस प्रकार के भी स्वार्थ त्याग की सभा की तरफ़ से आज्ञा होगी उस के लिये हम सब तैयार रहेंगे।"

चैलेंज।

(श्रीयुत मङ्गलानन्द पुरी)

एक हिन्दी कोष "शब्दार्थ-पारिजात" नामक हमने देखा है। इसके रचने वाले साहित्य भूषण चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा जी हैं और सन १९२३ ई० में तीसरी वार छपा है। इसके प्रकाशक इलाहाबाद के लाला राम नारायणलाल बुकसेलर हैं। इसके पृष्ठ ३८९ पर "दयानन्द सरस्वती" का अर्थ निम्न-शब्दों में अङ्कित है:—

"स्वनाम प्रसिद्ध महात्मा, आर्य समाज के आविष्कारक, ये संन्यासी थे। १* इनके पूर्वाश्रम की बातें विवादमय हैं, और वे परस्पर इतनी अनमिल हैं कि उन पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। इन्होंने जिस समाज का अभिनव आविष्कार किया है वह आर्य समाज के नाम से प्रसिद्ध है। सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका आदि हिन्दी भाषा में लिखे इनके ग्रन्थ हैं।२* आर्य समाजियों में सत्यार्थ प्रकाश की वड़ी प्रतिष्ठा है। ३* सत्यार्थ प्रकाश में धर्म सिद्धान्तों की आलोचना नहीं की गई है, किन्तु मनुष्यों के चरित्रों की अतएव कतिपय आर्य समाजी विद्वान् भी इस रीति को उत्तम नहीं समझते मूर्ति पूजा और श्राद्ध आदि को ये वेद विरुद्ध बताते हैं।४* इनका दार्शनिक सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत है। परन्तु विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के प्रकाण्ड विद्वान् कहते हैं कि इनका यह सिद्धान्त भी अभिनव आविष्कार ही है।

इस पर मेरा यह वक्तव्य है कि इस पुस्तक के प्रकाशक, जो स्कूलों की पाठ्य पुस्तकों के व्यापारी हैं और किसी मत मतान्तर के रगड़े झगड़े से सरोकार नहीं रखते, यह प्रतिज्ञा कर दें कि इस पुस्तक की आगामी आवृत्ति से मोटे किए गए वाक्य निकाल दिए जाएंगे। किसी कोष में यदि व्यक्तिवाची नामों के अर्थ न भी छपाये जायं तो उस कोष का गौरव नहीं घटता। स्वामी दयानन्द के नाम बिना उनका पुस्तक अधूरा न रहेगा अथवा यदि वे स्वामी जी का नाम अपने कोष में रखना ही पसन्द करते हों तो संसार में भ्रान्ति न फैलाएं और आर्य-सामाजिक सज्जनों के हृदयों पर बिना कारण कुठाराघात न करें। अतः ऊपर जिन पंक्तियों को मोटा कर दिया है उनको निकाल डालें और उनके स्थान में निम्न वाक्यों की आयोजना करादें:—

१ * "इन्होंने अपने पूर्वाश्रम का हाल नहीं बतलाया (या बहुत कम बतलाया है) परन्तु कई आर्य समाजियों ने इनके जीवन चरित्र छपाये हैं उनमें इनके पूर्वाश्रम के कुछ वृतान्त लिखे गए हैं।

२*—(इससे आगे यह जोड़ें) और इन्होंने ऋग्वेद और यजुर्वेद पर संस्कृत और हिन्दी में भाष्य छपाना आरम्भ किया था। यजुर्वेद का भाष्य सम्पूर्ण हो गया परन्तु ऋग्वेद के १० में से केवल ७ वें मण्डल के ६१ सूक्त तक का भाष्य पूरा कर पाए थे कि किसी ने विष देकर शरीर का अवसान कर दिया।

३*—इस वाक्य को निकाल डालना चाहिये।

४*—इस वाक्य के स्थान में निम्न रहना चाहिये:—

"इनका दार्शनिक सिद्धान्त त्रैतवाद है कि ब्रह्म जीव प्रकृति ये तीनों अनादि पदार्थ हैं। वे इस पर वेदों उपनिषदों के प्रमाण देते हैं और छः दर्शनों के तात्पर्य की एकता पर छः अन्धों और हाथी का दृष्टान्त देकर यह मानते हैं कि छहों दर्शन परस्पर एक दूसरे के पोषक हैं, छहों का एक ही निर्णय है।"

बस महाशय राम नारायण लाल जी बुकसेलर इलाहाबाद से मेरा यही कथन है कि यदि वे एक व्यापारी मनुष्य होकर आर्य सभाजी सनातन धर्मी विद्वानों के विवादों में स्वयं न पड़ना चाहें तो मेरी उक्त सम्मति मान कर दो में से एक बात का वादा कर दें या तो 'दयानन्द सरस्वती" नाम उक्त कोष से निकाल डालें या उपर्युक्त प्रकार संशोधन करा दें। परन्तु यदि वे इन दोनों में से किसी एक पर भी राज़ी न हों तो मुझे स्पष्ट लिख दें। तथा श्री साहित्य भूषण जी को तैयार करें कि वे मेरा खुला चैलेञ्ज स्वीकार कर के मैदान में आगे बढ़ें और उपरिलिखित आक्षेपों को जो उन्होंने अपने पौराणिक पक्षपात वश "कोष" जैसी पुस्तक में श्री स्वामी जी महाराज के नाम के मिस से किए हैं युक्ति तथा प्रमाणों से सिद्ध करें। इस सम्बन्ध में लिखित या मौखिक शास्त्रार्थ से निर्णय कर लें।

सामाजिक विकासवाद और आर्य धर्म व सभ्यता

(२)

(ले० प० धर्मदेव सिद्धान्तालङ्कार विद्यावाचस्पति आचार्य गुरुकुल मुलतान)

पिछले अङ्क में म० टेलर के लेख का उद्धरण देकर यह दिखाया गया था कि बहुत से पाश्चात्य विद्वान् सामाजिक विकासवाद को मानते हुए आर्य धर्म और सभ्यता का कैसा शोचनीय चित्र हमारे सामने खैंचते हैं पूर्व इसके कि हम अपने शब्दों में पाश्चात्य अनेक विद्वानों द्वारा अभिमत इस सिद्धान्त की संक्षेप से समालोचना करें हम यह साफ़ कह देना चाहते हैं कि साधारण ही नहीं, कई उच्च कोटि के धुरन्धर पाश्चात्य विद्वान् भी इस सिद्धान्त की धार्मिक सामाजिक और नैतिक विषयों में सचाई को नहीं मानते। उदाहरण के तौर पर यूरप के अत्यन्त प्रसिद्ध विद्वान् मैक्समूलर ने अपने Origin and growth of Religion नामक ग्रन्थ में उन लोगों के मत की आलोचना करते हुए जो जड़ पूजा वा Fetishismको धर्म का प्रारम्भिक स्वरूप मानते हैं पृ० १३१ में कहा है कि मेरा इस कल्पना के बारे में कि अचेतन पत्थर वृक्ष मणि इत्यादि की पूजा प्रत्येक धर्म का प्रारम्भिक रूप रही है अथवा रहनी चाहिये सब से बड़ा आक्षेप यह है कि इसको मानने वालों का आधार ऐसी निर्बल साक्षि पर है जिसको कोई भी विद्वान् और ऐतिहासिक मान नहीं सकता। इस लिये मैं समझता हूं कि इस कल्पना का परित्याग कर देना ही हमारे लिये न्याय संगत है। उनके अपने शब्द निम्न लिखित हैं:—

"My most serious objection to this theory is that these who believe in fetishism as a primitive and universal form of religion, have often depended on evidence which no scholar, no historian would feel justified to accept. We are justified therefore, I think in surrendering the theory that fetishism either has been or must have been the beginning of all religion."

Astonishing fact? The Hindu Revelation (Vedas) is of all Revelations the only one whose ideas are in perfact harmony with modern science."

टि० लेखक के अप्रकाशित "भारतीय समाज शास्त्र" विषयक निबन्ध के ८ म अध्याय से उद्धृत

इसी पुस्तक के पृ० ६ : में प्रो० मैक्समूलर ने बताया है कि संसार के इतिहास में धर्म में अवनति वा बिगाड़ अनेक बार हुआ करता है यह बार २ देखने में आता है। यहां तक कि बहुत से धर्मों के इतिहास को उन की प्रारम्भिक पवित्रता का क्रमिक बिगाड़ ही कहा जा सकता है। Is fetishism a primitive form of Religion इत्यादि निबन्धों में भी प्रो० मैक्समूलर ने सामाजिक विकासवाद का कई अंशों में खूब खण्डन किया है।

डार्विन के साथ ही भौतिक विकासवाद के आविष्कारक डा० रसेल वैलेस भी सामाजिक विकासवाद के पक्षपाती न थे। न केवल इतना ही बल्कि वेद के विषय में उनका बड़ा ऊंचा भाव था यह उस के अन्तिम ग्रन्थ The Social Environment and Moral Progress को पढ़ने से स्पष्ट पता लगता है जिस में कि वेद के विषय में वे कहते है "The wonderful collection of hymns known as the Vedas is a vast system of religious teachings as pure and lofty as those of the finest portions of the Hebrew Scriptures."

अर्थात् वेदों के नाम से प्रसिद्ध आश्चर्य जनक संहिता के अन्दर बाईबल के अच्छे से अच्छे भाग के तुल्य पवित्र और ऊंची धार्मिक शिक्षाओं की एक पद्धति पाई जाती है। इस बात के समर्थन में डा० वैलेस ने अपने ग्रन्थ में वेद के कुछ सूक्तों का अनुवाद भी दिया है। इसी प्रकार Teachings of the Vedas नामक ग्रन्थ के लेखक पादरी फिलिप्स और The Bible in India नामक सुप्रसिद्ध पुस्तक के लेखक जैकोलियट का नाम सामाजिक विकास के विरोधियों में लिया जा सकता है जिन के लेख इस विषय में अत्यन्त विचारनीय हैं। जैकोलियट महोदय तो सृष्ट्युत्पत्ति के विषय में अपने दिल के उद्गारों को निकालते हुए लिख बैठे हैं

अर्थात् ईश्वरीय-ग्रन्थ के नाम से प्रसिद्ध पुस्तकों में से केवल वेद ही है जिस के विचार वर्तमान विज्ञान के सर्वथा अनुकूल हैं। यह बड़ी आश्चर्यजनक सचाई है। अब हम विस्तार के भय से और उद्धरण देते हुए संक्षेप से सामाजिक विकासवाद की समालोचना करेंगे। सब से पहले हम यह देखेंगे कि म० टेलर ने आर्य सभ्यता का जो शोचनीय चित्र खैंचा है उस में कहां तक सभ्यता है और कहां तक वह लेखक की अपनी मनघड़न्त कल्पना है। क्रमशः हम टेलर महोदय की मुख्य २ स्थापनाओं को लेंगे।

(१) टेलर महोदय की पहली स्थापना यह है कि शायद देसी ताम्र को छोड़ कर प्राचीन आर्यों को किसी धातु का ज्ञान न था।

इस स्थापना की असत्यता में इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि वेद में सप्त धातुओं का स्पष्ट वर्णन पाया जाता है। ऋग्वेद में ही जो मैक्समूलरादि सभी धुरन्धर पाश्चात्य विद्वानों के लेखानुसार मानवीय पुस्तकालय में सब से पुरानी पुस्तक है (The oldest book in the library of mankind)

हिरण्यमणि, हिरण्यपाणि, हिरण्यहस्त, हिरण्यवक्षा, हिरण्यदन्त, हिरण्यस्रक् हिरण्यशृङ्ग, इत्यादि शब्दों का सैंकड़ों स्थानों पर प्रयोग हुआ है। यजु० अ० १८ म० १३ में "हिरण्यं च मेऽयश्च मे श्यामं च लोहं च मे सीसं च मे त्रपुश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥"

साफ़ तौर पर सोना चांदी लोहा सीसा लाख इत्यादि का वर्णन आया है इसी तरह रजत पात्र (चांदी के वर्तनों) का वर्णन भी वेद में कई जगह आया है।

(२) टेलर महोदय की दूसरी स्थापना यह है कि प्राचीन आर्यों को अच्छे मकान बनवा कर उन में रहना न आता था वे पत्तों से ढकी हुई झोंपड़ियों में ही रहना जानते थे।

इस स्थापना की असत्यता के विषय में इतना ही कह देना काफ़ी है कि वेदों में बड़े २ महलों और मकानों के वाचक प्रासाद, हर्म्य, सौध इत्यादि शब्दों का हज़ारों जगह प्रयोग हुआ है। इतना ही नहीं, शाला प्रकरण में Drawing room के वाचक प्रचीन वंश, स्त्रियों के रहने के लिए पत्नीशाल इत्यादि शब्दों का प्रयोग वेद में पाया जाता है। इस से भी आश्चर्य जनक बात यह है कि ऋग्वेद २। ४१। ५. में हज़ार खम्भों वाले सभा भवन का स्पष्ट वर्णन आया है यथा 'राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे। सहस्रस्थूण आसाते।"

अर्थात् राजा और उस के प्रधानामात्य हज़ार खम्भों वाले पक्के उत्तम मकान में रहते हैं। क्या इन वर्णनों को देखते हुए भी कोई यह कहने का साहस कर सकता है कि प्राचीन आर्यों को सिर्फ़ झोंपड़ियों में रहना ही आता था? पक्षपातान्ध हो कर तो कुछ भी कहा और लिखा जा सकता है।

(क्रमशः)

साहित्य-समीक्षा

१, तुर्क तरुणी—लेखक पं० विश्वम्भरनाथ जिज्जा। प्रकाशक शिवरामदास गुप्त, उपन्यास बहार आफ़िस, काशी। मूल्य १)

यह सचित्र उपन्यास तुर्की के उद्धारक कमालपाशा की प्रेम-कहानी है। यूरोपीय युद्ध के प्रारम्भ में इन का प्रेम एक अबोध बालिका अज़ीज़ा से होगया। उससे वह छिप २ कर कर मिलते भी रहे। भीषण युद्ध की यातनाओं में प्रेमिका के कोमल हस्तस्पर्श का सुख समस्त थकावटें, समग्र चिन्तएं विस्मृत करा देता था। इस बीच में एक और रमणी से परिचय हुआ और उसकी योग्यताओं पर लट्टू हुए। और उससे विवाह कर लिया। अज़ीज़ा—हताश प्रेम की मारी अज़ीज़ा—उन से अन्तिम बार मिलने आई। उसका हृदय अपने प्यारे के मुख से किसी अन्य से विवाह कर लेने का प्रस्ताव सहन न कर सका। बाहर निकली, विसुध होकर दौड़ी, गिरी और मर गई। यह इस उपन्यास की संक्षिप्त कथा है।

२, मनोरमा—संपादक म० ज्योतिप्रसाद मिश्र निर्मल। बेलवेडियर प्रेस, कटरा, प्रयाग से प्रकाशित। वार्षिक मूल्य ५) रु०

इस मासिक पत्रिका में सब प्रकार के पाठकों के लिये उपयुक्त सामग्री का संचय किया जाता है। साधारण पाठकों के लिये, देवियों के लिये, बालकों के लिये अलग २ भाग रहते हैं। विनोदजनक टिप्पणियां और कविताएं भी प्रकाशित होती हैं। पत्रिका सचित्र है और सुन्दर छपती है। पढ़ने और मंगाने योग्य है।

३. 'भोजन गुण अवगुण विचार'

लेखक कविराज हरनामदास बी० ए० आयुर्वेदविद्यारत्न, हरिज्ञान-मन्दिर लाहौर मूल्य।)

इस पुस्तक में अनेक भोज्य पदार्थों के गुण दोष विशद रीति से वर्णन किए हैं। गृहस्थों के लिए अत्युपयोगी है। सब के पढ़ने योग्य है।

४ सुन्दर वर्णमाला।

लेखक ला० खज़ानचन्द चावला बी. ए. पी. ई. एस., मफीद आम प्रेस लाहौर में छपा। मूल्य -)।

बालकों को नागरी सिखाने के लिये उपयोगी है। लेखक ने अच्छा प्रयत्न किया है।

५ शुद्धि समाचार।

संपादक श्री० स्वा० चिदानन्द।, सर्व साधारण से वार्षिक मूल्य १)

यह मासिक पत्र भारतीय हिन्दू शुद्धी सभा की ओर से प्रकाशित होता है। पत्र का विषय इसके नाम से ही प्रकट है। शुद्धी संबन्धी कई गंभीर लेख तथा समाचार इसको शोभा देते हैं। शुद्धी के प्रेमियों को इसे अपनाना चाहिए तथा इसका जनता में खूब प्रचार करना चाहिए।

६. शिशु सुधारः—

लेखक ला० शहज़ादाराम, अनुवादक म० लालचन्द मूल्य ॥)

प्राप्ति स्थानः—श्री० वज़ीरचन्द्र अध्यक्ष वैदिक पुस्तकालय लाहौर।

इस पुस्तक में संस्कारों का महत्त्व दर्शाया है। बालकों तथा कन्याओं के सुधारने का उपाए बताया है। गृहस्थों के लिये उपयोगी है।

७. 'दिलचस्प कहानियां'

(लेखक-प्रो० पं० रामस्वरूप कौशल बी. ए. विद्याभूषण)

प्रकाशक—श्री चूनीलाल खन्ना अध्यक्ष--शिरोमणि पुस्तकालय मोहनलाल-रोड (लाहौर) मूल्य ।=)

इस पुस्तक में ५० मनोहर तथा शिक्षाप्रद कथाएँ हैं। भाषा सरल है। पुस्तक बच्चों के लिये उपयोगी है।

८. 'धर्मात्मा कन्या या श्रीमती लज्जादेवी'

लेखक —श्री० ठाकुर दीनानाथ; मूल्य ॥)

इस उपन्यास में लेखक महोदय ने प्रचलित बेमेल तथा अस्वयम्बर विवाहों की हानियां रोचक ढंग से वर्णन की हैं। युवक और युवतियों के लिये मनोरंजक तथा काम की चीज़ है। लेखक का श्रम प्रशंसनीय है।

प्राप्ति स्थान :—श्री० ठाकुर दीनानाथ अफसर जंगलात इकौना (यू० पी०)

श्री० स्वामी मंगलानन्द पुरी की ओर से

निम्न ट्रैक्ट हमें प्राप्त हुए हैं। ट्रैक्ट अति उपयोगी हैं। जनता को पढ़ कर इन से लाभ उठाना चाहिये।

आर्यसमाज के उच्चकोटि के विद्वानों की पुस्तकें

सन्यासी महात्माओं की ओर से आत्मप्रसाद ।

(१) श्री स्वामी सत्यानन्द जी—दयानन्द प्रकाश १॥) संध्यायोग ।-) सामाजिक धर्म ॥) दयानन्द वचनामृत ।=) ओंकार उपासना ≡) सत्योपदेश माला १)

(२) श्री नारायण स्वामी जी—आत्म दर्शन १॥) आर्य समाज क्या है ।-) प्राणायाम विधि =) वर्णव्यवस्था पर शंकासमाधान ≡)

(३) श्री स्वामी अच्युतानन्द जी—व्याख्यानमाला (संस्कृत में) संस्कृत में योग्यता प्राप्त करने के लिये ॥=) आर्याभिविनय द्वितीय भाग सजिल्द ।-)॥ एक ईश्वरवाद -) प्रार्थना पुस्तक

(४) श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी—आर्य पथिक लेखराम १।) मुक्ति सोपान ॥=)

(५) श्री स्वामी सर्वदानन्द जी—आनन्द संग्रह, परम आनन्द की प्राप्ति के सब साधन इस में दिये गये हैं १)

(६) श्री स्वामी अनुभवानन्द जी—भक्त की भावना, बहुत बढ़िया पुस्तक है मू०केवल॥)

भक्ति दर्पण अथवा आत्म प्रसाद ।

इस में भक्ति मार्ग के सभी साधन दे दिये गये हैं । प्रत्येक स्त्री, पुरुष, बच्चे, बूढे को हर समय जेब में रखनी चाहिये । पाकिट साईज सुनहरी जिल्द मू० ॥)

स्कूलों तथा पाठशालाओं में बच्चों को उपहार में देने योग्य उत्तम पुस्तक है । आर्य समाज के बड़े २ विद्वानों ने इसे बहुत पसन्द किया है ।

आर्यप्रतिनिधि सभा द्वारा स्वीकृत ।

—आर्य प्रतिनिधि सभा ने आर्य समाजों के लिये हिसाब किताब, मासिक चन्दा, संस्कार, पुस्तकालय, वस्तुभण्डार, साप्ताहिक सत्संग तथा वार्षिक वृत्तान्त के लिये १० प्रकार के रजिस्टर और फर्म स्वीकार किये हैं, जो प्रत्येक समाज को प्रयोग में लाने चाहियें । यह रजिस्टर साजिल्द तथा एक वर्ष से अधिक समय के लिये प्रर्याप्त हैं । मू० केवल ६)

—शुद्धि के प्रमाण पत्र—जो सभा द्वारा स्वीकृत हैं, अति सुन्दर रंगीन छपवाए गए हैं, प्रमाण पत्र का एक भाग समाज के पास रहेगा । और दूसरा भाग काट कर शुद्ध हुए व्यक्ति को दिया जाता है । १०० फार्मों की एक कापी का मू० १॥=), ५० फार्मों की कापी ।॥=)

—आर्यसमाज के प्रवेश पत्रों तथा नियमों की १०० फार्मों की सुन्दर कापी ॥=), रसीद बुक ॥) हिन्दी, अंग्रेज़ी, उर्दू नियम ।=) सैंकड़ा ॥

साप्ताहिक सत्संग के लिये सत्संग गुटका ≡) भजन संकीर्तन -)

राजपाल—अध्यक्ष, आर्य पुस्तकालय तथा सरस्वती आश्रम, लाहौर ।

निधि	बजट आय	इस मास की आय	इस वर्ष की आय	बजट व्यय	इस मास का व्यय	इस वर्ष का व्यय
ं० पूर्णानन्द					५०)	१००)
,, प्र० ओचीराम					१५)	५०)
,, सुचेतसिंह					१३॥=)	१८।-)
,, जींदाराम					३०)	३०)
,, प्र० ईश्वरदास						७५)
योग					११८॥।=)	२७३।-)
उपदेशक विद्यालय		७७)	१५१)		५५०।=)॥	७२६॥=)॥।
आर्य विद्यार्थी आश्रम		१६४॥=)	१६४॥=)		३१६॥)।	५७४।)॥
दलितोद्धार		३३३)	३७२॥।=)		१४१।≡)	३५६॥।=)॥
राजपूतोद्धार					१७५॥)	४००।=)४
असाधाधारण निधि			४)			
शिक्षा समिति		१०)	३०)			२२॥)
प्रोवीडेण्ट		१४९-)।	२९१॥।-)७		७॥)	७॥)
बोनस		३४=)॥	६३॥)॥			
अज्ञात निधि		३५८१।)	३४०३।)			१३॥)
गुरुदत्त भवन आश्रम शाला		७०)	७०)			
योग		४४२४।-)॥।	५०५६=)१		११४४॥=)	२१११॥)१
कन्यागुरुकुल इंद्रप्रस्थ		५०५२)	५०५२)		३४८३।=)	७८६४।-)॥
गुरुकुल महानिधि		३३७८७≡)१	३३७८७≡)१			
,, अस्थिर छात्रवृत्ति		८८४॥=)	८८४॥=)			
योग		३४७२८॥।-)१	३४७२८॥।-)१		३४८३=)	७८६४।-)॥
सर्व योग		४८५६२-)८	५४६१०॥=)८		६४५७।≡)॥।	२५२२६॥)१
गत शेष		१४५७६४१॥।≡)७	१४६७१६२=)११			
जमा		१५०६५०४-)।	१५२१७७३।-)७			
व्यय		६४५७≡)॥।	२५२२६॥।)१			
वर्तमान शेष		१४९६५४६॥-)॥।	१४९६५४६॥-)॥			

आर्य्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, गुरुदत्तभवन लाहौर।

आय व्यय मद्धे मास ज्येष्ट १९८३। १०२

निधि	बजट आय	इस मास की आय	इस वर्ष की आय	बजट व्यय	इस मास का व्यय	इस वर्ष का व्यय
कार्यालय वेदप्रचार					१३९।≡)॥।	२६७।≡)॥।
वैदिक पुस्तकालय		२०)	४०)		२०६)	३३२।)
आर्य		१४२॥)	१८३॥≡)		१८२॥।)	३५७॥)
चाराना निधि		७॥)	६१॥)			
ट्रैक्ट		१)	२॥)			
वेतन उपदेशक					१३३७।≡)७	२४३२।)॥
मार्ग व्यय					१०८३-)।	११०९॥=)।
बीमा जीवन					—६।-)॥।	३७॥≡)।
वैदिक कोष		३४४≡)	३४५≡		८०)	१३०)
योग		५१५≡)	६२३=)		३०३२।=)·०	४६६६॥-)॥।
वेद प्रचार		१०५३≡,७	२६४४॥।)			
मुख्य कार्यालय सभा					५२९।)॥	९८९।=)॥
दशान्श		१२३७॥=)॥	१८२१॥।≡)			
दायाद्य रक्षा					७३॥=)	१४४॥-)।
निरीक्षक शुल्क					१३॥।=)	१३॥।=)
योग		१२३७॥=)॥।	१८२१॥।≡)		६१६॥।॥	११४७॥-)॥
लेखराम स्मारकनिधि		१५)	३५।)			
वेतन उपदेशक					१३६॥)	२७५≡)१
मार्ग व्यय					७८=)।	७८=)।
गुज़ारा विधवा पं० तुलसीराम					१०)	२०)
,, ,, वज़ीरचन्द					८)	१६)
योग		१५)	३५।)		२६४॥=)।	३८६।-)४
सूद बैंक		७७४≡)॥	७७४≡)॥		॥।=)२	१२॥=)।
,, क़र्ज़ा		१३॥=)	१३।=)			
योग		७८७॥-)॥	७८७॥-)॥		॥।=)२	१२॥=)।
अमानत अन्य संस्थायें		१६)	२७६४॥।)५		१००)	७७८३॥।=)५
,, आर्यसमाजें		७५५)	११९०)		४६१॥।=)	४९६॥।=)

भल्ले दी हट्टी, अनारकली लाहौर ।

हुन तुसी बूट भल्ले दे पाओ जी ।

शहर लाहौर बसन्ती हट्टी माल उमदा ते कीमत मट्ठी ।
बहुती विक्री थोड़ी खट्टी इक बारी तां अजमाओ जी ॥

तुसी बूट भल्ले दे पाओ जी ।
ते सस्ते पक्के ल्याओ जी ॥

देख अनार कली विच भाई बूटां दी हट्ट सजी सजाई ।
उत्थे जांदी कुल्ल लुगाई मन भौंदा शू हंडाओ जी ॥

तुसी बूट भल्ले दे पाओ जी ।
ते सस्ते पक्के ल्याओ जी ॥

रंगा रंग स्लीपर आए सोने पक्के सस्ते लाए ।
घर घर लोकां बहुत मंगाए इक जोड़ा आप मंगाओ जी ॥

तुसी बूट भल्ले दे पाओ जी ।
ते सस्ते पक्के ल्याओ जी ॥

जावे बुड्ढा बाल अनजाना भोली औरत मर्द सयाना ।
भल्ले इको मुल्ल लगाना बे ग़म हो के ले आवो जी ॥

तुसी बूट भल्ले दे पाओ जी ।
ते सस्ते पक्के ल्याओ जी ॥

जिसनू बूट पसन्द न आवे जद चाहे वापस कर जावे ।
पैसे लेके बोझे पावे, मिलखी खुशी मनाओ जी ॥

तुसी बूट भल्ले दे पाओ जी ।
ते सस्ते पक्के ल्याओ जी ॥

Registered No. L.1424. रजिस्टर्ड नं० एल १४२४

आर्य्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का मासिक पत्र

सम्पादक—चमूपति

प्रार्थना

ओ३म् इन्द्रं वर्धन्तोऽप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ।
अपघ्नन्तोऽराव्णः ॥ ऋग्वेद ।

हे प्रभु ! हम तुम से वर पावें ।
विश्व जगत् को आर्य्य बनावें ॥
फैलें, सुख सम्पत् फैलावें ।
आप बढ़ें, तव राज्य बढ़ावें ॥
वैर-विघ्न को मार मिटावें ।
प्रीति-नीति की रीति चलावें ॥

विदेश से ५ शि० एक प्रति का ।=) वार्षिक मूल्य ३) पेशगी

बाबू जगतनारायण प्रिन्टर व पब्लिशर के अधिकार से विरजानन्द प्रेस लाहौर में छप कर प्रकाशित हुआ ।

विषय सूची

आर्य के नियम।

१-यह पत्र अंग्रेज़ी मास की १५ तारीख़ को प्रकाशित होता है। डाकख़ाना में चूंकि अंग्रेज़ी तारीख़ देनी होती है, इसलिये अंग्रेज़ी तारीख़ का हिसाब रक्खा गया है)।

२—इसका वार्षिक मूल्य ३) है। सभा ने वैदिक धर्म तथा नागरी प्रचार के लिये इसे जारी किया है।

३—इस पत्र में धर्मोपदेश, धर्म-जिज्ञासा, प्रतिनिधि सभा की सूचनाएं दर्ज होती हैं।

४—पत्र में प्रकाशित होने के लिये समाचार तथा लेख प्रत्येक अंग्रेज़ी मास की १ तारीख़ के पूर्व आजाने चाहियें।

५—यदि डाक की ग़लती से कोई अङ्क न पहुंचे, तो १५ दिन के भीतर सूचना देने से वह अङ्क भेज दिया जायगा, लेकिन इस अवधि के पश्चात् मंगवाने पर प्रति अङ्क ।=) देने पड़ेंगे।

* ओ३म् *

आर्य्य

भाग ७] लाहौर—भाद्रपद १९८३ अगस्त १९२६ [अंक ५

[दयानन्दाब्द १०२]

वेदामृत

प्रार्थना

त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः । न रिष्येत्त्वावतः सखा ॥

ऋ० १ । ६ । २० । ८

व्याख्या:— हे सोम राजन्नीश्वर ! तुम "अघायतः" जो कोई प्राणी हम में पापी और पाप करने की इच्छा करने वाले हों 'विश्वतः" उन सब प्राणियों से हमारी "रक्ष" रक्षा करो । जिस के आप सगे मित्र हो "न, रिष्येत्" वह कभी विनष्ट नहीं होता किन्तु हम को आप की सहायता से तिलमात्र भी दुःख वा भय कभी नहीं होगा । जो आप का मित्र और जिस के आप मित्र हो उस को दुःख क्योंकर हो ॥

"आर्याभिविनय"

परमाणुवाद का रहस्य

(लेखक—विद्याभास्कर वेदरत्न प० उदयवीर शास्त्री न्याय-तीर्थ, सांख्यतीर्थ, वेदान्त विशारद)

[गतांक से आगे]

त्रिपाठी जी ने तीसरा शीर्षक दिया है—'परमाणुओं में आदि क्रिया का निमित्त अदृष्ट नहीं।' अदृष्ट निमित्त क्यों नहीं है ? इस बात को समझाने के लिये त्रिपाठी जी ने जो कुछ लिखा है, उस का सारांश इतना ही है, कि अदृष्ट आत्मा में रहता है, क्रिया परमाणु में होती है। आत्मा का अदृष्ट भिन्नअधिकरण में क्रिया नहीं कर सकता क्योंकि उसके साथ अदृष्ट का कोई सम्बन्ध नहीं, यदि अदृष्टवदात्मा का सम्बन्ध मान लिया जाय, तो हर समय ही क्रिया होती रहनी चाहिये, क्योंकि आत्मा का सम्बन्ध तो परमाणुओं से सदा ही ठहरा। एक और भी बात है, आत्मा में उस समय चेतनता भी नहीं रहती, इस लिये भी उस का अदृष्ट क्रियाजनक नहीं हो सकता, क्योंकि बिना चेतन सहकारी के कोई भी अचेतन किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं हो सकता, इत्यादि। त्रिपाठी जी का यह कथन २।२।१२ ब्रह्म सूत्र के शाङ्कर भाष्य के आधार पर है। इस पर कुछ विचार करने के पहिले यहां यह लिख देना आवश्यक है कि किसी भी कार्य के निमित्त कारण अनेक हुआ करते हैं। उदाहरण के लिये एक वस्त्र ले लीजिये, वस्त्र का समवायि या उपादान कारण तन्तु हैं, असमवायिकारण तन्तुओं का संयोग है। इस के अतिरिक्त जितने भी कारण हैं, वे सब निमित्त कारण कहलाते हैं, जैसे तन्तु-वाय, वेमा, तुरी, काल, अदृष्ट, इत्यादि। कोई भी कार्य उसी समय उत्पन्न हो सकता है, जब कि उस के सम्पूर्ण कारणकलाप एकत्रित हों, यदि कारणकलाप में कुछ भी न्यूनता होगी, तो कार्य उत्पन्न न होगा। त्रिपाठी जी का शायद यह खयाल हो कि परमाणु की आद्य क्रिया में केवल अदृष्ट ही निमित्त है, पर यह बात नहीं, निमित्त अनेक हैं, उन में से एक अदृष्ट भी है। यह स्वसमवायिसंयोग सम्बन्ध से कार्य के प्रति कारण होता है। इस का अभिप्राय यह है, कि अदृष्ट आत्मा में समवाय सम्बन्ध से रहता है, और आत्मा का परमाणुओं के साथ संयोग है, इस प्रकार अदृष्टवदात्मसंयोग, परमाणुओं में आद्य क्रिया का असम-वायिकारण है, और अदृष्ट अनेक निमित्तों में से अन्यतम है। अब यहां दो बातें

विचारणीय हैं एक तो उस समय आत्मा में चेतनता न होने के कारण अदृष्ट प्रवृत्ति का निमित्त कैसे होगा। दूसरी बात यह है, कि परमाणुओं के साथ सदा हो अदृष्टवदात्मसंयोग होने से सदा ही क्रिया होती रहनी चाहिये। पहिली बात का समाधान तो यह है कि अदृष्टवदात्मसंयोग को कारण मानने पर उस में चेतनता की कोई आवश्यकता नहीं है, सुषुप्ति अवस्था में चेतनता न होने पर भी केवल जीवनादृष्ट वश से ही श्वासादि क्रिया होती रहती हैं। इस के अतिरिक्त परमाणुवादी चेतन ईश्वर को भी परमाणु की आद्यक्रिया में कारण मानता है, वैशेषिक सूत्रों के आशय और भाष्य के आधार पर हम इस बात का आगे निर्देश करेंगे। तात्पर्य यह है कि परमाणु की आद्यक्रिया में मुख्य निमित्त चेतन ईश्वर है, और उस के साथ अदृष्ट तथा काल आदि भी निमित्त हैं। इस लिये उस समय आत्मा में चेतनता न होने पर भी अदृष्ट क्रिया का निमित्त हो सकता है। दूसरी बात है, क्रिया सदा ही क्यों नहीं होती रहती? बात यह है कि जब तक क्रिया के सम्पूर्ण कारणकलाप एकत्रित नहीं होते, तब तक क्रिया नहीं होती। अदृष्टवदात्मसंयोग और ईश्वर आदि के रहते हुए भी जब तक वह कालविशेष उपस्थित नहीं होता तब तक क्रिया नहीं हो सकती। महाप्रलय के अन्तिम क्षण के अनन्तर ही परमाणुओं में उन २ निमित्तों से सर्ग क्रिया हो सकती है, सदा नहीं। क्योंकि वह कालविशेष भी परमाणु की क्रिया में निमित्त है। यदि यह बात नहीं, तो मायावादी या ब्रह्मवादी ही बतलावे, कि उस के मत में भी सदा ही सर्ग क्यों नहीं होता रहता। क्योंकि उस का तो अभिन्ननिमित्तोपादन ब्रह्म सदा ही बना रहता है। उस अवस्था में यह आक्षेप ब्रह्मवादी पर भी समान ही है। इस लिये परमाणुवादी का यह सिद्धान्त सुपुष्ट है कि आद्य क्रिया में अदृष्ट निमित्त है, और उस के साथ ही ईश्वर तथा काल आदि भी निमित्त हैं सम्पूर्ण कारणकलाप के होने पर ही क्रिया हो सकती है, अन्यथा नहीं।

वेदान्ती की ओर से जो चौथा आक्षेप परमाणुओं का स्वभाव भी निमित्त नहीं' शीर्षक देकर किया गया है, वह पहिले आक्षेप के उत्तर में ही गतार्थ हो गया है। क्योंकि जब परमाणुओं की आद्य क्रिया का निमित्त मिल गया, तो यह कल्पना करनी निर्मूल है, कि उस क्रिया के लिये परमाणुओं का प्रवृत्ति आदि स्वभाव माना जावे। यह आक्षेप २। २। १४ ब्रह्मसूत्र के शांकर भाष्य के आधार पर किया गया है।

अन्तिम आक्षेप का शीर्षक है-'परमाणुओं का संयोग भी ठीक नहीं'। इस आक्षेप का आशय यह है, कि परमाणुओं से उत्पन्न होने वाली कोई भी वस्तु परमाणुओं के संयोग के विना उत्पन्न नहीं हो सकती। यह अत्यन्त आवश्यक, परमाणुओं का परस्पर संयोग सर्व देश से होता है, या एक देश से। सर्व देश से होने पर द्व्यणुकादि की उत्पत्ति नहीं हो सकती। एक देश से होने पर परमाणु के भी भाग होने चाहियें, इत्यादि इस विषय में वक्तव्य यह है, कि परमाणु के सम्बन्ध में जो यह सर्व देश और एक देश का विकल्प किया गया है, वह परमाणुवादी के सिद्धान्त से असंगत है, क्योंकि परमाणुओं के सर्वथा निरवयव होने से उनमें देश की वास्तविक कल्पना नहीं की जा सकती। सावयव पदार्थ में ही देश की कल्पना हो सकती है। यदि आप किसी युक्ति से परमाणु को सावयव सिद्ध करलें, तो यह आक्षेप करें। परन्तु यह निश्चित है कि परमाणु सावयव हो नहीं सकता; क्योंकि जिस को आप सावयव सिद्ध कर रहे हैं, वह वैशेषिक का परमाणु नहीं है, उसके तो आगे और विभाग भी हो सकते हैं। परमाणु वादी तो परमाणु को उसी अवस्था में मानता है, जब कि उसके, आगे किसी तरह के विभाग न किये जा सकें। यदि यह बात न मानी जावेगी, और परमाणु भी अवयव धारा की कल्पना से रहित न माना जावेगा, तो छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी चीज़ों का परिमाण एक सा होना चाहिये। क्योंकि किसी भी वस्तु की अवयव धारा का अन्तिम स्थान हमें प्राप्त नहीं हो सकता। ऐसी अवस्था में परमाणु को निरवयव मानना आवश्यक है, और निरवयव में वास्तविक देश की कल्पना असंगत है। अब विचारणीय यह है कि परमाणुओं का संयोग फिर होता किस प्रकार है? आपाततः विचार करने पर तो यही मालूम होता है कि जैसे अन्य दृश्यमान वस्तुओं का संयोग होता है, इसी प्रकार परमाणु भी परस्पर एक ओर से ही संयुक्त होते होंगे। परन्तु परमाणुवादी परमाणु में ओर की कल्पना न होने के कारण, संयोग का अवच्छेदक परमाणु को न मान कर दिग्विभाग को ही मानता है। तात्पर्य यह है कि जिस ओर से परमाणु का संयोग हो, तत्संबद्ध दिशा ही उस संयोग की अवच्छेदिका है। इससे परमाणु में देश की कल्पना को परमाणुवादी असंगत मानता है। इस लिये मायावादी का यह आक्षेप भी भ्रमात्मक ही समझना चाहिये।

परमाणुवाद के विषय में जो आक्षेप अन्य दार्शनिकों की ओर से किये गये हैं; उनका यथा सम्भव समाधान यहां किया जा चुका है। इससे पाठक

जान गये होंगे कि परमाणुवाद पर किये गए आक्षेप कहां तक सबल और युक्तिसंगत हैं। ऐसी अवस्था में ब्रह्म को उपादान मानने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। हां! ब्रह्म को निमित्त कारण मानना ज़रूरी है, जैसा कि परमाणुवादी मानता भी है। परन्तु त्रिपाठी जी का यह विचार है कि परमाणुवादी वैशेषिक, ब्रह्म या ईश्वर को नहीं मानता। आपने अपने इस विचार को मार्च मास की सरस्वती के 'विचार विमर्श' में बहुत ही स्पष्ट तौर पर प्रकट किया है। उसकी पुष्टि के लिये वैशेषिक के ऐसे दो प्रकरण भी उपस्थित किये हैं. जिनके आधार पर अन्य विद्वान् वैशेषिक मत से भी ईश्वर को सिद्ध करते हैं, त्रिपाठी जी ने उनका प्रत्याख्यान किया है। उन प्रकरणों में से एक, वैशेषिक दर्शन-२। १ १८, १९। है। और दूसरा है-१ । १ । ३। पहिले प्रकरण के सम्बन्ध में इस समय हम कुछ नहीं लिखना चाहते, पाठक मूल ग्रन्थों से स्वयं अनुसन्धान कर सकते हैं। परन्तु द्वितीय स्थल का अवलम्ब लेकर जो कुछ त्रिपाठी जी ने लिखा है, वह हमें संगत नहीं मालूम होता। आपका लेख इस प्रकार है—"ऐसा ही एक और भी संशय स्थल है। 'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः' जिससे सांसारिक और पारलौकिक सुख प्राप्त हो, उसका नाम धर्म है। इस सूत्र के आगे 'तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्' सूत्र है। इसका भी 'ईश्वर का वचन होने से वेद प्रमाण है' अर्थ करते है। परन्तु उक्त भाष्य के अनुसार (आपका संकेत चन्द्रकान्त भट्टाचार्य कृत वैशेषिक भाष्य की ओर है, जो कि अनेक स्थलों पर वैशेषिक मत के विपरीत लिखता है, यदि आवश्यकता हुई तो फिर कभी हम उन स्थलों का निर्देश कर सकेंगे, क्योंकि उनकी आलोचना भी अधिक पन्ने चाहती है, लेखक) तथा मेरे स्वतन्त्र विचार के अनुसार भी, साथ ही पूर्ववर्त्ती धर्म शब्द के लिये आये हुए 'तत्' सर्वनाम के भी खयाल से अर्थ होना चाहिये अभ्युदय और निःश्रेयसकारी धर्म का प्रतिपादक होने से वेद प्रमाण है" इत्यादि। इसके सम्बन्ध में त्रिपाठी जी को यह विचारना चाहिये, कि आपके स्वतन्त्र विचार और आप के भाष्यकार चन्द्रकान्त महोदय से इस विषय से प्रशस्तपाद भाष्य बहुत ही प्रामाणिक ग्रन्थ है। इन उपर्युक्त सूत्र पदों का व्याख्यान करते हुए भाष्यकार लिखता है—

"तच्चेश्वरनोदनाभिव्यक्ताद्धर्मादेव" इसी की व्याख्या करते हुए किरणावलीकार उदयनाचार्य ने लिखा है— "ईश्वरनोदना उपदेशो वेद इति यावत्"। इस से यह स्पष्ट है कि वेद का प्रामाण्य इश्वरोक्त होने से ही हो सकता है,

अन्यथा नहीं । इस लिये 'तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्' इस सूत्र का अर्थ 'ईश्वरोक्त होने से वेद प्रमाण है' यही करना चाहिये । यदि त्रिपाठी जी के स्वतन्त्र विचार के अनुसार इस सूत्र का यह अर्थ मान लिया जाय कि 'अभ्युदय और निश्रेयसकारी धर्म का प्रतिपादक होने से वेद प्रमाण है' तो इस बात की गारण्टी कौन देगा, कि वेद में जो कुछ धर्म बतलाया गया है, वह अभ्युदय और निःश्रेयस को कर सकता है । वेद को प्रमाण मानने वाला कोई भी आचार्य उसके प्रामाण्य में यह युक्ति नहीं दे सकता कि वह धर्म का प्रतिपादक है, इस लिये प्रमाण है, क्योंकि धर्म की सत्यता और असत्यता का निर्णय किस पर अवलम्बित है, यह आपने अभी तक निश्चित नहीं किया । इसके निर्णय के लिये एक ही हेतु होसकता है और वह आप्तोपदिष्टता, वेदों का आप्त उपदेष्टा कोई मनुष्य नहीं होसकता, क्योंकि उनमें भ्रम प्रमाद विप्रलिप्सा आदि दोषों की सदा सम्भावना है, इस लिये वेद का उपदेष्टा निर्भ्रान्त परमेश्वर ही माना जासकता है और इसी पर वेदों का प्रामाण्य निश्चित होने पर हम तत्प्रतिपादित धर्म को अभ्युदय और निःश्रेयस का हेतु मान सकते हैं । इस लिये वेदों के प्रामाण्य के लिये उनका ईश्वरोक्त होना ही हेतु हो सकता है अन्य नहीं । अतएव त्रिपाठी जी ने उपर्युक्त सूत्र का जो अर्थ किया है, वह युक्ति संगत नहीं मालूम होता ।

पर त्रिपाठी जी शायद प्रशस्तपाद भाष्य को भाष्य नहीं मानते । इस विषय पर हम यहां एक भी पंक्ति न लिख कर त्रिपाठी जी से विनीत प्रार्थना करते हैं, कि वे लाजरस कम्पनी के मेडिकल हाल नामक यन्त्रालय में, संवत् १९५१ में मुद्रित हुए कन्दली टीका सहित प्रशस्तपाद भाष्य की भूमिका का अच्छी तरह पारायण कर लेवें, जिसको प० विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है । उस पर यदि आप को कुछ वक्तव्य होगा, तो हम भी फिर कुछ लिखने का यत्न कर सकेंगे । फिर भी 'तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्' सूत्र के आपके अर्थ पर, एक मूल सूत्र के आधार पर विप्रतिपत्ति उपस्थित की जाती है । वह सूत्र है— 'बुद्धिपूर्वा वाक्य कृतिर्वेदे' । ६ । १ । १ ॥ यदि वेद को ईश्वरोक्त न माना जाय और इस लिये वैशेषिक मत से ईश्वर को असिद्ध माना जाय तो आपके मत से इस सूत्र की क्या संगति होसकती है । हमारे विचार में तो अब इन सूत्रों के आधार पर यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि वैशेषिक ईश्वर को बड़ी अच्छी तरह मानता है । ऐसी अवस्था में परमाणु वाद पर, यह समझ कर कि परमाणुवादी परमेश्वर को नहीं मानता, जो आक्षेप किये गये हैं, वे सर्वथा

निर्मूल हैं। ऐसा होनेपर आपका यह कहना कि वैशेषिक, न्याय के संस्कार से ईश्वर को मानता है, या वैशेषिक में ईश्वर प्रतिपादक कोई सूत्र नहीं, संगत प्रतीत नहीं होता । यदि आप यह कहें कि कणाद ने साक्षात् ईश्वर का नाम लेकर उसका विधान नहीं किया है, इस लिये वह ईश्वर को नहीं मानता, तो मैं आपसे यह प्रश्न करने का अवश्य साहस करूंगा कि आप वैशेषिक में कोई ऐसा सूत्र निकालें, जिस में इसका साक्षात् वर्णन किया हुआ हो कि स्वतन्त्र अर्थात् ईश्वरानपेक्ष परमाणु ही जगत् को उत्पन्न कर देते हैं। इस लिये वैशेषिक का परमाणुवाद निर्भ्रान्त दोष रहित और विशुद्ध है।

अन्त में मैं सब ही विद्वानों से विनीत प्रार्थना करता हूं कि वे इस विषय पर गम्भीरता पूर्वक मनन करें और उन साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों के अगाध कृतिसागर में ग़ोता लगाकर रत्नों का अन्वेषण करें।

———

आर्य समाज की बड़ी आवश्यकता

स्नातक यशःपाल सिद्धान्तालङ्कार वैदिक मिशनरी)

इस में कोई सन्देह नहीं कि आर्य समाज के विचारों तथा सिद्धान्तों का प्रचार भारतवर्ष की परिमित सीमा को पार कर योरुप तथा अमेरिका में भी होना प्रारम्भ हो गया है। वहां के बहुत से विद्वानों ने ऋषि दयानन्द के विचारों के सामने शिर झुकाया है दिनों दिन विज्ञान की उन्नति के साथ २ आर्य समाज के विचारों की यथार्थता सिद्ध होती जा रही है। जहां ईसाईमत विज्ञान की टक्कर में अपनी सत्ता को कायम नहीं रख सका, जहां इस्लाम को भी अपने सिद्धान्तों में कुछ परिवर्त्तन करने पड़े वहां वैदिक धर्म के सिद्धान्त विज्ञान की कसौटी पर कसे जा कर दुगुने चमकने लगे। बीसवीं सदी में विज्ञान ने बहुत उन्नति की। कहने वाले कहते हैं कि भौतिक या प्राकृतिक विज्ञान ने पहिले इतनी उन्नति कभी नहीं की। बहुत सी प्राकृतिक सचाईयों का अन्वेषण किया। परिणाम यह हुआ कि योरुप तथा अमेरिका के धार्मिक क्षेत्र में बड़ा भारी विप्लव पैदा हुआ । नास्तिकवाद का प्रचार हुआ। धर्म तथा ईश्वर से लोगों ने इन्कार कर दिया।

और वस्तुतः इस समय योरोप में धार्मिक अराजकता है। प्रकृतिवाद में फंसे हुए अभ्युदयप्राप्ति को ही जीवन का एक मात्र लक्ष्य समझते हुए योरोप तथा अमेरिका के लोग धर्म के मार्ग से विचलित हो गए हैं। उन लोगों को जीवन का सच्चा लक्ष्य बतलाने के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि वैदिक सचाईयों का प्रचार वहां पर किया जाये। अन्धकारमें भटकते हुए या अविद्यामें रत लोगों को जब तक प्रकाश न दिखाया जाए तबतक वे अपनी गलतीको माननेके लिये तय्यार नहीं होसकते। इस समयसारे संसार में वेद प्रचार का कोई कार्य कर रहा है तो आर्य समाज। स्वामी दयानन्द ने आर्यसमाज की स्थापना इसी उद्देश्य से की थी। शेष कार्य तो गौण रूपेण थे। परन्तु शोक की बात है कि वेद प्रचार के लिये जो यत्न हमें करना चाहिये था वह हमने नहीं किया। किसी भी भाषा में हमने वेद का ऐसा कोई सरल भाष्य तय्यार नहीं किया जो कि सर्व साधारण के हाथ में दिया जासके। अभी तक वेद का जो भी प्रचार हुआ है वह आचार्य दयानन्द की तपस्या या उनकी पुस्तकों की बदौलत। स्वामी दयानन्द के बाद आर्य समाज ने वेद के लिये सिवाय मौखिक प्रचार के और कुच्छ नहीं किया। थोड़े से अन्वेषण विभाग (Research Departments) जो हैं भी उनका कार्य वेद प्रचार के लिये वस्तुतः बहुत उपयोगी नहीं सिद्ध हुआ है। आर्य समाज को इस समय ऐसे अन्वेषण विभाग की आवश्यकता है जिसमें वेद के मन्त्रों के सरलार्थ किये जाये। बहुत से योग्य विद्वान् एक स्थान पर मिल कर बैठें और वेद के मन्त्रार्थ पर विचार करके संसार की सब मुख्य २ भाषाओं में वेद के अर्थ प्रकाशित किये जायें। और बच्चे २ के हाथ में वेद पहुंचाया जाए। इस समय हम विदेशी विद्वानों के सामने वेदों का कोई भी भाष्य नहीं रख सकते। इससे बढ़कर दुःखकी बात हमारे लिये और क्या हो सकती है। इसलिये इस समय आर्य समाज का मुख्य कर्त्तव्य यह है कि एक प्रामाणिक और वृहत् रिसर्च विभाग की स्थापना की जाए और ऋषि ऋण से मुक्त हुआ जाए।

पंच मेध रहस्य

(श्रीयुत प० भक्तराम जी डिंगा निवासी)

(गतांक से आगे)

जो ब्रह्मचारी २५ वर्ष पर्यन्त पूर्णजितेन्द्रिय ब्रतधारी प्रत्येक प्रकार के वीर्य्य वर्धक साधन का अभ्यासी हो चुका हो, जो इतने काल तक निरामिषाशी रह चुका है उस को एक दम मांस और फिर गोमांस देना कितना घोर पाप जनिक कार्य हो सकता है । परन्तु "स्वार्थी दोषं न पश्यति" वाली बात है कि स्वार्थी दोष का ध्यान नहीं देता उस को तो अपना कार्य सिद्ध करना है । चाहे कुछ ही हो । इस से साफ है कि यह भाव इस प्रकार के किसी श्लोक से नहीं निकल सकता । केवल टीकाकारों का मनोविनोद है । अपने हार्दिक भावों को श्रोताओं पर प्रकट करना और उस का प्रचार ही अभीष्ट है । अब यह बात शेष है कि 'गोघ्न' का क्या अर्थ होता है ।

'दास गोघ्नौ संप्रदाने" इस सूत्र पर कैसे विचार किया जा सकता है ।

व्याकरणाचार्य्य पाणिनिय गोघ्न शब्द को स्वतः सिद्ध मानते हैं किसी व्याकारण के नियम से नहीं बनाते । यह शब्द संप्रदान का बोधक है । कौमुदीकार इस का अर्थ अतिथि करता है । महाभाष्यकार ने इस सूत्र पर अपनी सम्मति कुछ नहीं दी । इस कारण दीक्षित जी का अनुकरण करतेहुए सब पण्डित लोग यही अर्थ करते हैं कि 'गां हन्ति तस्मै' अब केवल प्रश्न यह है कि यदि सर्वत्र हन् धातु के अर्थ हिंसा ही लेने थे तो धातु पाठ में (हन् हिंसागत्योः) ऐसा पाठ निरर्थक था (हन् हिंसायाम्) ही होना चाहिए था । इस से पता लगता है कि आर्ष प्रयोगों में 'हन्' बहुधा गत्यर्थ का बोधक है जिस के अर्थ ज्ञान गमन और प्राप्ति के हैं । इससे अर्थ की पूर्णतया समझ आसकती है कि संप्रदान का पद क्यों साथ लगा दिया गया अर्थात् गौ जिस के लिये प्राप्त की जाती है और यदि 'गो' का अर्थ वाणी लिया जावे तो वाणी जिस के लिए प्राप्त की जाती है जिस के लिए जानी जाती है उस को गुरु, आचार्य अथवा अतिथि कह सकते हैं । इस लिये गोघ्न शब्द किसी पशु बध का बोधक नहीं है ।

यदि मनुस्मृति को वैदिक दृष्टि से पढ़ा जावे तो पता लगता है कि अतिथि की पूजा किस वस्तु से करनी चाहिए इस बात को ३ अध्याय के ८० और ८१ श्लोकों में साफ़ किया गया है ।

ऋषियः पितरो देवा भूतान्यतिथयस्तथा
आशासते कुटुम्बिभ्यस्तेभ्यः कार्य्यं विजानता ॥ ८०

स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन् होमैर्देवान् यथा विधि।
पितॄन् श्राद्धैश्चनॄनन्नैर्भूतानि बलि कर्मणा ॥ ८१

पहले श्लोक में प्रश्न किया गया है कि प्रत्येक गृहस्थ को ऋषि, पित्र, देव, भूत और अतिथि को किस २ वस्तु से पूजन करना चाहिए तो दूसरे श्लोक में प्रत्येक के लिये एक २ वस्तु को दर्शाया गया। अतिथि के वास्ते अन्न से पूजन सेवन वर्णन किया गया है इस श्लोक से कौन विद्वान् अतिथि के वास्ते पूजन की सामग्री में गो मांस का होना स्वीकार करेगा?

दुग्धादि पदार्थ सब अन्न माने गए हैं "दुग्धं वै अन्नम्" ऐसा शतपथ में स्पष्ट माना है। इस कारण 'गोघ्न' शब्द से गो हिंसा का कदापि भान तक नहीं होता॥

बाबू राजेन्द्रलाल मिश्र स्वयं अपने निबन्ध में लिखते हैं कि रामायण और महाभारत में जो गो मेध का प्रकरण आता है उसमें स्पष्ट कहीं भी नहीं लिखा कि गो मांस खाया जाता था अथवा नहीं और न ही यह स्पष्ट किया गया है कि किन २ पशुओं को मारा जाता था॥

तत्व बात यह है कि गो मेध में न गौ मारी जाती थी और न उसमें इस बात का कोई प्रसंग है। गोमेधादि वैदिक परिभाषाएं हैं जिनको विस्तार पूर्वक दर्शाया जाएगा ये विद्वानों की महत्सभाएं हुआ करती थी और उनको प्रदर्शनी के नाम से पुकारा जा सकता है। इस लिए चरक चिकित्सा खण्ड में लिखते हैं कि

"आदि काले खलु यज्ञेषु पशवः समालम्भनीया बभूवुः
नारम्भनाय प्रक्रियन्तेस्मः" चरक.

आदि काल में यज्ञों में पशु केवल शोभा के लिये होते थे बलिदान के लिए नहीं। कोल ब्रुक साहिब 'समुद्रगुप्त' नामक पुस्तक में लिखते हैं कि अश्व-मेध और पुरुष मेध जो इस प्रकार यजुर्वेद के अनुसार किए जाते थे वह तत्वतः घोड़ों और मनुष्यों का बलिदान नहीं था।

इस से अनेक प्रकार से सिद्ध किया गया है कि वैदिक काल में यज्ञों में पशुओं की हिंसा नहीं की जाती थी, यह यहूदिओं, यवनों और शकों के भारत में आने से प्रचलित हुई।

अब प्रश्न यह है कि वेदादि ब्राह्मण ग्रन्थों में जो पञ्च मेधों अर्थात् १ गो

मेध, २ अश्वमेध, ३ नरमेध, ४ अजमेध, ५ और अविमेध का वर्णन है उसका क्या तात्पर्य है और प्राचीन लोग क्या अर्थ लेते थे? आर्यों के धार्मिक और सामाजिक कर्तव्यों पर लिखते हुए प्रोफेसर मैक्स मूलर साहिब लिखते हैं कि प्राचीन काल में 'यज्ञ' शब्द के अर्थ कर्म अथवा कार्य्य के थे, उसमें पशु हिंसा का कुछ भी सम्बन्ध नहीं था। महर्षि दयानन्द जी जो इस काल में वेद के आचार्य्य हुए हैं और जिनका वेद विषयक प्रमाण सब से माननीय है यास्काचार्य के आधार पर लिखते हैं कि प्रत्येक उत्तम कार्य्य जो परोपकार को मुख्य रख कर किया जावे जिसमें देव पूजा, संगति करण और दान इन तीन प्रकार के भावों को प्रकट किया जावे 'यज्ञ' नाम से पुकारा जाता है। महर्षि अपनी पुस्तकों सत्यार्थ प्रकाश, वेदभाष्यभूमिकादि ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर दर्शा चुके हैं कि देवता कोई अदृष्ट योनि नहीं और न कोई उन का विशेष लोक है प्रत्युत इसी मनुष्य जाति के अन्दर विद्वान्, धर्मात्मा योगी' जितेन्द्रिय पुरुषों को देवता कहते हैं। शतपथादि के प्रमाण से सिद्ध करते हैं कि "विद्वांसो हि देवाः" विद्वानों का नामही देव है. ऐसे विद्वान् पुरुषों का आदर, सत्कार और पूजा जिन धार्मिक तथा सामाजिक उत्तम कार्यों में की जाती थी जिसमें 'संगति करण' मिलाप, आत्मिक शारीरिक और सामाजिक उन्नति के साधन हों और सर्व साधारण के परोपकार के लिए दान किया जावे, आत्म त्याग किया जावे, परोपकारार्थ आत्म समर्पण किया जावे, जिसमें धन दौलत, मान प्रतिष्ठा, हानि लाभ का स्वतः त्याग हो उस सर्वोत्तम कार्य्य को 'मेध' अथवा 'यज्ञ' के नाम से पुकारा जाता था।

प्राचीन काल में जिस प्रकार प्रत्येक गृहस्थ या पञ्चयज्ञों को करना कर्तव्य माना जाता था, ठीक उसी प्रकार प्रत्येक राजा का कर्तव्य माना जाता था कि वह समय २ पर गोमेध, अश्वमेध नरमेध, अजमेध औरअविमेध इन पांच मेधों को अवश्य किया करे।

ये राज्यस्थिति के साधन माने जाते थे। इन के किए बिना न राज्य स्थिर रह सकता था और न ही वैदिक मर्यादा चिरस्थायी रहनी सम्भव थी। इन भिन्न २ यज्ञों के समय प्रत्येक प्रकार के पशु पक्षी अन्न, जलादि का एकत्र करना आवश्यक होता था, ये पुराकाल की प्रदर्शिनियां थीं। जिस प्रकार आज कल प्रति वर्ष प्रदर्शिनियां होती हैं, कहीं पशुओं की प्रदर्शिनी की जाती है, कहीं विद्याप्रचार सम्बन्धी अनेक विद्वान् बैठकर विचार करते हैं-जिस को आजकल Educational Conference के नाम से कहा जाता है - कहीं शस्त्रास्त्र सम्बन्धी विचार

हो रहा है जिस को National meeting अथवा conference कहते हैं, कहीं कृषिविद्या सम्बन्धी विचार है, जिस में मरुस्थलों को उत्तम जलों से सिंचन करना उद्देश्य होता है इत्यादि इत्यादि ।

इसी भांति ये सब कार्य इन मेधों द्वारा हुआ करते थे ।

मेरा विचार है कि विद्वानों की जिस सभा में वाणी तथा ज्ञान सम्बन्धी विचार हों, उनके प्रचार तथा उन्नति के साधनों का मनन हो, गुरुकुलों के खोलने, उन के लिए पुस्तकों के तैयार करने तथा विज्ञान सम्बन्धी उन्नति के साधनों का अन्वेषण किया जावे उस सभा को 'गोमेध' के नाम से पुकारा जाता था ।

अब यदि इस पर ध्यान पूर्वक विचार किया जावे तो पता लगता है कि सब से पूर्व, सर्व सभ्यता और उन्नति को जान, राष्ट्र की स्थिति का मूल हेतु यही गोमेध है । 'गो' शब्द सरस्वती अर्थात् वाणी वाची है । शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि—

सरस्वती हि गौ । श. १४।२।१।७

सरस्वती ही निश्चय करके गौ है जिस के द्वारा सम्पूर्ण भाव एक दूसरे पर प्रकट किए जाते हैं । वाणी ही एक साधन है जिस से मनुष्य वेदज्ञान को प्राप्त करता है, धर्म को जान कर, पठन पाठन द्वारा उत्तम २ साधनों को करता हुआ परमात्मा को प्राप्त कर सकता है । इसी कारण ब्राह्मण उपदेश करते हैं कि—

तस्मादाहुर्गावः पुरुषस्य रूपमिति । श. १२।८।१।४

अर्थात गौ (वाणी) ही पुरुष का तत्व स्वरूप है, और सर्व कार्यों में मनुष्य अन्य पशुओं के समान है, परन्तु एक वाणी है जो इस जाति को पशु पक्षियों से पृथक् करती है । इसी कारण यही वाणी पुरुष का स्वरूप है ।

गोपथ ब्राह्मण में लिखा है कि—

षट्त्रिंशदवदाना गौः । गो. प. ३।१८

३६ छत्तीस भागों वाली गौ है ।

षट्त्रिंशदक्षरा बृहती । गो. प. ३।१८

और ३६ छत्तीस अक्षरों वाला बृहती छन्द होता है और छत्तीस वर्ष का ब्रह्मचर्य रखने वाला ब्रह्मचारी रुद्ररूप होजाता है । यदि विचार दृष्टि से देखा जाए तो ज्ञात होजाएगा कि वाणी के मूल अक्षर ३६ ही हुआ करते हैं ।

क से म तक २५ अक्षर हैं, जो कण्ठ, तालू, मूर्धा, दन्त और ओष्ठ से बोले जाते हैं, जो व्यञ्जन कहलाते हैं और अन्तस्थवर्ण य, र, ल, व चार होते हैं और ऊष्मवर्ण श, ष, स, ह चार, कुल मिलाकर ३३ वर्ण होते है और ३ मूलस्वर अ इ उ कुल मिला कर ३६ अक्षर होते हैं, शेष सब स्वर एक दूसरे के संयोग से बनते हैं, यही वाणी के ३६ अवदान हैं। महाभाष्यकार लिखते हैं कि -

वर्णज्ञानं वाग्विषयो यत्र च ब्रह्म वर्तते। महाभाष्य अ. १ पा. १ आ. २

वर्णों का यथार्थ विज्ञान जो वाणी का विषय है जिस से (में) ब्रह्म अर्थात् वेद और परब्रह्म प्राप्त होता है।

'सोऽयमक्षर समाम्नायो वाक् समाम्नायः' महाभाष्य अ. १ पा. १ आ. २

वह अक्षरों का अच्छे प्रकार कथन वाक् (वाणी) समाम्नाय (ज्ञान) है।

किसी दूसरे स्थान पर वेद मन्त्रों में 'वृषभ' शब्द भी कहा गया है जिसको सामान्य ज्ञान वाले बैल अर्थ से जानते हैं, परन्तु भाष्यकार उस मन्त्र से सम्पूर्ण व्याकरण का बोध कराते हैं और उसे व्याकरण द्योतक मन्त्र कहते हैं

चत्वारि शृङ्गा त्रियो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महोदेवो मर्त्यां आविवेश॥ ऋग्वेद ४।५८।३

सामान्यार्थ यह हैं ४ चार जिसके सींग हैं, ३ तीन जिसके पैर हैं २ दो जिसके शिर हैं ७ सात जिसके हाथ हैं और तीन स्थानों से बांधा हुआ वृषभ महादेव शब्द करता हुआ मनुष्यों में प्रवेश कर गया। यदि इस मूर्ति को इस जगत् के मनुष्य पशु पक्षी आदि जाति विशेष में अन्वेषण करना चाहें तो ऐसी व्यक्ति मिलना असम्भव है परन्तु लोगों ने इस मन्त्र का विनियोग करते हुए बैलों को यूप के तीन स्थानों से बांध कर यज्ञों में मारना अर्थ कर दिए। कितना शोक का स्थान है कि महर्षि पतञ्जलि जी के अर्थों को भी लोग मानने के लिए तैयार नहीं होते, महाभाष्यकार लिखते हैं:—

चत्वारि शृङ्गाणि चत्वारिपदजातानि नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्च,
त्रयो अस्य पादाः, त्रयः कालाः भूतभविष्यद्वर्तमानाः,
द्वे शीर्षे द्वौ शब्दात्मानौ नित्यः कार्य्यश्च,
सप्त हस्तासो अस्य, सप्त विभक्तयः,

त्रिधा बद्धस्त्रिषु स्थानेषु बद्ध उरसि, कण्ठे, शिरसि, इति भाष्यकार शब्दों से अच्छी प्रकार ज्ञात हो जावेगा कि सम्पूर्ण व्याकरण के अङ्गों को

किस उत्तम रीति से व्याख्या की गई है कि नाम आख्यात उपसर्ग और निपात ये चार प्रकार के पद होते हैं और भूत, भविष्यत्, और वर्तमान तीन प्रकार के काल होते हैं और शब्द दो प्रकार के होते हैं एक नित्य जो वेद में हैं जिनका शब्दार्थ सम्बन्ध नित्य है और दूसरे कार्य्य रूप जो सामान्य मनुष्य, वाणी द्वारा नित्य नए से नए शब्द बना कर प्रयोग में लाता है ये सब सात प्रकार की विभक्तिओं में बांटे हुए हैं, अर्थात् १ कर्ता, २ कर्म, ३ करण, ४ सम्प्रदान ५ अपादान, ६ सम्बन्ध और ७ आधार अथवा प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी और सप्तमी। इस प्रकार यह 'वृषभ' वाणी तीन स्थानों से बांधी हुई अर्थात उरः (छाती) से-कण्ठ (गले) से और शिर से जकड़ी हुई "रोरवीतीति" (शब्दं करोति) बोलने के योग्य होती हैं॥

महर्षि दयानन्द जी महाभाष्य के आधार पर वर्णोच्चारण शिक्षा में इस विषय को विस्पष्ट करते हैं कि किस प्रकार प्रथम स्वर उत्पन्न होता है और स्वर के पश्चात् वर्ण बनते हैं।

आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान्मनो युङ्क्ते विवक्षया।
मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम्॥
मारुतस्तूरसि चरन्मन्दं जनयति स्वरम्॥

अर्थात् "जीवात्मा बुद्धि से अर्थों की संगति करके कहने की इच्छा से मनको युक्त करता, विद्युतरूप मन जाठराग्नि को ताड़ता वह वायु को प्रेरणा करता और वायु उरः स्थल (छाती) में विचरता हुआ मन्द स्वर को उत्पन्न करता है॥

आकाशवायु प्रभवः शरीरात्समुच्चरन् वक्त्रमुपैति नादः।
स्थानांतरेषु प्रविभज्यमानो वर्णत्वमागच्छति यः स शब्दः॥

"आकाश और वायु के संयोग से उत्पन्न होने वाला नाभि के नीचे से ऊपर को उठता हुआ जो मुख को प्राप्त होता है उसको नाद कहते हैं। वह कण्ठ आदि स्थानों में विभाग को प्राप्त हुआ वर्ण भाव को प्राप्त होता है उसको शब्द कहते हैं। इससे पूर्णतया ज्ञात होजाता है कि यह वाणीरूपी गौ (वृषभ) किसप्रकार उरसि, कण्ठे शिरसि तीन स्थानों से बांधा हुआ वर्णों को उत्पन्न करता है जिनको शब्द कहते हैं। इस प्रकार वाणी की महिमा को जानने और उस के प्रचार के लिए जो उत्तम विद्या सभाएं होती थीं उन सभाओं को 'गोमेध' के नाम से पुकारा जाता था। यह कोई छोटा विषय नहीं जिस पर विचार और

विद्वानों के सत्संग और उनके लिए उत्तम २ पूजा सत्कार और दान की आवश्यकता न हो, यदि आप ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों को पढ़ें तो आप को ज्ञात होगा कि ऋषि महाभाष्य के आधार पर लिखते हैं कि:—

(प्र०) शब्द विषय कितना है (उ) सप्त द्वीपा वसुमती त्रयोलोकाश्चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्या बहु विधा भिन्नाः। एकशतमध्वर्य्यु शाखाः। सहस्रवर्त्मा सामवेदाः एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्। नवधा अथर्वणो वेदः, वाकोवाक्यमितिहास पुराणम् वैद्यकमित्यैतावच्छब्दस्य प्रयोगविषयः। महाभाष्य अ० १० आ० १

अर्थात् सात द्वीप युक्त पृथिवी, तीन लोक अर्थात् नाम, जन्म और स्थान, साङ्गोपाङ्ग वेद अर्थात् एक सौ एक व्याख्यान युक्त यजुः, हजार व्याख्यान युक्त साम, इक्कीस व्याख्यान युक्त ऋक्, नव व्याख्यान युक्त अथर्ववेद (वाकोवाक्य) अर्थात् दर्शनशास्त्र (इतिहास पुराणम्) साम गोपथ ब्राह्मण और (वैद्यक) अर्थात् चरक सुश्रुत आदि यह बहुत बड़ा शब्द का विषय है। इन सम्पूर्ण विषय विभागों को याथातथ्य विचार करना, उन के प्रचारार्थ नियम बनाना, पठन पाठन सम्बन्धी सम्पूर्ण साधनों का अन्वेषण करना, यह सब जिस विद्वानों की सभा में एकत्र होकर कार्य किया जाता है उस सम्पूर्ण कृत्य को 'गोमेध' के नाम से पुकारा जाता था यह मन्तव्य है।

कितना शोचनीय काल था जब लोगों ने इस महान् राजसीय उत्तम कार्य को छोड़ कर केवल गौजाति को बलिदान करना मुख्य माना। इस के अनुमान मात्र से हमें लज्जा आती है। जो महान् कार्य राजा और प्रजा के लिए अत्यन्त आवश्यक था, जिस से वेद और वेद सम्बन्धी सम्पूर्ण विद्या का प्रचार होता था, देश देशान्तरों में भारतीय वैज्ञानिक सत्यताओं का विस्तार होता था, सर्व साधारण पुरुषों में पवित्र दैवी वाणी का सन्मान होता था, उस का सर्वथा परित्याग किया गया। प्राचीन काल में जनकादि महाराजा अनेक ऋषि महात्माओं, स्त्री और पुरुषों की सभा किया करते जिन में वैदिक सिद्धान्तों पर वाद होते थे जिसे प्राचीन इतिहास के जानने वाले अच्छी प्रकार जानते हैं। इस ही को वैदिक परिभाषा में 'गोमेध' कहा जाता था।

इस के अप्रचार से वेदवाणी मृतप्राय होचुकी है और संस्कृत की मुरदा भाषाओं में गणना की जाती है।

(शेष आगे)

———

सज्जन और दुर्जन

(श्री प्रोफेसर मणिराम गुप्त)

सज्जन

(१)

नर वही जग में अति धन्य है,
सुजनता जिस के उर हो भरी।
सफल जीवन है उस का बड़ा,
निरत जो रहता शुभ कर्म में ॥

(२)

सुजन हैं बस वृक्ष रसाल के,
सहन हैं करते पवि-घात को।
पर कभी तजते न उदारता,
कब असम्भव सम्भव हो सका ॥

(३)

निरख के पर को दुख में फँसा,
कब भला लहते चित चैन हैं।
सहन हैं करते दुख आप ही,
पर, सदा हरते पर-दुःख को ॥

(४)

वचन हैं कहते मृदु सर्वदा,
नहिं कभी अपशब्द निकालते।
कब भला रुचता उन को कहो,
दुखित यों करना मन अन्य का ?

उपदेश

लेखकः—श्रीयुत म० यशःपाल जी अध्यापक, कौमी स्कूल, लाहौर

बाबू वेनीप्रसाद स्वयं नौकर थे और सारी आयु उन्होंने नौकरी में ही गुज़ारी, पर वे नवयुवकों को और विद्यार्थियों को सदा यही उपदेश किया करते थे कि 'भाई नौकरी न करना'। किशोरचन्द्र उनके एक मात्र पुत्र थे। उन्होंने उन्हें ऊंचे दर्जे की शिक्षा दी। स्त्री का देहान्त बहुत पहले हो चुका था, और कोई परिवार में अपना कहने लायक आदमी न था। दो सौ रुपया मासिक वेतन था, तिस पर कोई लम्बा चौड़ा खर्च नहीं। खर्च था तो केवल किशोरचन्द्र जी की शिक्षा का। जमा करने की तो उन्हें आदत ही न थी। बाबू वेनीप्रसाद ने किशोर-चन्द्र जी को ऊंचे दर्जों की शिक्षा दी परन्तु उनके इष्ट मित्रों, वन्धु बान्धवों की नज़र में उस शिक्षा का कोई मूल्य न था। शास्त्रों में भी लिखा है 'अर्थ करी च विद्या'' अर्थात् विद्या वह है जो धनोपार्जन में सहायता दे और कलियुग में विशेष कर अंग्रेज़ी अमलदारी में धनोपार्जन का सहल और सम्मान-युक्त उपाय नौकरी ही है। बाबू वेनीप्रसाद जी ने किशोरचन्द्र जी को सरकारी शिक्षणालय (स्कूल) में केवल आठवीं श्रेणी तक शिक्षा दी। फिर उन्हें शिक्षा-लाभ के लिये बोलपुर में कवि-सम्राट रवीन्द्र के शान्ति निकेतन आश्रम में भेज दिया। वहां वे प्रायः चार वर्ष तक आवश्यक २ विषयों का अध्ययन करते रहे। १६२१ के आरम्भ में पञ्जाब में असहयोग का ज़ोर था। उन्हीं दिनों लाहौर में नैशनल कालिज खुला। वे उसमें भी वर्ष भर पढ़ते रहे, और वहीं बी. ए. पास कर नैशनल यूनिवर्सिटी के ग्रेजुएट हो गये। यह थी किशोरचन्द्र जी की शिक्षा। भला इस शिक्षा से कहीं सरकारी नौकरी मिलती है, और सरकारी नौकरी के बिना धन, सम्पत्ति, मान, ऐश्वर्य कहां! इष्ट मित्रों ने वेनीप्रसाद को शुरू में ही समझाया था कि लड़के का भविष्य मत खराब करो; पर बुढ़ापे की सनक में उन्होंने कुछ न माना वे अपनी बात पर डटे रहे। उनका कहना था कि विद्या का उद्देश्य मनुष्य को नौकरी करने के लायक बनाना नहीं है। विद्या का उद्देश्य इससे ऊंचा है। विद्या का उद्देश्य मनुष्य के हृदय और मस्तिष्क की शक्ति का विकास करना और उसे शारीरिक और मान-सिक दृष्टि से योग्य बनाना है। केवल पेट पालना कोई बड़ा काम नहीं है, आख़िर ससांर में पशु भी जीते हैं।

२

शान्ति निकेतन वोलपुर में किशोरचन्द्र जी ने सम्पादन (journalism) कला का अभ्यास किया था और इसी का उन्हें शौक भी था। वे लाहौर के दैनिक उर्दूपत्र 'सदा ए खल्क' में काम करने लगे। 'सदा ए खल्क' के सम्पादक प० दीनानाथ पारखी थे। उन्होंने हीरे को पहचान लिया। किशोरचन्द्र जी कहने को तो 'सदा ए खल्क' के सहायक सम्पादक थे परन्तु यथार्थ में काम सभी वही करते थे। प० दीनानाथ जी कभी २ एक आध अग्र लेख लिखने का या टिप्पणियां लिखने ही का कष्ट उठाते थे। हां अखबार की नीति Policy पर वे नज़र अवश्य रखते थे। नौ जवानों का खून गरम होता है। उसे उबाल आते देर नहीं लगती और फिर किशोरचन्द्र जी ज़रा स्वभाव से भी तेज़ थे। प० दीनानाथ जी ने इसी काम में बाल सफेद किये थे। वे जानते थे कि सम्पादक को किस तरह फूंक फूंक कर कदम रखना होता है। सम्पादक का काम कोई आसान काम नहीं। यह आग का खेल है।

ला० वेनीप्रसाद औरों को नौकरी न करने की नसीहत करते थे पर उनके अपने लड़के ने नौकरी की। नौकरी सरकार की नहीं तो क्या हुआ, नौकरी नौकरी ही है। वे इससे कुछ सन्तुष्ट नहीं थे परन्तु उन्होंने बेटे के शौक में विघ्न डालना उचित न समझा। फिर भी इतना उन्होंने कह दिया 'बेटा एक दिन मेरी नसीहत को याद करोगे।' ईश्वर की इच्छा, वे अपनी भविष्यद् वाणि के पूरे उतरने के दिन तक न जिए। पुत्र का विवाह किये दो मास ही व्यतीत हुए होंगे, शरीर भी उनका बहुत वृद्ध नहीं था, कि वे चल बसे। जबरदस्त का सदा बोल बाला होता है, इसी लिये परमेश्वर का कोई काम हमें अन्याय पूर्ण नहीं दीखता। लोगों ने कहा, सब अच्छा है हाथ पैर चलते २ संसार से चला जाय सोही अच्छा, और किशोरचन्द्र जी को सान्त्वना दी।

ठाकुर मनोहरसिंह पिछली वार कौन्सिल की मेम्बरी के लिये खड़े हुए थे परन्तु बुरी मुंह की खाई थी। अब की बार वे दूने उत्साह से आगे बढ़े। निश्चय किया, जमीन और आसमान के कुलावे मिलादूंगा, रुपया पानी की तरह बहादूंगा, परन्तु मेम्बर अवश्य बन कर रहूंगा। उन्होंने अनुभव किया कि जनता को पीछे लगाने के लिये एक पत्र की आवश्यकता है। प० दीनानाथ जी से उन का अच्छा परिचय था। उन्होंने प० जी से इस कार्य को चला सकने योग्य एक आदमी की फरमाइश की। प० जी ने किशोरचन्द्र जी को उन के हाथ सौंप दिया और बोले,

देखिये मैं आप को हीरा दे रहा हूं पर इसे सम्भालना आप का काम है। या तो यह आप को ले तरेगा या आप इसे खो बैठेंगे।

ठाकुर मनोहरसिंह जी ने अपने निवासस्थान अम्बाले से पत्र जारी कर दिया। पत्र का नाम 'शफ़क़' था। आरम्भ में पत्र साप्ताहिक था परन्तु ३ मास के अन्दर ही इसे जनता ने अपना लिया, और वह साप्ताहिक से दैनिक हो गया। किशोरचन्द्र जी ने अपने आप को पत्र के अर्पण कर दिया। खाते पीते सोते जागते उन्हें सदा पत्र का ध्यान रहता। फिर भला पत्र उन्नति क्यों न करता। 'शफक' ने राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक सभी क्षेत्रों में एक परिवर्तन की आंधी उत्पन्न कर दी। उदार विचार के नवयुवकों ने तो शफ़क को अपने नित्य के पाठ की वस्तु बना लिया।

ठाकुर साहिब ने भी किशोरचन्द्र जी के कठिन परिश्रम और कर्तव्य-परायणता का फल देने में पूरी उदारता दिखलाई। आरम्भ में उन्होंने किशोरचन्द्र जी को सौ रुपया मासिक देना निश्चय किया था। परन्तु शीघ्र ही वह डेढ़ सौ होगया। अब तक वे ठाकुर साहिब की कोठी के एक कमरे में ही रहते थे। अब उन्होंने अपनी धर्मपत्नी को अपने साथ रखने की इच्छा प्रकट की तो ठाकुर साहिब ने अपने मकान के समीप ही उन के लिये एक छोटा सा बंगला खाली करा दिया और वेतन भी दो सौ मासिक कर दिया। *

किशोरचन्द्र जी का विवाह हुए छः मास हो गए थे। इस बीच में उन्होंने शान्ति को केवल एक बार देखा भर था। वे उस के रूप गुण से सन्तुष्ट ही नहीं अपितु उस पर मुग्ध थे। परन्तु जिस समय वे दिन भर के परिश्रम से आक्रान्त हो कर रात की चान्दनी में आकाश की ओर मुख कर के लेट जाते, एक चिन्ता आकर उन के हृदय को व्यथित किया करती थी। न जाने उस का स्वभाव कैसा है? वह मेरी रहस्यमयी प्रेम कथाओं, उपालम्भों और परिहासों को समझ सकेगी अथवा नहीं? न जाने उसे कुछ संगीत का भी ज्ञान है या नहीं? कहीं वह देखने भर को एक सुन्दर पुतली ही तो नहीं? यदि ऐसा ही हुआ तो मैं उसे लेकर क्या करूंगा? मुझे देखने के लिये मूर्त्ति और रोटी पकाने के लिये नौकर की आवश्यकता नहीं। मुझे तो जीवन यात्रा के लिये एक साथी की आवश्यकता है जो मेरे हृदय के आनन्द और व्यथा को समझ सके, सुख दुःख में मेरा साथ दे सके। जब मैं खिन्न होऊं, हतोत्साह हो जाऊं, मुझे सान्त्वना दे सके। परन्तु शान्ति के आते ही उन की यह तमाम आशंकाएं दूर होगईं, उन्होंने उसे वैसा ही पाया जैसा चाहा था।

बस फिर क्या था, दाम्पत्य प्रेम की नौका में बैठ कर उन्होंने जीवन की नदी में यात्रा आरम्भ की। दिल के सभी अरमान और शोक पूरे करने आरम्भ किये। स्वयं किशोरचन्द्र जी को स्वदेशी की धुन थी, खद्दर की धोती और एक कुरते के अतिरिक्त वे दूसरा कपड़ा नहीं पहनते थे। उन की सम्मति थी कि पुरुषों को विशेष शृंगार शोभा नहीं देता, परन्तु स्त्रियों के लिये वे इसे आवश्यक समझते थे। कोई मास न जाता था कि शान्ति के लिये नई रेशमी साढ़ी और दूसरी शृंगार की वस्तुएं न खरीदी जाती हों। स्वयं स्वदेशी के कट्टर भक्त हो कर भी जब शान्ति किसी विदेशी वस्तु के लिये ज़िद करती तो उन्हें हार माननी पड़ती। वे किसी साधारण सी बात के लिये हठ कर शान्ति को रुष्ट कर घर में कलह नहीं डालना चाहते थे। आदम कद विलायती आईने, कैसदील का हार्मोनियम, ड्रेसिंग टेबल वगैरह सब सामान जब खरीदे गये, उन्हें चुप रहना पड़ा। किशोर बाबू को दुपहर की धूप और रात का कुछ ज्ञान नहीं था। अखबार के दफ्तर में शफ़क की फिकर में रहते थे और घर आकर शान्ति के अरुण कपोलों की शफ़क उन्हें मोहे रखती थी। दिन भर के थके मांदे आते। बंगले के दरवाजे पर ही शान्ति उन के स्वागत के लिये तैयार रहती। दोनों एक दूसरे की आंखों को देखते और मुस्करा देते। जिह्वा को हिलाने की आवश्यकता नहीं थी। एक के मन के भाव दूसरा समझ जाता। किशोरचन्द्र जी की सारी थकावट दूर हो जाती। शान्ति संगीत में प्रवीण थी और उन्हें इस का शौक था। वह चान्दनी रात में बंगले की छत पर हार्मोनियम पर सुरीले राग अलापती और वह उस के मुख की ओर देखा करते। वह उस समय यह भूल जाते कि वे इस पृथ्वी के प्राणी हैं। वह अपने आप को इस लोक से ऊपर स्वर्ग लोक के राज्य का सुख अनुभव करते पाते।

पत्र खूब उन्नत अवस्था में चल रहा था परन्तु ठाकुर साहिब सन्तुष्ट न थे। उन का पत्र जनता में आदर और सम्मान से पढ़ा जाता था तो इस से क्या? जब उनका प्रयोजन ही सिद्ध न हुआ तो उन के लिये जैसे पत्र हुआ वैसे न हुआ। डेढ़ वर्ष तो जैसे तैसे निकल गया परन्तु अब तो चुनाव में भी केवल एक वर्ष रह गया था। कई बार ध्यान दिलाने पर भी किशोरचन्द्र जी ने कोई सन्तोष-प्रद काम ठाकुर साहिब के चुनाव के सम्बन्ध में न किया। प्रथम तो वे इस सम्बन्ध में कुछ लिखते ही न थे। यदि लिखते भी तो इतना संक्षिप्त जिस का प्रभाव कुछ न होता। एक दिन तंग आकर ठाकुर साहिब ने उन्हें बुला भेजा। ठाकुर साहिब ने साफ साफ शब्दों में बातें शुरू कीं। उन्हों ने कहा, बाबू साहिब! बात क्या

है ? कई बार आप का ध्यान इधर खींचने की कोशिश की है परन्तु आपने कुछ ध्यान नहीं दिया। आप खूब जानते हैं कि मेरा विचार इस दफा कौन्सिल के लिये खड़े होने का है और मेरा बड़ा भरोसा आप पर ही है। आप पत्र द्वारा जो चाहें कर सकते हैं। बाबू किशोरचन्द्र ने बहुत सकुचाते हुए कहा, ठाकुर साहिब! यूं तो मैं आप का सेवक हूं परन्तु मेरा विश्वास है कि कौन्सिलों में जाने से आप के वैयक्तिक सम्मान में कुछ वृद्धि होती हो, परन्तु इस से जाति को कोई लाभ होने की आशा नहीं।

ठाकुर साहिब ज़रा मुस्करा कर बोले, हां तो आप कौन्सिलों में दाखिले के हक में नहीं हैं। खैर मैंने जब फैसला कर लिया है कि मैं खड़ा होऊंगा तब मेरी थोड़ी बहुत मदद जरूर कीजियेगा। और यह भी आप देखते हैं कि हिन्दू मेम्बरों की बेपरवाई से कौन्सिल में हिन्दुओं को कितना धक्का पहुंचा है। ठाकुर साहिब ने समझा कि वे इसी एक बात से बाबू साहिब को जीत लेंगे परन्तु जिस समय किशोरचन्द्र जी उठ कर जाने लगे, उन के मुख पर कोई ऐसा चिन्ह नहीं था जिस से उन के विचारों में परिवर्तन होने की गवाही मिलती।

कई दिन बीत गये पहले ठाकुर साहिब ने कभी शफ़क़ का पर्चा उठा कर नहीं देखा था परन्तु अब नित्य बड़े ध्यान से तमाम सुर्खियां देख जाते और असन्तुष्ट मन से पत्र को रद्दी की टोकरी में डाल देते। स्पष्ट तौर पर यद्यपि उन्होंने कुछ न कहा था परन्तु सूक्ष्म दर्शी किशोर बाबू से उन के मन का यह भाव छिपा न रह सका।

अब उन्हें पत्र के सम्पादन में वह उत्साह नहीं था। मन खिन्न रहता। कुछ सुस्ती सी छाई रहती। वे शान्ति से कभी कोई बात न छिपाते थे, यह बात भी न छिपाई। शान्ति दिल ही दिल में सोचती थी जब ठाकुर की नौकरी करनी है तब उस की बात भी माननी ही पड़ेगी। परन्तु अब तक यह बात मुंह से निकालने का साहस उसने न किया। वह किशोरचन्द्र जी के स्वभाव को खूब समझती थी। उसे इस समस्या का एक ही हल दिखाई पड़ता था और वह यह कि ठाकुर की नौकरी छोड़ दी जाय परन्तु निर्वाह का प्रश्न सन्मुख था। आज कल किशोर बाबू के कान में सदा यह शब्द गूंजते रहते थे "बेटा मेरी नसीहत है कि नौकरी न करना"।

एक दिन किशोरचन्द्र जी आफिस से आ कर चुप चाप आराम कुर्सी पर लेट गये। शान्ति ने उन का मन बहलाने के लिये अनेक यत्न किये पर सफल न

हो सकी। उस ने झुंझला कर कहा, या तो इस बखेड़े को छोड़ो या फिर ठाकुर का कहना मानो। आखिर जब उसको नौकरी करनी है तो फिर उसकी बात भी रखनी होगी। किशोरचन्द्र जी ने शान्ति की ओर देख कर कहा "इस का अर्थ यह है कि मैं उस का खरीदा हुआ दास हूं।" शान्ति चुप रह गई। वह दिल मे बड़ी लज्जित हुई कि मैंने इन के हृदय को नाहक चोट लगाई। क्या यह स्वयं इतनी बात नहीं सोच सकते थे। वह दुःखित मन से जाने लगी। किशोर बाबू ने उस का हाथ पकड़ उसकी सजल आंखों की ओर देख कर कहा, देखो शान्ति मैंने अब तक इस काम को नौकरी समझ कर नहीं किया। मैं समझता था कि ठाकुर साहिब के पास धन है और मेरे पास योग्यता। हम दोनों मिल कर एक काम को चला रहे हैं। इस में स्वामी सेवक का क्या मतलब। परन्तु अब मैं देखता हूं, मेरा विचार ठीक न था। इस अवस्था में मुझ से शायद यह काम न हो सकेगा।

संयोग से शहर के सब इन्सपेक्टर पुलीस ला० खेमराज रिश्ते में बाबू किशोर चन्द्र जी के बहनोई लगते थे। परन्तु दोनों में मेल मिलाप क्या, ठीक ठीक परिचय भी न था। परिचय हो भी कैसे, एक का मुख था पूर्व को तो दूसरे का पश्चिम को। एक दिन किशोर बाबू के पास ला० खेमराज जी के रिश्वत लेने के सम्बन्ध में शिकायत पहुंची। उन्हों ने इस विषय में शान्ति से परामर्श लेना भी उचित न समझा और खूब करारी टिप्पणी इस विषय पर 'शफक' में करदी। जनता ने इस न्याय-प्रियता की दिल खोल कर प्रशंसा की परन्तु घर में इस घटना से उदासी छागई। भाई आखिर भाई है। शान्ति ने दिल में कहा, इतनी बे मुरव्वती भी क्या! वह उस दिन दिन भर चुप बैठी रही। ला० खेम राज ने ठाकुर साहिब का ध्यान इधर आकर्षित किया। कहा, आप के पत्र में यह सब कुछ हो और आप चुप बैठे रहें। ठाकुर साहिब ने दुःखी होकर कहा, भाई! मैं तो फँस गया हूं। सम्पादक मेरे कहने में नहीं है। ला० खेमराज ने कहा, तो फिर हमें छुट्टी है, हम जो चाहें कर सकते हैं? ठाकुर साहिब ने कहा 'खुली छुट्टी।'

ला० खेमराम ने सोचा, यदि किशोरचन्द्र पत्र में खबर का संशोधन करदें और अपनी गलती स्वीकार करलें तो बात आगे न बढ़ाई जाए। वे खुद उनके घर गए, पर किशोरचन्द्र राज़ी न हुए। मुकदमा चला। किशोरचन्द्र जी को निश्चय था कि ठाकुर साहिब से कोई सहायता न मिलेगी। उन्हें सत्य का भरोसा था।

पुलीस अपनी जादू की शक्ति से जो चाहे प्रमाणित कर सकती है। एडीटर साहिब हार गये और इन्सपेक्टर साहिब जीत गये। शान्ति के लिये दोनों ही तरफ रोना था। इन्सपेक्टर साहिब ने मान हानि का दावा किया। उसकी भी १००० की डिगरी होगई। पास रुपया भी न था। कभी कोई पैसा बचाने की फिक्र ही न की थी, तिस पर जब उन्हें अपने पक्ष की सत्यता का निश्चय था तो उन्होंने रुपया देने से इनकार कर दिया। जुर्माना न देने की अवस्था में तीन मास की कैद का हुकुम था। शहर की जनता किशोर बाबू पर मोहित थी। एक हज़ार क्या वह १० हज़ार देने को तयार थे पर वे स्वयं इसके विरुद्ध थे। जुर्माना दाखिल करने की तारीख से एक दिन पहले स्वयं ला० खेमराज ने एक आदमी के हाथ एक हज़ार के नोट तथा एक पत्र शान्ति के पास भेजा, पत्र में लिखा था, 'क्षमा करना, मैं मजबूर था'। शान्ति ने सन्देशा लाने वाले को मुंह भी न दिखाया। रो रो कर उसका हाल बेहाल होरहा था। बाबू किशोरचन्द्र का अपना मन अस्थिर था। उन्हों ने व्यथित हृदय से कहा 'तुम क्या चाहती हो कि मैं अपनी आत्मा की हत्या कर लूं'? शान्ति चुप होगई। उसके मुख से बात न निकलती थी परन्तु जिनके हृदय एक हैं वे बिना कहे सुने भी परस्पर मन का भाव जान जाते हैं। किशोर बाबू समझ गए शान्ति उनके कार्य से सहमत है परन्तु आखिर नारी-हृदय है।

बाबू किशोर चन्द्र जेल गये। उसी दिन ला० खेमराज गाड़ी लेकर स्वयं शान्ति को लिवा लाने गए परन्तु वह न आई। अपने ननिहाल में उसने वे तीन मास तीन युग समझ कर काटे। तीन मास पश्चात् जिस दिन किशोर बाबू जेल से छूटे, जनता ने उनका तपाक से स्वागत किया। उसी दिन कई अखबारों की एडीटरी उनके सन्मुख पेश की गई। परन्तु उन्हों ने इनकार कर दिया।

४

हिमालय के हिमाच्छादित शुभ्र शृङ्गों के नीचे फैले हुए हरे भरे आंचल में कांगड़ा नगर अपनी थोड़ी सी जन-संख्या के साथ बसा हुआ है। नगर से प्रायः आध मील की दूरी पर एक पहाड़ी नदी की पतली सी धारा बह रही है। इसके किनारे दूर दूर तक हरे भरे खेत चले गए हैं किनारे के साथ २ कहीं २ झोंपड़ियों में खटा खट और घुमर घुमर का निरन्तर शब्द होता रहता है। वह पहाड़ी लोगों की धन-कुट्टियां (धान कूटने का यंत्र) और पनचक्कियां हैं। इन झोंपड़ियों में एक छोटा सा बंगला नुमा मकान है। उस के चारों ओर फूलों की क्यारियां हैं। इसका नाम शांति कुंज है। गहरी हरियाली में बरफ़ के समान श्वेत कली किया हुआ वह मकान बहुत सुन्दर दीख पड़ता है। मकान के साथ ही दो झोंपड़ियां पानी की नाली के ऊपर बनी हैं। उन में से एक में एक धनकुट्टी और एक पन-

चक्की है जो और धनकुट्टियों और पनचक्कियां से दूनी रफ़्तार से चलरही है। सूर्य भगवान् पश्चिम में क्षितिज पर पहुंच कर अधखुली आंखों से बर्फ से ढकी हुई चोटियों को देख कर मुस्करा रहे हैं। चोटियां के मुख लज्जा से लाल हो रहे हैं। उस कुटिया की फुलवाड़ी में एक युवती झरने से फूलों को सींच रही है। एक छोटा सा स्वस्थ बालक उस की साड़ी के आंचल को पकड़ कर खींच रहा है और ज़ोर से हंस रहा है। धनकुट्टि वाली झोंपड़ी में से एक हृष्टपुष्ट युवक आधी बांह की क़मीज़ और निकर पहने हुए निकला। उस के शरीर पर कहीं २ धान के छिलके पड़े हुए थे। युवक ने आकर बालक को उठा लिया। साड़ी के लटकते हुए आंचल से युवती के मुख का पसीना पोंछ कर कहा शान्ति! सुख अब है या तब था? शांति ने मुस्करा दिया। उस की आंखे प्रसन्नता से चमक उठीं। बाबू किशोर-चन्द्र ने फिर कहा, मुझे पिता जी के वे शब्द याद आते हैं। 'बेटा मेरा उपदेश है, नौकरी न करना'

"घन माला"

श्रीयुत प० चमूपति 'आर्य सेवक'

भक्तो! हृदय-गगन में छाई,
भक्ति-भाव-घन-माला॥ १॥
टप टप अश्रु सरस मद-मंजुल,
गिरें, करें मतवाला॥ २॥
सौदामनि सम भटके ठठके
प्रेम आस उजियाला॥ ३॥
चंचल चित हो चमक तिरोहित,
ज्यों सुन्दर सुरबाला॥ ४॥
पण्डित हृदय श्वेत नीरस घन,
मम रसाल चित काला॥ ५॥

पञ्चपटलिका

(समालोचना)

लेखक—नारद ।

ज्येष्ठ मास में डी० ए० वी० कालेज के अनुसन्धान विभाग की रिपोर्ट की आलोचना करते हुये हमने लिखा था—"इन ग्रन्थों के गुणदोषों का विवेचन तो किसी अन्य अवसर पर करेंगे।" आज उस प्रतिज्ञा की पूर्त्ति का उपक्रम करते हैं। क्रमशः एक एक ग्रन्थ की आलोचना करेंगे।

इस ग्रन्थमाला के प्रचारकों ने जनता में समालोचना के सम्बन्ध में कई भ्रम-पूर्ण गप्पों का प्रचार आरम्भ किया है। कोई कहता है—यह आलोचना द्वेष से लिखी गई है। कोई कहता है, यह आलोचना लिखी ही क्यों गई ? कहां तक गिनाएं, जितने मुख, उतनी बातें। परन्तु सब निष्प्रमाण, निराधार। केवल एक मूल है-मुखमस्तीति किंचिद् वक्तव्यं दशहस्ता हरीतकीति (मुख है, कुछ न कुछ तो कहना ही चाहिए अतः कह दिया कि हरड़ दस हाथ लम्बी होती है)। अच्छा, दुर्जन तोषन्याय से मान भी लें, कि आलोचना द्वेष से लिखी गई। तो भी इस आलोचना में कही गई सचाई का अपलाप नहीं हो सकता है। हमें दुराग्रह नहीं है। आप इस का खण्डन कर दीजिए, हम मान लेंगे, परन्तु खण्डन होना चाहिए, गाली गलौज नहीं।

एक ग्रन्थ आपने प्रकाशित किया है। प्रकाशित होते ही वह जनता की सम्पत्ति बन जाता है। उसके सम्बन्ध में अनुकूल प्रतिकूल विचार प्रकट करने का जनता को अधिकार है, उसे आप किसी भी शक्ति से नहीं दबा सकते, कितनी गाली दें, कितने ही कुवाच्य आप बोलें, आलोचक—साहित्य बाड़ी का रखवाला आलोचक विक्षेपक आलोचक नहीं—अवश्य उस की आलोचना करेगा अस्तु। अब प्रकृत विषय पर आते हैं—

इस ग्रन्थ का नाम है—"अथर्ववेदीय पञ्चपटलिका' अर्थात् अथर्ववेद का तृतीय लक्षण ग्रन्थ, भावानुवाद सहित"

इस में १४ पृष्ठ भूमिका, १६ पृष्ठ मूल ग्रन्थ, ३६ पृष्ठ भावानुवादादि, सब मिला कर ६६ पृष्ठ है, मूल्य इस का १) है, जो कुछ लोगों को अधिक प्रतीत होता है। किन्तु ऐसे ग्रन्थों का विक्रय कम होता है, अतः मूल्याधिक की शिकायत अनुचित सी है।

यह ग्रन्थ दयानन्द ग्रन्थमाला का प्रथम पुष्प है।

भूमिका में साधारणतया ग्रन्थप्रतिपाद्य विषय का दिग्दर्शन करा दिया करते हैं। किन्तु इस ग्रन्थ के सम्पादक ने यह उचित नहीं समझा, (क्यों ? यह रिसर्च का विषय है)। भूमिका में इन विषयों का उल्लेख है—

हस्त लिखित व प्रकाशित प्राप्त सामग्री।

पञ्चपटलिका कब लिखी गई।

संहिता भेद।

संहिता परिमाण

संहिता विभाग

ऋग्वेद वा अथर्ववेद में ऋचा गणना प्रकार

ऋग्वेद और अथर्ववेद में ऋचाओं के अवसानों की तुलना

कुछ पटलिका के अनुवाद के सम्बन्ध में।

इस सारी सूची में ग्रन्थ प्रतिपाद्य विषय का निरूपण कहीं नहीं है। अस्तु। पाठकों के ज्ञानार्थ हम उसे लिख देते हैं—'पर्यायों और ऋचाओं के सम्बन्ध में उक्तानुक्त पद्धति का निरूपण' इस का विषय है।

श्रीयुत सम्पादक ने वेदसम्बन्धी इस संस्कृत ग्रन्थ की भूमिका संस्कृत में न लिख कर आर्य भाषा में लिखी है। इस के दो हेतु हो सकते है, या तो सम्पादक जी संस्कृत लिखने में असमर्थ हैं, अथवा आपने अपने आदर्श भूत पश्चिमी गुरुओं की रीति का अवलम्बन किया है, वे भी संस्कृत ग्रन्थों का सम्पादन करते हुए भूमिका अपनी अपनी भाषा में लिखते हैं। किन्तु उन के चित्त में संस्कृत लिखने की इच्छा अवश्य रहती है। प्रमाण ह्विटने कृत अथर्ववेदानुवाद के सम्पादक श्री लैनमैन ने आरम्भ में कुछ संस्कृत श्लोक लिखने का सत्साहस किया है। एक तीसरा हेतु भी भूमिका के आर्य भाषा में लिखे जाने का हो सकता, वह है इस ग्रन्थ का भावानुवाद सहित होना। अस्तु। हमें इस से कोई विवाद नहीं। हम तीनों ही को स्वीकार तो कर लेते हैं। इस के अतिरिक्त कोई और भी हो तो हमें मानने में कोई आपत्ति नहीं *।

*रिपोर्ट सम्बन्धी हमारी आलोचना का गालीपुरस्सर उत्तर देते हुए रिसर्चस्कालर साहब ने फरमाया था, हमने एक विशेष कारण से भारतीय विद्वानों की सम्मतियां प्रकाशित नहीं कीं। कदाचित् उसी भांति इस में भी कोई विशेष हेतु हो। यद्यपि वह बताया नहीं जाता।

सम्पादक का आर्य भाषा ज्ञान

प्रकृत ग्रन्थ के सम्पादक आर्य भाषा से अनभिज्ञ प्रतीत होते हैं-- आप लिखते हैं--"..........यज्ञों का वास्तविक अर्थ जो वैदिक काल में प्रचलित था, भूल चुका था ।" (भूमि० पृष्ठ १, पंक्ति २-३) अर्थ का अभिधेय कोई स्मरणशील मनुष्य तो है नहीं, फिर उस में भूल चुकना कैसा ? सम्पादक को विवक्षित है --'यज्ञों के वास्तविक अर्थ को लोग भूल चुके थे। किन्तु भाषा न जानने के कारण वह अर्थ को भूलने वाला बताते हैं--

उसके ज़रा आगे फिर फ़रमाया है--"अन्य वेद बहुत पीछे पड़ गए थे ।" पामर से पामर भी 'पीछे पड़ जाने' का अर्थ जानता है। किन्तु इनकी बला से। अर्थ से इन्हें क्या प्रयोजन । इन्हें तो ग्रन्थकार बनना है। भाषा चाहे शुद्ध हो या अशुद्ध । और देखिये पृष्ठ १० पर शीर्षक है --ऋग्वेद वा अथर्व वेद में ऋचा गणना प्रकरण-महाराज 'वा' यहां विकल्पार्थक है या समुच्चयार्थक ? इसी प्रकार की दिव्य भाषा की दीप्ति से ग्रन्थ रत्न देदीप्यमान हो रहा है । हम मानव इसके आलोक की छटा के कदाचित् अधिकारी नहीं ।

सम्पादक का अंग्रेज़ी भाषा ज्ञान।

भूमिका के तीसरे पृष्ठ पर श्रीमानों ने ह्विटने के लेख का एक उद्धरण दिया है । किन्तु अनुवाद नहीं दिया । क्या संपादक-पुंगव हमें बताने की कृपा करेंगे-क्यों ऐसा किया गया ? क्या इस पटलिका के सब पाठक अंग्रेजी जानने वाले ही हैं? यदि ऐसा है, तो इस देश का अभाग्य है। संस्कृत तो जानते नहीं, किन्तु अंग्रेजी जानते हैं। ऐसों ही के लिए कवि शिरोमणि शङ्कर ने कहा है-"बोल बिरानी बोलियां चहक रहे चण्डूल । पर भाषा भाषी बने अपनी भाषा भूल" ॥ किन्तु हमारा विश्वास है, सम्पादक महाशय अंग्रेज़ी बहुत थोड़ी जानते हैं-इसका प्रमाण लीजिए। मुनिवर पण्डित गुरुदत्त जी ने Terminology of the Vedas, का समर्पण लिखा है--Dedicated to the memory of the only Vedic scholar of His times Svami Dayananda Sarasvati.................

इसका अनुवाद बी० ए० सम्पादक ने "अपने काल के केवल वैदिक विद्वान् स्वामी दयानन्द सरस्वती की स्मृति में समर्पित-" किया है।

पाठक ! जिसे थोड़ी से भी अंग्रेज़ी आती हो, वह ऊपर के उद्धरण में आए only शब्द का अर्थ करेगा--"अद्वितीय" । 'केवल वैदिक विद्वान्' के अर्थ होते हैं--जो सिर्फ़ वेद जानता है और कुछ नहीं जानता ।" उस दिन पण्डित चमू-

पति जी एम० ए० को गाली देते हुए भी इस प्रकार की अंग्रेजी भाषा-भिज्ञता का परिचय इन्होंने दिया था। पटलिका के अनुवाद में एक और उद्धरण भी अंग्रेजी भाषा का दिया गया है, उसका भी अनुवाद नहीं किया गया। अब आपको सम्पादक जो की सम्पादनकला का नमूना मात्र दिखलाते हैं। प्राचीन ग्रन्थों के सम्पादन की रीति यह है - कि भिन्न २ पाठों का मिलान करके शुद्ध संगत पाठ मूल में दिया जाता है और अशुद्ध, संदिग्ध पाठ, अथवा शुद्ध पाठ-भेद टिप्पण में दिए जाते हैं। किन्तु पटलिका के संपादक 'मुरारेस्तृतीयः पन्थाः' के भक्त हैं। मूल के पृष्ठ २, पंक्ति १३ में "सर्वदा द्विप्रमित्येते वैपरेतं निदर्शनम्" पाठ दिया है। नीचे टिप्पणी में 'श' संज्ञक पुस्तक के प्रमाण से 'वैपरेतं' के स्थान में 'विद्यादत्र' पाठ दिया है। भावानुवाद में इन्होंने स्वयं 'वैपरेतं' को संदिग्ध माना है। 'विद्यादत्र' पाठ होने से अर्थ बन जाता है। किन्तु इन्हें तो अर्थ से प्रयोजन नहीं। इन्हें तो अपना अभूतपूर्व लोकोत्तर अनितरसाधारण सम्पादन-नैपुण्य का परिचय देना है।

सम्पादक का संस्कृत भाषा ज्ञान।

पाठक वर्ग! अधीर न हूजिएगा। अभी आप को इन की अनुवाद कलाकुशलता से परिचित कराना है। उस के विनाइन का स्वरूप निरूपण अधूरा रह जायगा।

ग्रन्थ का प्रथम श्लोक है—

'उक्तानुक्तस्य यं न्यायं प्रोवाच परिबभ्रवः।
पर्य्यायाणामृचां वापि तद्वक्ष्यामो यथा क्रमम्॥"

इस का अर्थ है—परिबभ्रव ने उक्तानुक्त (कहे हुए को न कहना) के जिस न्याय=नियम का प्रवचन=उपदेश किया था हम क्रम से पर्य्यायों और ऋचाओं के सम्बन्ध में उसे कहेंगे" किन्तु अपने आप को संस्कृत का अद्वितीय पण्डित मानने वाले महाशय इस का अनुवाद करते हैं—"उक्तानुक्त (कहे हुए के न कहने) के जिस न्याय=नियम को परिबभ्रव (ऋषि बोला, तथा पर्य्यायों और ऋचाओं के (नियम को भी) उसे हम यथा क्रम कहेंगे।"

इन महानुभाव को 'वापि' शब्द से भ्रान्ति हुई है। "तथा पर्य्यायों और ऋचाओं के (नियम को भी) उसे हम यथा क्रम कहेंगे" इस वाक्य का क्या अर्थ हुआ?

प्रथम पटल में श्लोक आता है—

अत ऊर्ध्वं यथोक्तेन न्यायेन पुनरुत्सृजेत्।
अन्ते च कीर्तयेत् तेन 'ते वश' इति निदर्शनम्॥ ३॥

"आप इस का अर्थ करते हैं—

इस से आगे कहे हुए नियमानुसार उत्सर्जन करे, और अन्त में उसी से कीर्त्ति करे 'ते यश' निदर्शन है इस उदाहरण का पता नहीं लगा।"

पाठक! 'कीर्त्तयेत्' का अर्थ संस्कृत के इस अद्वितीय परिडतंमन्य ने 'कीर्त्ति करे'। इन से कोई पूछे, 'कीर्त्ति करे' का अभिधेय क्या है। इस से ऊपर के श्लोक में भी 'कीर्त्तयेत्' पद आया है, वहां इन्होंने 'पढ़े' अर्थ किया है। पता नहीं—यहां विलक्षण अर्थ का कहां से इन्हें ज्ञान हुआ।

पाठक मूल श्लोक तथा उस के आगे पीछे के श्लोकों को हमने कई बार पढ़ा, किन्तु उस में "इस उदाहरण का पता नहीं लगा" इस वाक्य का मूल हमें कहीं न मिला। पता नहीं, कहां से यह वाक्य आ कूदा। एक विद्वान् मित्र को दिखाया, उन्होंने कहा—"बेचारे ने टिप्पणी की है।" हमने कहा—टिप्पणी कैसे हो सकती है, टिप्पणी तो हजरत पृथक् लिखते हैं, जैसे पृष्ठ २७ और ३१ में किया है या जैसे पृष्ठ १८ में 'विशेष विचार लिख कर किया है।

पाठक वर्ग! प्रायः सर्वत्र अनुवाद के साथ अपनी टिप्पणी मिलाते गए हैं, उपरि-लिखित श्लोकार्थ से ऊपर के श्लोक तथा तृतीय पटल के अनुवाद इस के दिग्दर्शन है।

तीसरे पटल में १० म खण्ड के तीनों श्लोकों का अर्थ नहीं किया। उस के अन्तिम श्लोक के विषय में अनुवाद स्थल में (टिप्पणी स्थल में नहीं) लिखते हैं—

'खण्ड दश का अन्तिम श्लोक अशुद्ध प्रतीत होता है।—"

निर्णयार्थ उस श्लोक को हम लिख देते हैं।—

तस्मात् सूक्ताग्रपरिमाणेन तपसाधीत्य संहिताम्।
आर्षेयीमृषिभिरभ्यस्तां सूक्तैः संप्रदायामधीमहे ॥

इन के छापे पुस्तक में 'आर्षयीम्' छपा है। 'ए' की मात्र या तो छपने से रह गई है या इन की आदर्श पुस्तकों में न होगी। यदि इस साधारण अशुद्धि के कारण इसे आप ने अशुद्ध ठहरा दिया, तो धन्य है आप का संस्कृत पाण्डित्य। धन्य है आप का रिसर्च नैपुण्य! और धन्य हैं वे जिन्हों ने आप को इस के पाठादि निर्धारण करने में सहायता दी है। जिन्हें इतनी साधारण सी बात का बोध न हुआ। अन्यथा बतलाइए इस में और कौन सी अशुद्धि है। अथवा इस में भी कोई गोप्य हेतु है।

जिन की ऐसी योग्यता है, वे प० चमूपति सरीखे विद्वानों को चैलेंज करते हैं!

पाठकगण। कहां तक लिखें। संपादन में दोष, अनुवाद में स्खलन पदे पदे मिलते हैं। संस्कृत यह नहीं जानते, आर्य भाषा से यह अनभिज्ञ है, फिर साहस करते हैं संस्कृत ग्रन्थों के संपादन तथा अनुवाद का। क्या रिसर्च इसी का नाम है भगवान् इससे बचाएं।

अन्त में यह निवेदन कर दूं—कि यह ग्रन्थ आर्य सामाजिकों की ऋषि दयानन्द सरस्वती से श्रद्धा हटाने के लिए प्रकाशित किया गया, आप पूछेंगे, कैसे? सुनिए।

इन्हों ने स्वयं भूमिका में लिखा है—

"दयानन्द सरस्वती भी अथर्व वेद संहिता को बीस काण्डयुक्त ही मानते हैं।" भू० पृष्ठ ६

और इस के आगे लिखा है—

"यहां इतना कहा जा सकता है कि पाश्चात्य लेखकों ने पञ्चपटलिका का आश्रय लिया है और इस में अठारह ही काण्डों का वर्णन है।"

देखिए—यह वह महानुभाव हैं, जिन्हों ने उस दिन हमें स्वामी वेदानन्द तीर्थ तथा प्रधानतया पण्डित चमूपति को भद्दी गाली देते हुए गर्व-पूर्वक कहा था—"मैं तो जो कुछ लिखता हूं, स्वामी दयानन्द के आधार से और उनकी पुष्टि करने के लिए।"

इन से कोई पूछे, अथर्ववेदसंहिता के अष्टादशकाण्डात्मक होने में स्वामी दयानन्द का कौन सा लेख प्रमाण है, और उन के किस लेख की पुष्टि करने के लिए इस ग्रन्थ को प्रकाशित किया है। परमात्मन्! ऋषि को ऐसे पोषकों से बचा। कदाचित् वेद में "अभयंमित्रात्" ऐसों के लिए प्रयुक्त हुआ है।

पाठकवर्ग! यह पञ्चपटलिका २० वें काण्ड का एक उदाहरण देती है—पीछे हम प्रथम पटलका एक श्लोक लिख आए हैं, जिस में 'ते वश इति निदर्शनम्' पाठ है जिस पर संपादक ने लिखा है —"इस उदाहरण का पता नहीं लगा।" साधारण नियम यह होता है कि जिस ग्रन्थ का संपादन करना हो, उस का भली भांति मनन किया जाता है, जिस विषय का यह ग्रन्थ हो, उस का भी पर्य्यालोचन किया जाता है, तब जा कर उस का संपादन करने का साहस किया जाता है, किन्तु यह उस के अपवाद स्वरूप है, यदि इन्होंने एक बार भी 'अथर्ववेदसंहिता का पाठ किया होता, तो इन्हें अथर्ववेद के २० वें काण्ड के

११२ वें सूक्त के प्रथम मन्त्र में 'ते वशे' पाठ मिल जाता। पाठकों के ज्ञानार्थ सारा मन्त्र लिख देता हूँ—

"यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभिसूर्य्य।
सर्वं तदिन्द्र ते वशे॥" अथर्व० २०। ११२। १

परन्तु हाँ। इन्होंने तो बर्लिन का छपा अथर्ववेद बांचा होगा। उस में तो छपे ही १८ काण्ड हैं, वहां इन्हें पाठ मिलता तो कैसे? इसी वास्ते तो हमारा कहना है कि संस्कृत ज्ञान शून्य संपादक पल्लवग्राही पश्चिमी गुरुओं के चरण चिन्हों पर चलता है। इन के लिए यही रिसर्च का विषय रह गया है।

यह केवल नमूना मात्र दिखलाया है। यदि इस का सर्वांगीण विवेचन करें, तो लेख अतीव दीर्घ काय हो जाएगा। अतः इसी पर बस करते हैं, अगले मास इन के "ऋग्वेद पर व्याख्यान" की प्रदर्शनी कराएंगे।

इधर श्रीयुत पण्डित भगवद्दत्त जी ने एक नूतन रिसर्च किया है। कदाचित् वह रिसर्चधर्म्म का एक अत्यन्त आवश्यक अंग है, पाठकों के विनोदार्थ हम उसे प्रकाशित कर देते हैं। कहते हैं श्री स्वामी वेदानन्द तीर्थ ने श्री पण्डित भगवद्दत्त जी के लेख का उत्तर आर्य्य में प्रकाशित कराने के लिए भेजा, पण्डित जी ने प्रेस से उस के प्रूफ़ उड़वा लिए, यदि पण्डित जी ने इनकार किया, तो नारद सारे रहस्य का भण्डाफोड़ कर देगा।

वैदिक मैगज़ीन में वैदिक कोष की समालोचना

(लेखकः— श्रीयुत प० चमूपति एम. ए. "आर्य सेवक")

'वैदिक मैगज़ीन' में श्री हंसराज कृत 'वैदिक कोष' जिसकी भूमिका श्री भगवद्दत्त जी ने लिखी है की समालोचना छपी थी। श्री भगवद्दत्त जी ने उस समालोचना का उत्तर लेख द्वारा न देकर अनारकली समाज में इस संबन्ध में एक व्याख्यान दिया जिस में प्रकृत विषय से सर्वथा दूर २ रह कर मुझे 'अफ्रीका का हाजी' आदि उपाधियों से विभूषित किया और कई असत्य एक साथ कह गए। विचारक जनता ने व्याख्यान पर घृणा प्रकट की तो पण्डित जी ने 'आर्य जगत्' में दो लेख लिखे। वहां भी प्रकरण से बाहर ही बाहर रह कर मुझ पर और श्री स्वा० वेदानन्द जी पर 'अनार्यजुष्ट' कटाक्ष करते रहे। निम्न लिखित लेख उन लेखों का उत्तर है जो 'आर्य जगत्' में मुद्रनार्थ भेजा गया। सम्पादक महाशय ने लौटा दिया कि अधिक लंबा है। साथ ही कृपापूर्वक शिक्षा भी दी कि लेख कैसे लिखा जाना चाहिये। इस शिक्षा के लिये मैं उनका आभारी हूं। यह शिक्षा और उसकी भाषा संपादन कला का कौशल है। संपादक महाशय ने किसी 'केन्द्री भूत स्थान की ओर निर्देश किया है। यदि पण्डित

भगवद्दत्त जी के लेखों को भी उसी 'केन्द्री भूत स्थान' पर 'टिकने' का उपदेश करते तो सम्पादकोचित काम होता।

इसी बीच में इन्हीं स० संपादक महाशय और श्री प० भगवद्दत्त जी ने मिल कर प्रेस के मुख्य कर्मचारी से 'आर्य' के प्रूफ उडाने में एक और कौशल का परिचय दिया है जो सत्य के अनुवर्त्ती यम का केवल उल्लंघन मात्र है। आवश्यकता हुई तो उस पर साधु वाद कहा जायगा। अभी सहकारी संपादक महाशय की संपादन कला का कौशल निदर्शन मात्र पाठकों की भेंट है।

श्रीयुत पण्डित जी,

नमस्ते।

आपका लेख प्राप्त हुआ। लेख बहुत लम्बा होगया है। अत एव इतना लेख छापना कठिन है। आप के लेख का बड़ा लाभ होगा, यदि सारा विवाद इसी केन्द्री भूत स्थान पर टिके।

श्री पण्डित भगवद्दत्त जी ने अपने दोनों लेखों में आप से एक प्रश्न किया है। यदि आप उसका भी स्पष्ट उत्तर इस लेख में लिख भेजें, तो लेख के छापने का लाभ होगा। प्रतीत होता है कि आपने श्री पण्डित भगवद्दत्त जी के उस प्रश्न पर ध्यान नहीं दिया कि क्या कृष्ण द्वैपायन वेद व्यास महाभारत कालीन थे या नहीं? क्या इसी नाम के और व्यक्ति भी पहिले हो चुके हैं, तो सप्रमाण लिखें। इस के साथ ही यह भी लिखें कि कृष्ण द्वैपायन के प्रधान चार शिष्य सुमन्तु, जैमिनि, वैशम्पायन और पैल थे या नहीं? यदि थे तो क्या आप उन को प्रकृत रूपेण महाभारत कालीन ही मानते हैं? क्या नाम के भी और व्यक्ति हो चुके हैं, या नहीं? यदि हो चुके हैं, तो सप्रमाण लिखें।

आशा है आप लेख को संक्षिप्त करके और साथ ही इस प्रश्न का उत्तर देकर कृतार्थ करेंगे, ताकि मैं आप के लेख को अगले सप्ताह प्रकाशित करदूं।

भवदीय

२९—७-२६ देवदत्त शास्त्री विद्याभास्कर

स० सम्पादक

श्रीयुत भगवद्दत्त जी व्याख्यान की वेदी से उतर कर लेख के क्षेत्र में आ गये हैं - यह हर्ष की बात है। जब विषय साहित्यिक हो तो वाद का साधन लेखनी ही को बनाना चाहिये। स्वभावतः पण्डित जी के विचार-प्रकाशन में पहिले की अपेक्षा कुछ संयम आ गया है। यदि लेख में भी श्री स्वामी वेदानन्द जी पर वृथा कटाक्ष न करते और मेरे 'आर्ष शास्त्रों से अपरिचय' पर ओपरा ओपरा उपहास न उड़ा मेरी समालोचना की विद्वत्ता-पूर्वक जांच करते तो विचारकों की दृष्टि में मानास्पद होते। प्रकृत विचार का विषय मेरी योग्यता या अयोग्यता नहीं। मुख्यतया मेरा लेख ही आपके उपहासों अथवा कटाक्षों का आखेट हो सकता है।

पण्डित जी का पहिला आक्षेप मेरे 'हृदय' की 'सरलता' पर है। कुटिलता का प्रमाण दे देना सरलता पर सन्देह करने की अपेक्षा अधिक सौजन्य-सूचक होता। पण्डित जी के लेख पर यह बात घटे या न घटे—इस का विचार पाठक ही करेंगे—साधारणतया वही लोग दूसरों के हृदयों को दूषित ठहराते तथा उन्हें दोहरा तेहरा कर 'अपण्डित' कहने से अपने टिप्पण का आरम्भ करते हैं, जिनके पास तार्किक युक्तियों तथा साहित्यक प्रमाणों का अभाव होता है।

पण्डित जी ने छापे की अशुद्धि दर्शाने में मेरे प्रमाद की ओर संकेत किया है। सो मुझे स्वीकार है। शुद्धि-पत्र पर मेरी दृष्टि नहीं गई। कारण कि इसी कोष के पहिले भाग में अशुद्धियों का संशोधन हाथ से किया गया था। इस बार नई प्रथा चलेगी इसकी मुझे आशा न थी। मैंने निर्दिष्ट अशुद्धि शुद्धिपत्र से उठाई होगी—यह कल्पना किसी की गहरी गवेषणा का फल है, जिसके लिये गवेषक महाशय को साधुवाद है। मैं और अशुद्धियों की ओर संकेत इस लिये नहीं करता कि पण्डित जी स्वयं लिखते हैं कि छापे की भूलें रही हैं और कि वह सब शुद्धि-पत्र में संगृहीत नहीं हुईं यही मेरे अशुद्धि-निर्देश का उद्देश्य था। कोष सरीखे पुस्तकों में छापे ही की अशुद्धियां हो सकती हैं और इस लिये वह अखरती भी हैं।

भूमिका में पण्डित जी की एक धारणा यह थी कि ब्राह्मण ग्रन्थों का संकलन महाभारत-काल में हुआ। इसमें आपका आधार कतिपय महाभारत कालीन व्यक्तियों के नाम हैं। यदि किसी के तोषार्थ क्षण भर के लिये यह मान ही लें कि ये नाम महाभारत कालीनों के हैं तो भी यह मानने में आपत्ति क्या कि उनके प्रवचनों का संग्रह उनके नामों सहित उन के अपने समय के पीछे हुआ। यथा महीदास ऐतरेय ब्राह्मण का प्रवक्ता है। छान्दोग्य में उसका वर्णन भूत काल वाची क्रियाओं से हुआ है। उसे छान्दोग्यकारों का सहवर्ती या, जैसे पण्डित जी लिखते हैं, ११६ वर्ष की छोटी (?) आयु में मरने के कारण एक ओर उनका समकालीन और दूसरी ओर पूर्ववर्ती समझना इतिहास पर मन माना अत्याचार करना नहीं तो क्या है? पण्डित जी इधर तो प्रवक्ताओं को महाभारत कालीन मानते हैं, उधर उनके प्रवचनों के संकलन का समय भी वही महाभारत का समय ही बताते हैं। इनके अपने मतानुसार भी कि याज्ञवल्क्यादि प्रवचनकर्ता महाभारत कालीन हैं, उन महानुभावों के प्रवचन का संग्रह महाभारतोत्तर किसी काल का सिद्ध न होने देने के लिये किसी अन्य स्वतंत्र प्रमाण की आवश्यकता है। वह प्रमाण चाहे अष्टाध्यायी का हो चाहे कौमुदी के सूत्रों (?) का। पण्डित जी! कौमुदी सूत्रबद्ध नहीं।

आपने ऋषि दयानन्द का प्रमाण दिया है कि याज्ञवल्क्य ब्राह्मणों के प्रवक्ताओं में से हैं। इस प्रमाण के न होते भी इतना कथन तो आपका भी स्वीकार था। संस्कृत साहित्य में याज्ञवल्क्यों, व्यासों, जनकों इत्यादि २ की श्रृंखलाएं हैं। याज्ञवल्क्य के महाभारत कालीन होने से सारे या प्रायःसारे ब्राह्मणकार अर्थात् प्रवक्ता भी और संग्रहीता भी महाभारत कालीन हो जाते हैं, इस में प्रमाण? पक्ष आप उठाते हैं तो सिद्ध भी आपको करना होगा। प्रतिपक्ष की सिद्धि तो इसी से हो गई कि जिन व्यक्तियों को आप समकालीन कहते हैं, वह गुरु शिष्य परम्परा में पांच २ सात २ पीढ़ियों के अन्तर पर वर्णित हैं। यही बात सत्यकाम और शाकल्य पर चरितार्थ कीजिये। यदि आपकी कल्पनानुसार दैवराति जनक दो हो सकते हैं तो सत्यकाम जाबाल क्यों नहीं? मेरी सम्मति में जिन जनकों को आप दो बना रहे हैं, वह दो सिद्ध नहीं हुए। इस पर फिर लिखूंगा

शिष्य-परम्परा का अर्थ आप 'सर्वत्र' पीढ़ी नहीं मानते कहीं २ 'स्थान' करते हैं। शब्दान्तर से कल्पनान्तर नहीं हो सकता। "स्थान दो २ मास के भी हो सकते हैं।" 'हो सकना' रिसर्च की भाषा नहीं। इस में प्रमाण चाहिये। वेद वाङ्मय, आप कहते हैं, आपने पढ़ा है;वहां तो छोटी २ जिज्ञासा का उत्तर कई २ वर्ष की तपस्या के पश्चात् मिलता रहा है। कृपया एक उदाहरण तो ऐसा लाइये जहां किसी आचार्य्य के पास दो मास रह कर कोई उनकी शिष्य परम्परा में स्थान पा गया हो।

आपने 'Mushroom' आचार्य्यों की बात यों ही चलाई। मेरे लेख का भाव नहीं तो शब्दार्थ ही ध्यान में रख लेते। ब्राह्मण के प्रवचन का उपक्रम सृष्टि के आरम्भ में हुआ, प्रथम प्रवक्ता हुए ब्रह्मा और मनु। फिर आपके लेखानुसार प्रत्येक काल में हज़ारों आचार्य्य होते चले आये। क्या इन हज़ारों में से किसी ने ब्राह्मणों का प्रवचन भी किया? किया था तो सब प्रवचन-कर्ताओं को महाभारत कालीन सिद्ध करने का प्रयोजन? बीच के किसी प्रवक्ता का नाम-निर्देश ही कर देते। या तो सृष्टि के आरम्भ के अनन्तर ही महाभारत काल आ गया होगा या ब्रह्मा और मनु के पीछे सब ब्राह्मणों के प्रवक्ताओं तथा संग्रहकारों ने महाभारत काल ही में जन्म लेने की ठान ली होगी। इसमें से आपका पक्ष कौन सा है?

इन सब महानुभावों को महाभारत कालीन ठहराने के लिये श्री पण्डित जी को कितना प्रपंच रचना पड़ा है! महीदास की ११६ वर्ष की आयु को

छोटा (?) ठहरा दिया है। प्रमाणों में प्रमाण दिया है महाभाष्यकार का कि इस समय का बड़ा वय १०० वर्ष है। पूर्वापर पढ़ लेते तो यह प्रमाण कुछ भी सिद्ध करने को न देते। शिष्य-परम्परा में स्थान पाने के लिये अध्ययन की अवधि रख दी है दो मास। सृष्टि के आरम्भ के दो आचार्यों के नाम ले कर फिर झट महाभारत काल में शेष सब आचार्यों की सृष्टि की है। यह है इतिहास का वह स्वल्प ज्ञान जो मुझे और मेरे गुरु को प्रदान किया है। इस गवेषणा-भाण्डार से जो प्राप्त हो जाये अच्छा है। धन्यवाद !

एक निवेदन अन्त में किये देता हूं। आपने मेरे साथ सारी महात्मापार्टी पर आक्षेप किया है। इस में अपनी पार्टी का मत जान लीजिये। यदि एक साहित्य के प्रश्न को पार्टी का प्रश्न बनाना आप के सब सहकारियों की सम्मति में युक्ति-संगत हो तो मैं भी इस पर विचार कर लूंगा। विचार मेरा और आप का ही रहे तो अच्छा है।

ऊपर का लेख लिखा जाने के पीछे 'आर्य जगत्' के दूसरे अंक में श्री प० भगवद्दत्त जी का दूसरा लेख पढ़ा। इस के अन्त में किसी और लेख की प्रतिज्ञा नहीं की गई। इस लेख में एक आध बात के अतिरिक्त कुछ विचारणीय भी नहीं है। अतः अलग उत्तर देने के स्थान में इस लेख के सम्बन्ध में यहीं एक टिप्पणी बढ़ा देना पर्याप्त होगा।

महीदास की आयु पर आप का कहना यह है कि महाभाष्य का प्रमाण अन्य प्रसंग का है। किसी प्रसंग का हो, जब आपने उसे एक बार स्वीकार किया तो दूसरी जगह अस्वीकार नहीं कर सकते महाभाष्यकार अपने समय के चिरंजीवी पुरुष को १०० वर्ष से अधिक का नहीं मानते, यद्यपि अपने से पूर्व समय के संबन्ध में उन्होंने वह बात लिखी है जो आप कभी न मान सकेंगे। महीदास की आयु को आप छान्दोग्यकारों की अपेक्षा कुछ अल्प कहते हैं। छान्दोग्यकारों ने तो छांदोग्योपनिषद् ५। १६। में जहां महीदास का वर्णन आया है, और उस का आयु ११६ वर्ष बताई गई है, प्रकरण गत विद्या के जानने वाले को वर दिया है कि वह ११६ वर्ष जिवेगा। 'प्र ह षोडश वर्षशतं जीवति य एवं वेद' यदि छान्दोग्यकारों की दृष्टि में यह आयु छोटी होती तो वह इस का शाप देते, वर नहीं।

ऋषि दयानन्द के मत में 'त्र्यायुष' का प्रकृत वाद में कहीं भी प्रसंग नहीं है। तीन चार सौ वर्ष की आयु लिखते हुए आप के मन में ऋषि का यह सिद्धान्त

होगा, मैंने उस पर आक्षेप नहीं किया। मैं तो आप के अनुसंधान विभाग का यह उद्देश्य सुनता रहा हूं कि ऋषि के अभिमत मन्तव्यों का प्रचार करना और उन की पुष्टि में प्रमाण देना। आप के लेख से पता लगा कि ऋषि की सम्मति के ज्ञान का भार आप पाठकों पर डालते हैं। तो प्रमाण क्या उन अपने विचारों पर देते हैं जो ऋषि के अनुकूल न हों। पण्डित जी! आप झुंझला गये हैं अपने लेख को फिर पढ़िये। इधर आप के लेखानुसार आप के सब विचार ऋषि के अनुकूल हैं। उधर अनुकूल विचारों का उल्लेख अथवा उनका प्रमाणों द्वारा पोषण आपको अनावश्यक ही नहीं, दूभर प्रतीत होता है। तो उल्लेख किस का करते हैं और प्रमाण किस की पुष्टि में देते हैं?

भ्रमोच्छेदन सम्बन्धी भ्रम उच्छिन्न तब हो जब आप उस पर कुछ लिखें। खोखली भर्त्सना ग्राम-सिंहों का गुर्राना है।

सम्पादक की अनुपस्थिति में इस लेख में अशुधियां रही हैं। उनका संशोधन यहां किया जाता है।

पृष्ठ	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
३१	२५	मुद्रनार्थ	मुद्रणार्थ
३२	२	काम	न्याय
,,	४	मुख्य	किसी
,,	२४	साहियिक	साहित्यक

* स्वर्ग संलाप *

आर्य महिलाओं से अपील

(श्रीमती सरला देवी)

गत कई वर्षों से भारत वर्ष पारस्परिक कलह का अड्डा बना हुआ है। हर तरफ़ विद्वेष की चिनगारी सुलगती दिखलायी देती है। सब अपने अपने अधिकारों की रक्षा को तुले हुए हैं। पर मुसलमानों ने तो अपने अधिकारों की रक्षा करने का ढोंग रचकर बड़ा भारी उपद्रव खड़ा कर दिया है। वे अपनी धार्मिक संकीर्णता के कारण प्रत्येक के धार्मिक अधिकार हड़प करना चाहते हैं। तभी तो उन्होंने अपनी अभीष्ट-सिद्धि के लिए सारी शक्ति लगा दी है। यद्यपि

उन्होंने सभी धर्मावलम्बियों को खुला चैलेंज दिया है पर उन का दांत आर्य-समाज पर तो विशेष रूप से है। क्योंकि आर्य समाज उन की निरंकुशता और स्वेच्छाचारिता की सदैव अवहेलना करता रहा है। तभी तो आर्य समाज उन को एक आंख नहीं भाता हमेशा कांटे की तरह खटकता है।

इस लिए उन्होंने अपना रास्ता साफ़ करने के लिए आर्य समाज पर खुल्लमखुल्ला आक्रमण किये हैं। कई प्रकार के षड़यंत्र रचकर और गवर्नमेंट के नाज़ायज़ ढंग से फायदा उठाकर उन्होंने कई स्थानों पर नगर कीर्तन बन्द कराये हैं शतरंज की चाल चलने वाली गवर्नमेण्ट भी उन की पीठ ठोंकती है। क्योंकि इस प्रकार की रीति से ही गवर्नमेण्ट का लाभ है।

इस लिए अपने अधिकारों की रक्षा करने और इस नाजायज़ करतूत के लिए कौन ऐसा आर्य समाजी होगा जिस का ख़ून न उबल उठा हो। सार्वदेशिक सभा ने घोषणा निकाली है उस के लिए प्रत्येक आर्य वीर का कर्त्तव्य है, कि वह अपने स्वत्व की रक्षा में मर मिटे। इसी विषय के सब आर्य समाजों ने प्रस्ताव पास कर के प्रान्तीय तथा भारतीय सरकार को चेतावनी और सार्वदेशिक सभा को विश्वास दिलाया है।

प्यारी बहनों और पूज्य माताओं! क्या हम अपने अधिकारों को इस प्रकार नष्ट होते देखती रहेंगी। नहीं, हमें भी अपने भ्राताओं का अनुकरण करके कर्म क्षेत्र में उतरनो पड़ेगा। हम सब भो स्वत्व रक्षा में जूझ मरेंगी। जहां हमारे भाई इस अनधिकार चेष्टा के ख़िलाफ़ आवाज़ें निकालेंगे वहां क्या हम उन का मुंह ताकती रहेंगी? कभी नहीं। हमें भी आगे बढ़ कर यह घोषणा करनी पड़ेगी, कि आज आर्य महिलायें अपने स्वत्व की रक्षा के लिए अपना ख़ून बहाने के लिए तैयार हैं।

आओ! सार्वदेशिक सभा द्वारा घोषित घोषणा का हम भी अनुमोदन करें। आशा है मेरी यह अपील बहरे कानों पर न पड़ेगी और सब माताएं और बहिनें अपने अपने भाव प्रगट करके पुरुषों का उत्साह बढ़ायेंगी।

हिन्दू स्त्री की वीरता

२५ डाकुओं का मुकाबला

बसीरहार के राजबाड़ी गांव की खबर है कि शनीवार की आधी रात के लगभग २५ हथियारबन्द डाकुओं ने राजवाड़ी गांव के मण्डल रामनाथ के गाँव पर

आक्रमण किया। जब लूट होरही थी तो उस समय रामनाथ की विधवा भावज ने एक छुरी लेकर डाकुओं का सामना किया। दुष्टों ने स्त्री पर बेरहमी के साथ हमला किया ; स्त्री अस्पताल में है और उस की अवस्था नाजुक है।

स्त्री की वीरता

कोलोरेडा से आनेवाली एक स्त्री के विषय में समाचार प्रकाशित हुआ है कि उस ने अगणित साँपों से घिर जाने पर दो घन्टे घमसान लड़ाई की और एक साधारण डंडे की सहायता से १४० साँप मार डाले।

मारवाड़ी महिला की वीरता

मुगलसराय से कलकत्ता आनेवाली पैसेंजर ट्रेन के जनाना डब्बे से एक मारवाड़िन अपने बच्चे के साथ जारही थी बर्दवान स्टेशन पर तीन पछैयों ने उस डब्बे में चढ़कर गहना आदि छीन लेना चाहा। महिला ने चोरों का मुकाबला किया। लड़ते २ सब गाड़ी के दरवाजे पर आगए जिस में से ३ चोर और वह महिला गाड़ी के नीचे आगई और सब कट कर मर गए।

(मनोरमा)

देवी की योग्यता

श्रीमती मनजेलाबाई महता ने इस वर्ष भारतीय गान-विद्या के विशेष विषय में बी ए. की परीक्षा दी और उस में सफल हुई। यह प्रथम देवी हैं जिन्होंने गान-विद्या में डिग्री प्राप्त की है। भारतीय महिला विद्यापीठ (Indian Women's University) का उपाधि-वितरणोत्सव भी इन की उपस्थिति के कारण विशेषता लिए हुए था।

यह देवी विधवा हैं। इन की माता ने समाज की महती सेवा की है। उन्हें बरोदा राज्य की ओर से एक पदक पुरस्कार-रूप में मिला है। यह एक देवी हैं जिन का नाम बड़ोदा आनर्ज में लिखित है॥

(स्त्री-धर्म)

———

❀ पूर्व जन्म का ज्ञाता ❀

बरेली में एक ४॥ वर्ष का लड़का

बरेली की सिविल लाइन्स से बा० ककई नन्दन सहाय बी. ए. एल. एल. बी. ने समाचार पत्रों में निम्न आशय का एक पत्र छपाया है :—

मेरा लड़का जगदीश चन्द्र करीब ४। वर्ष का है। यह अपने पूर्व जन्म का वृत्तान्त बिलकुल सिलसिलेवार बताता है। यह अपने पिता का नाम बाबू जी पाण्डेय और उनका निवासस्थान बनारस बताता है। यह बाबू जी के मकान का जिक्र करता हुआ एक बड़े भारी फाटक, बैठक खाना और जमीन के नीचे के चोर कमरे का जिक्र करता और बताता है कि इस कमरे के दीवार में एक लोहे की सन्दूकची भी जड़ी हुई है। जिस अहाते में बाबू जी संध्या-समय बैठते हैं। यह उस का भी हाल बताता है और कहता है कि बाबू जी तथा जो लोग वहां बैठते हैं सब भङ्ग पीते हैं। बाबू जी मालिश कराते हैं और स्नान करने तथा मुंह धोने से पहले अपने बदन तथा चेहरे को मट्टी लगा देते हैं लड़का बताता है कि दो मोटरें और एक फिटन बाबू जी के है जिस में दो घोड़े जोते जाते हैं। बाबू जी के दो पुत्र और एक स्त्री थी, पर सब परलोक वासी हो चुके। बाबू जी अब अकेले हैं। लड़का बहुतसी घरू और गुप्त बातें भी बतलाता है जिन का यहां जिक्र करना मैं उचित नहीं समझता।

मैं न तो कभी बनारस गया हूं और न मेरी स्त्री ही कभी वहां गई थी। मैंने बाबू जी का नाम पहले कभी नहीं सुना। बरेली के निम्न लिखित रईसों ने लड़के से बातचीत करके उपर्युक्त बातों के बारे में अपनी शंकाओं का समाधान कर लिया है:—

१ सैयद यूसुफ अली बी. ए. एल. एल. बी.
२ बा० ब्रह्म नारायण वकील
३ ,, मुकुट बिहारी लाल वकील
४ ,, राम स्वरूप शर्मा ,,
५ ,, छैल बिहारी कूपर ,,
६ ,, जय नारायण चौधरी ,,
७ डाक्टर श्याम स्वरूप सत्यव्रत

बीस फुट का अजगर

यह अजगर हाल ही में मलाया रियासत सिंहापुर से पकड़ा जा कर लंडन की पशुशाला में भेजा गया है। अजगर की लम्बाई २० फुट है। पशुशाला के पिंजड़े में उठाकर लेजाने में आठ आदमियों की आवश्यक्ता पड़ी थी। पाठक! इसी से इस के वज़न का अनुमान करलें।

मोटर के खड़ाऊं पर २२ मील प्रति घंटा

जर्मनी में जीमार्ट नाम के एक विख्यात इन्जिनियर हैं उन्हों ने एक विलक्षण खड़ाऊं निर्माण किये हैं। ये बड़े हल्के बनाए गए हैं और गैस के प्रभाव से चलते हैं। खड़ाऊं में पहिए लगे हैं जो मोटर की शक्ति से अपने आप घूमते हैं। १८ से २२ मील तक प्रति घन्टे दौड़ने की ६ घन्टे की शक्ति के लिए कोई आठ आने प्रति घन्टा के हिसाब से खर्च पड़ता हैं।

एक वृद्ध की शक्ति

न्यूयार्क में मि० जे. एच. हाकिंग नामी एक आदमी है जिस की आयु ७० वर्ष की हो चुकी है वह एक दिन में अब भी ७० मील पैदल चल सकता है।

बम्बई में वैश्याओं को सज़ा

आम सड़क पर लोगों को फसाने की चेष्टा करने के कारण आठ वैश्याओं को सेकन्ड प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट ने आठ २ दिन की जेल की सजा दी। बम्बई की चौकसी कमेटी बम्बई से वैश्या वृत्ति के कलंक को बिल्कुल मिटा देने के लिए भरसक चेष्टा कर रही है।

महान् तैराक

जापान में एक सब से प्रसिद्ध तैराक है, जिस का नाम निशिमुरा है। उस का क़द ठिगना, शरीर स्पात की तरह मज़बूत और साहस अति आश्चर्य जनक है। वह भीषण हाहाकारमय सागर में बिलकुल निडर हो कर बीसों कोस तक तैरता चला जाता है। वह कभी मांस नहीं खाता। हां शाग भाजी तथा फल खूब खाता है।

कपड़े की नौका

जर्मनी की राजधानी बर्लिन में कपड़े की भी नौकाएँ चलती हैं। उन की बनावट विचित्र प्रकार की है। मोटे मोमजामे के लम्बे चौड़े थैले में पम्प से हवा भर कर जल में छोड़ देते हैं डूबने का कोई भय नहीं रहता। जल से बाहर ला कर हवा निकाल देने पर एक आदमी सुगमता से उसे कन्धे पर उठा कर ले जाता है।

सम्पादकीय

पचीस जुलाई

पाठकों को विदित है कि २५ जुलाई का दिवस आर्य धर्म संरक्षिणी सभा की ओर से सरकार की उस अनीति के विरुद्ध प्रतिवाद करने के लिए नियत किया गया था जिस के उदाहरण रूप मुसलमानों की बढ़ती हुई अनुचित मांगों का पक्षपोषण करते हुए मसूरी, हापुड़, मुहीम इत्यादि स्थानों पर आर्य समाजों को नगर कीर्तन निकालने के धार्मिक अधिकार से वंचित किया गया है। प्रायः सभी स्थानों की आर्य समाजों ने उक्त सभा की आज्ञा का पालन करते हुए सम्पूर्ण आर्यों (हिन्दुओं) की सम्मिलित सभाओं की आयोजना की और उन में अपने धार्मिक तथा नागरिक अधिकारों की रक्षा के लिए प्रस्ताव पास किए। नीचे कुछ स्थानों के नाम दिए जाते हैं जहां आर्य समाजों ने प्रतिवाद दिवस को भली भांति मनाया। इन के अतिरिक्त अन्य अनेक स्थानों पर भी सभाएं हुईं जिन के समाचार पत्रों में छप चुके हैं:—

१ वच्छोवाली लाहौर, २ गवालमण्डी लाहोर, ३ लाहौर छावनी, ४ चावड़ी बाज़ार देहली, ५ चून्यां, ६ मुलतान, ७ भूपालवाला, ८ सनूर (पटियाला), ९ करतारपुर, १० सियालकोट, ११ लायलपुर, १२ अषरा, १३ हैदराबाद (सिंध) १४ मेरठ, १५ कलकत्ता, १६ गांगोह, १७ बरेली १८ कमालिया, १९ जगराँव, २० फतहपुर बलोच, २१ नोशहरा, २२ पनवां (अमृतसर) २३ कपूर्थला, २४ फीरोज़पुर, २४ फालिया, २६ महतपुर, २७ रीवाड़ी, २८ मोरिण्डा, २९ नाभा, ३० मिन्टगुमरी, ३१ किला सोभासिंह, ३२ चोटी ३३ जामपुर, ३४ कोइटा, ३५ फलहरा, (जयपुर) ३६ कालका, ३७ रामां मण्डी ३८ सरगोधा, ३९ डलहौज़ी, ४० रमदास, ४१ कादियां, ४२ मजीठा, ४३ जलालपुर पीरवाला, ४४ बटाला, ४५ विजनौर, ४६ रानी का तालाब फीरोज़पुर, ४७ चौड़ा बाजार लुधियाना, ४८ गुजरात, ४९ पेशावर, ५० रोहतक, ५१ हलावर, ५२ ननकाना साहिब, ५३ ऊधमपुर, ५४ शर्कपुर, ५५ आदमपुर, ५६ जंडयाला, ५७ गोलटा, ५८ चकझुम्बरा, ५९ प्रागपुर, ६० सनावां, ६१ रापकोट, ६२ पत्तोकी, ६३ अमृतसर, ६४ अंबाला सदर, ६५ भोसावल (बम्बई) ६६ घसीटपुर, ६७ शाहदरा (देहली) ६८ गंज (मुरादबाद,) ६९ मियांवाली, ७० गुरदासपुर, ७१ गुरुकुल मटिण्डू, ७२ सालावन, ७३ कसौली, ७४ मिट्ठाटिवाना, ७५ भिवानी, ७६ किला गुजरसिंह लाहौर ७७ ज्वालापुर, ७८ जडांवाला, ७९ आग्रह इत्यादि।

श्याम देश में वैदिक-धर्म का प्रचार

महाशय श्री० कृष्ण मन्त्री आर्य समाज बंकोक हमें पत्र द्वारा निम्न आशय के समाचार देते हैं—कि बंकोक में लगभग १० वर्ष से आर्य समाज स्थापित है। समाज के सदस्य निर्धन होते हुए भी समाज को उत्साह से चला रहे हैं। इस वर्ष श्रीयुत महता जैमनि जी बी० ए० प्रचारार्थ वहां पधारे हैं। महता जी ने भिन्न २ सम्प्रदायों के धर्म-स्थानों में व्याख्यान दिए जो उपस्थित जनता ने बड़ी उत्सुकता से श्रवण किए। महता जी ने अंग्रेज़ी भाषा में भी कई प्रभावशाली व्याख्यान दिए। वहां के महाराज के ज्येष्ठ भ्राता के साथ उन्होंने विशेष रूपेण वार्तालाप किया। उन्होंने श्रद्धापूर्वक ४०) रुपय महता जी को भेंट किए।

हमारी दासता की पराकाष्ठा

पाठक वर्ग! पराधीन होने के कारण हमारे देशवासियों का विदेश में किस प्रकार घोर तिरस्कार किया जा रहा है इस का निदर्शन निम्न घटना से हो जाएगा, जिस के विषय में "हिन्दू" में एक बरलिनस्थ संवाददाता का निम्न आशय का पत्र छपा है।

हम वर्ग (Hamburg) निवासी हर्रजान हेज़नबेक (Herr John Hazen beck) नामक एक जर्मन महाशय पशु तथा पक्षियों का जगत् प्रसिद्ध व्यापारी है। उसने हाल ही में "भारतीय प्रदर्शनी" की आयोजना की है। उसने २०० के लगभग अत्यन्त दरिद्र एवं सरल भारतीय अपने साथ रखे हुए हैं और पैरिस तथा मारसेलीज में उन की प्रदर्शनी रचा कर भारत की सभ्यता तथा संस्कृति को दर्शाया है। इस में वह सफल हुआ। तब यही खेल बर्लिन में जुलाई के प्रारम्भ में खेला गया। भारतीयों को चौपाओं की नवीन जाति के सदृश एक चिड़िया घर में ठहराया गया और बड़े २ विज्ञापनों द्वारा इस घटना को उद्घोषित किया गया। उन में बहुतों को तो २०) रुपया मासिक मिल रहे हैं और ५०) से ऊपर तो किसी को भी नहीं मिलते। उन की स्वतन्त्रता को अपहरण किया गया है और वे अपने साथ किए गए वर्ताव के विषय में कुछ कहने से घबराते हैं।

इण्डियन एसोसिएशन के एक प्रतिनिधि ने उन से संवाद कर ही लिया। उन में से कुछ ने अपने दुःखों की राम कहानी कह डाली। उन्होंने बतलाया कि उन के साथ पशुओं सदृश व्यवहार किया जाता है, पहरने को बहुत थोड़ा कपड़ा मिलता है और रहने को अंधेरी कोठरियां। विदेश में जितने कम वस्त्र ओढाए जाएं, जनता को उतना अधिक आकर्षण होता है।

इण्डियन एसोसिएशन ने जर्मन समाचार पत्रों में इस का प्रतिवाद किया। फलस्वरूप कुछ जर्मन पत्रों ने उन के पक्ष का समर्थन किया और एक ने इस व्यवहार की निन्दा करते हुए इस बर्ताव को अत्यन्त पतित और भारतीयों का अपमान-कारक ठहराया।

बाजा और मसजिद

बंगाल मुसलम लीग ने मसजिदों के सामने बाजे वाली समस्या पर एक उत्तम घोषणा प्रकाशित की है। इस सत्साहस पर हम लीग को साधुवाद कहते हैं। घोषणा का सार यह है कि बाजों की उलझन केवल आधुनिक उपज है और जहां तक गैर-मुसलमानों का संबन्ध है इसे कदापि मज़हबी मुआमला नहीं बनाना चाहिए। हम नहीं जानते कि बङ्गाल सरकार का अब क्या वक्तव्य होगा क्योंकि उस ने पूर्व-रिवाज के आधार पर मसजिदों के सन्मुख बाजा बजाने की मनाही की हुई है।

श्रीमान् कुतुबुद्दीन अहमद आनररी मन्त्री बङ्गाल प्रान्तीय मुसलम लीग ने भी पत्रों में एक चिट्ठी प्रकाशित कराई है जिसे हम संक्षेप से पाठकों के विनोदार्थ दिए देते हैं। वह लिखते हैं "मेरी यह नम्र प्रार्थना है कि अन्य मतावलम्बियों के सम्बन्ध में बाजे को मज़हबी मुआमला बनाना उचित नहीं है। हमारे पूज्य पैगम्बर ने स्वयं ईद के उत्सव पर मसजिद के भीतर बाजा बजाए जाने की स्वीकृति दी थी और हजरत आयशा से उस दृश्य को अवलोकन करने को कहा था (सही बुखारी)। उन्होंने यमन के गैर-मुसलम दूत (एलची) का मसजिद में स्वागत किया और उसे वहीं ठहरने की आज्ञा दी। कस्तनतुनिया (Constantinople) की खलीफतुल-मुसलमीन प्रति शुक्रवार (जुमा) को सलानी अलेक रस्म को अदा करने के लिए तुर्की बाजे सहित सेंट सोफिया मसजिद में जाया करते थे। महमेल लोग मक्का की यात्रा के लिए मिसरी (Egyptian) बाजों सहित आया करते थे।

मुसलमानी राज्य में देहली की जुमा मसजिद के सामने रामलीला हुआ करती थी और शाही खानदान के लोग मसजिद में इकत्र हो कर लीला के नायक के गले में पुष्प-मालाएं डाल कर सत्कार किया करते थे।

कलकत्ता में एक मुसलमान की बरात बाजे बजाती हुई उस मकान से चली जिस के आंगन में ही एक मसजिद थी। इस लिए मेरी तो यह सम्मति है कि इस का शरैयत के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। स्वार्थी लोगों ने अपना उल्लू सीधा करने के लिए एक नए ढंग का आविष्कार किया है"। धर्मेन्द्र

साहित्य-समीक्षा

सत्यार्थ प्रकाश (संस्कृत)

१. मिलने का पता—श्रीमती सार्वदेशि कार्य्य प्रतिनिधि सभा देहली। मूल्य २।)

ऋषि दयानन्द सरस्वती कृत ग्रन्थों में सत्यार्थ प्रकाश एक अनुपम ग्रन्थ रत्न है। ऋषि ने इस में वैदिक सिद्धान्तों का जिस सुन्दरता से संनिवेश किया है, वह अपनी मिसाल है। उस के विषय में कुछ कहना सूर्य्य को दीपक दिखाना है। ऋषि ने कई भद्र पुरुषों की प्रेरणा से यह ग्रन्थ लोक भाषा में लिखा था। चिरकाल से इस के संस्कृत भाषा संस्करण की आवश्यकता का अनुभव हो रहा था। ऋषि जन्म शताब्दी महोत्सव के उपलक्ष में सा० सभा की ओर से कई ग्रन्थ तय्यार कराए गए थे। उन में एक सत्यार्थ प्रकाश का अनुवाद भी है। अनुवाद अच्छे परिश्रम से किया गया प्रतीत होता है। मुद्रण आदि भी साधारणतया अच्छे हुए हैं। कहीं अनुवादक महाशय ने स्वातन्त्र्य वर्त्ता है, जो ऐसे ग्रन्थ के अनुवादक को चाहिए नहीं। दो उदारण पर्य्यप्त होंगे—

ऋषि ने सत्यार्थ० पृष्ठ १४, पंक्ति १ (१४ वीं बार) में 'न्याय' शब्द को 'णीञ् प्रापणे" धातु से सिद्ध किया है, किन्तु अनुवादक जी ने नि पूर्वक 'इण् गतौ" धातु से लिखा है। कदाचित् अनुवादक जी ने पौराणिक पण्डितों के आक्षेपों से डर कर ऐसा किया है, किन्तु उन्हें ऐसा करने का कोई अधिकार नहीं था, वे अपना मत मूल टिप्पणी में दे सकते थे। किन्तु यह न समझ लिया जाए, कि ऋषि ने अशुद्ध लिखा है। अपितु ऋषि ने सर्वथा ठीक लिखा है—ऋषि के सामने "अध्यायन्यायोद्याव संहाराधाराश्च" (पा० ३. ३. ११२) पाणिनि का सूत्र था। इस सूत्र में पाणिनि जी न्याय शब्द का 'णीञ् प्रापणे' से निपातन कर रहे हैं।

सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ ८५६, पंक्ति १५ तथा १७ में मुद्रण की भूल से "वैराग्य" के स्थान में यन्त्रालय के भैरवों की लीला से 'विवेक' छप गया है। इस से अनुवादक जी को कदाचित् भ्रान्ति हुई है, और अत एव उन्हों ने 'अनुवाद' पृष्ठ २०७, पंक्ति ८५ में "(अत्र शास्त्रान्तर प्रसिद्धं साधनचतुष्टयम्)" और उस से अगली पंक्ति में "द्वितीयं साधनं वैराग्यम्" न लिख कर 'प्रथमं साधनं विवेक:'

और पृष्ठ २०८ को टिप्पणी 'अस्य व्याख्यानं लेखक प्रमादात् त्रुटितं भवेत्" लिखी है।

इस प्रकार की कई एक भूलें और भी हैं, द्वितीयसंस्करण से पूर्व यह आर्य विद्वानों को दिखा दिया जाए, तो इस की सारी त्रुटियां दूर हो सकती हैं परन्तु इन साधारण भूलों के होते हुए भी ग्रन्थ उपादेय है। प्रत्येक आर्य पुरुष को कम से कम इस की एक एक प्रति अवश्य लेनी चाहिए, और अपने समीपवर्त्ती "भाखा" कह कर आर्य भाषा का तिरस्कार करने वाले संस्कृतज्ञ पण्डित को भेंट देनी चाहिए, ताकि वह ऋषि अवदात विचार से परिचय प्राप्त करके अपने विचारों को परिष्कृत कर सके।

वेदानन्द तीर्थ

२. "हिन्दू-उद्धारक"

लेखक वा प्रकाशक —डाक्टर मनूलाल शर्मा मैडिकल आफीसर, जलाली जिला अलीगढ मूल्य ।॥)

पुस्तक के लेखक अपने को पक्का सनातन धर्मी कहते हैं परन्तु श्री० स्वामी दयानन्द जी के प्रति अगाध श्रद्धा का परिचय देते हैं। प्रस्तुत पुस्तक का विषय इसके नाम से प्रकट है। इस पुस्तक में रोचक ढंग से हिन्दुओं की वर्तमान अवस्था का चित्र खींच कर उसको सुधारने के अत्यावश्यक साधनों का विशद वर्णन किया गया है। अछूतोद्धार और शुद्धि के प्रेमियों के लिये अङ्क इकत्र किए हैं। पुस्तक उपयोगी है। पुस्तक उर्दू तथा हिन्दी दोनों लिपियों में छपी है यद्यपि हमारे पास उर्दू की प्रति ही आई है॥

३. अष्टांगयोग प्रकाशः—लेखक श्री० बख्शीराम कल्पक,

इस पुस्तक में लेखक ने प्रश्नोत्तर रूप में योग के अंगों की विशद व्याख्या की है। इस के अध्ययन से अत्यन्त लाभ हो सकता है। जनता के लिए अत्युपयोगी है। पुस्तक उर्दू भाषा में है। शताब्दी संस्करण का मूल्य १) है।

मिलने का पताः—लाजपतराय पृथ्वीराज साहनी ताजरान कुतब लाहौर।

४. "प्रेम भजनावली"—लेे०—श्रीमती परिव्राजकाचार्या स्वामी नित्यानन्द जी, प्रकाशक श्री० ठाकुर दीनानाथ जी गांधी फारेस्ट आफिसर इकौना, मूल्य १)

प्राप्तिस्थानः—दौलतराम एण्डसन्स ताजरान, कुतब लाहौर

प्रस्तुत पुस्तक में भक्तिभाव से रंजिता एक सन्यासिन के हृदयोद्गार हैं। अच्छे भावों से सने कई भजन हैं जो स्त्री-जाति के हितार्थ रचकर प्रकाशित किए गए हैं। कुछेक भजनों में पौराणिक भाव विद्यमान हैं। छपाई सुन्दर है। ३६० पृष्ठ की पुस्तक का १) रुपया मूल्य अत्यल्प है।

५. 'तार-दर्पण'

लेखक तथा प्रकाशकः---सेठ रामस्वरूप बसिाऊ (जयपुर), मूल्य ।)

प्रस्तुत पुस्तक का संग्रह भारत के व्यापारियों को तार लिखना वांचना और बात-चीत के जरूरी शब्द शीघ्र सिखाने के लिए किया गया है।

व्यापारियों के काम की चीज है। यह चौथी वार छपी है। इसके ६८ पन्ने हैं।

६. पथ प्रदर्शक अर्थात् वैद्य भूषण,

प्रकाशक तथा समपादक वैद्यराज धर्मदेव कविभूषण वैद्यरत्न लाहौर, वार्षिक मूल्य १)

इस पत्र में वैद्यक सम्बन्धी खोज पूर्ण लेख प्रकाशित होते हैं। आयुर्वेद का प्रचार इस का उद्देश्य है। वैद्यक साहित्य के प्रेमियों को इसे अपनाना चाहिए।

७. मार्तण्ड

सम्पादकः—व्याख्यान वाचस्पति राज्यरत्न आत्माराम जी अमृतसरी

प्रकाशकः—व्यवस्थापक वेदभाष्य कार्यालय कारेली बाग बड़ोदा, वार्षिक मूल्य २॥)

पत्र का सम्पादन एक अनुभवी आर्य विद्वान् करते हैं। वेद का सरल तथा वैज्ञानिक टिप्पणी युक्त भाष्य करके घर घर में पहुंचना इस पत्र का मुख्य उद्देश्य है। वैदिक संस्कारों तथा बैदिक संस्कृति पर किए गए आक्षेपों का समाधान करके उसका पुनरुद्धार करना भी इस का लक्ष्य है। हम अपने नए सहयोगी का हार्दिक स्वागत करते हैं और जनता से इसे अपनाने का अनुरोध करते हैं विशेषतया आर्य पुरुषों को इस के ग्राहक बन कर लाभ उठाने की प्रेरणा करते हैं।

८. 'आर्य कुमार'—सम्पादक श्री० प० नन्दकिशोर विद्यालंकार (प्रतिष्ठित) तथा श्री० प० विश्वाम्भरप्रसाद शर्मा विशारद, वार्षिक मूल्य ३)

पताः—"आर्य कुमार" माहेश्वरी प्रेस ६ कन्नूलाल लेन कलकत्ता,

भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् का मुख्य मासिक पत्र है। जुलाई मास के अंक कई सुन्दर मनोरम चित्रों से सुशोभित है। उच्च कोटि के कई विद्वानों के लेख इस की शोभा को दुगना कर रहे हैं। आर्य कुमारों के लिए हर प्रकार की उपयुक्त सामग्री का संचय इस में हुआ है। सब आर्य कुमारों को इस का ग्राहक बनना चाहिए।

९. "अलंकार तथा गुरुकुल समाचार"—

मुख्य संपादक प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, वार्षिक मूल्य ३)

स्नातक मण्डल गुरुकुल कांगड़ी का मुख्य मासिक पत्र है। इस में वैदिक विद्वानों के मार्मिक लेख रहते हैं जो अध्ययन से ही सम्बन्ध रखते हैं। कविताएँ भी उत्तम होती हैं। भाषा सुन्दर और गंभीर होती है। वेद के प्रेमियों को इस का ग्राहक बन कर लाभ उठाना चाहिए।

धर्मेन्द्र

आर्य्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, गुरुदत्तभवन लाहौर।

आय व्यय मद्धे मास ज्येष्ट १९८३ : १०२

निधि	बजट आय	इस मासकी आय	इसवर्ष की आय	बजट व्यय	इस मास का व्यय	इस वर्ष का व्यय
कार्यालय वेदप्रचार				६२०)	१२३-)॥।	३६०॥-)॥
वैदिक पुस्तकालय	४००)	४०।)	८०।)	२५००)	१६६=)	५०१।=)
आर्य	५०००)	२०२।)	३८६≡)	५००)	१८३≡)।	५४०॥≡)।
चार आना निधि	२५००)	४३)	१०४॥)			
ट्रैक्ट	२००)	॥=)	३=)			
उपदेशक वेतन				२१०८०)	१४७४≡)११	३९०६॥)५
मार्ग व्यय				७०००)	६०४॥)॥	१७१४=)॥।
बीमा जीवन				१७०)		३७॥≡)।
वैदिक कोष		-३४५≡)		३००)	४५॥।≡)	१७५॥≡)
योग		-५६-)	५७४-)		२६००=)५	७२६७)२
वेद प्रचार	२५६६५)	१२०७।≡)१०	३८५२।)५			
मुख्य कार्यालय सभा				६६००)	४२९॥।=)॥।	१४१२।-)।
दशान्श	२५००)	६६।)॥।	१८९१≡)॥।			
दायाद्य निरीक्षण				१४६२)	६१≡)	२०५॥।)।
लेखा निरीक्षक शुल्क				१००)		१३॥=)
योग		६९।)॥।	१८६१≡)॥।		४६१-)॥।	१६२८॥।≡)॥
लेखराम स्मारकनिधि	५००)	१२॥।)	४८)			
उपदेशक वेतन				२२३४)	१६६॥)	४४४॥≡)१
मार्ग व्यय				४००)	८॥)	८६॥=)।
गुज़ारा विधवा पं० तुलसीराम				१२०)	१०)	३०)
,, ,, वज़ीरचन्द				६६)	८)	२४)
योग		१२॥।)	४८)		१९६)	५८५।-)४
सूद बैंक		६६६॥)४	१७४३≡)१०		८८।≡)५	१०१-)८
,, क़र्ज़ा			१३॥=)			
भूमि आय व्यय		४०=)	४०=)		१०७॥।-)।	१०७॥।-)।
योग		१००९॥=)४	१७६७।≡)१०		१६६।)८	२०८॥।=)११
अमानत अन्य संस्थायें		३५०≡)	३११४॥।≡)५		३३।)	७८१७)५
,, आर्यसमाजें		६३६३।≡)५	७५०३।≡)५		५३५।-)	१०१५≡)
,, विद्यार्थी आश्रम			२८)		२८)	४६०)

निधि	बजट आय	इस मास की आय	इस वर्ष को [illegible]	बजट व्यय	इस मास का व्यय	इस वर्ष का व्यय
वसीयत पं० पूर्णानन्द					५०)	१५०)
,, म० ओचीराम					२५)	७५)
,, म० सुचेतसिंह					४५।-)॥	६३॥=)
,, म० जोंदाराम					१३०)	१६०)
,, म० ईश्वरदास						७५)
योग					२५०।-)॥	५२३॥=)
उपदेशक विद्यालय	११०००)	-६४४०=)	-६८३४।=)	११०००)	५४४।)॥	१३३०॥≡)
,, ,, स्थिर कोष		११००)	११००)			
,, ,, शाला		६०००)	६०००)			
गुरुदत्त भवन आश्रम शाला		५)	७५)			
आर्य विद्यार्थी आश्रम	४३५०)	१४०।≡)	३५५-)	४३५०)	२३४॥≡)।	८०८॥≡)॥
दलितोद्धार	३८२०)	४४)	४१६॥=)	३८२०)	९०।)	४४७=)॥
राजपूतोद्धार		१७॥=)॥	१७ ॥=)॥		१३२≡)१०	५३२=)
असाधारण निधि			४)			
शिक्षा समिति			३०)			
प्रोवीडेण्ट		१२०=)	४११॥≡)॥।			२२॥)
बोनस			६३॥)॥			७॥)
अज्ञात निधि		१४२॥≡)	४०४६≡)		५२३॥)	५३७)
प्रेमदेवी होमकरण भण्डार				४०)	४०)	४०)
योग		६२४॥।)८	५६८५॥=)।॥		१६६४॥≡)७	३७७६॥≡)
कन्यागुरुकुल इंद्रप्रस्थ			५०५२)			७८४४।-)॥
गुरुकुल महानिधि		-३२४१६३॥-)१	-२९०३७६।=)		२०६०५॥≡॥)	२०६०५॥≡)
,, अस्थिर छात्रवृत्ति			८८४॥=)			
योग		-३२४१६३॥-)१	-२८४४३४॥।)		२०६०५॥≡)॥	२८५०५-)
सर्व योग		-३१४५५०)१	-२५४४३४।-)५		२६६०१=)५	५१८२७॥=)
गत शेष		१४४६५४६॥-)॥	१४६७१६२॥=)११			
योग		११८१९९६॥-)५	१२०७२२३।-)॥			
व्यय		२६६०१=)५	५१८२७॥=)॥			
		११५५३८॥=)	१११५५३८४॥≡)			

इस वर्ष का व्यय

१५०)
७५)
८३॥=)
१६०)
७५)
५२३॥=)
१३३०॥≡)
८०८॥।≡)॥
४४७=)॥
५३२॥=)
२२॥)
७॥)
५३७)
६०)
३७७६॥≡)
७८६६१-)॥
२०६०५॥≡)
२८५०५-)
११८२७॥=)

Registered No. L. 1424.　　　　रजिस्टर्ड नं० एल १४२४

ओ३म्

भाग ७　　　　सितम्बर १९२६
अङ्क ६　　　　आश्विन १९८३

आर्य्य

आर्य्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का मासिक पत्र

सम्पादक—चमूपति

प्रार्थना

ओ३म् इन्द्रं वर्धन्तोऽप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ।
अपघ्नन्तोऽराव्णः ॥　　ऋग्वेद ।

हे प्रभु ! हम तुम से वर पावें ।
विश्व जगत् को आर्य्य बनावें ॥
फैलें, सुख सम्पत् फैलावें ।
आप बढ़ें, तव राज्य बढ़ावें ॥
वैर-विघ्न को मार मिटावें ।
प्रीति-नीति की रीति चलावें ॥

विदेश से ५ शि० एक प्रति का ।=) वार्षिक मूल्य ३) पेशगी

बाबू जगन्नाथप्रसाद प्रिन्टर व पब्लिशर के अधिकार से विरजानन्द प्रेस लाहौर में छप कर प्रकाशित हुआ।

विषय सूची

भूल-सुधार

सम्पादकीय (पृष्ठ ४३) के 'प्रादेशिक सभा मांस प्रचारक नहीं ! हूँ" शीर्षक टिप्पणी में श्रीयुत महता रामचन्द्र जी महोपदेशिक आर्य प्रादेशिक सभा के इस मास में शिमला समाज के उत्सव पर दिये गए एक व्याख्यान का उल्लेख करते हुए उस का सारांश दिया गया है । वास्तव में यह व्याख्यान उत्सव पर नहीं, किन्तु उस से पूर्व दिया गया था । (सम्पादक)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३४	२१	अरिक्षित	अरक्षित
३८	१३	दिगदित्यायत्	दिगादित्यायत्
४६	१	[illegible]	सध्य

* ओ३म् *

भाग ७] लाहौर—आश्विन १९८३ सितम्बर १९२६ [अंक ६

[दयानन्दाब्द १०२]

वेदामृत

श्रद्धा

ओ३म् दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः ।

अश्रद्धामनृते दधाच्छ्रद्धा ँ सत्ये प्रजापतिः ॥ यजुः १९।७७

सत्य झूठ प्रभु ने विलगाये ।

गुप्त प्रकट कर पृथक्, दिखाये ॥

सत्य हेत उपजाई श्रद्धा ।

मिथ्या हेत रची अश्रद्धा ॥

शतपथकार याज्ञवल्क्य का काल ।

(श्रीयुत प० चमूपति जी "आर्य सेवक")

श्री प० भगवद्दत्त जी का मत है कि ब्राह्मण ग्रन्थों का संकलन महाभारत काल में हुआ है। वह ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रवक्ताओं याज्ञवल्क्य महीदास आदि को भी महाभारत कालीन मानते हैं। हम इस लेख में उन के केवल उन प्रमाणों की विवेचना करेंगे जिन के आधार पर वह याज्ञवल्क्य को महाभारत कालीन कहते हैं।

संस्कृत साहित्य में याज्ञवल्क्य एक नहीं, अनेक हुए प्रतीत होते हैं। एक याज्ञवल्क्य का वर्णन युधिष्ठिर की सभा के सम्बन्ध में महाभारत सभापर्व अध्याय ४ में हुआ है। यह महाशय यदि सचमुच कोई वास्तविक व्यक्ति थे और कवि ने धर्मपुत्र युधिष्ठिर की सभा में उन का कल्पित संनिवेश नहीं किया तो वह वास्तव में महाभारत कालीन होंगे। यदि यही शतपथकार हों तो शतपथ ब्राह्मण वस्तुतः महाभारत कालीन हो जायगा और हमें पण्डित भगवद्दत्त की इस धारणा का मान करना होगा कि शतपथ महाभारत काल का पुस्तक है।

इसी महभारत के शान्तिपर्व अध्याय ३२३ में शतपथकार याज्ञवल्क्य का वर्णन उन के अपने मुख से कराया गया है। वर्णन सूर्य के वरप्रदान से आरम्भ होता है। वरप्रदान से पूर्व का वृत्तान्त हम वायु पुराण से उद्धृत करते हैं, यह इस लिये कि पण्डित जीने इस पुराण के इसी स्थल का एक और प्रसंग में प्रमाण दिया है। यह वृत्तान्त संभवत: उन्हें विशेषतया अभिमत हो।

> कार्यमासीदृषीणाञ्च किञ्चिद्ब्राह्मणसत्तमाः।
> मेरु पृष्ठं समासाद्य तैस्तदा त्विति मन्त्रितम्॥ १२
> योनोऽत्र सप्तरात्रेण नागच्छेद् द्विजसत्तमाः।
> स कुर्याद्ब्रह्मवध्यां वै समयो नः प्रकीर्तितः॥ १३
> ततस्ते सगणाःसर्वे वैशम्पायनवर्जिताः।
> प्रययुः सप्त रात्रेण यत्र सन्धिः कृतोऽभवत्॥ १४

हे ब्राह्मणो! ऋषियों को कुछ काम था। मेरु की चोटी पर पहुंच कर उन्हों ने सलाह की कि हम में से जो सात रातों में न आयगा वह ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त करेगा। वैशम्पायन को छोड़ कर और सब सात रातों में आगए।

वैशम्पायन ने शिष्यों से प्रायश्चित्त के लिया कहा। याज्ञवल्क्य बोला—मैं अकेला यह कर दूंगा। वैशम्पायन रुष्ट हुए और बोले, अपना पढ़ा सब लौटा दे। उसने वमन कर रुधिर से लतपत हुए यजुर्वेद के मन्त्र लौटा दिये। यथाहि

एवमुक्तः सरूपाणि यजूंषि प्रददौ गुरोः।
रुधिरेण तथाक्तानि छर्दित्वा ब्रह्मवित्तमः ॥ १६

इस प्रकार का 'उगला हुआ वेद सूर्य में चला जाता है'। अतः याज्ञवल्क्य ने सूर्य की आराधना की।

अब आगे महाभारतकार कथित जनक याज्ञवल्क्य संवाद चलता है। लिखा हैः—

महता तपसा देवस्तपिष्णुः सेवितो मया।
प्रीतेन चाहं विभुना सूर्येणोक्तस्तदाऽनघ ॥ ३
वरं वृणीष्व विप्रर्षे यदिष्टं ते सुदुर्लभम्।
....

ततः प्रणम्य शिरसा मयोक्तस्तपतांवरः ॥५

मैंने कड़ी तपस्या से सूर्य की पूजा की। सूर्य ने प्रसन्न हो कर मुझ से कहा—जो दुर्लभ वर चाहे मांग। ······मैंने सिर से प्रणाम कर सूर्य देव से कहा। इस के पश्चात् सरस्वती का याज्ञवल्क्य के मुंह में घुसना आदि लिख कर कहा है:—

कृत्स्नं शतपथं चैव प्रणेष्यसि द्विजर्षभ। ११

अर्थ—तू सारा शतपथ बनायगा।

इस उद्धरण से हमारा अभिप्राय यह है कि (१) महभारत की स्वतन्त्र साक्षि कितनी अविश्वस्य है (२) शतपथकार याज्ञवल्क्य महाभारत के लेखानुसार वह हैं जिन का वर्णन उपर्युक्त श्लोकों में हुआ है। उपरिलिखित कथानक अवान्तर परिवर्त्तनों के साथ अखिल पौराणिक समुदाय सम्मत है। जनक याज्ञवल्क्य संवाद का आरम्भ शान्ति पर्व अध्याय ३१५ श्लोक १ से होता है जहां भीष्म कहते हैं:—

अत्रते वर्तयिष्यामि इतिहासं पुरातनम्।
याज्ञवल्क्यस्य संवादं जनकस्य च भारत ॥३॥

अर्थ—अब मैं तुझे पुराना इतिहास अर्थात् याज्ञवल्क्य और जनक का संवाद सुनाऊंगा।

यहां इतिहास और संवाद एक हैं क्योंकि संवाद के सिवाय कोई और इतिहास आगे कहीं नहीं सुनाया गया।

इस से सिद्ध हुआ कि याज्ञवल्क्य भीष्म से अत्यन्त पुराने हैं जिस से उनका इतिहास भीष्म के समय 'पुरातन' हो गया है। यदि युधिष्ठिर की सभा वाले याज्ञ-वल्क्य होते तो उन के संवाद को पुरातन इतिहास कौन कहता?

इस सारे संवाद के अन्त में एक और श्लोक आया है जिस पर श्रीमान् भगवद्दत्त जो अपनी कल्पना का आधार बनाते हैं। भीष्म कहते हैं:—

एतन्मयाप्तं जनकात्पुरस्तात्
तेनापि चाप्तं नृप याज्ञवल्क्यात्॥ शान्ति पर्व ३२३, १०९

अर्थ—मुझे यह रहस्य जनक ने बताया और जनक को याज्ञवल्क्य ने।

यदि भीष्म ने जनक से यह वार्त्ता मौखिक सुनी है तो यह दोनों महाशय ख़ाह न ख़ाह समकालीन होने चाहियें। प० भगवद्दत्त का यह प्रमाण उन का अभेद्य दुर्ग है। परन्तु फिर उस 'पुरातन इतिहास' को क्या कहियेगा? उपक्रम हुआ 'पुरातन इतिहास' से और उपसंहार हुआ समकालीनों के से मौखिक संवाद पर। जिस कथानक का उपक्रम और उपसंहार परस्पर विरोधी हों, उस के आधार पर कोई सिद्धान्त स्थापित करना इतिहास के साथ न्याय करना नहीं। शान्तिपर्व में इसी प्रकार के और भी कई आख्यान आए हैं। उन्हें 'पुरा-तन इतिहास' भी कहा गया है। यदि उन में से कुछ भी महाभारत कालीन हों तो पण्डित जी के अभिप्राय के अनुसार 'पुरातन इतिहास' इन दो शब्दों का अर्थ ही बदल दिया जाय।

उक्त दो श्लोकों का अन्वय इस प्रकार भी किया जा सकता है कि 'पुरातन इतिहास' भीष्म की किसी पुराने जीवन की स्मृति हो, जैसे भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को कहा था

तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप।

तब भी याज्ञवल्क्य महाभारत कालीन न रहेगा। पौराणिक जनक की आयु को लंबा कर महाभारत काल तक घसीट ला सकते हैं, जिससे इतिहास भी पुरातन रहे और भीष्म और जनक का साम्मुख्य भी हो जाय। श्री प० भगवद्दत्त

जी ने इस पक्ष पर धृतराष्ट्र के सम्बन्ध में विचार किया है। मनु (४. ९४) का प्रमाण न जाने क्यों उपस्थित किया है। वहां तो

ऋषयो दीर्घसंध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुयुः ।

लिख कर ऋषियों की आयु की मर्यादा की ही नहीं।

शतपथ का उद्धृत वचन भी पण्डित जी की पुष्टि नहीं करता। वहां तो यही आया है कि पुरुष १०० वर्ष से अधिक भी जीता है। इससे हज़ारों या लाखों वर्षों का निषेध कैसे हुआ ?

महाभाष्य के प्रमाणः—

यः सर्वथा चिरंजीवति स वर्षशतं जीवति ।

का पूर्वापर या तो पण्डित जी को ज्ञात नहीं या जान बूझ कर महाभाष्यकार के अभिप्राय के विपरीत उन की साक्षि उद्धृत की गई है जो ऐतिहासिकों की दृष्टि में अक्षम्य असत्य है। महाभाष्यकार का कहना है:—बृहस्पतिश्च प्रवक्ता, इन्द्रश्चाध्येता। दिव्यं वर्ष सहस्रमध्ययन कालो न चान्तं जगाम किं पुनरद्यत्वे यः सर्वथा चिरंजीवति स वर्ष शतं जीवति। पस्पशाह्निक।

अर्थात्:—बृहस्पति पढ़ाने वाला, इन्द्र पढ़नेवाला देवताओं के हज़ार साल पढ़ने की अवधि, फिर भी अन्त न हुआ। फिर आज की तो कथा ही क्या! जो सबसे अधिक जीता है वह सौ वर्ष !

महाभाष्यकार ने तो १००० दिव्य वर्षों का पढ़ना मान मारा है। जीने की तो कथा ही क्या है !

कुछ हो, यह प्रकरणान्तर है।

शान्तिपर्व के जनक को दैवराति कहा है और रामायण में जनक ने अपनी वंशावली का कथन करते हुए देवराति बृहद्रथ को अपने वंश का आठवां राजा गिनाया है। यह दोनों दैवराति एक हों या न, प० भगवद्दत्त जी इन्हें इसलिये दो बनाते हैं कि दूसरा दैवराति किसी प्रकार महाभारतकाल में जा पड़े। हमने ऊपर कहा है कि दैवराति जनक के उपाख्यान को भीष्म पुरातन इतिहास कहते हैं। इसलिय यह दैवराति भी सहस्रों वर्षों को पुराणसम्मत आयु स्वीकार किये विना महाभारत कालीन न बन सकेगा।

अब हम स्वयं शतपथ ब्राह्मण की एक साक्षि देकर लेख समाप्त करेंगे। बृहदारण्यक (काण्वी शाखा) के अन्त में जो वंश दिया गया है उस में आदित्य से १४वीं पीढी पर याज्ञवल्क्य का नाम आया है। आदित्य सृष्टि के आरम्भ का ऋषि प्रतीत होता है, क्योंकि इसी वंश को एक ओर आदित्य तक और दूसरी ओर ब्रह्मस्वयंभु तक लेजाया गया है। सांजीवीपुत्र ने दोनों वंशावलियों में समान स्थान पाकर अपने पीछे दोनों वंशों को एक कर दिया है। याज्ञवल्क्य सांजीवीपुत्र से ४ पीढियां पूर्व हुए हैं और ब्रह्मस्वयंभु १२ पीढियां। कुछ हो १४ पीढियों में सृष्टि के आरम्भ से महाभारत काल नहीं आ सकता।

परन्तु यही याज्ञवल्क्य शतपथकार हों, इस में विश्वास को अवसर नहीं क्योंकि इसी वंश में फिर तीस चालीस पीढियों की गणना की है।

माध्यन्दिनीय शाखा के शतपथ के अन्त में आदित्य से लेकर 'वयं' तक वंश दिया है। इसमें ६० पीढियां आती हैं। 'वयं' का अभिप्राय ग्रन्थकार के सिवाय और कौन हो सकता है। यह वंश काण्वी शाखा के उपनिषत् से थोड़े २ परिवर्तनों के साथ मिलता है। माध्यन्दिनीय में भारद्वाजीपुत्र 'वयं' के गुरु हैं और काण्वी में पौतिमाषी पुत्र जिनका उल्लेख अन्त में हुआ है भारद्वाजी पुत्र से चौथी पीढी में आते हैं। ब्रह्मस्वयंभु से सांजीवी पुत्र तक का दूसरा वंश इस ब्राह्मण के दशवें काण्ड के अन्त में आता है।

अब यदि सृष्टि के आरम्भ से याज्ञवल्क्य तक ६० पीढियों का अन्तर माना जाए तो भी याज्ञवल्क्य महाभारत कालीन नहीं हो सकते।

श्रीयुत भगवद्दत्त ने एक और लेख में पीढियों की अवधि दो मास तक की कल्पित कर अपनी धारणा को अत्यन्त उपहास-जनक बना दिया है।

परमात्मा की कृपा से अब वेद के सम्बन्ध में पृथक् अनुसन्धान हो रहे हैं और वेद का काल ब्राह्मण-काल पर अवलम्बित नहीं रहा। वेद की अपनी स्वतन्त्र साक्षियों ने वेद की आयु उतनी ही सिद्ध करदी है जितनी मानव जाति की। वेद के पीछे यदि आर्य जाति के वाङ्मय में किसी ग्रन्थ का उल्लेख है तो वह यही ब्राह्मण ग्रन्थ हैं। यदि वह महाभारत कालीन हो जाएं तो या तो वेदों को अपनी दूरतम प्राचीनता से करोड़ों वर्ष वरे सरकाना होगा या यह स्वीकार करना होगा कि आर्य मस्तिष्क लाखों ही नहीं, करोड़ों ही नहीं अपितु अरबों वर्ष ऊषर पड़ा रहा।

प० भगवद्दत्त जी को अपनी कल्पना का आधार उन कलुषित कथाओं को नहीं बनाना चाहिये जिनका कोई एक अंश संयोगवश उनकी सन्दिग्ध सी पुष्टि करदे और शेष सारी कथा ही उनके विरुद्ध हो। वैशम्पायन के शिष्यों को चरक इसलिये माना है कि स्वयं वैशम्पायन का नाम चरक है। आपने इस बात का तो उल्लेख किया। फिर आगे वायु पुराण की यह साक्षि भी उद्धृत कर दी कि 'ब्रह्मवध्या' का आचरण करने से जो उन्हें वैशम्पायन के सप्तरात्र की अवधि उल्लंघन करने के कारण अनुष्ठान करना पड़ा था, उन्हें चरक कहा जाता है। यह दो बातें एक दूसरे के सर्वथा प्रतिकूल हैं। फिर कथा क्या है, पौराणिक गपौड़ा है। कहीं और कोई विश्वस्य साक्षि प्राप्त हो जाए तो पुराणों का तदनुकूल वर्णन उस के अनुमोदन में उद्धृत कर देने में हानि नहीं, परन्तु अपनी सारी कल्पना का मूल ही महाभारतकी उपरिलिखित कथा और पुराण के बे सिर पैर के कथानक को बनाना अपने साथ भी उपहास करना है, और शास्त्रों के साथ भी।

अश्वमेध तथा नरमेध का स्वरूप

(लेखकः— श्रीयुत प० भक्तराम जी)

द्वितीय मेध 'अश्वमेध' है। यह आर्य जाति की राज्य सभा अथवा राष्ट्रिय महासभा की प्राचीन परिभाषा है यह सभा सुराज्य की स्थिरता और अभ्युदय प्राप्ति के साधनों पर विचारार्थ तथा निर्धारणार्थ हुआ करती थी। इस में केवल राज्य-नीति-विशारद सज्जन सम्मिलित हुआ करते थे जो भिन्न २ पंचायतों की ओर से प्रतिनिधि रूप में नियत किए जाया करते थे। विदेशों के प्रति प्रेम-सम्बन्ध को घनिष्ट करना और परस्पर की ईर्ष्या और द्वेष से पनपने वाले युद्ध के अंकुरों का समूलोत्खादन करना भी इस सभा को अभीष्ट था। पाठकगण ! यह विचार मेरा नहीं, प्रत्युत महर्षि दयानन्द जी ने स्थान २ पर इस भाव को प्रकट किया है। प्राचीन ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर इसका वर्णन किया गया है जो प्रमाण रूप में पाठकों के लिए उद्धृत किए जाते हैं:—

राष्ट्रमश्व मेधः श० १३। २। २। १६

राष्ट्रं वै अश्व मेधः तै० ३। ८। ६। ४

यह प्राचीन वैदिक-व्याखान-रूप-ग्रन्थ इस बात को स्पष्ट कहते हैं कि वह विद्वत्सभा अथवा वह उत्तम उत्सव, जिस में केवल राज्य सम्बन्धी विषयों पर विचार किया जावे तथा जिस में वही विद्वान् पुरुष स्त्रिएं सम्मिलित हो सकें जो राज्य-कार्य्यों में कुशल हों अर्थात् देशी तथा विदेशी नीति में निपुण हों, अश्वमेध है। इसी भाव को प्रकट करते हुए लिखते हैं—

श्री वै राष्ट्रमश्वमेधः। श० १३। २। ६। २
एष वै तेजस्वी नाम यज्ञः। तै० ३। ६। १६। ३
एष वै प्रतिष्ठितो नाम यज्ञः। तै० ३। ६। ६। ३

अर्थात् श्री, धन धान्य, लक्ष्मी, तेज, बल, पराक्रम, ओज, वीर्य्य, सेना की उन्नति, प्रतिष्ठा, देश तथा जाति में आत्मसन्मान, अपने स्वत्व को चिरस्थायी रखना इस प्रकार के राष्ट्रिय कर्तव्य जिस सभा में उपस्थित होकर निश्चित हों उसको अश्वमेध कहते हैं। इस की पुष्टि में और भी विचार हैं जिन को लिखे देते हैं:—

प्राजापत्यो वा अश्वः श० ६५। ३। ६
वीर्य्यं वा अश्वः श० २। १। ४। २३
क्षत्रं वाऽअन्वश्वः श० ६। ४। ४। १२
वज्रो वा अश्वः श० ४। ३। ४। २७

अर्थात् वह सभा जिस में प्रजा की शारीरक उन्नति पर, उस की शस्त्र तथा अस्त्र शिक्षा पर विचार किया जाता था। सार यह कि अश्वमेध शब्द एक सार्थक और सारगर्भित परिभाषा थी परन्तु वैदिक संस्कृति से अनभिज्ञ, केवल लौकिक संस्कृत के जानने वाले परिडतों ने इस के अर्थ "घोड़े को मारना और उसको खाना" कर दिए तथा आधुनिक पुस्तकों में अनेक किस्से, कहानियों द्वारा उनका प्रचार किया। वेद के आशय के विपरीत होने से ये कपोलकल्पित गप्पों के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं, ऐसा मानना ही उचित है॥

नर मेध

सामाजिक उन्नति के लिये, वर्ण और आश्रम की मर्य्यादा को चलाने और उसको चिरस्थायी बनाने के लिये विद्वानों, ऋषि महात्माओं की सभा को "नर मेध" कहते हैं। "नर" शब्द से केवल पुरुष ही नहीं लिया जाता था प्रत्युत उसकी अर्धाङ्गिनी स्त्री का भी बोध होता था।

मनुष्या वै नरः श० ७ । ५ । २ । ३९

पुमांसो वै नरः स्त्रियो नार्यः ऐ० ३ । २४

प्रजा वै नरः ऐ० ८ । ४

स्त्री पुरुष, बाल, वृद्ध अर्थात् सम्पूर्ण प्रजा की उन्नति और अभ्युदय के विचारार्थ जो यज्ञ रचा जाता था उसको "नरमेध" कहते थे। इस में चारों वर्णों को ठीक २ मर्य्यादा में चलाने के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को यथायोग्य अधिकार देना तथा दिलाना, उन की दायादादि का उत्तम प्रबन्ध रखना ताकि प्रजा का एक भाग दूसरे पर अत्याचार न कर सके, दूसरे के अधिकारों को न छीन ले, निर्णीत होता था । ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास इन चारों आश्रमों को नियमपूर्वक चलाना, इन के कष्टों को निवारण करना, एतदर्थ उपयुक्त नियमों का निर्माण करना, इन उद्देश्यों की सिद्धि के लिए जिस सभा में विचार हुआ करता था उसको नरमेध के नाम से पुकारा जाता था । अथवा जिस में प्रजा की धार्मिक, आर्थिक, और सामाजिक कमज़ोरियों को निवारण करने के लिए यथायोग्य विचार होता था उसको "नरमेध" के नाम से पुकारा जाता था । इस पर कई गाथाएं आती हैं जिन में से एक आध लिख कर उस पर विचार किया जाएगा और शेष को विद्वानों के विचारार्थ छोड़ दिया जाएगा। जिस उपाख्यान के आधार पर योरुप के विद्वान् यह मानने पर कटिबद्ध हैं कि प्राचीन आर्य्य लोग मनुष्य की बलि देते थे वह शुनः शेप की गाथा है। वेद में यह पद बहुत मन्त्रों में आया है । इस से पूर्व कि इस के पदार्थ पर विचार किया जाए, यह जानना आवश्यक है कि आर्य्य समाज का सिद्धान्त और प्रमाण-सिद्ध सिद्धान्त यह है कि वेद अपौरुषेय हैं। उन में किसी मनुष्य विशेष का चरित्र नहीं है। अस्तु वेद के सम्पूर्ण पद यौगिक ही हैं इस मन्तव्य की दृढ़ नींव पर शुनः शेप के अर्थ इस प्रकार होंगे:—

यद्वै समृद्धं तच्छुनम् श० ७ । २ । २ । ९

या वै देवानां श्री रासीत् साकमेधैरीजानानां विजिग्यानानां

तच्छुनम् श० २ । ६ । ३ । २

"शुनं के अर्थ श्री और लक्ष्मी के हैं जिस की प्राप्ति के लिये साधारण पुरुष घर बाहर पुत्र स्त्री आदि सब का परित्याग करने को उद्यत होजाते हैं। कोई ऐसा पाप नहीं जिसको धन-हीन पुरुष नहीं करता । नीतिकार साधारण निर्धन पुरुषों की वृत्ति को लेकर ही कहता है कि "बुभुक्षितः किन्न करोति पापम्" इत्यादि ।

शेप के अर्थ गुदा अथवा लिङ्ग के हैं जो मलमूत्र के परित्याग का साधन हैं। अतः शुनः शेप का अर्थ है जो पुरुष धनादि पदार्थों का मलमूत्र के समान त्याग करता है "शुनं समृद्धं शेपमिव प्रवर्तते यस्य पुरुषस्य स शुनः शेपः"।

इसी प्रकार हरिश्चन्द्र शब्द भी वैदिक प्रयोग है क्योंकि पाणिनि मुनि जी अपने सूत्र "प्रस्कण्वहरिश्चन्द्रावृषी" में हरिश्चन्द्र शब्द को ऋषि अर्थ में सिद्ध करते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण की सातवीं कण्डिका में एक अलंकार है जिस का अर्थ न समझ कर अवैदिक पण्डितों ने इस को नरमेध के उलटे अर्थों में परिवर्तित करके "नर बलि" कर दिया। पौराणिक कथा इस प्रकार है कि राजा हरिश्चन्द के १०० रानियां होने पर भी पुत्र उत्पन्न न हुआ। वरुण देवता की उपासना करने से पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम रोहित रखा गया। वरुण ने उसी पुत्र को बलिदान के लिए मांगा। राजा टाल मटोले करता रहा। इस से राजा उदररोग से ग्रस्त होगया और रोहित स्वयं वन में चला गया ताकि उसको मारा न जावे। अन्त में छटे वर्ष रोहित ने अजीगर्त नामवाले एक अत्यन्त भूखे ऋषि को देखा जिस के तीन पुत्र थे। रोहित ने ऋषि से कहा मुझे एक पुत्र दे दो, मैं तुम्हें १०० मुद्रा दूंगा। ऋषि ने पुत्र बलिदान के लिये दिया। जब बलिदान का समय आया, तो उसे यूप से कौन बांधे? इस प्रश्न पर विचार हुआ। इस कार्य के लिए कोई ऋषि उद्यत न हुआ। अन्त में उसी के पिता ने १०० मुद्रा ले कर उस पुत्र को यूप से बांधा। जब बध का समय आया तो फिर उस बालक को मारने के लिये कोई पुरुष तैयार न हुआ। अन्त में उसी के पिता को १०० मुद्रा देकर तैयार किया गया, जिस से शुनः शेप को निश्चय हो गया कि अब मैं जरूर मारा जाऊंगा। तब उसने पहले अग्नि, पुनः वरुण, पश्चात् इन्द्र की प्रार्थना आरम्भ की जिस से उसके सब पाश टूट गए और वह मारा न गया। अन्त में उसी शुनः शेप बालक को उसी यज्ञ का ब्रह्मा बनाया गया। इत्यादि॥

यह एक ऐसी गाथा है कि जिस की संगति नहीं लगती। प्रथम तो वैदिक काल में १०० स्त्रियों का होना असम्भव, फिर जिस वरुण की कृपा से पुत्र उत्पन्न हो वही उस को बलि के लिए मांगे, और अभी वह बालक एक वर्ष का भी न होने पाया हो कि शस्त्रों को ले कर वन में चला जाए नितांत असंभव। जब वरुण ने उस बालक को बलि के लिये मांगा तब इन्द्र स्वयं आ कर उस बालक को

वन से जाने से रोक देता है। अन्त में छटे वर्ष वह बालक स्वयं एक दूसरे के पुत्र को मोल ले कर बलि देने के लिये तैयार करता है, पश्चात् वह भी बलि नहीं दिया जाता; वही इन्द्र उस को बन्धनों से मुक्त करता है और उसे यज्ञ का ब्रह्मा बनाता है। यदि वह बालक था तो ब्रह्मा कैसे बना, जो चारों वेदों का वक्ता होना आवश्यक है। यदि बलि के देने के लिये यज्ञ रचा गया था तो वह यज्ञ उस बलि के बिना कैसे सम्पूर्ण हुआ? यह गाथा है जो पुराण की दृष्टि से तो ठीक हो परन्तु परिमार्जित मस्तिष्क को ठीक नहीं जंचती। यह एक अलंकार है जो ब्राह्मण ग्रन्थ वेद के रहस्यों को स्पष्ट करने के लिये प्रस्तुत करते हैं। क्या कोई बालक दान्त निकलने से पूर्व ही स्वयं वन में चला जाता है? तथा छटे ही वर्ष क्यों बलिदान का समय निश्चित हुआ? उसी ब्राह्मण की छटी कण्डिका में 'रोहित" शब्द का अर्थ दर्शाया गया है। वहां इन प्रश्नों का क्या उत्तर हो सकता है।

रोहितं वै नामैतच्छन्दो यत्पारुच्छेपमेतेन वा इन्द्रः
सप्त स्वर्गांल्लोकानरोहत् ५-१०
रोहति सप्त स्वर्गांल्लोकान्य एवं वेद ॥ ऐ-५-१०
षष्ठेऽच्छंस्यत इति षड्भिरेव पदैः षष्ठमहराप्नुवन्ति ऐ-५-१० ॥

रोहित नाम छन्द का है जिस को पारुच्छेप कहते हैं जिस से इन्द्र सात लोकों को प्राप्त हुआ और जो इस प्रकार जानता है वह सात लोकों को प्राप्त करता है। ६ छे की ही प्रशंसा करता है और छे पदों के द्वारा ही उस को प्राप्त होता है। यह रोहित छन्द छे ६ पदों का होता है उस को पारुच्छेप भी कहते है।

परु के अर्थ हैं समुद्र, द्युलोक, स्वर्ग, पर्वत इत्यादि
परुति भवः पारुतः ॥

शेप शब्द पूर्व कह आए हैं, उन्नति समृद्धि सौभाग्य ऐश्वर्य इस लिये पारुछेप के अर्थ हैं ऐश्वर्य की पराकाष्ठा जिस से परे कोई इच्छा शेष नहीं रहती। इसी भाव को पुनः शेप पद से कथन किया गया है। इस से स्पष्ट प्रतीत होता है कि नरमेध में किसी पुरुष विशेष का बध नहीं प्रत्युत मनुष्य की आयु की मर्यादा का वर्णन किया गया है।

छटे वर्ष से ले कर (आयु) १०० वर्ष पर्य्यन्त वर्णाश्रम धर्मों को जो वरुण के पाश हैं, वेद की आज्ञा के अनुसार पूर्ण करना नरमेध कहाता है। वरुण के पाश के विषय में विवाह प्रकरण में इस प्रकार वर्णन किया गया है कि —।

प्रत्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशात् येन त्वा बध्नात् सविता सुशेवः।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्टान्त्वा सह पत्या दधामि ॥१॥
प्रेतो मुञ्चामि नामतस्सुबद्धाममुतस्करम्।
यथेमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगासती ॥२॥ ऋग् मं० १० सू० ८५

महर्षि ने विवाह संस्कार में यह मन्त्र दिये हैं जिन से स्पष्ट प्रकट होता है कि रज और वीर्य के सम्बंध से जो पुत्र उत्पन्न होता है वही तापत्रय के मोचन का साधन है। वही "वरुण पाश" को ब्रह्मचर्य गृहस्थ वानप्रस्थ द्वारा मोचन करके इन्द्र की पदवी पाकर संसार के दुःखों से छूट जाता है और ब्रह्म पद पाता है। इसी लिये इस सम्पूर्ण प्रयोजन को जो सभा सिद्ध करती है एवं देश तथा जाति के उद्धार के साधन अन्वेषण करती है उसे 'नरमेध' कहा जाता है।

मुद्र्यमाण अष्टाध्यायीभाष्य ऋषिकृत नहीं है।

(लेखक—श्रीयुत स्वामी वेदानन्दतीर्थ)

हमारी युक्तियों का उत्तर न देकर कलिचर शिरोमणि श्री म० भगवद्दत्त जी गाली देने पर उतर आए हैं; इस में उन का दोष नहीं, आर्य शिक्षा, सभ्यता, रीति नीति का उन्हें किसी से सीखने का शुभ अवसर मिला ही नहीं। बेचारे बी. ए. तक पढ़े हैं। बी. ए. तक आप समझ सकते हैं, महाशय जी ने क्या पढ़ा होगा, शाकुन्तल, दशकुमार आदि काव्य, जिन का आचार्य ने अपने ग्रन्थों में खण्डन किया है, सदाचार शिष्टाचार फिर कहां से सीख पाते! गाली में यदि वे शास्त्रार्थ करना चाहें, तो लखनऊ की किसी भटियारिन से जा करें। हमें इस में हार मानने में कोई संकोच नहीं। इन महाशय जी के मत से गौतम, कणाद, कपिल आदि तो ऋषि नहीं, किन्तु कालिदास, दण्डी, कीथ, मैकडानल प्रभृति ऋषि हैं, क्योंकि गौतम कणाद प्रभृति ऋषियों के ग्रन्थों को पढ़ने पढ़ाने वाला अनार्ष ग्रन्थाभ्यासी, किन्तु कालीदास, कीथ आदि के ग्रन्थों को न समझ कर पढ़ने वाले महाशय जी आर्ष ग्रन्थाभ्यासी। यह है इनका रिसर्च।

महाशय जी की योग्यता का परिचय एक ही वाक्य से हो जाता है—आप लिखते हैं—'भाष्यकार पतंजलिमुनि भी तो **शब्दलक्षण को अथ शब्दानुशासनम् पर न लिख कर** 'अइउण्' सूत्र पर ही लिखते हैं।' पाठक! ध्यान से पढ़िए जिन शब्दों को हम ने मोटा कर दिया है, वे विशेष विचारणीय हैं। ये शब्द बता रहे हैं, कि महाशय जी ने महाभाष्य की सूरत भी नहीं देखी। भले पुरुष! महाभाष्यकार ने तो शब्दलक्षण 'अथ शब्दानुशासनम्' सूत्र पर ही लिखा है। नयन उघाड़ कर देखो और पढ़ो, अपितु किसी से पढ़वालो, आप तो संस्कृत जानते नहीं, समझिएगा कैसे? जनता के लाभार्थ हम महाभाष्य का वह पाठ उद्धृत कर देते हैं—

"अथ गौरित्यत्र कः शब्दः। ....

........................कस्तर्हि शब्दः? येनोच्चारितेन सास्नालाङ्गूलककुदखुरविषाणिनां संप्रत्ययो भवति स शब्दः। अथवा प्रतीतपदार्थकः लोके ध्वनिः शब्द इत्युच्यते।—॥"

(महाभाष्य प्रथम भाग, पृष्ठ १, पंक्ति ५—११)

पाठक! 'अथ शब्दानुशासनम्' पर पतंजलिमुनि के इन शब्दों के रहते "शब्दलक्षण को 'अथ शब्दानुशासनम्' पर न लिख कर" लिखने का दुस्साहस एक रि-सर्च स्कालर ही कर सकता है। बलिहारी इस अनुपम रिसर्च की। 'अइउण्' सूत्र पर तो महाभाष्यकार को प्रयोजनवश लक्षण पुनः लिखना पड़ा है। किन्तु इन्हें इस से क्या? प्रयोजन क्या होता है, जाने इन की बला।

ऐसी अवस्था में 'न चापशब्दपदार्थकः शब्दोऽपशब्दो भवति' (नक्ले कुफ़्र कुफ़्र न बाशद) महाभाष्यकार पतंजलि के इस वचनानुसार यदि हम लिख दें "विद्यादम्भः क्षणस्थायी," तो अनुचित न होगा, अपितु आप के सर्वथा अनुरूप होगा।

महाशय भगवद्दत्त जी हमारे लेख से बोखला गए हैं, और अनाप शनाप प्रलाप कर गए हैं। हम उन के बालिशस्वभाव को जानते हुए उन के इस प्रलाप की उपेक्षा करते हैं। महाशय जी! अष्टाध्यायी भाष्य के ऋषिकृत होने न होने के वाद को बिना समाप्त किए 'ऋङ्मन्त्र गणना' का प्रसंग क्यों चलाया? क्या आप यह मानते हैं कि यदि हम इस का उत्तर देदें तो आप इस भाष्य का अनर्षिकृत होना

मान लीजिएगा। यदि नहीं, तो स्मरण रखिए, हम प्रसंग से बाहर जाने के नहीं। आप हमारी योग्यता की परख करना चाहते हैं। महाशय जी, सुनिए। हम वही हैं, जिन से इन्द्रियों के प्राप्यकारित्व और अप्राप्यकारित्व को समझ कर अनारकली समाज के गत वार्षिक उत्सव पर आपने व्याख्यान झाड़ा था। हम वही हैं, जिन्हों ने आप को "मन्त्रोपदेशो वा न भाषिकस्य प्रायोपपत्तेर्भाषिकश्रुतिः" मी० १२। ३। १७। प्रमाण बताया था। और साथ ही कह दिया था कि आप अभी इसे समझ नहीं सकते। किन्तु 'लोगों की आंखों में धूल झोंकने" को आप ने अपनी पोथी में यह प्रमाण टांकही तो दिया। आप तो क्या, समस्त पलचर समुदाय इस प्रमाण की पूर्वापर संगति को नहीं समझ सकता। समझें भी कैसे? जब आर्ष व्याकरण, और आर्षदर्शनों से कोरे हैं। महाशय जी! गाली देने मात्र से यदि किसी का खण्डन किया जा सकता है, तो निस्सन्देह आप जीत ही गए हैं, किन्तु आप के इस व्यवहार से तो आप की उद्धृत उक्ति "येन केन प्रकारेण प्रसिद्धः पुरुषो भवेत्" आप ही पर चरितार्थ होती है।

महाशय! हमारे लेख में १९३५ के स्थान में १९३३ छपना तो हमारी भूल, किन्तु आपके भाष्यकार के 'लत्वमसिद्धम्' के स्थान में "लत्वंसिद्धम्" छपना प्रेस की भूल। इसको कहते हैं, 'अपने घर लगे तो आग, पराये घर बसन्तर।" किन्तु महाशय! यह प्रेस की भूल नहीं है-यह तो लेखक की भूल है सुनिए "यदि "लत्वम् सिद्धम्" या "लत्वमासिद्धम्" छप जाता, तो हम मान लेते, कि यह यन्त्रालय (आपके मत में "यन्त्रणालय") के भैरवों का ताण्डव नृत्य है, किन्तु 'म' को '-' बनाने की भयङ्कर भूले प्रेस के भूत भी नहीं कर सकते। यह आप और आप सरीखे देवानां प्रिय रिसर्च स्कालरों की रिसर्च ही है।

हमारा विचार था कि हम भाष्य की तथा सम्पादक की समग्र अशुद्धियां यहां इकट्ठी कर दें, किन्तु इस विचार से, कि यह चतुर चूडामणि झट उन्हें यन्त्रणा-लय (?) की भूल कहदेंगे, वैसा न कर इनसे कहते हैं, कि अपने तथा म० रघुवीर जी सम्पादित भागों का अशुद्धि—पत्र प्रकशित करदें, आप का पाण्डित्य उसी से उज्वल हो जाएगा। और साथ ही "भगवद्दयानन्दसरस्वतिना" "महदनुसं-धानपरश्रमेण," "उदाहरणाः" पदों की सिद्धि भी कर दीजिएगा। और आपके इस प्रिय भाष्य की

"संवृतं मात्रिकं ज्ञेयं, विवृतन्तु द्विमात्रिकम् "

पृष्ठ २३, पंक्ति ८

"अस्मान्त्सु तत्र चोदय।" यहां सु और नकार के बीच में जो तकार है, उसकी यमसंज्ञा है। इस प्रकार बीचमें आने वाले वर्णों को यम कहते हैं॥"

पृष्ठ २६ पंक्ति ८-९

इन पंक्तियों का मूल आर्ष व्याकरण में बताना। ताकि लोग आपके व्याकरण सम्बन्धी अगाध ज्ञान का कुछ परिचय पा जाएं। बेचारे रघुवीर जी तो इस से घबरा कर इस प्रकार टिप्पणी लिखते हैं—

"वर्णोच्चारणशिक्षा से प्रतीत होता है कि भगवान् दयानन्द सरस्वती स्वयं यम के इस लक्षण को न मानते थे।"

बलिहारी इस बुद्धिवैभव की! जब वे 'स्वयं इस यम के लक्षण को न मानते थे' तो उनके ग्रन्थ में यह लक्षण कैसे प्रवेश पा गया? करो रिसर्च। लगाओ सारा बल। भले पुरुषों की भांति क्यों नहीं दुराग्रह त्याग कर कहदेते— यह ग्रन्थ ऋषि कृत नहीं परन्तु फिर १६०) मासिक तो न मिल सकेगा।

इस भाष्य के वर्त्तमान सम्पादक श्री रघुवीर जी एम० ए० इस भाष्य को ऋषि दयानन्द कृत कहते हुए इस का खण्डन करने का साहस भी करते हैं— देखिए पृष्ठ २९, टिप्पणी ५, "वस्तुतस्तु ईदन्तममीशब्दमधिकृत्यैवं सूत्रं प्रववृते। अमूशब्दस्य प्रगृह्यत्वं पूर्वसूत्रेण सिध्यत्येव॥" 'अदसोमात्' सूत्र पर यह भाष्यकार (इनके मत में भगवान् दयानन्द) 'अमी' तथा 'अमू' दो उदाहरण देता है। किन्तु प० रघुवीर जी एम० ए० अपनी टिप्पणी में फरमाते हैं—'वास्तव में यह सूत्र" ईकारान्त 'अमी' शब्द (?) के लिये बना है, 'अमू' शब्द (?) की प्रगृह्य संज्ञा तो पूर्व सूत्र से सिद्ध ही है।

हम इस समय इनकी इस रोती संस्कृत की जिस में शब्द तथा पद का कोई भेद नहीं गिना जाता, विवेचना न कर पूछना चाहते हैं कि क्या आप लोग अपने मन्तव्यानुसार ऋषि का खण्डन नहीं कर रहे हो? ठीक है आपको अधिकार है। एक लिखता है "श्री स्वामी जी महाराज द्वारा खण्डित वेदों," तो दूसरा क्यों नहीं 'वस्तुतस्तु—' लिखकर अपने पाण्डित्य का परिचय दे। और साथ ही उसी स्वर में इसे ऋषिकृत भी कहे। ये लोग स्वयं इस भाष्य को ऋषिकृत नहीं मानते, यदि ये इसे ऋषिकृत मानते होते, तो इस में परिवर्त्तन न करते। एकाध नमूना ही पर्य्याप्त होगा—देखिए पृष्ठ १० टिप्पणी ५. में श्रीयुत पण्डित रघुवीर एम० ए० फ़रमाते हैं—

(१) कोशे त्विदं वार्त्तिकं "चयो द्वितीयादिः पौष्करषादेः इत्येवम् ....
.... ।अस्माभिस्तु "सन्धिविषयसम्मतो भाष्यपाठः स्वीकृतः ।"

देखिए,कहते हैं, हस्तलिखित पुस्तक में तो "चयो द्वितीयादिः पौष्करषादेः" पाठ दिया है ... किन्तु हम ने तो सन्धि विषय का सम्मत भाष्यपाठ स्वीकार किया है । आप कौन ? वही न, जिनकी पुनीत लेखनी से ये शुभ वाक्य निकल गये हैं—"अस्मात् सूत्र विभागाज्ज्ञायते, न भगवता दयानन्दसरस्वतिना (?) स्वयमेष सन्धिविषयो नाम ग्रन्थो निर्मित इति" [इस सूत्रविभाग से प्रतीत होता है कि भगवान् दयानन्द सरस्वती ने यह सन्धि विषय ग्रन्थ स्वयं नहीं बनाया] पृष्ठ ३४ टि० १। अहहह ? प० भगवद्दत्त जी ! देखिए आप के भिजवाए प० रघुवीर जी वेदाङ्ग प्रकाश को ऋषिकृत न मान कर आप का खण्डन कर रहे हैं ?

(२) पृष्ठ २५ टिप्पणी ७—"कोश में 'स्वरों का अधिकस्पर्श होने से' ऐसा लिखा है। यह लेखकप्रमाद अथवा अनवस्थित ध्यान के कारण लिखाया गया है।"

पाठक ! प० भगवद्दत्त जी के संपादित भाग में यही पाठ छपा है, किन्तु वे बेचारे तो संस्कृत विद्या से शून्य होने के कारण इस भयंकर भूल को समझ न सके, इस वास्ते इसे वैसा छाप दिया; किन्तु श्री रघुवीर जी ने एक विद्वान् के परामर्श से पाठ बदल दिया और छापा—

"स्वरों का बिना स्पर्श के।" दोनों पाठों को पढ़िए और कहिए, हैं नहीं एक दूसरे के विरुद्ध ? यह लोग हैं, उधर कहते जाते हैं, यह भाष्य ऋषि दयानन्द कृत है और इधर उस में परिवर्त्तन भी करते जाते हैं। उन्हें "अनवस्थित ध्यान" वाला कह कर गाली भी देते हैं और साथ ही 'भगवान्' भी कहते हैं। ठीक है—जानी न जाए निशाचर माया।

३० जुलाई १९२६ के 'आर्य जगत्' में तो प० भगवद्दत्त जी का गँवारूपन पराकाष्ठा को प्राप्त हो गया है। उन के उन असभ्य वाक्यों की उपेक्षा करते हुए इन के छल का दिग्दर्शन कराते हैं। देखिए—पाठक ! म० भगवद्दत्त श्रीयुत पूज्यवर स्वामी श्री श्रद्धानन्द जी के एक पत्र का हवाला देते हैं—"अष्टाध्यायी के विषय में भी वहां ही बातचीत होगी।"

जिस के मस्तिष्क में कोई भी ज्ञानतन्तु जागरूक है, क्या वह यह कहने का साहस कर सकता है, कि श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी इस भाष्य के आर्षानार्ष होने के सम्बन्ध में कुछ लिख रहे हैं। स्वामी जी महाराज की क्या सम्मति है,

इस से जनता शीघ्र ही परिचित हो जाएगी। प्रोफ़ेसर श्री रामदेव जी के पत्रों का नाम मात्र लेते हैं। किन्तु उन का कोई भी वाक्य उद्धृत करने का साहस नहीं करते हैं। श्री हरविलास शारदा (?) के पत्रों से पंक्तियां उद्धृत करते हैं—

I will send you Ashtadhyayi in a few days. [मैं आप को थोड़े दिनों में अष्टाध्यायी भेज दूंगा।] पुनः I have sent the manuscript to you (मैंने हस्तलिपि आप को भेज दी है)॥

क्या इन उद्धृत पंक्तियों से कहीं भी इस भाष्य के ऋषिकृत होने के विषय में कोई एक शब्द भी मिलता है? यह रिसर्च स्कालर की योग्यता है। इसी प्रकार की इन की सारी रिसर्चें हैं। चूं कि पत्र में अष्टाध्यायी का नाम आगया है, इस वास्ते वह ऋषिकृत है। बलिहारी इस तर्क की। भला ऐसे तार्किक—पुं-गव की बराबरी कौन कर सकता है। अपनी मिसाल आप ही हैं। गप्प हांकने में आप अद्वितीय। प्रेस से प्रूफ़ चोरी कराने में आप अपूर्व।

अन्त में फिर पूछलूं, आप का संपादित भाग क्यों रद्दी में डाल दिया गया? क्या इसी वास्ते, कि आपने उस के 'पाठकों से निवेदन' लेख में "श्री स्वामी जी महाराज द्वारा खण्डित वेदों" लिखा था। श्रीयुत भगवद्दत्त जी ने मेरी किसी युक्ति तथा प्रमाण का खण्डन नहीं किया। अपितु पलचर धर्मानुसार गाली-गलौच, कुत्सितशब्द लिखने में सारी शक्ति व्यय की है। साथ ही प्रकरणान्तर छेड़ कर एक प्रकार से अपनी असमर्थता प्रकट की है, ऐसी दशा में विज्ञ पाठक अनुमान करलें, कि महाशय जी कहां तक इस भाष्य को ऋषिकृत सिद्ध करने में कृतकार्य्य हुए हैं। वे जितनी भी गाली दें, हमारा एक ही उत्तर है—

ददतु ददतु गालीं गालीमन्तो भवन्तः

....

आप के ऋग्वेद मन्त्र गणना विषयक प्रश्न का उत्तर हम तभी देंगे, जब या तो आप समित्पाणि हो कर आएंगे; या आप स्वीकार करें, कि यदि हम इस का उत्तर देदें, तो आप इस भाष्य को अनर्षिकृत मान लेंगे, और इस सम्बन्ध में लिखे गए कुत्सित लेखों के लिए तथा प्रूफ़ चोरी कराने के घृणित कार्य्य के लिए तथा आचार्य्य दयानन्द को "अनवस्थित ध्यान" वाला लिखवाने के घोरतम पाप का प्रायश्चित करेंगे।

दुर्जन

(श्रीयुत प्रोफेसर मणिराम गुप्त)

(१)

सहज ही खल हैं नहिँ मानते,
सुबुध के प्रिय औ हित वाक्य को।

कब रुचा सुप्रकाश दिनेश का—
तम विनाशक, मूढ़ उलूक को॥

(२)

कठिन है नहिँ वारिधि बाँधना,
कठिन है गिरि का कटना नहीं।

पर, बड़ा यह कार्य दुरूह है,
बदलना अति दुष्ट-स्वभाव का॥

(३)

इस लिये खल से बचना सदा,
कुछ नहीं सुनते जन दुष्ट हैं।

यदि करें हम यत्न सहस्र भी,
पर फणी तजता कब वक्रता?

वैदिक-रामायण

(श्रीयुत प० विश्वनाथ आर्योपदेशक)

पौराणिक पत्र 'जागृत' के रामनवमी के अङ्क में प० माधवाचार्य का वैदिक-रामायण शीर्षक लेख निकला है । उस में वेद से रामकथा के अन्वेषण का मिथ्या प्रयत्न किया गया है । आजकल के धार्मिक जगत् की कुछ ऐसी बुरी अवस्था होरही है कि अपनी धार्मिक पुस्तकों के वास्तविक भावों का मान न करते हुए अपने मन माने सिद्धान्तों को उनके नाम मढ़ने का यत्न किया जा रहा है । उन में भी हमारे पौराणिक भाई सब से बढ़ कर हाथ मार रहे हैं । महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने आर्य जाती के हृदय में वेदों के लिये सच्चा सम्मान उत्पन्न कर दिया है । अतएव अब इस लहर को रोका नहीं जा सकता और धार्मिक सिद्धान्तों के लिये वेद का प्रमाण मांगा जाता है । इस आवश्यकता को पूरा करने के लिये हमारे पौराणिक पंडित अपनी हंदापूनी की रक्षा के निमित्त अपने आत्मा का हनन करते हुए वेदों की पवित्रता और उन के उच्च आसन का कुछ भी ध्यान न करके पुराणों की मिथ्या और सभ्यतातीत अश्लील बातों को भी वेदों से सिद्ध करने को उतारू होरहे हैं जिस का एक प्रमाण उपर्युक्त लेख है ॥

(१) प्रथम मनु स्मृति के "भूतं भव्यं भविष्यञ्च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति" और सत्यार्थ प्रकाश लिखित ईश्वर की त्रिकालज्ञता का प्रमाण देकर वेद में इतिहास सिद्ध करने का उद्योग किया गया है । परन्तु न जाने यह भाव कहां से ले लिये । वेद में जीवों के भूत भविष्य वर्त्तमान काल के सब उद्देश्यों की पूर्त्ति का ज्ञान है मनु जी का यही भाव होसकता है । इतिहास का यहां क्या सम्बन्ध और यदि वेद को अनादि मानते हो तो इसकी अपेक्षा वर्त्तमान और भूतकाल कोनसा हुआ ?

(२) सायणाचार्य ने भी वेद में इतिहास सिद्ध करने का प्रयत्न किया है और वेद मंत्रों के साथ बहुत सी महाभारत और पुराणों की कथाओं को जोड़ दिया है परन्तु रामायण की कथा का एक अंश भी उसे किसी मन्त्र से नहीं मिला और न ही राम कृष्ण आदि अवतारों का चिन्ह किसी मन्त्र में मिला है। इस लिये उसने वेद में आए हुए राम शब्द का अर्थ अन्धेरा और कृष्ण शब्द का

अर्थ काला ही किया है। परन्तु आजकल के पौराणिक पंडित सायण को भी भूल सुधार कर रहे हैं। यदि लायलपुर की श्रीमती सभा प० माधवाचार्य को कुछ विशेष भेंट पूजा करदे तो "वैदिक प्रतिनिधि लायलपुर" पर भी वेदों से अन्वेषण होकर लेख लिखा जा सकता है।

(३) यदि वेद को राम कथा का लिखना अभीष्ट होता तो वेद के विशेष सूक्त अथवा अध्याय इसके लिये क्यों न नियत हुए। साधारण विषयों को तो सूक्तादि में वर्णन किया गया है परन्तु सनातन धर्म के सर्वोपरि सिद्धान्त अवतार की कहीं गन्ध तक नहीं। राम कथा उक्त प० के लेखानुसार कहां २ मिलती है सुनिये – सरयुः नदी (ऋ०-१०-६८-९) दशरथ (ऋ० २-१-११) विश्वामित्र निरुक्त ३-३३ वशिष्ट १-९ रुद्रधनुः (ऋ० मं० १२५ मं० ६) विवाह (ऋ० ३-८-९) वामदेव ऋषि ने विवाह में मन्त्र पढ़े (यजुः १२-४) इसी को कहते हैं कि विवाह पंजाब में हुआ औसोटले बंगाल में गाये गये बनबास (साम उत्तरार्चिक १५-१२-१-३) तमसा नदी ऋग्वेद प्रयागराज ऋग्वेद (परिशिष्ट) शूर्पनखा ऋग्वेद। रावण (अथर्व ४-६-२) सीता का चुराना (सामवेद उक्तमंत्र) महादेव पूजा (यजुर्वेद १६-२) रावण मारा गया (सामवेद उक्तमन्त्र) राम राज्य (यजुर्वेद १ -११७)

क्यों जी ! इसी को कहतेहैं:—

कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा। भानमती ने कुनबा जोड़ा॥

(४) प्रायः कहा जाता है कि इसाईयों ने हिन्दुओं को फुसलाने के लिये "ईशावास्यमिदं सर्वं" वेद के इस मन्त्र को उपस्थित कर के सिद्ध करने का यत्न किया कि वेद में ईसामसीह का नाम आता है; इस कारण उन पर यह दोष लगाया जाता है कि वे लोग धोखा देकर भी अपने धर्म का प्रचार करना समुचित समझते हैं—न जाने यह बात कहां तक ठीक है। परन्तु उपर्युक्त लेख में पौराणिक पण्डितों के सम्बन्ध में एक ज्वलन्त प्रमाण उपस्थित है। ऊपर जितने प्रमाण दिये गये हैं उन में ऐसा ही किया गया है। नमूने के लिये दो प्रमाण लिखे जाते हैं।

वैदिक रामायण में तमसा नदी की सिद्धि के लिये निम्न मन्त्र दिया है:—

तम आसीत् तमसा गूढ़मग्रे। (ऋ०)

दूसरा प्रमाण रामचन्द्र जी के ११००० वर्ष राज्य करने का दिया है जिस को पढ़ कर आप हंसे बिना नहीं रह सकेंगे, वह कौन सा मन्त्र है ? जो सन्ध्या में आप प्रति दिन पढ़ते हैं।

अदीनाः स्यामशरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।

क्यों जी ! यदि ऐसा ही है तो "सुगन्धी पुष्टिवर्द्धनम्" मन्त्र में महात्मा गांधी का नाम आता है वा नहीं ? क्या आगामी अंक में हम वैदिक गान्धी शीर्षक लेख की आशा रखें ?

(५) समय की अवस्था को देख कर जैसे एक दुकानदार 'भाव' में झूठ बताने को और प्लीडर गवाहों से झूठी गवाही दिलाने को कोई बड़ा पाप नहीं समझते, ऐसे ही आज कल के सम्प्रदायी लोग अपने सिद्धान्तों की सिद्धि के लिये धर्म पुस्तकों के झूठे अर्थ करने को पाप नहीं समझते, इस लिए उक्त मिथ्यार्थ को भी हम आज कल का धार्मिक फैशन समझ लेते हैं। परन्तु वैदिक रामायण के नाम पर वेदों और राम कथा पर जो अश्लीलता का कीचड़ फैंका गया है वह सर्वथा असह्य है। सब से प्रथम तो प० ज्वालाप्रशाद ने उक्त सामवेद के मन्त्र को केवल राम शब्द के आ जाने पर कि जिस का अर्थ सायण ने अन्धेरा किया है, राम कथा पर लगातेहुए रावण को पूज्या माता सीता का जार लिखते हुए तनिक ईश्वर का भय नहीं किया। अब उक्त परिडत ने इस के साथ शूर्पनखा का प्रसंग और बढ़ा दिया। देखिये ! क्या लिखते हैं।

एक दिन रावण की बहिन शूर्पनखा राक्षसी ने रामचन्द्र के पास आकर निर्लज्जता से कहा—

"उपोपमे स्पृश मामे दभ्राणि मन्यथा।" (ऋ०)

अर्थात्—हे राम ! आप आगे बढ कर अपने हाथ से मेरे ...... स्थान को स्पर्श करके देखलें, अभी तक रोम भी उत्पन्न नहीं हुए, आप मुझे व्यर्थ ही वृद्धा न समझें। (छीः छीः छीः)

यह मन्त्र अशुद्ध और बिना पते के लिखा है। इस से जान पड़ता है कि सुनसुना कर लिखा गया। इस मन्त्र की ऋषिका रोमशा ब्रह्मवादिनी और देवता विद्वान् है। इस मन्त्र का अर्थ सायण ने भी अश्लील लिखा है परन्तु और ढंग से यथा—

रोमशा नाम बृहस्पतेः पुत्री ब्रह्मवादिनी परिहसन्तं स्वपतिं प्रत्याह। भो पते ! मे मां द्वितीयार्थे चतुर्थी उपोप द्वितीय उपशब्दः पादपूरणः उपेत्य परामृश सम्यक् स्पृश भोगयोग्यामवगच्छेत्यर्थः। यद्वा मे गोपनीयमङ्गमुपोप परामृश अत्यन्तमन्तरं स्पृश परामर्श भाव शंकां निवारयति।

सायण के शब्दों का यह भाव है कि रोमशा नाम की स्त्री अपने पति को कहती है कि मेरे साथ भोग कर। इस ने जैसा कि इस के भाष्य की शैली है मन्त्र की ऋषिका की कथा ही घड़ ली है। देवता का कुछ भी ध्यान नहीं रखा। प्रकृत मन्त्र में गुप्तेन्द्रिय का वाचक कोई पद नहीं है। न ही भोग द्योतक कोई क्रिया है। यह बात सर्वथा कपोलकल्पित जोड़ दी गई है। पौराणिक परिडत ने

सायण के अश्लील भाव को अपनाते हुए 'रोमशा' को "शूर्पनखा" और उस के पति को "राम" बना दिया है। ऋषि मन्त्र द्रष्टा अर्थात् मन्त्रार्थ के जानने वाले हुआ करते हैं न कि मन्त्र निर्माता। मन्त्र में रोमशा पद गुण वाची सर्वथा स्पष्ट है। अतएव सायण का रोमशा को एक ऐतिहासिक व्यक्ति मानना सर्वथा भूल है। भला सायण की कल्पना का तो कुछ आधार भी है परन्तु यह "शूर्पनखा" और "राम" कहां से आ कूदे ! क्या रामायण में यह अश्लील वाक्य कहे गये हैं ? तो वेद ने इस असभ्योचित अत्यन्त घृणित निराधार घटना का ही प्रकाश करना था ? और रामायण तो कहता है कि

तरुणं दारुणावृद्धा दक्षिणं वामभाषिणी
न्यायवृत्तं सुदुर्वृत्ता प्रियम प्रिय दर्शना। रा० अर० का० १७–११

राम तरुण और शूर्पनखा वृद्धा थी परन्तु आप वेद के प्रमाण से उस को यौवन प्रसरा-बालिका सिद्ध कर रहे हैं। परमात्मा के लिये आर्य जाति और आर्य सभ्यता को कलङ्कित मत कीजिये। वेदों पर सायण और महीधर ने काल्पनिक कथाएं जोड़ कर पहिले ही कुछ कम कलङ्क लगाए हैं ? वेदों से ऐसी वृथा कथाओं के निकाले बिना ही अन्न पानी मिलता रहेगा। और यह गवेषणात्मिक बुद्धि किसी और भले काम में भी लगाई जा सकती है !

मन्त्र का वास्तिवक अर्थ।

उपोपमे परामृश मा मे दभ्राणि मन्यथाः।
सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका ॥

इस मन्त्र का देवता विद्वान् है अतएव विद्वत्प्रशंसा में ही इस का अर्थ समुचित हो सकता है। विद्या मनुष्य को कहती है (मे) मुझ को (उपोप) निकट हो कर (परामृश) अत्यन्त प्राप्त कर (मे) मेरी (दभ्राणि) कमियों को (मा मन्यथाः) मत मान (गन्धारीणाम्) पर्वतीय "गंधं अच्छतीति" (अविका इव भेड़ की तरह (अहं) मैं (सर्वा रोमशा) सब ओर से बालों वाली (अस्मि) हूँ। जैसे पर्वतों में रहने वाली भेड़ों के सब ओर बाल होते हैं; मैदान की भेड़ें वैसी नहीं होती। ऐसे ही विद्या सर्व गुणों से पूर्ण होती है। विद्वान् अधिक धनवान् नहीं होते; इस कमी का मनुष्यों को विचार नहीं करना चाहिये क्योंकि धनाढ्य भी विद्वान् का मान करते हैं यथा "विद्वान् सर्वत्र पूज्यते" विद्वान् सब स्थानों में पूजा जाता है—

"सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम्" उत्तम कवि को राज्य की क्या आवश्यकता है क्योंकि राजा लोग भी उस के चरणों में आकर अपना सौभाग्य मानते हैं ॥

'नाम की ओट'

(श्रीयुत प० चमूपति जी)

कौन और है धीरज-धाम । टेक ॥

पाता नहिँ गुण-गीत गुफा में,
विकल हृदय विश्राम।
तुम से पृथक् किये रखता है,
प्रभो ! तुम्हारा नाम ॥ १ ॥

नित्यं प्रति संध्या समयों में,
बहुविध 'प्राणायाम'।
करता हूं, औ श्वास श्वास से
प्रणव-जाप अभिराम ॥ २ ॥

नित्य नियम पालन-इस भ्रम में,
बेसुध आठों याम।
कोल्हु-बैल सम चलता जाता,
बना लकीर—गुलाम ॥ ३ ॥

चल चित-चंवर! भूल ओझल की,
कांत-ज्योति अभिराम।
प्रभु आंगन आए, औ लौटे,
मैं रट-रत अविराम ॥ ४ ॥

पाता नहिँ गुण गीत गुफा में,
विकल हृदय विश्राम।
तुम से पृथक् किये रखता है,
प्रभो ! तुम्हारा नाम ॥

"एक शास्त्रार्थ"

(श्रीयुत देवनारायण जी)

श्रीयुत बाबू रघुनाथ पुर्वे रईस प्रधान आर्यसमाज रोसड़ा ज़िला दरभंगा के मकान पर कथा के प्रसंग में पूज्य श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज के शिष्य प० धुरेन्द्र जी शास्त्री न्याय भूषण ने 'असुर' शब्द का अर्थ बताया कि वैदिक काल में 'असुर' शब्द ईश्वर, सूर्य और मेघादि अर्थों में भी व्यवहृत होता था केवल दुष्टार्थक नहीं था। इस अर्थ को कर्णपरंपरा से सुन कर सनातन धर्म के पण्डित नदियाशान्तिपुर के पढ़े हुये ठाकुर रामनारायण न्यायरत्न ने शास्त्रार्थ का नोटिस दे दिया।

बाबू चन्द्रिका प्रसाद जी सबइन्सपेक्टर आफ स्कूलज़, प० सीताराम जी झा हेडमास्टर एम. ई. स्कूल और बाबू रासविहारी जी रईस के समक्ष निश्चय हुआ कि २४ अगस्त को प्रातः ८ बजे स्कूल हाल में शास्त्रार्थ हो। मध्यस्थ कौन हो? इस प्रश्न के उत्तर में न्यायरत्न जी ने स्वयं कहा कि इस शास्त्रार्थ के मध्यस्थ प० रमाकन्त झा काव्य-व्याकरणतीर्थ हों। शास्त्री जी ने भी स्वीकार करलिया। २४ अगस्त को स्कूल का हाल ठसाठस श्रोताओं से भर गया। बाहर के बरामदे में भी बैठने को स्थान न रहा तो लोग खिड़कियों पर बैठ कर सुनने लगे। शहर के प्रमुख मनुष्यों में से बा० रासविहारी जी रईस, बा० रामखिलावन जी पुर्वे, बा० मुकुन्द पुर्वे, बा० श्यामसुन्दर जी मारवाड़ी, प० रामदास जी पाण्डे रजिष्ट्रार, उवरसियर साहब, प० सीताराम जी हेडमास्टर प० विश्वनाथ झा बी. ए. उपस्थित थे। ६ बजे से ११ बजे तक शास्त्रार्थ हुआ। मुख्य २ प्रमाण नीचे लिखे जाते हैं।

शास्त्री—"अयं देवानाम् असुरो विराजति —" अर्थववेद कां० १ अ० २ सू० १० मन्त्र १ में असुर शब्द वरुणार्थक है। "प्राची दिग् वरुणोऽधिपतिः —" इस मन्त्र में वरुण शब्द ईश्वरार्थक है। वरुण इत्यस्य जीवनाय वरणीयोऽर्थः अर्थात् जीवन के लिये वरणीय अर्थ ही 'वरुण' का है। "वरुणेह बोध्युरुशंस ! मा न आयुः प्रमोषीः" ऋ १। २४। ११॥

सायणाचार्य ने भी असुर का अर्थ वरुण किया है "इन्द्रादीनां मध्ये अयं वरुणो विराजति दीप्यते" अर्थ० १। २। १०। १।

"हिरण्यहस्तो असुरः --" यजु० ३४। २६, इस मन्त्र के भाष्य में महीधर ने असुर शब्द सूर्य का विशेषण माना है। निघण्टु में असुर शब्द मेघ वाचक है। इत्यादिक प्रमाणों से सिद्ध है कि वैदिक काल में केवल दुष्टार्थक असुर शब्द नहीं था।

न्यायरत्न - आपने जो एसो असुर शब्द का अर्थ वरुण किया है सो ठीक नहीं है क्योंकि न सुरः असुरः के अनुसार असुर का राक्षस अर्थ होता है और हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न आदि बहुत बोल कर बैठ गये। बीच में ही उत्तरसियर साहब ने कहा कि न्यायरत्न जी इस मन्त्र का अर्थ करो।

शास्त्री—नहीं-अर्थ ही न करें किन्तु इन के अर्थ को लिख लिया जाय।

न्यायरत्न—"यह देवताओं के असुर (विरोधी) जो राक्षस हैं सो जो ए सो करिकें शोभित नहीं होते हैं" इस अर्थ पर जनता को असन्तोष हुआ तो हेडमास्टर ने कहा कि शास्त्री जी भी अपना अर्थ लिखावें।

शास्त्री—देवताओं में यह जीवन देने वाला वरुण परमेश्वर विशेष शोभायमान है अर्थात् जीवन देने वाला ईश्वर ही है न कि अन्य देवता। जनता ने कहा कि यही अर्थ ठीक प्रतीत होता है। मध्यस्थ से कहा गया कि उपयुक्त अर्थ से आप का सन्तोष है? मध्यस्थ ने न्यायरत्न से पूछा—

मध्यस्थ—"शोभित नहीं होते हैं" यह निषेधक अर्थ कहां से किया?

न्यायरत्न—असुर के अकार का अन्वय क्रिया से किया है।

मध्यस्थ—हंस कर कहा कि यदि अकार का अन्वय क्रिया से किया है तो राक्षस किस का अर्थ होगा "नहि भिक्षुकः भिक्षुकान्तरं याचते" इस युक्ति के अनुसार एक अकार दो का विशेषण नहीं हो सकता है। जनता ने कहा कि मध्यस्थ जी आप अर्थ करें। मध्यस्थ ने कहा कि मैं भाष्य के विना अर्थ नहीं कर सकता हूँ। भाष्य से पूर्वापर प्रकरण की प्रतीति हो जाती है।

न्यायरत्न—इस विपत्ति से अपने आप को विमुक्त समझ कर झट बोल उठे कि अच्छा न्याय में कुछ विचार हो। सर्व सम्मति से न्याय में विचार होना आरम्भ हुआ।

शास्त्री—न्यायनिधि भगवान् गौतम ईश्वर को मानते हैं या नहीं? यदि मानते हैं तो कहां किस सूत्र में ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार किया है?

न्यायरत्न—"आत्म शरीरेन्द्रियार्थ बुद्धिमनः—"इस में उपन्यस्त आत्म शब्द से ईश्वर और जीव दोनों का ही ग्रहण होता है।

शास्त्री—इस सूत्र में जीवात्मा का ही ग्रहण होता है क्योंकि वात्स्यायन मुनि ने लिखा है कि "त्रिधा चास्य शास्त्रस्य प्रवृत्तिः, उद्देशो लक्षणं परीक्षा चेति" न्यायदर्शन की प्रवृत्ति तीन प्रकार की है। सब से पूर्व उद्देश, उसी उद्दिष्ट का लक्षण और परीक्षा। यदि उद्दिष्ट सूत्र में ईश्वर और जीव दोनों का ही ग्रहण है तो दोनों का ही लक्षण और परीक्षा होनी चाहिये। "इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख—" इस सूत्र में लक्षण और "दर्शनस्पर्शनाभ्यामेकार्थ—" इस सूत्र से जीवात्मा की परीक्षा जैसे की है ईश्वर का लक्षण और परीक्षा होनी चाहिये किन्तु नहीं है इसलिये आप का यह कथन असंगत होगया कि "आत्मशरीर—" इस में ईश्वर का भी ग्रहण है।

न्यायरत्न— "इच्छाद्वेष प्रयत्न— " इसी सूत्र में "हेत्वधिकरणवृत्यभाव प्रतियोतानवच्छेद—इत्यादि बहुत देर तक बोल कर कहा कि ईश्वर का लक्षण है।"

शास्त्री—हंस कर जनता को सम्बोधित कर कहा कि न्यायरत्न जी ने ईश्वर में इच्छा, द्वेष, दुःख आदि भी मान लिया। अप्राप्त वस्तु की इच्छा होती है क्या कोई वस्तु ईश्वर को भी अप्राप्त है? परमेश्वर दुःखी होता है? द्वेष भी मानता है? मुझे मालूम होता है कि आप ने न्याय पढ़ा नहीं है न्यायरत्न की उपाधि खानदानी है। पढ़ कर यह उपाधि प्राप्त नहीं की है। जनता में खलबली पड़ गयी और आवाज आने लगी कि ईश्वर में इच्छा है न दुःख है न द्वेष ही है। इस के बाद जनता ने कहा कि मध्यस्थ जी! आप ही वात्स्यायन भाष्य देख कर कहें कि उक्त सूत्रों के भाष्य में ईश्वर का ग्रहण है या नहीं?

मध्यस्थ ने भाष्य के पन्ने इधर उधर से उलट कर कहा कि इन सूत्रों में ईश्वर का ग्रहण नहीं है।

इतना सुनते ठाकुर रामनारायण जी न्यायरत्न के मुख पर मालिन्य छागया। जनता उठ खड़ी हुई और अपने गृह को चली गई।

———

स्वर्ग-संलाप

(स्त्री उपदेश)

लेखक श्रीयुत क० हेमराज विशारद वैद्य-एम० ए० एम० लाहौर

वीरसंतान

पाठिका वृन्द ! संसार में वीरता का जितना मान है इतना और किसी भी मानवी गुण का नहीं है। वीरता तीन प्रकार की विशेषतया होती है (१) धर्म वीरता (२) दान वीरता (३) युद्धवीरता। जगत् मात्र में जितना देशहित-जातिहित व धर्महित पाया जाता है इन तीन प्रकार की वीरताओं का ही पसार है अर्थात् वास्तविक उन्नति का मूल कारण वीरता ही है जो धर्म-प्रचार, दीन, अनाथ दुःखियों की रक्षा वा शत्रुओं के निवारण रूप में दिखाई देती है। संसार भर का इतिहास ऐसे २ वीर महान् व्यक्तियों के उज्ज्वल जीवनों से देदीप्यमान हो रहा है। प्रत्येक जाति स्वदेशीय वीर जनों के पवित्र गुणों से प्रभावित हो कर अपनी उन्नति का मार्ग निश्चय करती है और उसी पथ पर चलकर अनेक प्रकार के सुखों का उपभोग करती है। उन्नति के मार्ग पर चलना व भिन्न २ प्रकार से आनन्द भोग का लाभ उपलब्ध करना तीन प्रकार की वीरता का ही प्रत्यक्ष फल है।

कायर मनुष्य अपने भीरुपन से सदा सर्वत्र अनिष्ट व निराशा को ही देखता है। वीर कभी अनिष्ट व निराशा को पास तक नहीं आने देता इस को चारों ओर आशा ही आशा दिखाई देती है। जिस भी वीरता के कार्य्य को वीर मनुष्य आरम्भ करता है उस को आयु पर्यन्त करते हुए स्वदेश, स्वजाति व स्वधर्म का हित पूर्णरूप में संपादन करके मनुष्य मात्र के लिये सुन्दर मार्ग तय्यार कर देता है। ऐसे अनेक दृष्टांत जगत् में विख्यात है। इन्हीं गुणों के कारण प्रत्येक देश में वीर पूजा भिन्न २ प्रकार से होती है। हम तो जब कभी वीरों के उज्ज्वल व प्रकाशमान जीवनों पर विचार करते हैं और इन के धर्म, देश व जाति के हितकर कार्यों का मनन करते हैं तो हमें इन्हीं का ही उपकार सर्वत्र दिखाई देता है। जिन देशों या जातियों में ऐसी महान् व्यक्तियें नहीं हुई हैं वे अभी तक पशुपन में ही डूबे हुए हैं, वे अपने लिये सन्मार्ग का निर्णय नहीं कर सकते हैं।

वीरजन कहां से आते हैं ?

यह प्रश्न है जो हर एक विचार शील मस्तक में उत्पन्न होता है परन्तु इस प्रकार प्रश्न करने वाले लोग यह तो भली प्रकार से जानते हैं कि वीर जन बने बनाये न तो आकाश से

अवतीर्ण होते हैं और न ही भूमि माता के अन्दर से वृक्ष आदि की भांति निकल आते हैं और न ही अन्य देशों से लाये जाते हैं। जब यह वास्तविक अवस्था है तो इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट है कि ऐसे वीरों को इन की वीर जननियां उत्पन्न करती हैं, इन की उपज या इन का आना इन की उत्पादिकाओं के ही द्वारा है। आज अथवा पूर्वकाल में या भविष्य में वीरता सम्पादन का समग्र श्रेय जननियों का ही है। जितना मान, सत्कार व प्रतिष्ठा वीरता की है इस की अधिकारिणियें केवल मात्र माताएं हैं। वीर माताएं ही हैं जो अपनी संतती को वीर बना सकतीहैं। जिस भी देश की रमणियों के इतिहास का पाठ करें आप को यह स्पष्ट दिखाई देगा कि जिन जननियों के स्वच्छ विशाल पवित्र हृदयों में निजदेश, जाति व धर्म के हित की अग्नि प्रज्वलित थी उन्हीं की संतती ने संसार भर में अपने वीरता के गुणों को प्रकाशित करके अपने नाम को उज्ज्वल किया। वैसे तो करोड़ों माताएं व संतान प्रत्येक देश में मौजूद है परन्तु जिन के नाम लाखों वर्षों से मान सत्कार और प्रेमभाव से लिये जाते हैं, जिन के नाम लेकर लोग अपने जन्म को सफल समझते हैं, जिन के नाम मात्र से ही अनेक शिक्षाएं प्राप्त होती हैं वे वीर लोग विरले ही होते हैं। ऐसे पुत्रों व पुत्रियों को उत्पन्न करने वाली माताएं भी विरली ही होती हैं। तथापि वे माताएं धन्य हैं, वे जननियें धन्य हैं जो ऐसी वीर संतान को जगत् के उपकार के लिये उत्पन्न करती हैं। वे देश व जातियें धन्य हैं जिन में ऐसी उच्च कोटी की माताएं विद्यमान हैं। परमात्मा कृपा करें कि भारत ऐसी माताओं से परिपूर्ण हो।

वीर जननियें

हमारी देश भगनियो! हमारी धर्म बहिनो! क्या आप यह जानती हैं कि वीर जननियें कौन होती हैं? आप अवश्य ही जानती होंगी। जो देवियें नहीं जानती है उन के ज्ञानार्थ हम इतना बताते हैं कि वीर जननियें वे होती हैं जो देश माताएं कहलाती हैं; क्यों कि उन के शूर वीर पुत्र देश के पुत्र या देश के पिता होते हैं। ऐसी उच्च कोटी की पवित्र स्त्रियें प्रत्येक स्त्री बन सकती है। हर एक स्त्री के अन्दर शक्ति है कि वह वीर माता बने किन्तु आज हमारे देश के मन्द भाग्य हैं कि हमारी स्त्री जाति विशेष कर मूर्खा है। इन्हीं के अज्ञान के कारण भारत संतान अनेक दोषों की खान बन रही है। वीरता तो कहीं २ दिखाई देती है परन्तु मूर्खता चारों ओर फैली हुई है। भीरुता, दुराचार व्यभिचार, दीनता, निर्धनता, लुब्धता, आदि अनेक दुर्गुण भारत की संतान में

इसी कारण से पाये जाते हैं। यदि माताएं आज ऐसे पवित्र गुणों से युक्त हों जो गुण इन की संतान को धर्म वीर, दान वीर व युद्ध वोर बना दें तो आज ही सब दुर्गुणों का नाश हो कर सर्व प्रान्तों में भारत जननियों का यशगान होने लगे।

प्यारी बहिनों ! हमारा हृदय उस समय कम्पायमान हो जाता है जब हम अपनी अर्थात् मनुष्य जाति की अवनति पर विचार करते हैं। इस अधोगति का कारण न केवल मात्र हम ही हैं या हमारा संघटन है अथवा हमारी शिक्षा, नीति रीति व धर्म्म है बल्कि इस में आपका बहुत भारी भाग है। हमने आपके गर्भाशय में वास करने के समय से लेकर आपका दुग्धपान, आप के साथ रहन सहन आदि करते समय जो कुछ आप से उपलब्ध किया है वे ही अङ्कुर आज वृक्ष रूप से हमारे जीवन की छाया बन रहे हैं। यह छाया हमें उच्च व पूज्य गुणों से वञ्चित कर रही है। यदि आप वीर जननियें होतीं तो जो शोकजनक अवस्था भारत सन्तान की हो रही है वह कदापि न होती। इसलिय बहिनों ! माताओ ! पुत्रियो ! उठो, होश सम्भालो और अपनी अवस्था को उच्च बनाकर वोर माताएं बनने का प्रयत्न करके देश को दशा सुधारो; यह सब कुछ आप की शक्ति में ही है।

वेदादि सत्य शास्त्र

विद्वान् पुरुष व विदुषी स्त्रियें जानती हैं कि वेदादि सत्य शास्त्रों में इस विषय को भली प्रकार से प्रतिपादन किया है कि स्त्री जाति ही प्रधानतया जातियों को बनाती है। इनके आधार पर ही सर्व प्रकार की अवस्थाओं का सुधार होता है जैसे अथर्व वेद में इश्वरीय उपदेश है:—

यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भ मादधे।
एवा दधामि ते गर्भं तस्मै त्वामवसे हुवे॥ अथर्व ५-२५-२

जैसे यह पृथिवी सम्पूर्ण भूतों को अपने गर्भ में धारण करती है ऐसे ही (हे स्त्री ! तेरे गर्भ को धारण करता हूं इस गर्भ की तू रक्षा कर। अर्थात् जैसे अनेक प्रकार के रत्नों को अपने गर्भ में पृथिवी धारण करती है वैसे ही बहुमूल्य अनेक उज्वल गुणों से युक्त पुत्र रत्नों को स्त्री अपने गर्भ में धारण करे। वैद्यक-शास्त्र में लिखा है—

ध्रुवं चतुर्णां सान्निध्यात् गर्भः स्याद्विधिपूर्वकः
ऋतु क्षेत्रांबु वीजानां सामग्र्यादंकुरो यथा॥ सु० शा० २ २६

चार पदार्थों के संयोग से विधिपूर्वक गर्भ होता है यह निश्चित है। जैसे ऋतु (अनुकूल काल) और क्षेत्र (दोष रहित संस्कृत भूमि) जल (जैसा और जितना जिस काल में आवश्यक है) बीज (दोष रहित नूतन बीज) इन चार प्रकार की सामग्रियों के संयोग से अङ्कुर उत्पन्न होता है, वैसे ही ऋतु (युवा स्त्री के रजस्वला होने के दिन से विशेष तिथियों को छोड़ कर १६ दिन तक) क्षेत्र (शुद्ध दोष रहित गर्भाशय) और जल (माता के भोजनादि का यथोचित रस) बीज (शुद्ध शुक्र) इनके संयोग से स्त्री गर्भ को धारण करती है, अर्थात् रत्न गर्भा पृथिवी चार प्रकार की शुद्ध पवित्र व अनुकूल सामग्री के उपस्थित होने पर जैसे अनेक प्रकार के गुणों से व रसों से युक्त उत्तम २ पदार्थों को समय २ पर उत्पन्न कर के सम्पूर्ण शरीरधारियों का पालन पोषण व रक्षण करती है वैसे ही उत्तम वीरतादि गुणों से युक्त संतति को माता तब ही उत्पन्न कर सकती है जब उस के निकट भी उपर्युक्त उपयोगी पदार्थों की उपस्थिति हो। इसलिये प्रत्येक माता का कर्तव्य है कि इन सब उचित सामग्रियों की उपलब्धि के लिये यत्नवान हो ताकिः—

एवं जाता रूपवन्तो महासत्वश्चिरायुषः
भवंत्यृणस्य मोक्तारः सत्पुत्राः पुत्रिणोहिताः ॥ सु० श० २—३०

पूर्वोक्त चारों पदार्थों के संयोग से सौन्दर्य व प्रभावशाली महान् गम्भीर व प्रत्येक आपत्ति विपत्ति आदि में सत्वशाली, बड़ी आयु वाला, माता पिता के ऋण के उतारने वाला सत्पुत्र उत्पन्न होता है।

प्यारी बहिनों! ये पूर्वोक्त चारों सामग्रियें यथार्थ व उचित रूप से कैसे प्राप्त हो सकती हैं। इन का यथार्थ संधारण कैसे होता है इनके विषय में विस्तार पूर्वक आप को आगामी किसी अंक में बतायेंगे ताकि जिन वीर माताओं के गुणों की स्तुति इस लेख में की गई है आप वैसी ही वीर माताएं बन सकें। जिस वीरता के अभाव ने आज भारत को हर प्रकार से अधोगमन का मुख दिखाया है, उसका पुनः प्रादुर्भाव हो ताकि सम्पूर्ण क्लेश दूर हो कर संसार भर में भारत माता की जय २ कार हो; और भारत वासी सर्व सुख सम्पन्न होते हुए सदैव आनन्द भोग का लाभ उठावें।

ओ३म् इतिशम्

झोली

घर की मक्खियां

कहने की आवश्यकता नहीं कि हमें जितनी बीमारियां होती हैं, उन में अधिकांश मक्खियों के कारण होती हैं। कूड़ा करकट लीद-गोबर आदि मैले स्थानों में मक्खियां अंडे देती हैं। ग्रीष्म ऋतु में केवल एक मादा-मक्खि १,८०,००, ००, ००, ००. ००० अण्डे, एक बार में ८० से १२० तक अण्डे के हिसाब से, देती है। ये अण्डे वह मैले स्थानों में देती। जब तक वे मक्खी का आकार धारण कर उड़ने नहीं लगते, तब तक वहीं रहते हैं। इसलिए इनका सारा शरीर कीटाणुओं से आवृत रहता है। मक्खियां मच्छड़ की तरह तो एक मनुष्य के शरीर से दूसरे मनुष्य तक रोग नहीं ले जातीं, किन्तु उन का सारा शरीर ही हैज़ा, टाइफ़ॉइड आदि बीमारियों के कीटाणुओं से आच्छादित रहता है। वे जहां कहीं बैठती हैं, वहीं उनके शरीर से ये कीटाणु झड़ते हैं। इस के अलावा वे सदा उलटी करती रहती है। जिन लोगों ने अणुवीक्षण-यंत्र द्वारा इनकी क्रिया देखी है उन का कहना है कि जिन वस्तुओं पर मक्खियां बैठती हैं, वे खाने योग्य नहीं रहतीं; क्योंकि उन पर कीटाणु झड़ते रहते हैं।

माधुरी

कसरत की बात

पानी का नल, आटा पीसने की चक्की, स्वयं पाक के चूल्हे (स्टोव), बिजली के लैंप, बाईसिकल, ट्रांवे, मोटर, रेल, जहाज, कपड़ा सीने की मशीन, कपड़ा बुनने की मिल, पानी निकालने के पम्प, घास काटने की मशीन, पेटेंट-दवाइयां, दूध मक्खन और बिस्कुट आदि के डब्बे, बनावटी आंखें, बनावटी दांत आदि अनेक कृत्रिम साधनों का उपयोग करने में ही हम अपने देश का गौरव तथा अपना सौभाग्य समझते हैं। भारत का बड़ा भारी जन समुदाय प्रायः ऐसा ही मानने वाला है। यह सुधार नहीं कुधार है एवं उन्नति नहीं अवनति है।

पाठक गण! आज से कुछ दिन पहले यह समझा जाता था कि शरीर से मोटा ताज़ा होना या लंगोट, जांघिया, कच्छ आदि पहनना, हाथ में लकड़ी

वा लट्ठ धारण करना असभ्यता है, पर इन्हीं असभ्य कहलाने वाले व्यक्तियों ने भारत की लाज रखी है। हमारे भारत के पहलवानों ने ही योरुप के सर्वोत्तम कहलाने वाले मल्ल-विद्या विशारदों को बात की बात में पछाड़ दिया है। १८९२-९३ ई० में कृष्णलाल नाम के एक हिन्दू पहलवान ने 'एथन्स' के भरे हुए सर्व राष्ट्रिय दंगल में दिग्विजय प्राप्त की। तत्पश्चात् 'पैरिस" के भरे हुए प्रदर्शन स्थान में श्री० प० मोतीलाल नेहरू उस समय के 'रुस्तमे हिन्द' गुलाम पहलवान को अपने साथ ले गए थे। उसने 'मद्राही' नामक प्रसिद्ध तुर्की मल्ल को सहज ही में हरा दिया तथा योरुपियन लोगों को यह निश्चय करा दिया कि गुलाम संसार का सब से बड़ा पहलवान है। सन् १९०८ में "गामा" ने 'वर्ल्ड-चैंपियनशिप" अर्थात् 'जगत् का महावीर' पद प्राप्त किया। इसी ने अमरीका के सुप्रसिद्ध मल्ल डा० रोलर को चित किया और झिस्को नामक भूतपूर्व वर्ल्ड-चैंपियन को एवं योरुप-अमरीका के नामी पहलवानों को पछाड़ दिया। अहमद-बख्श, रहीम, कुल्लू, तिला, गुलाम, मोहोद्दीन गामा, श्यामबख़्श आदि पहलवानों को मि० बेंजमिन विलायत ले गये थे, परन्तु जब उनके हाथ से हाथ मिलाने को कोई भी योरुपियन मल्ल तय्यार नहीं हुआ तब दो स्वीस मल्ल बड़ी हिम्मत से सामने आए। परन्तु लोगों को यह भी न मालूम पड़ा कि कुश्ती कब शुरु हुई, इसके पहले ही वे अहमदबख़्श के हाथ से मारे जा कर चारों शाने चित हो गए। 'वर्ल्ड चैम्पियन शिप' अमेरिकस को मिली, उस से चल कर वह पटकालोनी को मिली, परन्तु इस पटकालोनी को, स्वीस मल्लों की तरह, अहमदबख़्श ने तुरन्त पछाड़ दिया आश्चर्य की बात तो यह है कि ये सब पहलवान हिन्दुस्थान में दूसरे दर्जे के माने जाते थे। कुश्ती की कला भारत में प्राचीन काल से चली आरही है। इस का चरम विकास भी यहीं हुआ है, यह बात किसी से छिपी हुई नहीं है। यदि भारत में मानसिक शिक्षा के साथ साथ शारीरिक शिक्षा की ओर ध्यान न दिया जाएगा तो भारत के सुदिन शीघ्र निकट न आएँगे।

सेवा

आधुनिक गो दोहन

आजकल के सभी काम मशीनों द्वारा होते हैं; फिर भला गो-दोहन ही क्यों हाथ से किया जाए ? गायों को एक एक कर दुहने में समय नष्ट होता है। समय की इस बरबादी को बचाने के लिए अमरीका के एक वैज्ञानिक ने एक मशीन बनाई है। इस के द्वारा दर्जनों गायें एक ही बार में दुह ली जाती हैं। कहा जाता है कि इस के व्यवहार से गायों को किसी प्रकार का कष्ट भी नहीं पहुँचता। यह इतनी हलकी और इस से काम करना इतना आसान है कि एक से अधिक मनुष्य की आवश्यकता नहीं होती। केवल इतना ही नहीं, इस मशीन से रोशनी करने, कुएँ से पानी खींचने, दूध से मक्खन निकालने तथा और भी कई काम लिए जा सकते हैं। इस में खर्च भी कम है, इस का मूल्य केवल कई हफ़्ते के व्यवहार से निकल आता है। दूध दुहने के समय इस से ऐसी कोई आवाज़ भी नहीं निकलती जिसे सुन कर गायें घबरा जायँ या भड़क उठें। इस विधि से दुहे हुए दूध में हाथ से दुहे हुए दूध की अपेक्षा बहुत कम कीटाणु पाये जाते हैं। दूध दुहने की यह प्रणाली वैज्ञानिक है। जब हम इस बात पर ख़्याल करते हैं कि लन्दन जैसे शहर को दूध देने के लिए १,६०,००० गायों के दुहने की आवश्यकता होती है तब इस प्रणाली-द्वारा गो-दोहन में समय की जो बचत होती है वह असीम है। कुछ लोग प्रश्न करेंगे कि सभी गायें सभी समय बराबर दूध नहीं देतीं, क्या इस मशीन में ऐसा भी कोई प्रबन्ध है कि किसी गाय का सब दूध दुह लेने के बाद उस से मशीन का सरोकार टूट जाय ? हाँ ! जहां तक मुझे ज्ञात है, इस मशीन में ऐसा भी प्रबन्ध किया गया है। ख़ैर साहब ! दिन में इस से गाय दुही, कुएँ से पानी निकला और रात में बत्ती जलाई और पंखा चलाया-क्या यह कम उपयोगी है ?

पानी में न बुझने वाला चिराग़

मैं बिजली बत्ती के विषय में नहीं लिखता। साधारण दीपक अगर पानी में न बुझे तो वह आश्चर्यजनक व्यापार अवश्य कहा जायगा। आस्कर ब्रनलर ने एक ऐसा चिराग़ बनाया है जो पानी में भी नहीं बुझता। आप बेलजियम के रहने वाले हैं। एक प्रकार का मैला तेल हवा के साथ मिला कर और दबाव डाल कर इस चिराग़ में डाल दिया जाता है और जब तक यह अच्छी तरह

जलने नहीं लगता तब तक पानी के बाहर रक्खा जाता है। पीछे धीरे धीरे वह पानी में डुबोया जाता है, किन्तु तो भी वह नहीं बुझता।

श्री रमेशप्रसाद, बी० एस० सी० (सरस्वती)

अधिक जन संख्या की व्यापक समस्या

हार्वर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर एडवर्ड मरे ईस्ट ने 'करैण्ट हिस्ट्री' "Current History" नामक पत्रिका में उक्त समस्या के संबंध में कुछ उपयोगी अंकों का संग्रह किया है। विचार शील सज्जनों के लाभार्थ हम उसे दिए देते हैं। वे लिखते हैं:—"संसार भर की दैनिक जन्म-मरण-द्योतक-पत्रिका को यदि अवलोकन किया जाए तो मालूम होता है कि प्रति दिन १५०,००० जन्म होते हैं और १००,००० मृत्युएं होती हैं आज भले ही कितने मनुष्य इस लोक में हों किन्तु कल प्रातः अवश्यमेव उन की संख्या में ५०००० की वृद्धि हो जाएगी।

इन अंकों से स्पष्ट है कि पधारने वालों की संख्या बिदा होने वालों से कहीं अधिक है। महामारी (ताऊन), दुर्भिक्ष और युद्धों की दक्षिणा चुकाने पर भी मानव-जाति प्रतिदिन बढ़ती पर है। इस समय संसार भर की जन-संख्या लग भग १८५०,०००,००० है। १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ की जन संख्या वर्तमान संख्या के आधे से भी कम थी।

पाश्चात्य सभ्यता

रीफी नेता अबदुलकरीम कहते हैं कि १९१४ के महायुद्ध से पहले हमें पाश्चात्य सभ्यता पर विश्वास था; परन्तु अब हमारे हृदय में उस सभ्यता के प्रति कोई सम्मान नहीं रहा; क्योंकि इसे सत्यानाश की, विषैली गैसों की, अरक्षित नगरों पर गोलाबारी की और सब कुछ भस्मसात् करने की उत्कट लालसा है। इस प्रकार की घातक सभ्यता का अभिमान करते हुए एक जाति का यह कोई अधिकार नहीं कि केवल इस कारण क्योंकि उस की पड़ोसिन जाति अभी इस सीमा तक सभ्य (?) नहीं बनी इस लिए उस के भीतरी व्यवहार में दखल दे और बलपूर्वक उस पर शासन करे॥

"माडर्न रिव्यू"

महर्षि दयानन्द पर झूठे आक्षेप।

(श्रीयुत प० रामदयालु शास्त्री-अध्यापक गुरुकुल कुरुक्षेत्र)

यद्यपि हम इन बातों का कई वार उन हठवादी मित्रों को शास्त्रार्थादिकों में इतना उत्तर दे चुके हैं, जितना इस जगह लिखना असम्भव है, क्योंकि मौखिक समझाने तथा लिखने में गौरव लाघव का अत्यधिक भेद रहता है, तथापि इस भोली भाली आर्य जनता की हृदयोत्पन्न शङ्काओं को मिटा देना चाहता हूँ। लोगों का कथन है कि महर्षि दयानन्द को व्याकरण का भली भान्ति ज्ञान नहीं था; क्योंकि उन के बनाये ग्रन्थों में व्याकरण की प्रायः अशुद्धियें पायी जाती हैं। इस में उन २ लोगों के हेतु तो बहुत से हैं किन्तु उन में से एक दो को आप के सामने रक्खूँगा—परन्तु यह कहना निर्मल चन्द्रमा की तरफ़ मुट्ठी भर धूल फेंकना ही है। हमने कई वार देखा है कि जब सिद्धान्तों से हार कर दुम दबा कर दौड़ा करते हैं तो भागते २ यह कह जाया करते हैं कि स्वामी दयानन्द व्याकरण बहुत कम जानते थे—क्योंकि देखो—ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के आठवें श्लोक में "सुसिध्यताम्" लिखा है-तथा 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्" इत्यादि मन्त्रों का खूब ही मनगढ़न्त अर्थ किया है-आर्य शब्द कहीं भी नहीं बनता तथापि अपने चेलों को आर्य २ कहना सिखला दिया है इत्यादि अनेक बातें कही जाती हैं। परन्तु आज मुझे इन्हीं तीन आक्षेपों पर स्वामी जी की विद्वत्ता का परिचय देना है तथा उन आक्षेपपटुओं को "जो दूसरे योधा के गिराने के लिये दाँव पेच चलाये और स्वयं गिरजाए" की बात सिद्ध करनी है।" यदि इन बातों को पूर्णतया लिखूं तो पत्रिका के लेख गौरव के हो जाने का भय है, अस्तुः 'प्रथम शङ्का में कहा गया है कि स्वामी जी का लिखा हुआ" "सुसिध्यताम्" रूप अशुद्ध है क्योंकिः—"उपसर्गात्सुनोति सुवतिस्यतिस्तौति स्तोभतिस्थासेनयसेधसिचसञ्जस्वञ्जाम्—अष्टा० अ-८-३-६५ से षत्व हो कर सुषिध्यताम्" रूप बनता है।" यह शङ्का सचमुच पठित मूर्खों की सी है अर्थात् उपर्युक्त सूत्र को घोट कर याद कर लिया हो, परन्तु पाणिनीय कृत सूत्र के आशय को न जाना हो। अस्तु यहां बातें अधिक हैं परन्तु सबों को छोड़ कर एक मूल बात लिखता हूं "सेधेति शपनिर्देशाद्दौवादिकस्यनतु सिद्ध्यतेः" "परिसिध्यति, इत्यादि निर्देशात्। अर्थात् एक षिधु संराद्धौ दिवादिगण में है और दूसरी षिधु गत्याम्

भवादि गण में है। सूत्र का आदेश शप् निर्देश युक्त होने से भवादिगणस्थ धातु से है, और महर्षि का आशय "षिधु" धातु से है जिस का अर्थ 'सिद्ध होना' है। यदि कोई कहे कि स्वामी जी तो गलती से लिख गये अब तुम ठीक करके दिखलाते हो-सो यह भी ठीक नहीं है, जिसने वेदांग प्रकाश पढ़ा तथा देखा हो-वह जान लेगा कि सिध् धातु का अर्थ गुण क्रिया निर्देश भी है उस कारण दिवादिगण पठित षिधु धातु को षत्व नहीं होता है अपितु भवादिगण पठित षिध् को ही होता है। अतः स्वामी दयानन्द कृत भाष्य भूमिका में लिखा हुआ सुसिध्यताम् रूप सर्वथा शुद्ध है—और उस के अशुद्ध करने वाले मनुष्य स्वयं व्याकरण के तत्व से शून्य है। अतः 'ईश्वरस्य सहायेन प्रयत्नोऽयं सुसिध्यताम्' यह स्वामी दयानन्दकृत पाठ सर्वथा शुद्ध होने से मान्य है। दूसरी बात स्वामी जी ने-न शब्द सङ्गति को विचारा न भाव संगति को विचारा—और जैसा मनभाया वैसा ही प्रत्येक मंत्र का अर्थ कर दिया है। अस्तुः—यह प्रश्न भी बुद्धि तथा युक्ति से बाहर ही है। प्रश्न करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि बुद्धि के गुण क्या है। क्रियात्मक रूप में परिणत की हुई बुद्धि का क्या फल है। पर मैं इसी विचार को प्रकट करने के लिये उद्यत हुआ हूँ। शुश्रूषाश्रवणंचैवग्रहणंधारणंतथा-ऊहापोहोऽर्थ—विज्ञानं तत्वज्ञानं च धीगुणा:" इस श्लोक में स्पष्ट बतला दिया है कि सुनने की इच्छा करना, सुनना, ग्रहण करना, धारण करना, ऊहापोह (तर्कवाद) अर्थज्ञान और तत्वज्ञान बुद्धि के सात मुख्य गुण हैं। और ये उत्तरोत्तर क्रमशः एक दूसरे से प्रवर्त्त होते हैं—जिन में यह चार साधारणतया प्रत्येक काम आतेहैं-जैसे जाते हुए मनुष्य को पीछे से पुकार कर कहा जाय कि "किमन्वेषयसि देवराज ? पुत्रोऽयं धनराजस्ते तिष्ठति इति इस वाक्य के कहने से पहले चार गुणों का आवेश तुरन्त हो जायगा, परन्तु पिछले तीन गुणों के आविर्भाव से शून्य होने पर अर्थ जैसा सायणादिकों ने किया है वैसा ही है, "अर्थात् क्या ढूंढ़ता है देवराज (इन्द्र) तेरा धर्मराज पुत्र यह बैठा है। तात्पर्य यह है कि कोई इन्द्र से कहता है कि तू क्या खोज रहा है तेरा पुत्र कुवेर यह बैठा है। परन्तु जब पिछली तीन बातों पर ज़ोर दिया जायगा तो मालूम होगा इन्द्र का पुत्र कुवेर नहीं हो सकता; इस लिये किसी मनुष्य विशेष का नाम है और अपने कुवेर नामक पुत्र को खोज रहा है। उससे कोई मनुष्य ऐसा कहता है। इससे ज्ञात होता है कि अर्थ केवल व्याकरण की विभक्तियों के अनुसार नहीं होता बल्कि एक तरफ

बुद्धि के सातों गुण और दूसरो तरफ मन्त्रादि व्याख्येय वाक्य। इसी तरह सायण उव्वट आदि भाष्यकार व्याकरण का सोटा उठा कर वेदों के पीछे पड़ गये और सहायक केवल बुद्धि के गुणों का अभाव ही रक्खा। तथा जैसे तिलकादि टीकाकारों ने हनुमान सुग्रीवादि को बन्दर लिखा है (इसी विषय में पुन: लिखूंगा) ऐसा वैदिक शब्दोंका अर्थ अच्छा होते हुए भी उलटा और व्यर्थ कर डाला। उदाहरण में 'गो' शब्द का भूमि अर्थ होते हुए भी गौ को मार कर ऐसा अर्थ कर दिया और ऐसा ही बुद्धि वालों ने समझ लिया इत्यादि २। लिखना बहुत था पर मूल बात यह कि "सहस्रशीर्षा" इत्यादि मन्त्रों में ईश्वर के रूप का वर्णन आने पर भी ईश्वर निराकार क्यों, और साकार ईश्वर के मुखादि अवयवों से ब्राह्मणादि वर्णों के पैदा होने पर भी वर्णव्यवस्था का नाश क्यों?—यहां ईश्वर के साकार तथा निराकारादि विषयों का कोई प्रसङ्ग नहीं है। इन बातों से यह बतलाना है कि फिर उन मन्त्रों का ऐसा अर्थ होते हुए भी स्वामी जीने उलटा अर्थ क्यों किया। इसका कारण पहिले ही बतला दिया है कि इन सब आचार्यों का अर्थ शब्दपरक है तथा स्वामी जी का अर्थ तत्वपरक है। यथा यजुर्वेद के ३१वें अध्याय के आदि मंत्र की व्याख्या में "मंत्रे पुरुष इति पदं विशेषमन्यानि विशेषणानि" यह लिख दिया और पुरुष शब्द का अर्थ "पुरुषः पुरिषादः पुरिषयः" इत्यादि किया है—अर्थात् पांच स्थूल भूत पांच सूक्ष्म भूतों में व्याप्त होकर रहता है। अब "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" इसका अर्थ भी खुल गया कि मुख भुजादि शून्य ईश्वर से इस प्रकार वर्णों की उत्पत्ति कैसे हो सकती है। तत्व से विचार करने पर मन्त्र का कोई भिन्न अर्थ है—इसलिये स्वामी जी ने लिखा है कि "अस्य पुरुषस्य मुखं ये विद्यादयो मुख्य गुणाः सत्यभाषणोपदेशादीनि कर्म्माणि च सन्ति तेभ्योब्राह्मणआसीदुत्पन्नोभवतीत्यादि—यदि उन भाइयों की ही बातों पर विश्वास किया जाय तो मुख भुजा पाद आदियों से सन्तान का होना बिल्कुल ही असम्भव है; इस बात को आयुर्वेद-धर्म्म-शास्त्र साक्षात् कह रहे हैं। अतः स्वामी जी का किया हुआ भाष्य सर्वथा सत्य है और उन को असत्य कहने वाला बुद्धि के सात गुणों से सर्वथा शून्य है।

तीसरी बात 'आर्य' शब्द व्याकरण से सिद्ध नहीं होता—लोग यह शङ्का भी कर बैठते हैं। वैसे तो कोई शब्द ऐसा नहीं है जो लौकिक, वैदिक तथा प्राकृत व्याकरण से सिद्ध न होता हो परन्तु आर्य शब्द की सिद्धी सर्वमान्य श्री पाणिनीय व्याकरण से ही प्रकृति (धातु) तथा

प्रत्ययों से हो जाती है। इस विषय में हम भट्टोजिदीक्षित का विचार भी आपके सामने प्रकट करते हैं। "अर्यः स्वामिवैश्ययोः" अष्टाध्यायी-अ. ३ पा १ सूत्र १०३ यत् प्रत्ययाधिकारे ऋगतौ अस्माद्यत्-ण्यतोऽपवादः। अर्यः स्वामिवैश्योवा" सूत्र के आशय के साथ २ ही कह दिया कि यत् प्रत्यय के अधिकार में ऋ, धातु से ण्यत् को बाधकर यत् होगा। उससे सिद्ध हुए आर्यः शब्द का प्रयोग केवल स्वामी और वैश्य के लिये होगा यत् प्रत्यय स्वामी वैश्य के ही लिये क्यों होगा। जिस प्रत्यय (ण्यत्) को अपवाद कर यत् होता है तो ण्यत् प्रत्यय में क्या रूप बनेगा वहां कहते हैं—अनयोः किम् आर्यो ब्राह्मणः प्राप्तव्य इत्यर्थः [ऋगतौ-इत्यस्यगतिश्चात्र ज्ञान गमन प्राप्ती आर्य्योब्राह्मणः इति श्रेष्ठार्थे वार्या ऋत्विजः इति यत्-ऋहलोर्ण्यत् इति ण्यत् प्रत्यये रूपम् अर्थात् ण्यत् प्रत्यय से श्रेष्ठ के अर्थ में आर्य शब्द बनेगा। आगे तदन्त प्रत्यय के अधिकार में भी "पदास्वैरिबाह्यापक्ष्येषुच" "अ० ३ पाद १ सूत्र ११९ सूत्रे क्यपधिकारेस्त्रीलिङ्ग-निर्देशात्पुंनपुंसकयोर्न इति वाक्यात् दिगदित्वाद्यत् आर्यैर्गृह्यते आर्यगृह्यः तत्पक्षाश्रित इत्यर्थः अर्थात् उपरोक्त क्यप् के अधिकार का स्त्री लिङ्ग को ही निर्देश होने से यत् ही होकर आर्यगृह्य शब्द सिद्ध होता है और वह श्रेष्ठों के पक्ष में आश्रित ऐसा अर्थ होता है। जो मनुष्य यह कहते हैं कि आर्य शब्द बनता नहीं और उसका कुछ अर्थ नहीं केवल अर्यः शब्द बनता है उनको पता लगालेना चाहिये कि आर्य शब्द की सिद्धी कैसे धातु प्रत्ययों से स्पष्ट होती है। अब एक बात शेष है कि यदि आर्य शब्द बनता है तो कहीं लौकिक साहित्य तथा आर्ष काव्यों में आर्य शब्द का प्रयोग क्यों नहीं हुआ। इस शङ्का को सनातन धर्म प्रचारक में वही कर सकता है जिसने लौकिक साहित्य तथा आर्षग्रन्थों को पढ़ा न हो या आंखें मूंद कर यजमान को ठगने के प्रपञ्च में पुस्तकों के पृष्ठ ही पलटता गया हो। देखिये सब से पहिले आर्ष काव्य श्री. बाल्मीकीय रामायण में ही महर्षि ने लिखा है:—सर्वदाभिगतःसद्भिःसमुद्रइवसिन्धुभिः—आर्यसर्वसमश्चैवसदैवप्रियदर्शनः वाल० रामायण बालकाण्ड सर्ग १ श्लोक १६ अर्थात्—रामचरित्र वर्णन करने के प्रश्न में नारद जी बाल्मीक से संवाद में बतलाते हैं कि सर्वदा श्रेष्ठ पुरुषों से युक्त सबों में तुल्य दृष्टि रखने वाले ऐसे "आर्य" रामचन्द्र हैं इससे स्पष्ट है कि श्रेष्ठ पुरुष तथा श्रेष्ठ गुणों वाला पुरुष आर्य होता है आगे जिस समय शूर्पणखा लक्ष्मण, के पास पहुँच कर अपनी इच्छा प्रकट करने लगी उस समय लक्ष्मण जी कहते हैं "कथं दासस्यमेदासी भार्य्या भवितुमिच्छति, सोहमार्येण, परवान्भ्राता

कमलवर्णिनि-हे सुन्दरी-सः" अहम्, आर्येण भ्रात्रा परवान् अर्थात् मैं आर्य भाई रामचन्द्र के आधीन हूँ अतः ; मेरी स्त्री हो कर क्यों दासी बनना चाहती है। इस श्लोक से राम के आर्यत्व की पुष्टि होती है। आगे जिस समय रावण सीता को हर कर ले जाता है, जटायु को देख कर सीता कहती हैं--जटायोपश्यमामार्यां ह्रियमाणामनाथवत्-अनेन राक्षसेन्द्रेण करुणं पापकर्मणा, कि हे जटायु मुझ आर्या को यह नीच राक्षस ले जाता है। इस श्लोक ने सिद्ध कर दियाहै कि आर्य की स्त्री आर्या होती है। अस्तु-इन के अतिरिक्त और भी बहुत से प्रमाण रामायण में हैं जो राम लक्ष्मण भरत तथा दशरथ वशिष्ठादिकों को आर्य बतलाते हैं जो गौरव भय से नहीं लिखे जा सके। एवम् क्रमशः महाभारत में भी कितने ही स्थानों पर भीष्म युधिष्ठिरादिकों को आर्य पुत्र, आर्य कुलनन्दन और आर्य कहा है जिन को रामायण के प्रमाणों के आगे लिखना व्यर्थ सा है ये सब बातें बड़े २ मान्य ग्रन्थों की हैं किन्तु अब उन के भी प्रमाण लीजिये, जिन्होंने काव्यशैली के रस में मस्त हो कर आगा पीछे देखे बिना कमर कस कर आर्य सभ्यता को नष्ट करने की भरपूर कोशिश की। उन में सब से पहिले कालिदास ही निदर्शन रूप हैं। यद्यपि इन की कविता भाव पूर्ण तथा काव्य रस से युक्त है और यह भी सत्य है कि कामी जनों की तो क्या गणना किन्तु नपुंसक पुरुषों के हृदय में भी कालिदास की कविता को पढ़ कर अनङ्ग भगवान् की आंखें मूंद करादेने वाली तरङ्गों की प्रबल धारा बहने लगती है परन्तु यह कह देना भी अत्युक्ति तथा अयुक्त नहीं है कि कालिदास ने आर्य सभ्यता को नष्ट करने के लिये पूर्णोत्साह से लेखनी उठाई और उन महात्मा पुरुषों की श्रेष्ठता को जड़ से उखाड़ देने के लिये झूठी गप्पों का मजबूत भूत बना कर दुनियां से पुजाना शुरु कर दिया। 'किन्तु सचाई छिप नहीं सकतो बनावट के असूलों से' किसी शायर की इस उक्ति के अनुसार सत्य ने कालिदास का पीछा नहीं छोड़ा और उन को इच्छा न होने पर भी सत्यता ने उन का मुख बन्द कर दिया, और लेखनी को मजबूती के साथ पकड़वा कर जबर्दस्ती से लिखवा दिया कि सत्य को ही लिखदेः—'कोशार्धं प्रकृति पुरस्सरेण गत्वा काकुत्स्थः स्तिमितजवेनपुष्पकेण, में शत्रुघ्न प्रतिविहितोपकार्यमार्यः साकेतोपवनमुदारमध्युवास' (रघुवंश) अर्थात् रामचन्द्र लङ्का से अयोध्या को लौटे; अयोध्या की प्रजा उन के स्वागत में पहुंची तो आधे कोशतक प्रजा के साथ २ राम ने विमान को धीरे २ चलाया और शत्रुघ्न प्रतिविहितोपकार्यम्—आर्यः-आर्य रामचन्द्र शत्रुघ्न के बनाये एट मकानों में उतरे इस श्लोक में राम को आर्य कह

के साथ ही सीता के भी आर्या होने का पुष्ट प्रमाण दिया है यथा "नचावदद्भर्तुरवर्णमार्यानिराकरिष्णोर्वृजिनादृतेऽपि आत्मानमेव स्थिरदुःखभाजंपुन पुनर्दुष्कृतिनंनिनिन्द" (रघुवंश) जब राम ने सीता को निकाल दिया तो सीता आर्या थी इस कारण से बिना अपराध निकालने वाले पति को भी कोई बुरा वाक्य न कहती हुई अपनी ही निन्दा करने लगी। इस श्लोक में कालिदास ने भूल से राम की निन्दा कर दी है सो ठीक हो, गलत हो, यह तो उन के ही लेख से पता चलता है और न हमारी इस बात पर बहस है हम केवल यह बतलाते हैं कि कालिदास के शब्दों से यह स्पष्ट हो गया कि किसी भी तरह दण्ड देने पर भी जो स्त्री पति को बुरा नहीं कहती है वह स्त्री आर्या होती है। सीता आर्यपति द्वारा शिक्षिता थी इसी कारण उस ने आर्य पति को बुरा शब्द नहीं कहा। एवम् इसी प्रकरण में इसी आर्या शब्द से सिद्ध हो गया है कि सीता आर्या थी और वह आर्य की स्त्री होने से रामचन्द्र भी आर्य थे। बिना अपराध निकालने आदिक की जो बातें हैं वे गलत हैं। बिना अपराध निकालने पर भी पति को बुरा शब्द नहीं कहा अतएव सीता "दृढ़ार्या" थी यह पुष्ट करने के लिये बिना अपराध और निकालने का प्रसङ्ग लाया गया है; क्योंकि ऐसी बातें आधुनिक कविता के रस का अङ्ग हो जाती हैं और कविताप्रिय लोगों के आनन्द का मूल हो कर फिर सत्यता की जड़ जमा देती हैं। इसी कारण यह कालिदास की कविता का रोचक अङ्ग है। वास्तव में ठीक नहीं—अस्तु इस बात के सत्य झूठ समझाने को अधिक लिखने की आवश्यकता होगी अतः केवल यह बतला देता हूँ कि व्याकरण की सिद्धि के साथ २ आर्षकाव्यों में तथा आधुनिक साहित्य में भी आर्या शब्द भाव पूर्ण हो कर चला आता है और सब जगह श्रेष्ठ तथा श्रेष्ठ, जनता और गुणों से युक्त मनुष्य के लिये ही प्रयुक्त होता है। इस विषय में कोई वेद का प्रमाण नहीं लिखा और नाही इस विषय में जितना मैं जानता हूं वह लिखा तथापि इतने ही से महर्षि दयानन्द की विद्वत्ता का पूर्ण ज्ञान होता है और उन सनातनधर्म के लेखक तथा वक्ताओं को ज्ञात होगा कि महर्षि का अक्षर २ यथावत् ठीक है और उस को अशुद्ध कहने वाला उस बात के पूर्ण भाव से तथा उस शास्त्र के ज्ञान से शून्य है। इति शम्।

———

संपादकीय
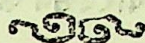
संशोधन।

'आर्य' के गतांक की विषय सूची में 'पञ्चपटलिका' शीर्षक लेख के लेखक 'श्रीयुत नारद' पढ़े जाने चाहियें और 'साहित्य-समीक्षा' के लेखक 'श्री स्वामी वेदानन्द तीर्थ और श्रीयुत धर्मेन्द्र बी. ए.'। हम इन महानुभावों से उन के नामों के सूची में उलटफेर होने के कारण क्षमा चाहते हैं।

'आर्य जगत्' का गालि-प्रदान

सहयोगी 'आर्य जगत्' की किसी सन्यासी महानुभाव को 'पापी' कहने की मनःकामना इस संशोधन की प्रतीक्षा न करने से पूर्ण हुई, इस पर सहयोगी को बधाई हो। स्वामी जी की उदारहृदयता इस गालि—पुरस्कार को यथापूर्व लौटा देगी, और 'आर्य जगत्' के पाप को उस के अपने हृदय का कण्टक बनाएगी। 'लेखों के साथ ठीक नाम दिये ही थे। हमारे सहयोगी में सौजन्य होता तो हम से तथ्य पूछ तो लेता। पर कोई गाली पूछ कर थोड़ा देता है।

हम पर कृपा

कृपा हम पर भी हुई है। हमें दूसरे यम के 'पालन' का दोषी ठहराया है। क्यों? इस लिये कि इस पत्र के संपादक का एक लेख वैदिक मैगज़ीन में छपा। श्री भगवद्दत्त जी ने पूछा, क्या उस का उत्तर जो भी हम लिखें, आप छाप देंगे। सम्पादन वैदिक मैगज़ीन का भ प्रायः वही सम्पादक करता है। उसने कहा, हमारी प्रथा अपने विरुद्ध लेखों में काटछांट करने की नहीं, परन्तु हां! आप के लिये सम्पादक का कर्तव्य छोड़ न दूंगा। यह केवल एक चेतावनी थी कि श्री पण्डित जी लेख लिखते हुए सावधान रहें। पण्डित जी लिखते तो क्या? उन्हें इस का अभ्यास ही नहीं। अनारकली समाज में व्याख्यान दे दिया। उस में क्या अनाप शनाप कहा, श्रोता ही जानते हैं। सब ओर से फटकार हुई। पण्डित जी को हमने फिर कहला भेजा कि यदि लेख के क्षेत्र में आना हो तो यद्यपि अब आप का अधिकार नहीं रहा कि किसी साहित्यिक पत्र के पृष्ठ आप के अर्पण किये जाएं; तो भी आप का लेख प्रकाशित कर दिया जायगा और उस के सम्पादक हम नहीं, श्री प्रो० रामदेव जी हो जायंगे। हमें यह डर हो चला था कि इस अनर्गल वक्ता के लेख के सम्पादन में कहीं हम अपने साथ अन्याय न कर बैठें। पण्डित भगवद्दत्त ने लेख लिखे; परन्तु छपवाए कहां?

'आर्य जगत्' में। हमने उन का उत्तर 'आर्य जगत्' के सम्पादक महाशय के पास भेज दिया। साथ ही लिख भेजा कि परिवर्त्तन का अधिकार नहीं। इस 'नहीं' का अर्थ ही यह है कि साधारणतया यह अधिकार रहता है। हम ने अपने लेख को असाधारण इस लिये बनाया कि 'आर्य जगत्' का सम्पादकवर्ग अपनी असाधारण योग्यता के कारण इस अधिकार का भागी नहीं। मुख्य सम्पादक हैं श्री खुशहालचन्द जिन का, वह क्षमा करें, साधारणतया केवल अंगूठा या हस्ताक्षर ही पत्र पर रहता है। और वह क्षम्य हैं। पत्र में और उन में द्विभाषिया चाहिये। सहकारी सम्पादक श्री देवदत्त हैं। आप शास्त्री हैं। आप ने ब्राह्ममहाविद्यालय में भी शिक्षा पाई है। आप नवयुवक हैं और यदि योग्य नेतृत्व में हों तो बहुत कुछ कर सकते हैं। 'आर्य जगत्' के वास्तविक सम्पादक आप ही को समझना चाहिये। श्री भगवद्दत्त आर्य जगत् की १२ भाद्रपद की संख्या में लिखते हैं:— 'मैं अपना लेख स्वयं नहीं लिखता।' किस से लिखवाते हैं? इन्हीं सहकारी सम्पादक महाशय से। अर्थात् यह लेख-लेखकों के लेखक हैं। सम्पादकता की शान है। सेवाव्रत है। इन्हें लेखक संभवतः इस लिये बनाया गया है कि श्रीयुत भगवद्दत्त भाषामात्र से कोरे हैं। लिखने लगें तो रिसर्च रह जाए। उन्हें विचार होगा कि इन के शास्त्रित्व में उन की अज्ञता छिप जायगी। परन्तु डींग यह है कि 'मेरे लेख में यदि कोई अशुद्धि रह जाए तो यह साधारण है' अर्थात् वह अपनी अशुद्धियों के उत्तर दाता नहीं। कौन है? यही सहकारी साहिब।

पण्डित भगवद्दत्त के प्रकाशित लेखों में से एक भी ऐसा नहीं जो किसी अच्छे पत्र में स्थान पा सके। परन्तु जहां सम्पादक ही लिखाया लेख लिखते हों वहां संशोधन कौन करे? और लेख लौटाए कौन! चमूपति का उत्तर संक्षिप्त होना चाहिये। कृपया आप और पण्डित जी उस का संक्षेप कर तो दें। समझे हैं सही? भला सम्पादक का इस बात से क्या काम कि वादी या प्रतिवादी की ओर से प्रश्न भी करे? स्वयं पण्डित भगवद्दत्त जी से यह प्रश्न करा देना था। आप तटस्थ रहिये। जो संपादक पत्र संपादन के यह मोटे गुर भी न जानता हो उसे परिवर्त्तन का अधिकार कोई क्यों दे? यह है हमारा दूसरे यम का 'पालन'।

भगवती चोरी

हमें क्षोभ भी हुआ, दया भी आई जब हमने सुना कि इन्हीं सहकारी संपादक से श्री भगवद्दत्त जी ने प्रूफों की चोरी कराई। हा पाप! ब्राह्म महाविद्यालय के आचार्य श्रीयुत विश्ववन्धु क्या कहते होंगे! उन के शिष्यों का जिन्हें वह 'वास्तविक सन्यासी' कहा करते हैं,

क्या यम नियमों के—अर्थात् साधारण सदाचार के—ही सन्यास के लिये उपयोग होना था। श्री भगवद्दत्त जी इस घटना को अप्रासङ्गिक कहते हैं, विचित्र भी कहते हैं। हम इसे विचित्र तो मानते ही हैं और चाहते हैं कि अप्रासङ्गिक भी होती। परन्तु बात यह है कि यह उनकी रिसर्च का आनुषंगिक भाग है। जिस प्रकार का रिसर्च श्रीमानों की अध्यक्षता में हो रहा है उस का मूर्त परिणाम है। जो व्यवहार साहित्य के साथ होता रहा है, आज मूर्त द्रव्यों से भी होने लगा है।

प्रेस के अध्यक्ष महाशय ने इस घटना के कारण एक कम्पोज़िटर को जो इन सहाकारी सम्पादक का सहायक बना था पृथक् कर दिया है। श्री भगवद्दत्त जी ने इस यन्त्रणा में हमारे निमित्त होने को अनार्योचित तथा गर्हित कहा है। यह तो वही मसल है—उलटा चोर कोतवाल को डाँटे। अनार्योचित है चोरी! आप क्या जानें? प्रेस अपनी साख के सहारे जीते हैं। उन्हें जीने दीजिये। आप के अनार्योचित रिसर्च (?) के लिये और क्षेत्र बहुत हैं। आप को तो कोई खुराएट हो उपदेश करे। कृपया इस नवयुवक को अपना सहकारी न बनाइये, उन्हें बहुत कार्य करना है।

नया वेद

रिसर्च स्कालरों के पुण्य संसर्ग का यह फल तो हो ही गया है कि आर्य जगत् (तिथि २२ श्रावण) के मुख लेख में 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' इत्यादि श्लोक को वेद मन्त्र कहा गया है। क्या हम इस अलौकिक अन्वेषण विभाग के अध्यक्षों से यह पूछ सकते हैं कि इस मंत्र का पता क्या है? 'अठारह काण्डों के अथर्व वेद' से उठाया है या किसी हस्तलिखित संहिता ग्रन्थ से जो भगवती गवेषणा के हाथ आया हो?

प्रादेशिक सभा मांस-प्रचारक नहीं! हूँ

लाहौर में श्रीयुत 'बाली तो इस कार्य पर नियत थे ही कि समय असमय मांसाहार का प्रचार कर दिया करें।' अब प्रतीत होता है कि श्रीमती प्रादेशिक सभा के कुछ उपदेशकों को इस पुण्य (?) कार्य का विशेष आदेश दिया गया है। रावलपिण्डी में श्री गोविन्दराम एम. ए. का व्याख्यान हुआ। आपने कहा वेद में मांसाहार का विधान है। गड़बड़ मची। आखिर श्री प्रोफ़ेसर साहब वेद के प्रोफेसर तो थे नहीं कि उत्तर भी देते। इस मास में शिमले में पलचर दल का उत्सव हुआ। वहां श्री महोपदेशक महता रामचन्द्र जी ने अपने मुखारविन्द से विश्वा-

मित्र की चोरी की हुई कुत्ते की टांग खाने की कथा सुनाई। आर्य (?) परिडतों पर विशेष दया दृष्टि रही। हमारे पक्ष की ओर संकेत कर उलाहना दिया कि यह तो आर्य (?) परिडत को मरने देंगे और एक अंडे की जान बचायेंगे। आर्य (?) परिडत मांस के लिये मरते हैं! अनारकली की जय है! परिडत जी वैद्यक जानते तो उन्हें पता होता कि उन्माद का एक कारण स्वस्थ युवती की कामना को लिखा है। धर्म के पास इस कुवृत्ति का क्या उपाय है? कोई परिडत हो या अपरिडत, धर्म उसे कुकर्म की अनुज्ञा नहीं देगा। श्री परिडत जी कोई प्रमाण भी देंगे कि मांसाहार के विना मृत्यु की संभावना है। हम से प्रमाण चाहा तो निवेदन कर दिया जायगा।

देहली में आर्य नगर

देहली की दलितोद्धार सभा ने बड़े महत्व का कार्य किया है। सरकार ने उक्त सभा को भूमि दी है कि उद्धार किये गए दलितों की बसतो बसाएं। यह एक नया आर्य नगर होगा। परमात्मा वह दिन शीघ्र लाएं कि शताब्दियों के दलित दलनकर्त्ताओं के साथ कंधे से कंधा जोड़ सकें।

बारीसाल में सत्याग्रह।

हिन्दु मुसल्मानों का रोज़ का अत्याचार कब तक सहें। बारीसाल में जलूस जा रहा था। रास्ते में मसजिद आई। मुसल्मानों ने रोका कि यहां मौन धारण करो। दोनों ओर से ईंटें चलीं और मुसल्मान दुबक गए। बाजा बजता रहा। पचास हिन्दु पोलीस ने धर लिये। जुलूस चालू रहा। पचास और पकड़े गए, जुलूस फिर भी नहीं रुका, यहां तक कि सारा रास्ता पूरा हुआ। देश किधर जायगा, इस घटना के संकेत से स्पष्ट है। आर्य समाज! देख।

भयंकर दुराचार

महात्मा गान्धी अपने साप्ताहिक 'यंग इरिडया' में एक घटना का समाचार देते हैं कि एक १३ वर्ष की पत्नी ने अपना देहावसान कर लिया है, इसलिये कि उसका २८ वर्ष का पति उससे चतुर्थी कर्म करना चाहता था जिसको वह सहन न कर सकती थी। महा० गाँधी ने इस घटना पर आंसू बहाए हैं और कहा है कि १८ वर्ष की आयु से पूर्व किसी लड़की का विवाह नहीं करना चाहिये। हमें दुःख होता है जब हम अपनी देश-बहिनों पर ऐसे अत्याचार होने की खबर पाते हैं। संसार का कोई सभ्य देश ऐसी दुरवस्था क्षणमात्र को भी अपने अन्दर विद्यमान न रहने देगा। हा भारत! तू ऋषि भूमि और तेरी यह दशा!

सेठ रघुमल का देहान्त

कौन आर्य है जो सेठ रघुमल का नाम नहीं जानता। आर्य संस्थाओं के लिये लाखों का दान देने का सौभाग्य इन्हीं महाशय को प्राप्त हुआ। कन्या गुरुकुल की स्थापना का आधार ही इन्हीं दान वीर का धन-त्याग था। उन के देहान्त का समाचार आर्य संसार में असह्य वेदना का कारण होगा। हम सेठ जी के परिवार से हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हैं।

स्वामी प्रेमानन्द।

स्वामी प्रेमानन्द दयानन्दोपदेशक विद्यालय के सुबोध छात्रों में से थे। ग्रीष्मावकाश में आप प्रचारार्थ भटिण्डे गए। रात को सोए हुए थे कि सांप ने काट लिया और आपने देह त्याग दिया। इस होनहार प्रचारक की मृत्यु आर्य समाज की एक भारी हानि है। हा दैव!

मृत आत्माओं से बातचीत

कुछ समय हुआ महा० विनायक दामोदर ऋषि लाहौर में आए थे। आप प० ठाकुरदत्त (अमृतधारा) के स्थान पर ठहरे और दिवंगत आत्माओं को बुलाने तथा उन से बातचीत करने का चमत्कारपूर्ण कौतुक दिखाते रहे। कई उत्सुक महानुभावों को उनके वियुक्त संबन्धियों से मिलाने का श्रेय प्राप्त किया। इससे भूतविद्या (Spiritualism) की चर्चा हुई। लाहौर में वह कई शिष्य भी छोड़ गए हैं। हमने भी एक दिन यह कौतुक देखा था। अभी थोड़े दिन हुए, एक दाक्षिणात्य महाशय ने हमें उनके एक पत्र का प्रतिबिंब दिखाया जिस में श्रीयुत ऋषि ने अपने इन 'सारे कर्तबों को आजीविकार्थ छल' बताया है। उनके अंग्रेज़ी भाषा के शब्द हैं:—All my tricks have all along been frauds to earn my living. इधर श्री ठाकुरदत्त जी के लेख निकल रहे हैं जिन में महाशय ऋषि और उन के शिष्यों के किये चमत्कारों की सूची दी जारही है। पत्र दिखाने वाले महाशय ने यह भी बताया कि एक दिन उन्होंने एक बनावटी नाम से अपनी मासी की आत्मा को बुलाया। मासी जीती है परन्तु उसे मरा हुआ बताया गया। दूसरे शब्दों में जिस नाम को जिस आत्मा को बुलाया, उसकी वास्तविक सत्ता ही नहीं। फिर उस का सन्देश मांगा उस के पुत्र के लिये। वस्तुतः जीती मासी के भी पुत्र नहीं है। हमें यह चमत्कार सब से अच्छा प्रतीत हुआ कि आत्मा बुलाई हो नहीं, बना भी दी है। उसका परिवार भी घड़ दिया है। इसलाम

के अल्लाह से कम जादूगरी नहीं। तब क्या है? वही लोग बता सकते हैं जिनका संसर्ग इस विद्या के प्रतिनिधियों से हमारी अपेक्षा अधिक हुआ हो। हमने एक परीक्षा का प्रस्ताव किया था। वह आज भी दोहराते हैं। किसी वेद, व्याकरण, दर्शन आदि के दिवंगत पण्डित की आत्मा को निमन्त्रित करें जो अपने विशेष विज्ञान सम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर दे जाए। अथवा प्रश्नोत्तर ऐसी भाषा में कराए जाएं जो न माध्यम को आती हो, न खेल करने वाले को।

साहित्य-समीक्षा

"तरंगित हृदय"

लेखकः—श्री० प० देव शर्मा 'अभय' विद्यालंकार वेदोपाध्याय गुरुकुल कांगड़ी।

प्रकाशकः—सस्ता साहित्य प्रकाशक मंडल अजमेर। मूल्य ॥)

प्रस्तुत पुस्तक में २१ तरंगें हैं जो भिन्न २ विषयों पर विचार शील लेखक के हृदयोद्गार हैं। वास्तव में एक सरल तथा संयत मन से निकले हुए ये विचार जनता के लिये बड़े हितकर हैं। पुस्तक पढ़ते २ सहृदय-पाठक के अन्तस्तल में भी वैसी ही तरंगें उमड़ आती हैं। लेखों की भाषा सरल एवं भावमयी है जो लेखक महोदय के सर्वथा अनुरूप है। पुस्तक की छपाई तथा कागज़ अच्छे हैं। १६० पृष्ठ की पुस्तक ॥) में वास्तव में सस्ती है।

"शुद्धि-शास्त्र"

लेखक तथा प्रकाशकः—श्री० प० राजाराम प्रोफेसर डी. ए वी कालेज लाहौर मूल्य ॥=)

इस पुस्तक में संवाद के रोचक ढंग से शुद्धि का प्रतिपादन किया गया है। श्रुति, स्मृति तथा इतिहास के प्रबल प्रमाणों से शुद्धि की प्राचीनता सिद्ध की है। ऐतिहासिक प्रमाणों का संग्रह भली प्रकार किया गया है। शुद्धि के प्रेमियों के लिये इस में उपयोगी सामग्री का संचय किया गया है। पुस्तक की छपाई अच्छी है तथा कागज बढ़िया है।

"आर्य समाज का परिचय"

लेखकः—श्री शान्त स्वामी अनुभवानन्द; प्रकाशकः—ट्रेक्ट प्रकाशन समिति आर्य कुमार सभा १९, कार्नवालिस स्ट्रीट कलकत्ता मूल्य -)।

यह ट्रेक्ट 'आर्य समाज का परिचय' देने के उद्देश्य से लिखा गया है। इस में आर्य समाज के मुख्य २ मन्तव्यों का दिग्दर्शन कराया गया है। पुस्तिका पठनीय है।

"संजीवन" का जन्माष्टमी अंक—

यह मासिक पत्र आयुर्वेदाचार्य श्रीचतुरसेनजी शास्त्री के सम्पादकत्व में देहली से बड़ी सजधज से प्रकाशित होता है। प्रस्तुत विशेषांक कई सुन्दर चित्रों से सुभूषित है। स्वास्थ्य संबन्धी लेख बड़े महत्त्व के हैं; विशेषतया जनन-विज्ञान पर डा. युद्धवीरसिंहजी का लेख पढ़ने योग्य है। इस अंक का मूल्य १) है वार्षिक मू० ४)

"यादव" का कृष्णांकः—

"यादव" अखिल भारत वर्षीय यादव महासभा का मुख पाक्षिक पत्र है। इस के स्थायी सम्पादक चौधरी राजितसिंह यादव हैं। इस का सचित्र विशेषांक हमारे सन्मुख है जिस का सम्पादन विद्याभूषण श्रीरामस्वरूप यादव शास्त्री काव्यतीर्थ जी ने बड़े परिश्रम से किया है। उच्च कोटि के लेखों का संग्रह करने का सफल प्रयत्न किया गया है। कई सुन्दर कविताएं भी इसे विभूषित कर रही हैं। वार्षिक मूल्य ३) इस अंक का १)

प्रकाशकः—शिववचन प्रसाद "यादव" आफिस गोरखपुर यू. पी.

"हिन्दू सम्बन्ध सहायक"

सम्पादकः—"श्री० हरिदेव शर्मा" यह साप्ताहिक पत्र सहारनपुर से प्रकाशित होता है। इस का वार्षिक चन्दा सर्वसाधारण ४) स्त्रियां, धर्मार्थ पुस्तकालय ३)

यों तो इस पत्र के उद्देश्य इस के नाम से ही प्रकट हो रहे हैं फिर भी यह लिख देना उचित होगा कि हिन्दू जाति की विवाह प्रथा की कुरीतियों को दूर करना; स्त्री जाति की वास्तविक उन्नति के साधनों का प्रचार करना; विधवाओं के संताप का यथासम्भव परिहार करना इत्यादि २ इस के ऊँचे लक्ष्य हैं। पत्र से समाज सुधार की महती आशा है।

धर्मेन्द्र

सूचना

आर्य समाज (चौड़ा बाज़ार) लुधियाना का वार्षिक महाधिवेशन २९, ३०, ३१ अक्तूबर १९२६ ई० (१३-१४-१५ कार्तिक १९८३ वि०) को होना निश्चित हुआ है।

निवेदक—
मंत्री आर्य समाज
(चौड़ा बाज़ार)
लुधियाना

॥ ओ३म् ॥

FRIENDS TRADING COMPANY, AMRITSAR.

श्रीमान् जी नमस्ते !

हमने धार्मिक तथा कौमी सभाओं, समाजों तथा संस्थाओं के लिये एक विशेष प्रकार का हारमोनीयम हाथ से बजाने वाला डबल स्वर "कृष्ण फ्ल्यूट" (Krishan Flute) त्यार कराया है, जोकि सुरीला, पायदार, खूब सूरत, खुशरंग और मज़बूत है । आप भी अपनी समाज, सभा, या संस्था के लिये एक बाजा मंगवा कर अपने उत्सवों की रौनक बढ़ाएं ।

	सर्व साधारण से		धार्मिक व कौमी संस्थाओं से
डबल स्वर कीमत	३५)		३२)
„ „ सफरी	„ ४२)	„ „ „	४०)
सिंगल „	„ २७)	„ „ „	२५)
डबल पेटी (जर्मन)	„ ७५)	„ „ „	७०)
फेसरील डबल	„ ७०)	„ „ „	६५)
„ सफरी	„ ७५)	„ „ „	७०)
„ पेटी	„ १२५)	„ „ „	१[illegible]५)
तबला जोड़ी (शीशम का)	२२)	„ „ „	२१)

नोट—हर प्रकार की रबड़ की मोहरें, बलाक व पीतल की चपरासें आदि हम से सस्ती बनवाईये ।

भवदीय—

इंद्रजीत बी. ए.

मैनेजर फ्रैन्डस ट्रेडिंग कम्पनी,

अमृतसर.

आर्य्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, गुरुदत्तभवन लाहौर।

ब्योरा आय व्यय मद्धे मास श्रावण १९८३ । १०२

निधि	बजट आय	इस मासकी आय	इसवर्ष की आय	बजट व्यय	इस मास का व्यय	इस वर्ष का व्यय
वेद प्रचार कार्य्यालय				६२०)	६५-)	४८५॥= ॥
वैदिक पुस्तकालय		२२)	१०२।)		१५३।=)॥	६५४॥।)॥
आर्य		६१≡)	४४७।=)		५६॥।=)७	५६७॥-)१०
चार आना निधि		३॥=)	१०८=)			
ट्रैक्ट			३=)			
उपदेशक वेतन					१५६०॥=)५	५४६८=)१०
मार्ग व्यय					५३५॥।)॥	२२४६॥।≡)।
बीमा जीवन					४४-)	८१॥।)।
वैदिक कोष					१।=)	१७७।-)
योग		८६॥।-)	६६०॥।=)		२४४७।)	६७१४।)२
वेद प्रचार		११४६।-)११	४६६८॥=)४			
मुख्य कार्यालय सभा					४६७॥।=)॥	१८८७≡)॥।
दशांश		-२०।=)॥।	१८७०॥।-)			
आयव्यय निरीक्षण					७२)	२७७॥।)।
लेखा निरीक्षक शुल्क						१३॥।=)
योग		-२०।=)॥।	१८६०॥।-)		५३६॥।=)॥	२१७८॥।=)
लेखराम स्मारकनिधि		१४॥)	६२॥)			
उपदेशक वेतन					१६६॥)	६१४≡)१
मार्ग व्यय					३७॥=)	१२४॥)।
गुज़ारा विधवा पं० तुलसीराम					१०)	४०)
,, ,, वज़ीरचन्द					८)	३२)
योग		१४॥)	६२॥)		२२५।=)	८१०॥≡)४
सूद बैंक		१६८६२॥।-)॥।	२१६३६॥-)७		१२॥-)८	११३॥≡)४
,, क़र्ज़ा			१३॥=)			
भूमि आय व्यय		६३)	१०३=)			१०७॥।-)।
किराया मकान		४८)	४८)			
योग		२०००१॥।-)॥	२१८०१।-)७		१२॥-)८	२२१॥)७
अमानत अन्य संस्थायें		३०१॥=)	३४१६॥।-)५			७८१७)५
,, आर्यसमाजें		१३४)	७६३७।≡)५		२३१=)	१२४६।-)
,, विद्यार्थी आश्रम			[illegible]			४६०)
वैदिक पु[illegible]						

निधि	बजट आय	इस मास की आय	इस वर्ष की आय	बजट व्यय	इस मास का व्यय	इस वर्ष का व्यय
वसीयत पं० पूर्णानन्द		१००)	१००)		५०)	२००)
,, म० ओचीराम					२५)	१००)
,, म० सुचेतसिंह					१२७॥।-)॥	१६१॥)
,, म० जींदाराम					३०)	१६०)
,, म० ईश्वरदास						७५)
,, म० रामशरणदास					१७)	१७)
योग		१००)	१००)		२४६॥।-)॥	७७३॥)
उपदेशक विद्यालय		-१२१३-)॥।	-८०५२≡)॥।		५२२॥।≡)।	१८५३॥।=)॥
,, ,, स्थिर कोष			११००)			
,, ,, शाला		२०००)	८०००)			
गुरुदत्त भवन आश्रम शाला		४०)	११५)			
आर्य विद्यार्थी आश्रम		-२३)	३३२-)		१८४॥)	९९३≡)॥
दलितोद्धार		६३)	५०६॥।=)		८०)	५२७=)॥
राजपूतोद्धार			१७॥=)॥		१८५)	७१७॥=)२
असाधारण निधि			६)			
शिक्षा समिति		१०)	४०)			२२॥)
प्रोवीडेण्ट		१२५॥=)२	५३७॥-)११		५०१॥≡)११	५०६≡)११
बोनस			६३॥)॥		३६४॥-)॥।	३६४॥-)॥।
अज्ञात निधि		१४४)	४१६०≡)		६२॥≡)	५६६॥≡)
भूमदेवी होमकरण भण्डार						६०)
योग		१७६॥)८	६८६२≡)५		६३१॥।≡)११	५७०८॥≡)
गुरुकुल महानिधि		२६०१॥।)१	-२७०७०॥-)७		२२३७४=)॥।	४३०८
,, स्थिर छात्रवृत्ति		६८६५॥।≡)	६८२५॥≡)			
,, अस्थिर ,,		४००)	१२८६॥=)			
,, उपाध्याय ,,		-१३४०॥।≡)४	-१३४०॥।≡)४			
,, अन्य दान		१०)	१०)			
कन्यागुरुकुल इन्द्रप्रस्थ			५०५२)			७८९९-)॥
योग		२५५७०॥।)१	-२५८८६३॥।≡)११		२८४७४॥=)॥।	५०६३६≡)
सर्व योग		४८५१४)८	-२११४२५)॥।			
गत शेष		११५५३६५॥≡)	१४६७१६२॥=)११			
योग		१२०३६०९॥≡)८	१२५५७३७॥=)२			
व्यय		२८१२२॥)४	७९९५०॥=)१०			
वर्त्तमान शेष		११७५७८७≡)४	११७५७८७≡)४			

क्या आप रोगी हैं ?

बड़ी सेवा खोज परिश्रम और धन खर्च करने पर जिन औषधियों को प्राप्त किया है: वही अनेक प्रकार की असाध्य व्याधियां नष्ट कर देने वाली कितनी ही साधु, सज्जन, डाक्टर, वैद्य और हकीमों की आजतक पर्यन्त अजमाई हुई औषधियां जिनकी समता रत्नों के तोलने पर भी नहीं हो सकती, अल्प मूल्य में प्रदान हैं।

खांसी की गोलियां ।

चाहे कितनी पुरानी खांसी क्यों न हो, कितनी ही जोर शोर से हो, चाहे खांसी के सबब रातभर क्यों न जागते हो। असाध्य खांसी जिस से डाक्टर, वैद्य और हकीम हार मान गये हो, औषधी मुंह में रखने भर की देर है, फिर खांसी का पता न रहेगा। यह खांसी की बड़ी ही हुक्मी दवा है। मूल्य एक शीशी १॥)

वैद्यवर पंडित मुन्शीराम जी कुवटस्थ मुकाम-कुटवा पोस्ट शिकारपुर जिला मुजफ्फर नगर से लिखते हैं— ३१-१-२६ मैंने परीक्षा की। बहुत गुणकारी हैं। मेरे पिता को आज चार वर्ष से जो कासरोग था और इसके लिये अनेकानेक दवाइयां दे निराश होचुका था अब इन गोलियों ने रोग नाश करने में अपनी उदारता दिखाई है।

दमा स्वांस की दवा ।

पुराने से पुराना और भयंकर से भयंकर दमा स्वांस इस से अच्छा होता है जो सब औषधियां करके निराश हो बैठे हो तो इसका सेवन कीजिये। अवश्य ही लाभ होगा। सैकड़ों रोगी आरोग्यता पा चुके हैं। जिस को दिया गया उसी ने तारीफ की. मूल्य एक शीशी २")

मैनेजर आयुर्वेदिक व्योहार औषधालय सिंहपुर से लिखते हैं ता० ३-३-२६ एक रोगी को दमा की औषधी सेवन कराई। विचित्र गुण पाया। इस रोगी को दो वर्ष से दमा व कफ़ की बीमारी होगई थी, सैकड़ों दवाइयाँ करके निराश होचुका था, सिर्फ १० दिन में दमा और कफ़ नष्ट होगया।

दांत के दर्द की दवा ।

दांत का दर्द, खून जाना, मसूड़ों की सूजन, राध पड़ना, पानी लगना, चीस मारना इत्यादि दांत सम्बन्धी सब रोगों को जादू के माफिक दूर करता है। केवल एक फुरैरी लगाने से रोते हुए को हंसाता है। इस को पास रखने वाले डाक्टर वैद्य और हकीम नाम और रुपया पैदा करते हैं—मूल्य केवल ।=)

सेठ हिम्मतराम अजयराम रेजीडेन्सी रोड हैदराबाद से लिखते हैं। १६-११-२५ आप के दांत के दर्द की शीशी लिखेमूजब गुणकारी है अतएव आप को धन्यवाद है। छः शीशी वी. पी. से भेजो—

अनुभूत योगमाला ग्राहक न० ३० ता० ३०-४-२६ को लिखते हैं सेठ ज्योतिःस्वरूप जी ने दांत दर्द का मञ्जन भेजा था यह रोते को हंसाता है।

पताः—दुःखभञ्जन कार्यालय पो० काशीपुर जिला—नैनीताल।

* ओ३म् *
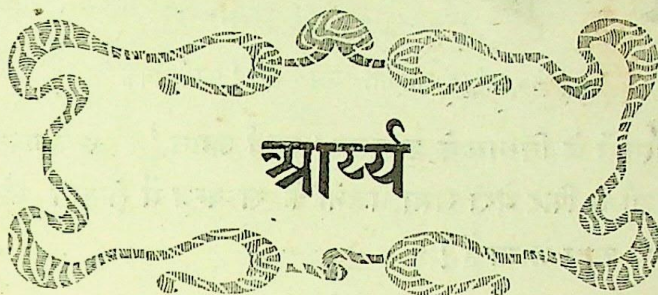
भाग ७] लाहौर—कार्तिक १९८३ अक्तूबर १९२६ [अंक ७

[दयानन्दाब्द १०२]

वेदामृत

ओ३म् केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥

ऋ० १-२-६-३

भटके को बाट दिखाता जा ।
बिगड़े की बात बनाता जा ॥
निज ज्ञान-ज्योति झलकाता जा
ज्यों उषा तेज बरसाता जा ॥

———

ब्राह्मण ग्रन्थ और उनका काल

(ले० श्रीयुत चमूपति एम० ए० 'आर्य-सेवक')

कई सप्ताहों के विश्राम के अनन्तर 'आर्य जगत्' (२७ अगस्त १६२६ में श्री भगवद्दत्त जी ने फिर मेरी समालोचना के सम्बन्ध में लेखनी उठाने का कष्ट सहन किया है अहो भाग्य हैं !

(१)

मैंने लिखा था, मनु (६, २६) के 'औपनिषदीः श्रुतीः' और महाभारत के 'यत्रतेपे तपस्तीव्रं दाल्भ्योबक इति श्रुतिः' में श्रुति शब्द का अर्थ एक करना युक्त नहीं। पण्डित जी ने स्वीकार नहीं किया। शेषोक्त 'श्रुति' का अर्थ है जनश्रुति अथवा वार्त्ता। देखो मेदिनी। पूर्वोक्त का अर्थ मन्त्र है। ब्राह्मण तथा उपनिषद् के वचन मन्त्र और श्रुति कहलाते हैं। इस से यह वेद नहीं बनते। महाभारत के उपर्युक्त वाक्यों में किसी मन्त्र की ओर संकेत नहीं किया गया। अब या तो 'औपनिषदीः श्रुतीः' का अर्थ कीजिये 'वार्त्ताएं' जो न प्रकरण में संगत है न सब श्रुतियों पर ही घटता है, या महाभारत के श्लोक को मन्त्र मानिये। अन्यथा कोई और प्रमाण लाइये जिस से 'श्रुति' शब्द का अन्य अर्थ होसके जो इन दोनों स्थलों में संगत हो।

पण्डित जी का कहना था कि ब्राह्मण को 'वेद' उसी प्रकार कहा जाता है जैसे कल्प को 'वैदिक'। इस पर मेरा आक्षेप था कि 'वैदिक' और 'वेद' एक नहीं। ब्राह्मण ग्रन्थों को वैदिक तो हम भी मानते हैं परन्तु वेद नहीं, और कल्प का वेद किसी ने नहीं माना। पण्डित जी ने प्रमाण दिया है 'भगवान् उपवर्ष आचार्य' का:—'एते कल्पा वेदतुल्याः' अर्थात् यह कल्प वेदतुल्य हैं। 'वेदतुल्य' का अर्थ ही यह है कि वेद नहीं किन्तु वेद के अतिरिक्त कुछ और है जो वेद के सदृश है। सदृशता और एकात्मता में भेद है। किसी साहित्य के विद्वान् से पूछिये।

आप अपने गाथा सम्बन्धी प्रमाण की प्रशंसा चाहते हैं। परस्पर विरोध से दूषित न होता तो एक बार नहीं सैंकड़ों बार गवेषणा-वीरों के गर्व की पीठ ठोंकता। पहिले गाथा को वेद से अलग कह फिर निरुक्त के प्रमाण से आप स्वयं लिखते हैं 'कुछ मन्त्र ऐसे हैं जिनकी पारिभाषिकी संज्ञा गाथा है।'

अब यदि नारायण ने कह दिया 'गाथा नाम ऋग् विशेषाः' तो आप से उस में विशेष क्या? 'ओमिति दैवं तथेति मानुषम्'—यह प्रमाण श्री प० शिवशंकर काव्यतीर्थ अपने 'ओंकार निर्णय' नामक पुस्तक में दे चुके हैं। संभव है आपने अपने बहुपठित होने की उपेक्षा कर इसे स्वतन्त्र परिश्रम से फिर ढूंढा हो। हां यह अपूर्वता आप के लेख की है कि दैव का अर्थ 'दैवी=ईश्वरीय' किया है, जो प्रकरण के विरुद्ध है। इस का श्रेय निस्सन्देह आप लीजिए। वह आप की मिल्क है।

मेरे लेख में 'महीदास ऐतरेय' पर पण्डित जी ने कई वार आक्षेप किया है कि अशुद्ध है। बहुत पढ़ा होने की मेरी डींग नहीं, श्रीमानों की है। कहीं बहुत पढ़े का यह अर्थ तो नहीं कि फिर नहीं पढ़ना। अपने पढ़े ही को फिर पढ़िये, और सत्य को ग्रहण कर यह कई बार का उगाल निगलिये। स्वयं न निगला तो प्रमाणों के बल से यार तो गले के नीचे उतार ही देंगे।

इसी बल पर मुझे 'असावधानी का ठेका' देते हैं? कोष आप का लोकान्तर! चार पत्र का उस में शुद्धिपत्र। फिर भी सारी अशुद्धियां उस में आ नहीं पाईं। किसी और कोष की यह शोभा कहां कि उस में कई पृष्ठ के शुद्धिपत्र का तुर्रा हो! तिस पर असावधान हम हैं! कौमुदी को सूत्रवद्ध आपने लिखा। जितलाया तो उत्तर देते हैं—मेरे भाव को समझो। अर्थात् भाषा को नहीं? इस में भी असावधान हम हैं! 'आप को निरन्तर मेरे सामने लज्जास्पद बनाने का ठेका ले लिया है।' इस भाषा की बलिहारी है! 'लज्जास्पद' और 'लज्जित' पर्याय नहीं। किसी पढ़े लिखे से पूछियो। भाषा में 'बको दालभ्य' आप की लेखिनी का करिश्मा है। 'बको' लोट्लकार है क्या? आख़िर कहां तक गिनाएं? खुदा लगती कही 'मेरे लेख में यदि कोई अशुद्धि रह जावे तो यह साधारण है।' असाधारण तो है शुद्ध लेख। जिस के लेख में शुद्धि अपवाद हो, असावधानी का ठेका उस का है या किसी और का? किसी गुरु से पढ़े होते तो उस के लिये आप जैसे बहुपठित शिष्य लज्जास्पद होते। 'महीदास' की बात अब आप पी जायंगे। डकार लेना लजाशीलों का काम है, आप का नहीं।

(२)

ब्राह्मण ग्रन्थों के महाभारतकालीन होने में आप की स्थापना का आधार याज्ञवल्क्य का आप की कल्पनानुसार महाभारतकालीन होना है। मैं 'आर्य' की गतसंख्या में एक लेख केवल इसी विषय पर प्रकाशित करा चुका हूं। आज इसी

सम्बन्ध में आप के शेष प्रमाणों की जांच करूंगा। शतपथ १४—९—३—१५ में उद्दालक आरुणि का वाजसनेय याज्ञवल्क्य को अन्तेवासी कहा है। शतपथ के अन्त में वंश दिया है। वहां जैसे मैं पूर्व लिख चुका हूँ, आदित्य से १५वीं पीढ़ी में याज्ञवल्क्य आते हैं। इन के गुरु हैं उद्दालक और उद्दालक के अरुण। क्या यह उद्दालक आरुणि के शिष्य याज्ञवल्क्य तो नहीं? इन्हें वाजसनेय नहीं लिखा परन्तु कुछ और भी तो नहीं लिखा जिस से वाजसनेय होने का निषेध हो। अन्यत्र भी प्रायः याज्ञवल्क्य को याज्ञवल्क्य ही कहते हैं। 'वाजसनेय' विशेषण का लोप रहता है। इस अवस्था में याज्ञवल्क्य से 'वयं' तक जो और पीढ़ियां गिनाई हैं वह वर्तमान शतपथ के याज्ञवल्क्य कृत होने का विरोध करेंगी। उन की गणना इतने पूर्व समय के याज्ञवल्क्य नहीं कर सकते थे। यदि 'वयं' याज्ञवल्क्य हों, जैसे हमारी सम्मति है कि हैं तो एक याज्ञवल्क्य आदित्य से १४ वीं पीढ़ी में हुए और वह उद्दालक आरुणि के शिष्य, दूसरे 'वयं' हुए। इन के गुरु हैं भारद्वाजो पुत्र। शतपथ १४-९-३-१५ का संकेत पूर्वोक्त याज्ञवल्क्य की ओर समझ लें तो उस का समय सृष्टि से कुछ काल (१४ पीढ़ियां) अनन्तर जा पड़ता है। यह महाभारत काल नहीं। और यदि वह याज्ञवल्क्य कोई और हों तो तथा समान नाम के गुरुओं के एक ही नाम के शिष्य अनेक हुए। इस धारणा में भी कोई आपत्ति नहीं। इसी प्रकरण में उद्दालक आरुणि से सत्यकाम जाबाल के शिष्यों तक ७ पीढ़ियां लिखी हैं। याज्ञवल्क्य दूसरी पीढ़ी में हैं। ग्रन्थ लेखक अपने पश्चाद्वर्त्ती इतनी पीढ़ियों का वर्णन करे, यह हमारी कल्पना से बाहर है। वर्णन का प्रेरकभाव साधारणतया कृतज्ञता हो सकती है सो शिष्यों के नाम गिनाने में कृतज्ञता को स्थान ही कहां है? शतपथ १४-६-७-६ में जनक की सभा में उद्दालक आरुणि का याज्ञवल्क्य से संवाद होना लिखा है। याज्ञवल्क्य जीत जाता है। क्या यह हारने वाला उद्दालक आरुणि गुरु है और विजेता याज्ञवल्क्य उस को अन्तेवासी? नाम की समानता के पीछे चलिये तो एक ही याज्ञवल्क्य को आदित्य से १४ वीं पीढ़ी में और फिर ६० वीं में खड़ा कीजिये। एक जगह उसे उद्दालक आरुणि का अन्तेवासी बनाइये और अन्यत्र गुरू का शिष्य से वाग्युद्ध करा गुरु को अवाक् कीजिये। यह चमत्कार आप ही की गवेषणा कर सकता है।

छान्दोग्य ५. ११. ४ में उद्दालक आरुणि छः अन्यों सहित अश्वपति कैकय

के पास जाते हैं। रामायण में अश्वपति कैकय भरत के मामा कहे गए हैं। यदि नामों को समानता का ही आश्रय लेना है तो इस उद्दालक को रामायणकालीन समझिये और रामायण और महाभारत का तुल्यकालत्व स्वीकार कीजिये। भगवती गवेषणा से यह भी दूर नहीं।

आपने बहुत शोर मचाया है एक प्रश्न पर जो पहले तो 'आर्य जगत्' के सहकारी संपादक द्वारा कराया और फिर स्वयं दोहराया। लीजिये, पहिले व्यास के वंश को लिये लेते हैं। व्यास का पिता है पराशर, पराशर का शक्ति, शक्ति का वसिष्ठ, वसिष्ठ का ब्रह्मा। ब्रह्मा के काल पर स्यात् आप हवा में दण्ड चलाएं। वसिष्ठ—हां! वही वसिष्ट जो व्यास (कृष्ण द्वैपायन व्यास) के परदादा हैं—का महाभारत कथित वृत्तान्त रामायण में आए वसिष्ठ के वृतान्त से मिलाइये। देखिये! दोनों एक हैं कि नहीं? एक हैं तो रामायण से महाभारत तक केवल चार पीढियां किस हिसाब से हुईं? पीढ़ी की अवधि दो मास मानियेगा या तीन चार सौ वर्ष के आयुष्य से इस लाखों वर्ष के अन्तर को भरियेगा? तब देखना इन वंश परम्पराओं पर निर्भर किया जा सकता है या नहीं!

अपने प्रमाण दिये आदि पर्व ६४ : १३० में 'विव्यास वेदान्' का अर्थ तो कीजिये। इसी पर्व के ६० : ५ में कहा है:—'विव्यासैकं चतुर्धा वेदं वेदविदां वरः।' अर्थात् वेदज्ञ श्रेष्ठ (व्यास) ने एक वेद को चार बनाया। उधर ऋषि दयानन्द लिखते हैः - व्यास जी ने चारों वेदों की संहिताओं का संग्रह किया, इत्यादि इतिहासों को मिथ्या जानना चाहिये'—भू० पृ १९। ऋषि द्वारा निराकृत इसी विभाग पर पुराणों और महाभारत में कही वंश-शृंखला का आधार है। इसे स्वीकार कीजिये या ऋषि के बचन को। फिर यह न कहना कि मेरे विचार ऋषि के अनुकूल हैं।

और कौतुक देखिये। आप के मतानुसार ब्राह्मणों के प्रवक्ता हुए व्यास के शिष्य प्रशिष्य—यथा

'जिस रूप में ब्राह्मण ग्रन्थ आजकल मिलते हैं, उस रूप में इन का प्रवचन महाभारत काल में ही हुआ। पहिले आचार्यों ने यदि ग्रन्थरूपेण प्रबन्ध किया भी था .... (अर्थात् आप को सन्देह है) ...... । उन बहुत पूर्वज आचार्यों में से एक भी ब्राह्मणों का उन के आधुनिक रूपों में प्रवचन कर्ता नहीं हुआ।' आर्य जगत् १२ सितम्बर।

अब यही व्यास वेदान्त दर्शन का कर्ता है और उस में उसने ब्राह्मण वाक्यों का ही प्रमाण दिया और उन की संगति की है। प्रमाणरूप दिये वाक्य ब्राह्मणों के वर्त्तमान रूप के हैं, लुप्तप्राय' के नहीं। यही अवस्था जैमिनि कृत पूर्व मीमांसा की है। ब्राह्मण व्यास और जैमिनि से बहुत पुराने होने चाहियें। आप का पक्ष स्वीकार करलें तो व्यास ने मानो अपने शिष्यों के वचन को न केवल स्वयं आप्त वचन मान उनका प्रमाण दिया किन्तु दूसरों के लिये भी उन्हें श्रुति कहा। इन के वाक्यों से अधिक प्रामाण्य तो उस के अपने लेख का होता। गुरु शिष्य का प्रमाण दे, यह नई शैली है आप का कोई गुरु हो तो।

ऋषिदयानन्द को आप की रिसर्च देखने का सौभाग्य न हुआ। नहीं तो वह यह न लिखतेः—'जब बहुतों के आत्माओं में वेदार्थ प्रकाश हुआ तब ऋषि मुनियों ने वह अर्थ और ऋषि मुनियों के इतिहास पूर्वक ग्रन्थ बनाए। उन का नाम ब्राह्मण हुआ।' सत्यार्थ प्रकाश ७मवार पृ. २१७)

अब इस ग्रन्थ रूपेण पर 'यदि' कहिये। 'बहुतों' का संकेत पूर्व आचार्यों की ओर है, मूल वेद के पश्चात् ही इन आचार्यों के योगावस्थित तथा वेदार्थ दर्शन का प्रकरण आने से।

ऋषि फिर लिखते हैं :—

'ब्राह्मण पुस्तकों में बहुत से ऋषि महर्षि और राजादि के इतिहास लिखे हैं।' यह रूप ब्राह्मणों का वर्त्तमान है या 'लुप्तप्राय' ?

यदि वर्तमान ब्राह्मणों के स्थान में कोई 'लुप्तप्राय' ब्राह्मण थे तो कृपया उन का नाम निर्देश तो कीजिये। ऋषि दयानन्द ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ, इन ब्राह्मणों का नाम लेकर उन का प्रामाण्य मानते हैं। व्यास और जैमिनि इन्हीं वर्तमान ब्राह्मणों की संगति लगाते हैं। आप 'लुप्तप्राय' की लगाइये और फिर लिख दीजिये कि मेरे विचार ऋषिदयानन्द के अनुकूल हैं। रिसर्च की भाषा में इसी को अनुकूलता कहते होंगे।

आपने मुझ से ब्राह्मणों के काल विषय में प्रतिज्ञा चाही है सुनिये—

'पुराणैः प्राचीनैर्ब्रह्माद्यृषिभिः प्रोक्ता ब्राह्मणकल्पग्रन्था वेदव्याख्यानाः सन्ति।' ऋषिदयानन्द कृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका ५मवार पृ० ८७

अर्थात् प्राचीन ब्रह्मा आदि ऋषियों द्वारा प्रोक्त ब्राह्मणकल्पग्रन्थ रूप वेद व्याख्यान हैं। यह उसी पाणिनिसूत्र ४. ३. १०५ की व्याख्या है जिस पर महा-

भाष्य में आए 'तुल्यकालत्वात्' से श्री पण्डित जी ने याज्ञवल्क्य को इन पुराने ऋषियों का समकालीन कहा है। इन में आदिम है ब्रह्मा। कीजिये उस से समकालीन।

'वेद की सनातन व्याख्या जो ऐतरेय शतपथ ब्राह्मणादि ग्रन्थ हैं।' पृ. २४०

इस में 'सनातन' और 'हैं' यह दो शब्द दृष्टिगोचर कर अपने 'यदि' और 'लुप्तप्राय' शब्दों की इन से झांकी कराइये।

इस प्रतिज्ञा की पुष्टि में मेरा सारा ऊपर नीचे का सन्दर्भ तथा पूर्व लेख प्रमाणों की लड़ी हैं। यह प्रमाण स्वीकार न हों तो आप के लिये तो ऋषि का उपर्युक्त वचन ही प्रमाण होना चाहिये। ऋषि ने 'पुराण' के अर्थ में ब्रह्मा को समाविष्ट किया है याज्ञवल्क्य इन पुरानों का 'तुल्यकाल' है। 'तुल्यकाल' को अब खेंचिये। शेष प्रवक्ताओं को इस तुल्यकालत्व में स्थान दीजिये। फिर आप की समझ में संभवतः आजाए कि ब्राह्मण ग्रन्थों का काल क्या है? 'तुल्यकालत्व' इन ऋषियों का आपस में और याज्ञवल्क्य से एक साथ होगा। आप व्यास से याज्ञवल्क्य को तुल्यकाल कीजिये, ऋषि ब्रह्मादि से करते हैं। ज़रा ही सा भेद है। 'सन्ति' का अर्थ है 'हैं'। अतः ब्राह्मण यही अभिप्रेत हैं, 'लुप्तप्राय' नहीं।

ब्राह्मण ग्रन्थों के महाभारतकालीन होने में आप ने एक और युक्ति यह दी है कि ऐतरेय ब्राह्मण ७-२७, ३४ तथा शतपथ १३-५-४-१ में पारिक्षित जनमेजय का वर्णन है। महाभारत काल के पारिक्षित जनमेजय एक ही हुए हैं और वह अर्जुन के प्रपौत्र थे। इन्हीं के भाई श्रुतसेन, भीमसेन और उग्रसेन हुए। परन्तु आप इन्हें 'महाभारतकाल से पांच सात पीढ़ी पहिले' का मानते हैं। क्या आप का अभिप्राय यह है कि अर्जुन महाभारतकाल में थे और उन के प्रपौत्र महाभारतकाल से पूर्व? पहिले तो आपने महाभारत काल का लक्षण किया महाभारत युद्ध से १०० वर्ष पूर्व से १०० वर्ष पश्चात् तक। इस से पांचसात पीढ़ियां पहिले क्या? यही तेरह चौदह मास? आप अपना पहिला लक्षण भूल गए प्रतीत होते हैं, सो आप जानिये। कृपया इस में प्रमाण लाइये कि महाभरत काल से इतना ही पूर्व पारिक्षित जनमेजय हुआ नाम की समानता तो पीछे आने वाले जनमेजय से है। इन के अपने ही नहीं, इन के पिता तथा भाईयों की भी। हां! शान्तिपर्व अध्याय १४९-१५१ में भीष्म एक पारिक्षित् जनमेजय का वृत्तान्त सुनाते हैं। उसे वह 'पुराणमृषिसंस्तुतम्' अर्थात् ऋषि कथित पुराण कहते हैं।

वहां इन्द्रोत द्वारा याजन की कथा भी कही है जो शतपथ में वर्णित है। यह ऋषि संस्तुत पुराण ब्राह्मण के सिवा और कौनसा है? ऋषि संस्तुत पुराण पांच सात पीढ़ी पूर्व का क़िस्सा नहीं होता। इसी को भीष्म १४६—७ में 'इतिहास' कहते हैं। ऐतरेय के इसी स्थल का भाष्य करते हुए सायण लिखते हैं:—'तत्र धृष्टाः केचिद् अन्यान् प्रति काञ्चित् पुरातनीं कथामूचुः ।' अर्थ सरल है। सायण ने ब्राह्मण काल की अपेक्षा से भी इसे पुरानी कथा कहा है। यह कथा महाभारत काल से बहुत पूर्व की है, पांसात पीढ़ियां पूर्व की नहीं, किन्तु 'ऋषि संस्तुत पुराण' है; 'इतिहास' है। पीढ़ियों की अवधि यहां क्या रहेगी? वही दो मास या दो युग?

आप के भ्रम का इसी प्रकार का दूसरा कारण है 'दौष्यन्त' भरत का शतपथ १३-५-४-११ तथा ऐतरेय ८-२३ में उल्लेख। भरत शकुन्तला का लड़का है और शकुन्तला विश्वामित्र की पुत्री है। विश्वामित्र रामायण काल के हैं। महाभारत में इस विषय का सारा उपाख्यान पढ़ जाइये। वही त्रिशंकु के उद्धारक, वसिष्ठ के प्रतिस्पर्धी विश्वामित्र ही तो हैं। अब किसी प्रकार इन्हें भी महाभारतकालीन बनाइये। नाम साम्य से तो भरत रामायणकाल के होंगे।

भाई! कहां तक चलोगे? जब याज्ञवल्क्य ही महाभारत से पूर्व के सिद्ध हो गए, जैसे मेरे पूर्व लेख में दर्शाए भीष्म के इन के वृत्तान्त को पुरातन इतिहास कहने से स्पष्ट है, तो उन के साथ उन के गुरु उद्दालक आरुणि, उन के साथ संवाद करने वाले उद्दालक आरुणि तथा कहौल, उन के ग्रन्थ में आए बुलिल सब स्वतः उन के समान अथवा अधिक पुराने हो गए। जनमेजय को भीष्म ही 'ऋषि संस्तुत पुराण' का पात्र बना रहे हैं। दौष्यन्त भरत नाम साम्य से रामायणकाल का हो तो हो, महाभारतकाल का नहीं है।

(३)

याज्ञवल्क्य वाजसनेय एक हैं या अनेक? जब आप को वाजसनेय का अर्थ आ गया तो आप यह प्रश्न फिर न करेंगे। पाराशर्य व्यास एक हैं या अनेक? इस का उत्तर उन के रामायणकालीन वसिष्ठ के प्रपौत्र होने की समस्या सुलझाने से आप को मिल जाएगा।

सत्यकाम जाबाल का वर्णन शतपथ में एक तो वहां आता है जहां जनक उस के वचन को याज्ञवल्क्य के संमुख दोहराता है (१४-६-१०-१४), दूसरे

जहां इसे याज्ञवल्क्य से ५ वीं पीढ़ी में कहा है (१४-९-३-१९)। इन याज्ञवल्क्य तथा सत्यकाम को भगवती गवेषणा ही एक बनाने का सामर्थ्य रखती है। पांच पीढ़ियों के अन्तर पर बिना पुनर्जन्म के मनुष्य एक रहे, इस से बड़ा चमत्कार और क्या होगा ?

आपने एक बार फिर पण्डितों के सम्मुख मौखिक शास्त्रार्थ की बात दोहराई है। इस बार यह लिखना भूल गए हैं कि पण्डितों को इस विषय का बोध नहीं होता। एक बार यही स्वीकार कर लीजिये कि अमुक पण्डित आप से इस विषय में अधिक ज्ञान रखता है, फिर उसे मध्यस्थ भी बनाइये। पहिले तो आप का प्रस्ताव पण्डितों को बलाने का इसलिये था कि इन्हें कुछ रिसर्च के विषय का बोध हो जायगा। कोई पण्डित बोध प्राप्त करने के लिये आने को उद्यत भी हैं ? आपने शिष्य योग्य चुने हैं और पहिले से ही उन्हें मेरी पार्टी का बना दिया है, यह भी अच्छा ही किया है। भला मानस ! साहित्यक प्रश्न पार्टी के नहीं होते। शास्त्रार्थ आप के लेखानुसार एक मास तक होगा। यह महानुभाव—श्री स्वा० सत्यानन्द जी, श्री स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी, श्री स्वा० अच्युतानन्द जी, श्री 'पन्डित' (?) इन्द्र जी—मेरी दृष्टि में तो इतने खाली हैं नहीं कि एक मास आपके हां डेरा लगाएं और मेरे आप के वाग्युद्ध से रिसर्च का पाठ पढ़ें। आप उन से पूछ लीजिये। इन्हीं पण्डितों पर इति श्रीः क्यों है ? मेरी मानें तो अपने और मेरे लेख संसार भर के जितने विद्वानों को चाहें भेजदें। उन सब की व्यवस्था मंगवा कर छापते जाएं। मौखिक शास्त्रार्थ से मुझे संकोच इसलिये भी है कि आप लेख में ही इतने उद्धत हैं तो न जाने वाणी में क्या अकाण्ड ताण्डव रचें ? फिर आप का सत्य भाषण भी रिसर्च स्कालरों का सा है जिस की बानगी व्याख्यान में दी थी। लेखनी की उछल कूद ठीक है। आप कुछ संभले भी रहेंगे और मुकरेंगे भी नहीं।

अब आप के लेखों की एक ही बात रह गई है। वह है आप का बहुज्ञता का अभिमान किसी और के मुंह से यह शहनाई बजती तो अच्छी लगती। परमात्मा आप के गुणग्राहकों की सृष्टि कर आप को आत्मश्लाघा के दोष से बचाए। आप कहें तो इस में मैं आपकी सहायता करदूं देखिये ! इस भूमिका में जितने प्रमाण आपने दिये हैं, वे सब विना अपवाद के आप के प्रकीर्ण पाठ की साक्षि देते हैं। आप ने छान्दोग्य पढ़ा ही होगा। नहीं तो 'महीदास' को अशुद्ध

क्यों कहते और उस की ११६ वर्ष की आयु को कम कह, वर की जगह शाप क्यों बनाते ? आपने महाभाष्य पढ़ा ही होगा, अन्यथा 'वर्ष शतम्' का प्रमाण क्यों देते और उससे पूर्व आप 'दिव्यं वर्ष सहस्रम्' की उपेक्षा क्यों करते ? आप ने महाभारत पढ़ा ही होगा अन्यथा 'पुरातन इतिहास' को वर्तमान कालिक कथा तथा 'ऋषि संस्तुत पुराण' का अर्थ थोड़ी सी पीढ़ी पूर्व का वृन्तान्त क्यों ठहराते ?—और 'दाल्भ्य' को 'बको' क्यों लिखते ? आप ने कौमुदी पढ़ी हो होगी नहीं तो उसे 'सूत्र बद्ध' कैसे कहते ? महाराज ! आप ने पढ़ा है और बहुत पढ़ा है। आख़िर कोई बात है जो आप को फिर फिर घना बजाती है। भर्तृहरि ने कहा है:—

यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं गज इव मदान्धः समभवम्,
तदासर्वज्ञोऽस्मीत्य भवदवलिप्तं मम मनः।

यदाकिञ्चित्किञ्चिद्बुधजनसकाशादवगतम्,
तदा मूर्खोऽस्मीतिज्वर इव मदो मे व्यपगतः॥

आपने पढ़ा है और बहुत पढ़ा है। यह और बात है कि प्रकरणच्युत पढ़ा हो या पढ़ते हुए अर्थावगम का मुफ़्त का कष्ट न उठया हो। निरुक्तकार ने ऐसे ही बहुत पढ़ों को 'स्थाणुरयं भारहारः' कहा है और सुश्रुत ने 'भारस्यवेत्ता नतु चन्दनस्य' की उपाधि दी है।

बहुतों को सब शोभा देता है।

"मेरे मन के राजा"

(ले० श्रीयुत चमूपति एम०ए० 'आर्य सेवक')

मेरे मन के राजा ॥ टेक

पग आहट से, चित चौखट से, आ आ फिर छिप जाना झट से।
टुक निज झलक दिखा जा। चित चमका चौंका जा॥ १॥
मैं दुखियारी तू दुख हारी, आ झलका छबि प्यारी प्यारी।
मेरा रूप मिटा जा। अपना रंग जमा जा॥ २॥
मन भरमा जा, पग भटका जा, इक दिन आ, बरसों तरसाजा।
घटती आस बढ़ा जा। आजा प्यारे आजा॥ ३॥

अजमेध तथा अविमेध का रहस्य

(ले० श्रीयुत प० भक्तराम जी)

राज्य की स्थापना के लिये सब से पूर्व एक वाणी (भाषा) का होना अत्यन्त आवश्यक है। इसे गोमेध के नाम से कहा गया है। इस में सर्व प्रकार के विद्या-वृद्धि के साधनों का समावेश है ॥

राज्यस्थिति का दूसरा आधार, श्री लक्ष्मी, अस्त्र शस्त्र शिक्षा, और राजबल (फौज) है जिस का अश्वमेध के रूप में कथन किया गया है।

राज्य की मर्यादा को उत्तम रीति से चलाने का तीसरा महत्त्वपूर्ण साधन नरमेध है। इस में स्त्री और पुरुष का श्रेष्ठ सन्तानोतपत्ति के लिये तैयार होना आवश्यक है ताकि इस से जाति प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त हो, प्रजा में किसी प्रकार का रगड़ा झगड़ा उत्पन्न न हो, गरीबी और अमीरी का संग्राम न होने पाए, न वर्तमान के समान मृत्यु पर्यंत रोटी की समस्या सताती रहे; क्योंकि भूखा किसी काल में भी कोई समाज-सेवा नहीं कर सकता ; जिस से देश तथा जाति के लिये उपदेशक उत्पन्न किये जा सकें, अध्यापक बन सकें, प्रचारक देश देशान्तरों में जा सकें जिन का काम केवल परोपकार हो, जिन को अपनी कमाई अथवा बाल बच्चों का फ़िकर न हो; सब बच्चे जाति के बच्चे माने जावें और सब बूढ़े जाति के वृद्ध माने जावें; केवल गृहस्थ ही हों जिन को अपना और दूसरों का ध्यान हो। नरमेध द्वारा प्राचीन आर्य लोग जगद् गुरु बने हुए थे। न गुरु आचार्य्यों को वेतन की आवश्यकता और न ब्रह्मचारियों को फ़ीस का टोटा—जिस के कारण सम्प्रति कोई निर्धन पुरुष अपने बाल बच्चों को नहीं पढ़ा सकता। प्राचीन आर्य लोगों में साम्प्रतिक शुल्क पद्धति नहीं थी इस लिये सब पुरुष तथा स्त्रियां विद्वान् और विदुषी थीं। यह सब नरमेध का प्रताप था।

इस सारे प्रबन्ध को चलाने के लिये अन्न की आवश्यकता है। किस प्रकार उत्तम धान्य उत्पन्न किया जावे और उस उपज की किस तरह रक्षा की जावे ताकि वह रक्षा किया हुआ अन्न जौ, चावल, गेहूं, चना आदि दुर्भिक्ष के समय में काम आसके। इन उद्देश्यों की सिद्धि के लिए जिस यज्ञ का अनुष्ठान किया जाता था उसे अजमेध के नाम से परिभाषित किया करते थे। आजकल

के शब्दार्थक्रमि जहां कहीं अज शब्द आया झट बकरा समझते हैं। नीतिकार कई प्रकार के उपाख्यानों से शिक्षा देते रहते हैं—कहीं यदि (महाजनो येन गतः स पन्थः) पढ़ लिया तो महाजनों (बन्यों) की अर्थी के साथ श्मशान में पहुंच कर दुःख हुआ। यह नहीं जाना कि महाजन के गूढ़ार्थ क्या हैं। उत्तम पुरुषों का अनुकरण करने से सुख की प्राप्ति हो सकती है न कि महाजन (बन्यों) के पीछे २ जाने से इत्यादि—

महाभारत में भी लोगों की बुद्धि भ्रष्ट हो जाने से प्रचलति रीति का खण्डन करते हुए कहा गया है कि

बीजैर्यज्ञेषु यष्टव्यमिति वै वैदिकी श्रुतिः
अज संज्ञानि बीजानि छागं नो हन्तुमर्हथः। महा० शां ३६७ ॥

अर्थात् बीजों द्वारा यज्ञ करना चाहिये इसी बात का प्रतिपादन करते हैं क्योंकि अज के अर्थ बीजों के हैं, इस कारण बकरे नहीं मारने चाहियें ॥

पञ्चतन्त्रादि नवीन ग्रन्थों में भी स्पष्ट कहा गया है कि —

"एतेऽपि ये याज्ञिका यज्ञ कर्मणि पशून् व्यापादयन्ति ते मूर्खाः, परमार्थं श्रुतेर्न जानन्ति, अजा व्रीहयस्तावत्सप्त वार्षिकाः कथ्यन्ते" इत्यादि अर्थात् जो अज नाम से पशु की हिंसा करते हैं, वे लोग मूर्ख हैं वे वेद के परम उत्तम अर्थों को नहीं जानते, अज ऐसे चावलों का नाम है जो सात वर्ष के पुराने हों ॥ यदि विद्वान् लोग पुराने संस्कारों का परित्याग कर विचार दृष्टि से जानने का प्रयत्न करें तो उन को किञ्चिन्मात्र भी शंका नहीं रहेगी कि अजमेध को क्यों अत्यन्त आवश्यक माना गया था। क्या वर्तमान काल में राज्य खाद्य पदार्थों की वृद्धि करना अपना कर्तव्य नहीं मानता और बीजों की प्रदर्शनी स्थान २ पर नहीं की जाती जिस से खेतिहर अच्छी प्रकार जान सकें कि किन २ साधनों से उत्तम और चिरस्थायी अन्न उत्पन्न हो सकता है; किस प्रकार थोड़ी सी भूमि से बहु अन्न उत्पन्न किया जा सकता है। अजमेध का तात्पर्य यह है कि कृषि विद्या किस प्रकार उन्नत हो सकती है। जहां गोमेध में बहुत सा भाग ब्राह्मणों का है और अश्वमेध में क्षत्रियों का, उसी प्रकार अजमेध में अधिक भाग वैश्यों का जानना चाहिये। यह अन्न ही सर्व प्राणियों के जीवन का आधार है। नीतिकार बतलाते हैं कि सात वर्ष के पुराने सुरक्षित अन्न चावल आदि प्रयोग में लाए जाते थे। यह भी ध्यान रहे कि जितना पुराना चावल होता है उतना ही खाने में उत्तम माना जाता है, इस कारण अन्य अन्नों का नाम न लिखकर केवल चावल शब्द से वर्णन किया गया है। तात्पर्य्य

यह है कि विद्वान् लोग इस बात पर विचार करें और ऐसे साधन और औषधियां तैयार करें जिस से गोधूम (गेहूं) जौ, चने, मसरादि जिन को कीड़े शीघ्र ही खा जाते हैं बहुत काल तक सुरक्षित रह सकें। जिन यज्ञों में विद्वान् लोग एकत्र हो कर इस प्रकार के विचार करते थे उन को अजमेध कहा गया है।

शेष रहा अविमेध। इसका अर्थ वैदिक मर्य्यादा से अनभिज्ञ लोग भेड मारना बतलाते हैं। उनको यह कभी ध्यान नहीं आता कि भेड़ और बकरे में क्या भेद है जिस के लिये एक विशेष यज्ञ का वर्णन किया गया है। बात यह है कि वैदिक सभ्यता के नष्ट हो जाने से लोग यथार्थ अर्थों से उलटा जानने लग गए और किसी ने भी कभी प्रयत्न नहीं किया कि तत्व का अन्वेषण किया जावे। यह केवल वेदाचार्य्य महर्षि दयानन्द का ही परम अनुग्रह था जिस के प्रभाव से फिर से वैदिक अर्थों का प्रकाश हुआ।

अन्न से मन बनता है और मन ही मनुष्यों के सुख और दुःख का कारण है। मन एव मनुष्याणाम् कारणम् सुख दुःखयोः॥

इस लिये अन्न उत्तम होना चाहिये परन्तु अन्न उत्तम नहीं हो सकता जब तक अन्न के उत्पन्न करने वाली भूमि उत्तम न हो और जल का उत्तम प्रबन्ध न हो। इस लिये इन दोनों बातों के लिये अविमेध किया जाता था। अवि शब्द का अर्थ पृथिवी और जल दोनों हैं—

इयं (पृथिवी) वा अविरियं ह्हीमाः सर्वाः प्रजा अवति श. ६-१-२-३३

अविः वारुणो च हि त्वाष्ट्री चाविः—श०-७-५-२-२०

अवि नाम पृथिवी का है क्योंकि पृथिवी ही सर्व प्रजा का पालन करती है। जल का नाम अवि है क्यों कि इस से रस की उत्पत्ति होती है और तथा एक बीज से अनेक बीज उत्पन्न होते हैं। बीज पृथिवी में पड़ कर जलादि की सहायता से वृक्ष बन जाता है जिस से अनेक वैसे बीज उत्पन्न हो जाते हैं। इन दो पदार्थों के एकत्र हुए बिना अन्नाभाव के कारण जीव जन्तुओं की प्राण-रक्षा नहीं हो सकती। कृषि विद्या की उन्नति से ही अच्छी बुरी, ऊषर, रोही, कल्लर आदि जमीन की पहचान होसकती है। यह जानना आवश्यक है कि किस जमीन में कौन सा अन्न उत्तम प्रकार से उत्पन्न हो सकेगा। किस २ समय पर जल देना चाहिये और जहां जल नहीं वहां जल लाने का प्रबन्ध करना चाहिए। वर्षा के द्वारा, नहरों के द्वारा, कूप खननादि के द्वारा, तालाबों

के बनाने उन से अनेक प्रकार से जल खींचने के साधन एकत्र करना होता है इसके लिये जो विशेष यज्ञ रचे जाते हैं ऐसे यज्ञों को अविमेध कहा जाता है।

यह पांचों प्रकार के यज्ञ राजा के लिये कर्तव्य कर्म हैं। इन के बिना कोई राजा चिरस्थायी राज्य स्थापन नहीं कर सकता और न ही उस की प्रजा सुखी हो सकती है जिस राजा की प्रजा अपने जीवन के लिये अन्न उत्पन्न नहीं कर सकती, जिस के पास अन्न उत्पन्न करने के लिये भूमि नहीं, उस को हराभरा रखने के लिये जल का प्रबन्ध नहीं, वह राज्य २ कहलाने के योग्य नहीं। जब वर्तमान भी गवर्नमेंटें भी प्रत्येक महकमे को पृथक २ रखती हैं और उन के विकास के लिये प्रत्येक देश के बड़े २ विद्वानों की संमति लेती और नई २ आयोजनाएं करती हैं, उन विषयों पर भिन्न २ शास्त्र रचे जाते हैं, फिर कोई कारण नहीं प्रतीत होता कि प्राचीन आर्य राजा गण जो सब प्रकार की विद्याओं के आविष्कार करने वाले, सब दुनिया के गुरु कहलाने वाले थे अपने ही देश में इन विद्याओं से अनभिज्ञ हों। ऐसा मानना मूर्खता से कुछ कम नहीं। इस लिये प्राचीन ग्रन्थ इस बात की साक्षि हैं कि राजा और प्रजा इस प्रकार पांचों मेधों को करते थे। पृथक् २ मन्त्री विभाग थे। विद्या सभा, राज्य सभा, धर्म सभा और इसी प्रकार प्रत्येक सभा के लिये दूसरे २ मन्त्री मण्डल थे। उन के पृथक २ कार्यालय थे जिस से प्रत्येक प्रकार का प्रबन्ध चलता था। लोग आनन्द से अपना जीवन व्यतीत करते थे। अपने आनन्द मंगल के लिये भूमि,-अन्न, जल,-बल, पराक्रम, शस्त्र अस्त्र विद्या, का पूरा २ विकास था जिन को न जान कर लोग मन माने अर्थ करके प्राणियों को मारने लग गए और संसार में घोर अत्याचार फैल गया। प्रजा सदैव के लिये निर्बल, पराधीन, निर्धन हो गई। अन्न जल के लिये दूसरों के आश्रय हो गई। प्राचीन आर्य लोग यही यज्ञ करके सुखी होते थे और आज कल की सरकारें यही करके सुखी हो रही हैं। ईश्वर करें कि हम प्राचीन सभ्यता को जानने और उस पर आरूढ़ होने पर कटिबद्ध हों। वेदाचार्य महर्षि ने मार्ग निर्माण कर दिया है, उस पर चलना हमारा कर्तव्य है॥

गोस्वामी तुलसीदास जी के सम्बन्ध में

[लेखक—श्रीयुत कृष्णानन्द जी]

इस में कोई सन्देह नहीं कि तुलसीदास जी संस्कृत के विद्वान, हिन्दी के प्रतिभाशाली कवि और महात्मा थे। उन की लिखी रामायण (रामचरितमानस) से बड़ा उपकार हुआ है इस लिये हमें गोस्वामी जी का आदर करना चाहिए। परन्तु इस बात को जानते रहना चाहिए कि रामचरितमानस की सैंकड़ों बातें कल्पित और झूठी हैं। तुलसीदास जी पुराण की सब बातों को सच मानते थे इस लिये उन्हों ने बहुत सी बातें कल्पना करके रामचरितमानस में लिख दीं। खेद है कि आजकल बहुत से लोग उन की बातों को बिलकुल सच मानते हैं। रामचरित मानस को हिन्दी कविता की दृष्टि से पढ़ना उचित है लेकिन सिद्धान्तों की दृष्टि से उसे बिलकुल सच मान लेना भ्रम है।

यहां महात्मा तुलसीदास जी की कई अयुक्त बातें नमूने के तौर पर दिखलाई जाती हैं—

१ गोस्वामी जी ने राम नाम जपने की बहुत महिमा गाई है। यहां तक लिखा है कि राम नाम लेते ही सब पाप कट जाता है।

राम नाम जपने मात्र से पाप नहीं कट सकता। कोई आदमी चोरी या बेईमानी करे और फिर एक बार नहीं सैंकड़ों बार राम नाम जपे तो क्या वैष्णव लोग उस चोर या बेईमान का विश्वास करने लगेंगे? विचार कीजिए, जब उस चोर ने राम नाम ले लिया तो वैष्णवों की दृष्टि में उस चोर का पाप कट गया इस लिए वैष्णवों का कर्त्तव्य हो गया कि अब उस चोर को अधर्मी न समझें। परन्तु वैष्णव लोग ऐसा नहीं समझते। इस से सिद्ध है कि "राम नाम जपने से पाप कटता है" इस बात को वैष्णव लोग सच्चे दिल से नहीं मानते। कहना और बात है और सच्चे दिल से मानना और बात है। दूसरा उदाहरण यह है कि कोई आदमी शराब पी लेवे (शराब पीना पाप है) और राम नाम जपने लगे तो क्या वह मदिरा के विषैले प्रभाव से बच जायगा? कभी नहीं बच सकता। इन दो दृष्टान्तों से सिद्ध है कि राम नाम जपने से पाप नहीं कटता।

२ रामचरित मानस में लिखा है—

उलटा नाम जपत जग जाना बाल्मीकि भे ब्रह्म समाना॥

अर्थात् राम नाम उलटा (मरा मरा) जपने से बाल्मीकि जी ब्रह्मवेत्ता बन गये।

गोस्वामी। तुलसीदास जी की यह बात गलत है। उलटा तो दरकिनार सीधा राम नाम जपने पर भी कोई आदमी ब्रह्मवेत्ता या महात्मा नहीं बन सकता। विद्याभ्यास सत्संग और योगाभ्यास करने से ही मनुष्य ब्रह्मवेत्ता या महात्मा बन सकता है। सिर्फ राम नाम जपने से कोई भी आदमी महात्मा नहीं बन सकता।

सिर्फ नाम जपने से कोई आदमी महात्मा बन सकता है या नहीं इस की परीक्षा इस प्रकार लीजिये। एक मूर्ख बेपढ़े आदमी को राम नाम जपने के लिए इस प्रकार एकान्त में रखिए कि ५० बरस तक वह बराबर राम नाम जपता रहे। उसे नित्य भोजन मिल जाया करे परन्तु वह किसी आदमी से कभी बातचीत न कर सके तो पचास बरस के बाद भी उस की बुद्धि कुछ न बढ़ेगी, वह ज्यों का त्यों मूर्ख ही बना रहेगा। इस के विपरीत यदि कोई अनपढ़ आदमी राम नाम न जपे और विद्या पढ़े व सत्संग करे तो उस की मानसिक उन्नति अवश्य होगी। इस से सिद्ध है कि राम नाम जपने से कोई आदमी ब्रह्मवेत्ता नहीं बन सकता, हां विद्याभ्यास और सत्संग से वह जरूर ब्रह्मवेत्ता या महात्मा बन सकता है।

बाल्मीकि जी पहले कुसंग में पड़ गये थे। पीछे सत्संग को प्राप्त हो कर विद्याभ्यास किया। विद्याभ्यास और योगाभ्यास से ब्रह्मज्ञानी बन गये। विना विद्याभ्यास व सत्संग के कोई भी मनुष्य सिर्फ राम नाम जपकर ब्रह्मवेत्ता या महात्मा नहीं बन सकता, यह सरल बात है। इस लिए तुलसीदास की उक्त चौपाई मानने योग्य नहीं है।

३ एक जगह तुलसीदास जी ने लिखा है कि प्रायः सभी स्त्रियों में झुठाई मूर्खता, अपवित्रता, भय और कपट आदि आठ अवगुण रहते हैं।

यहां पर तुलसीदास ने पक्षपात से काम लिया है। विचार पूर्वक देखने से ज्ञात होता है कि बहुत से पुरुषों में भी यह आठ अवगुण होते हैं। जैसे बहुत से पुरुष सुशील और गुणवान् होते हैं वैसे ही बहुत सी स्त्रियां भी सुशीला और गुणवती होती हैं। और जैसे बहुत से पुरुषों में अनेक दोष होते हैं वैसे ही बहुत सी स्त्रियों में भी अनेक दोष होते हैं। इस लिए गोस्वामी जी ने जो सिर्फ स्त्रियों के जिम्मे ही दोष मढ़ा है यह बिलकुल अनुचित है।

४ एक जगह गोस्वामी जी ने लिखा है—

पूजिय विप्र सकल गुन हीना। शूद्र न गुन गन ज्ञान प्रवीना।

उनकी यह बात भी मानने योग्य नहीं है। क्योंकि संसार में गुण ही पूजा जाता है। जिस मनुष्य में गुण नहीं, लोग उसका आदर नहीं करते। एक ही जाति के दो मनुष्य हों एक गुणवान् दूसरा गुणहीन, तो दोनों में कौन आदर पावेगा? स्पष्ट है कि सब लोग गुणवान् को अधिक चाहेंगे। बड़े बड़े राजा महाराजा मूर्ख ब्राह्मण को अपने निकट कुरसी पर नहीं बैठाते, लेकिन वे ही राजा महाराजा विद्वान् ब्राह्मण को अपने बराबर कुरसी पर बैठाते हैं। इससे भी सिद्ध है कि गुण ही पूज्य है। किसी आदमी को हजार रुपया वेतन या पुरस्कार मिलता है किसी को दस ही रुपया वेतन या पुरुस्कार मिलता है इसका क्या कारण है? इसका कारण गुण ही है। जिसमें बहुत अधिक गुण होगा वह ज्यादा इनाम और ज्यादा प्रतिष्ठा पाता है और जिसमें कम गुण होगा वह कम इनाम और कम प्रतिष्ठा पाता है। इस लिये गुण से ही मनुष्य पूजा जाता है, जाति से नहीं। मनुष्यों में गुण ही मुख्य है। यहां तक कि जिस मनुष्य में कुछ भी गुण न हो लोग उसे 'गधा" तक कहने लगते हैं और बहुत अधिक गुण वाले पुरुष को देवता या फ़रिश्ता कहते हैं।

सिर्फ दो ही अवसर ऐसे होते हैं जिनमें "जाति" देखी जाती है और नहीं तो सदा सब अवसरों पर गुण ही देखा जाता है। एक तो व्याह शादी में जातिका ख्याल किया जाता है सो उसमें भी 'गुण" का विचार छोड़ नहीं देते दूसरे संघ में जैसे हिन्दू मुसलमान में लड़ाई हो तो हिन्दू हिन्दू का पक्ष लेंगे और मुसलमान मुसलमान का पक्ष लेंगे। उस मौके पर हिन्दू यह न देखेंगे कि हिन्दू में गुण है या नहीं और मुसलमान यह न देखेंगे कि मुसलमान में गुण है या नहीं। ऐसे मौके पर "जाति" ही देखी जायगी। बस इन दो मौकों को छोड़ कर अन्य सब अवसरों पर गुण ही देखा जाता है और गुणवान् ही की पूजा होती है। इसलिए गुणी या ज्ञानी शूद्र का आदर करना उचित है। गुण हीन ब्राह्मण का आदर करना और गुणवान शूद्र का अनादर करना अन्याय है। गुणी मनुष्य चाहे किसी जाति का हो आदरणीय है।

(५) तुलसी दास जी ने लिखा है कि वेदों ने आ कर के श्री राम चन्द्र जी की स्तुति की।

विचारने की बात है कि वेद कोई मनुष्य है जो आ कर स्तुति करने लगे वेदों का आ कर स्तुति करने की बात बिल कुल झूठ है।

(६) लिखा है कि राम चन्द्र जी ने जब समुद्र पर क्रोध किया तो समुद्र हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया और विनय करने लगा।

विचारने की बात है कि समुद्र क्या आदमी था जो हाथ जोड़ कर विनय करने लगा ? समुद्र आदमी की तरह बात चीत नहीं कर सकता जैसे कोई कहे कि "सोन नदी प० मदनमोहन मालवीय जी से कहने लगी" इस तरह की बातें सच नहीं कहला सकती। हाँ यह हो सकता है कि उस सामद्रीय स्थान का कोई मालिक रहा हो जिस ने रामचन्द्र जी को आगे बढ़ने से रोक दिया हो फिर रामचन्द्र जी ने जब उस पर क्रोध किया तब वह (समुद्र का अफसर) रामचन्द्र जी से हाथ जोड़ कर विनय करने लगा हो।

७ गोस्वामी जी ने लिखा है कि सीता पार्वती जी के मन्दिर में पूजा करने आई।

इतिहास से सिद्ध है कि उस समय मूर्त्तिपूजा प्रचलित नहीं थी इस लिए सीता के सम्बन्ध में गौरी-पूजन की बात मिथ्या ही है और वाल्मीकि रामायण में भी यह नहीं लिखा है कि सीता गौरी को पूजने के लिए मन्दिर में आई।

८ वाल्मीकि रामायण में लिखा है कि जब श्रीराम जी का विवाह हो गया तब अयोध्या को लौटते समय मार्ग में परशुराम जी श्रीराम जी से मिले। तुलसीदास जी ने इस के विरुद्ध स्वयम्बर के समय में ही लक्ष्मण व परशुराम का सम्वाद करा दिया है जो कि ऐतिहासिक दृष्टि से मिथ्या है।

९ तुलसीदास जी ने लिखा है कि रामचन्द्र जी ने रामेश्वर में शिवजी की प्रतिमा स्थापित की। यह बात गलत है क्योंकि उस समय मूर्त्तिपूजा का प्रचार ही नहीं था।

१० तुलसीदास जी ने जो रावण और अंगद का सम्वाद कराया है वह वाल्मीकि रामायण के विरुद्ध और अनुचित प्रकार से है।

११ विनय पत्रिका में लिखा है—

"जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिए ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही।"

यहां अगर तुलसीदास जी का यह मतलब हो कि "जो लोग सीताराम को नहीं भजते उन्हें शत्रुवत् त्याग देना चाहिए" तो यह बात मानने योग्य नहीं है। इस समय हिन्दुओं में सैंकड़ों सम्प्रदाय हैं। कोई राम को भजता है तो कोई कृष्ण को; कोई शिव की पूजा करता है तो कोई दुर्गा की देव-समाजी, राधास्वामी नानकपन्थी, जैनी आदि मतवादी भिन्न भिन्न देवों को भजते पूजते हैं। मान लीजिये हिन्दुओं में १०० पन्थ हैं जिस तरह तुलसीदास जी ने कहा है कि "जो सीताराम को न भजें उन्हें शत्रुवत् त्याग दो" इसी तरह जैन लोग कह सकते हैं कि "जो लोग तीर्थंकर को न पूजें उन्हें शत्रुवत् त्याग देना चाहिए" और शैव लोग कह सकते हैं कि "जो लोग शिव को न भजें उन्हें शत्रुवत् त्याग देना चाहिए"। शाक्त शोग कह सकते हैं कि "जो लोग दुर्गा की पूजा न करें उन्हें शत्रु समझना चाहिए।" इस प्रकार प्रत्येक मतवादी अपने से भिन्न सम्प्रदाय वाले को अपना शत्रु समझ सकता है। इस प्रकार क्या हिन्दुओं में ऐक्य और संगठन हो सकता है? कभी नहीं। इस लिए विनयपत्रिका का यह भजन बड़ा ही अनिष्टकारक है।

त्याज्य मनुष्य वह है जो दुष्ट और दुराचारी, अन्यायी और अत्याचारी हो। सदाचारी और न्यायकारी मनुष्य चाहे शिव को भजता हो या कृष्ण को, दुर्गा को पूजता हो या काली को, बुद्ध को पूजता हो या तीर्थंकर को, नानक पन्थी हो या राधास्वामी हो, त्याज्य नहीं है आदरणीय है। कोई मनुष्य राम को भजता हो लेकिन अगर वह लोगों के साथ बेईमानी, दगाबाजी और अन्याय करता हो तो क्या वह धर्मात्मा और प्रशंसनीय कहला सकता है? कभी नहीं। कोई आदमी राम को नहीं भजता लेकिन वह सच बोलता है, किसी को ठगता नहीं, किसी को धोखा नहीं देता, सब के साथ भलाई करता है तो ऐसे आदमी को शत्रु या त्याज्य मानना निपट भूल है।

हम सब को न्याय पर ही चलना चाहिए। न्याय यही है कि सज्जन और न्यायकारी मनुष्य चाहे किसी देवता को भजता या पूजता हो उसे मित्र समझना चाहिए और दुष्ट और अन्यायी मनुष्य चाहे किसी देवता को भजे या पूजे, उसे शत्रुवत् त्याज्य समझना चाहिये, चाहे वह स्नेह भी प्रकट करे।

अस्तु, तुलसीदास जी का उक्त भजन उदारता के विरुद्ध संकीर्ण विचार को शिक्षा देता है। इस तरह तुलसीदास जी की सैंकड़ों भूलें दिखलाई जा सकती हैं।

प्रिय सज्जनो ! यदि आप को मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र जी का जीवन चरित पढ़ना हो तो वाल्मीकि रामायण पढ़िए और अगर तुलसीदास कृत रामायण पढ़िए तो हिन्दी का ज्ञान बढ़ाने के लिए अथवा कविता की दृष्टि से पढ़िए लेकिन उस में जो बातें असत्य और अयुक्त हैं उन्हें मत मानिये क्योंकि इसमें बड़ी हानि है। इस में कोई सन्देह नहीं कि तुलसीदास कृत रामायण से हिन्दी का प्रचार बढ़ कर हिन्दू जाति को बहुत लाभ पहुँचा है इस लिए हमें उन का कृतज्ञ होना चाहिए लेकिन साथ ही साथ यह भी जानते रहना चाहिए कि उन की सैंकड़ों बातें इतिहास और साइन्स के विरुद्ध हैं। हमें दोषों को त्याग कर गुणों को ग्रहण करना चाहिए।

यह क्या है ?

(ले०—श्रीयुत नारायणदत्त जी सिद्धान्तालंकार)

(१)

मेरे सामने गुलाब का फूल पड़ा हुआ है। मैं उसे देख रहा हूँ। देखते २ विचार उठा कि यह "देखना" क्या है ? क्या मेरे मन का खेल ही है या इस में कुछ वास्तविकता भी है ? बहुधा अकेले जङ्गलों में घूमते हुए भी बड़े २ नगर देखा करता हूं, रात को बिस्तरे पर सोए हुए आकाश में हवाई जहाज़ उड़ते देखता हूँ। सब कुछ सामने स्पष्ट होता है फिर भी पीछे से न जाने कौन आकर कह देता है कि तुम ने कुछ नहीं देखा। यह तो केवल तुम्हारे मन का खेल था। इसका कहना इतना असर कर जाता है कि देखे को "न देखा" मानने में ज़रा भी सन्देह नहीं रहता। क्या यह सामने पड़ा गुलाब का फूल भी इसी प्रकार का है ? यह भी फिर न देखे के क्षेत्र में आजायगा ?

अन्दर वाले को बुलाया, पूछा क्या मामला है ? सामने कुछ है भी या नहीं ? उत्तर मिला—है, है, इस की सत्ता में सन्देह न करो।

विचित्र द्विविधा में पड़ गया—जब निश्चय था सामने राजमहल खड़ा है

चारों ओर सुन्दर बाग बागीचे हैं। इधर स्वच्छ जल का तालाब है। उधर गायन-शाला का सुन्दर भवन है। मधुर गान हो रहा है। एक दम स्तब्ध हो सुनने खड़ा हो जाता हूं। उस समय आवाज़ आती है—पगला! क्या कर रहा है? किस खेल में लगा है? सामने तो कुछ है ही नहीं।

अब जब सन्देह में हूँ कि कुछ सामने है भी या नहीं, कहता है—है, है, विश्वास करो।

मैं भी ऐसा नादान जो कहता है मान लेता हूँ। यह क्या? क्यों?

(२)

एक दिन समुद्र की सैर पर चल पड़ा। किनारे पर पहुँच कर चारों ओर देखने लगा। इस कृष्णिमामयी रेत के अन्दर कहीं किसी वस्तु के छोटे २ टुकड़े अत्यन्त उज्ज्वल दूर से चमकते दिखाई देने लगे। दो बजे दोपहर का समय था। सूर्य्यकी धूप उन की चमक को चौगुना कर रही थी। दिल में आया—आज तो भगवान् की मुझ पर अपूर्व कृपा है। इस सुनसान स्थान पर मुझे इस गरम समय में बुलाया, शायद यह सम्पत्ति देनी थी। मैं ही इस का सब से अधिक योग्य पात्र था। देखते २ दौड़ा। पास पहुंचते ही एक दम गम्भीर हो कर खड़ा हो गया। अरे। यह क्या! चान्दी की मोहरें क्या हो गईं। क्या यह भगवान् ने दिखाने के लिये ही रक्खी थीं। पास पहुँचते ही रूप बदल दिया। इस अन्दर बैठे को भी देखो। दौड़ाया, खूब दौड़ाया। दौड़ कर आया तो एक दम रंग बदल लिया। पहले कहा चान्दी है अब कहता है सीप ...अजब देवता है। मैं भी न जाने क्यों पीछे पड़ा हूँ। अच्छा देखें कब तक खेल चलता है?

(३)

आज प्रातः काल सन्ध्या करने बैठा हूं। मन ईश्वर भक्ति में न जा किसी खास विचार में लगा है। कितना ही इधर से हटाओ नहीं हटता। अब तक की देखी सब घटनाएँ सामने आ रही हैं—एक बार तो देखे को "अन देखा" कर दिया, दूसरी वार सन्देह में भी विश्वास का आश्वास न दिया। कल के रोज़ वस्तु का रूप ही बदल दिया। कुछ न सूझा क्या जादू है? गुरुओं की तलाश में गया। एक जंगल में समाधि लगाए एक ऋषि मिले। नमस्कार करके पास ही बैठ गया। सब दिल खोल कर रख दिया। ऋषि बोले देखो बच्चा! संसार वास्तव में कुछ नहीं। यह सब कल्पना ही कल्पना है। स्वप्न आदि की घटनाएं जहां देखा "अन देखा" हो जाता है इस बात की शिक्षा दे रही हैं कि शेष संसार भी ऐसा ही है।

इस कल्पना विचार या ज्ञान के सिवाय अन्य कोई असलीयत है ही नहीं । ये विचार ही अधिक गहरे हो कर हर वस्तु में असल २ का शोर मचाते हैं । तुम अविवेकी होने से मान जाते हो। एक बार शान्त हो कर अनुभव तो करो क्या कोई ऐसी वस्तु है जो पहले तुम्हारे विचार में न आवे, बाहर हो ? ये विचार ही तरह २ की दुनियां को बना कर तुम्हारे सामने रख देते हैं और उन की सत्ता तुम से भिन्न बनाने का यत्न करते हैं। जहां इस यत्न में वे सफल हो जाते हैं तुम कहने लग जाते हो मैं गुलाब का फूल देख रहा हूं। जहां विफल हो जाते हैं अन्दर से आवाज़ आती है "पगला, क्या कर रहा है। यहां तो कुछ है ही नहीं। क्या मन के खेल ही में मस्त हो रहा है !" वास्तव में यह सब मन का खेल ही है । इसे समझने का यत्न करो। ज्यों ही समझ जाओगे तुम भी शून्य हो जाओगे । यही सच्चा निर्वाण है।

(४)

"विचार के अतिरिक्त वास्तव में कुछ नहीं। यह सब मन का खेल है।" यह गुरु जी का उपदेश है। यह विचार क्या है ? कहां से उठता है ? एक नहीं-अनेक। इस समय कुछ और, दूसरे क्षण कुछ और। यह अनेकता क्यों कर ? यदि बाहर कुछ नहीं, तो अन्दर भेद कहां से आया ? इतना ही नहीं और देखो ! सामने गिलास में गुलदस्ता रक्खा है—मैं ही नहीं, जो आता है यही कहता है "गुलदस्ता है" दसों से पूछा दसों ने यही जवाब दिया यदि यहां गुलदस्ता नहीं—मेरे मन का विचार ही है तो सभी के दिलों में यहां पहुंचते ही गुलदस्ते का विचार क्यों-कर आता है !

ज़रूर इस का कोई कारण होना चाहिये। हो नहीं सकता बाहर कुछ न हो।

बस ऐसे ही विचार मेरे दिल में फिर उठने शुरु हुए। बार २ गुरु जी का उपदेश मेरे सामने आता और ये विचार उन के बताए निर्वाण की प्राप्ति में बाधक होने लगते। फिर उठा और चला। किसी दूसरे गुरु की तलाश में। फिरने लगा। एक मिला तो सही, पर उसी किसम का। कहने लगा—देखो बच्चा ! यह संसार जो इस समय तुम्हें नज़र आ रहा है किसी समय नजर न आएगा । एक ज्योति ही ज्योति सामने दिखाई देगी। इस ज्योति का नाम है ब्रह्म। यह ब्रह्म ही वास्तव में सत्य है शेष सब जगत् मिथ्या। देखो समुद्र के किनारे तुम्हें चारों ओर चान्दी की मोहरें नज़र आ रही थीं पर ज्यों ही पास पहुंचे पता लगा यह है—सीप इसी

प्रकार इस व्यावहारिक अवस्था में तुम्हें यह नाना रूप जगत् दिखाई दे रहा है। ज्यों ही तुम सत्य के समीप पहुंचोगे पारमार्थिक अवस्था में कदम रक्खोगे यह सब गुम हो जायगा। चारों ओर वही ब्रह्म की उज्वल ज्योति नज़र आएगी। वह और तू मिट जायगी, सब मैं ही हो जाएगा। यही अनुभवी ऋषि मुनियों का कहना है —"सर्वं खल्विदं ब्रह्म, नेह नानास्ति किञ्चन। मृत्योःस मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति॥ यह सब ब्रह्म ही ब्रह्म है—नाना भाव अवास्तविक है – यही जन्म मरण का कारण है।

(५)

"यह सब ब्रह्म ही ब्रह्म है। शेष सब भ्रम है।" यदि यह सब ब्रह्म है अन्य कुछ नहीं तो मुझे नानात्व का दर्शन कहाँ से होता है। जब दो हैं ही नहीं तो दो नज़र क्यों कर आते हैं?

समुद्र के किनारे सीप में भ्रम हुआ चान्दी का। यदि संसार में सीप और चान्दी दोनों की सत्ता ही न होती तो भ्रम भी न हो सकता था। मान लिया जाय "संसार भ्रम है" पर यह भ्रम भी तो तब तक नहीं हो सकता जब तक ब्रह्म के सिवाय कुछ और न हो।

भला यह भ्रम है किस को? मुझे? मैं तो हूँ ही नहीं, फिर किस को? ब्रह्म को? ब्रह्म को भ्रम हुआ कि मेरे सिवाय अन्य संसार भी है। इस भ्रम को नष्ट करने के लिए उसने योगाभ्यास किया! उस के एक टुकड़े का तो भ्रम नष्ट हो गया वह मुक्त हो गया। दूसरा अभी संसार के दुःखों में पड़ा है। न जाने यह बेचारा पूरा छुटकारा कब पाएगा! कब अपने असली आनन्दमय रूप को प्राप्त करेगा।

यदि ब्रह्म को भ्रम नहीं, ब्रह्म के सिवाय भी कुछ नहीं तो यह क्या जादू है जो हमें तुम्हें नज़र आता है। गुरु जी का उपदेश कुछ समझ नहीं पड़ा। मन वैसा ही विक्षुब्ध रहा जैसा पहले था।

एक दिन इसी सोच में बैठा था। एक पुराना मित्र आया। एक कुटिया में ले गया यहाँ लंगोटी बाँधे एक लम्बा चौड़ा जवान बैठा था। मन में सोचा यह भी वही कहेगा "संसार झूठा है"। इसने तो अपने शरीर को भी खूब सधाया हुआ है। इसे यह कैसे झूठा कहेगा। प्रणाम करके पास बैठ गया। बात चीत हुई। इसका वृत्तान्त बहुत लम्बा है फिर कभी पाठकों से निवेदन करूंगा।

कविते !

लोचन-विहीनों के अनेकों दुख मोचने को,
कल्पनिक दृश्यों की सजीव तुम झाँकी हो।
कवि के अनूप रूपवान मन-मन्दिर की,
सहज सजीली मञ्जु मूर्त्ति सुषमा की हो ॥
अरुण उषा के रूप-राशि सी सुगीत-मयी !
शारदा की वीणा की अनादि शक्ति बाँकी हो।
सूखे हुए मानसों में सींचती सुधा हो—
वसुधा में तुम देवि ! मञ्जु भाषिणी कहाँ की हो ? ॥१॥

माँगता है माधुरी तुम्हारी देवि ! विश्व यह,
काव्य के अनोखे रस-पूर्ण प्रेम-प्याले हैं।
छलक रही है ऐसी अद्भुत अदृश्य सुधा,
रसिक जिन्हें पी नित्य होते मतवाले हैं ॥
गहन वनों को वन-नन्दन बनाये सदा,
तुम ने मुखों को भी मयङ्क कर डाले हैं।
तारे नहीं-देवी देवताओं ने ही फूल फूल,
तुम पर श्वेत फूल हर्ष से उछाले हैं ॥ २ ॥

कामिनी के कोमल कलेवर में राजती हो,
हाँ, विराजती हो कभी भोले बालपन में।
रौद्र-रस-मध्य नाचती हो रण-चण्डी बन,
झाँकती कभी हो तुम चारु चितवन में ॥
वारिधि-वियोग में विहार करती हो कभी,
साधती हो क्रीड़ा कभी प्रणय-मिलन में;
प्रेम की उपास्य देवी हास्य करती हो कभी,
स्वर हो मिलाती कभी करुण-रुदन में ॥३॥

(सरस्वती)

प्लेग का टीका

ले० श्रीयुत कविराज हेमराज विशारद वैद्य-भिषक् रत्न-एम० ए० एम० लाहौर

सनातनत्वाद्वेदानामक्षरत्वात्तथैव च
तथादृष्ट फलत्वाच्च हितत्वादपि देहिनाम
वाक् समूहार्थविस्तारात् पूजितत्वाच्च देहिभिः
चिकित्सितात् पुण्यतमं न किंचिदपि शुश्रुम। सु० क० ८-१४२

आयुर्वेद की उत्तमता

आयुर्वेद अथर्ववेद का अंग है इस लिए इसे भी महर्षि लोगों ने वेद मंत्रा से कई वार उच्चारण किया है जैसे इस श्लोक में कहा है वेदों के सनातन होने से, अक्षर (अखण्डनीय व अकाट्य) होने से, प्रत्यक्ष फल देने वाला होने से, शरीर धारियों का हित साधन करने वाला होने से, इस के वाक्य समूह विस्तार युक्त अर्थों वाले होने से अर्थात् इसकी वाक्य समूह रचना ऐसी विचित्र है जिस से अनेक उपयोगी अर्थों का ज्ञान होता है इन ही विशेष कारणों से यह शास्त्र सर्व प्राणियों से पूजनीय है, चिकित्सा करने वाला होने से इस से बढ़ कर और कोई शास्त्र नहीं सुना जाता है। ऐसे श्रेष्ठ तम शास्त्र के अधार से हम नीचे कुछ वर्णन करते हैं॥

पाठक महोदयों में से वैद्य-डाक्टर तथा अन्य सज्जन जो ऐसे विषयों से प्रेम रखते हैं इस लेख को आरम्भ से अन्त तक पढ़ कर सम्मति स्थिर करें यदि कोई न्यूनता पायें तो हमें ज्ञात करके कृतज्ञ करें।

महोदय गण!

हम आज आपकी पवित्र सेवा में पूज्यपाद धन्वंत्री जी महाराज के पूर्व उपदेश के अनुसार आयुर्वेद के विषय में उच्च व पवित्र भाव रखते हुये टीका जो महामारी रोग की निवृत्ति के लिये की जाती है—के विषय में वर्णन करते हैं और यह प्रकाशित करेंगे कि टीके का प्रयोग करना अनुपयोगी तथा हानि कारक है:—

प्लेग (Plague)

यह रोग साम्प्रतिक स्वरूप में सन् १८९७ ई० में प्रथम २ बम्बई नगर में प्रगट हुआ और शनैः २ समग्र भारत वर्ष में फैल कर लक्षों मनुष्यों के विनाश का कारण हुआ। नूतन आयुर्वेद विज्ञानी अनेक यत्न और करोड़ों रुपये व्यय करने

पर भी इस रोग के निश्चित् लक्षण और इसकी चिकित्सा को उपलब्ध नहीं कर पाए हैं तथापि अनेक प्रत्यक्ष लक्षणों को उपस्थिति में जो कुछ भी उपाय इस को दूर करने के लिये किये जाते हैं उन में से प्रधान उपाय जिसकी सफलता बड़े भारी गौरव से प्रगट की जाती है वह प्लेग का टीका है। इस के विषय में उन के मत एसे हैं। इस रोगका कारण एक प्रकार के सूक्ष्मतर कृमि हैं जिनको बैसीलस पैसटस Bacillus pestis अर्थात् प्लेग के कृमि कहते हैं। इन कृमियों को या इन के विष को प्रथम टीका के द्वारा घोड़े के रुधिर में प्रविष्ट करते हैं फिर इस रुधिर की सीरम Serum लेकर इस से प्लेग के रोगी मनुष्यों में टीका करते हैं इस को इन्टी प्लेग सीरम Anti-plague-serum अर्थात् प्लेग का विरोधी तत्व कहते हैं इस को इएटीप्लेग वैक्सीन Anti-plague-vaccine भी कहते हैं; इस सीरम को सब से पहिले डा० लुसटिंग ने तय्यार किया था जो प्लेग के प्रादुर्भाव होने पर टीका किया जाता था। किन्तु यह सीरम अनुभव से निष्फल सिद्ध होने पर डा० हाफकन ने नया सीरम निकाला जिस को 'इएटीप्लेग इनाक्युलेशन आफ हाफकन्स Anti-plague-inoculation of Haffkins कहते हैं, यह सीरम (तत्व) वास्तव में प्लेग के मृत कृमियों का जौहर है जो ट्यूबज़ में बन्द होकर आता है। अब बम्बई लबारेटरी (रसायन शाला) में भी तय्यार किया जाता है। इन लोगों की अन्तिम सम्मति यह है कि इस टीका से रोग निर्मूल नहीं होता कुछ २ रक्षा होती है। जिन लोगों को यह टीका लगाया जाता है उन में से कई तो रोग में ग्रस्त नहीं होते, जो रोग ग्रस्त होते हैं उन में से मृत्यु संख्या थोड़ी होती है॥

(२) हमने आप के सन्मुख प्लेग सीरम (तत्व) का कुछ वर्णन किया है। यह सीरम प्लेग के सूक्ष्म तर घातक कृमियों का बना हुआ है। ये कृमि क्या हैं और कहां पाये जाते हैं और इन का पालन कैसे होता है इन प्रश्नों का उत्तर आप के आगे रखना अत्यावश्यक है इस लिये हम प्रथम साधारणतया ये उत्तर देते हैं;

(१) ये प्लेग (माहमारी) के कृमि हैं।

(२) चूहों के पिसुओं में पाये जाते हैं।

(३) इन का पालन चूहों के रुधिर से होता है।

अब हम इन तीनों प्रकारके उत्तरों को कुछ विस्तारसे वर्णन करना उपयोगी समझ कर अलग२ लिखते हैं ताकि हमारे पाठक महाशयों को कुछ अधिक लाभ हो।

(१) बेसीलस पैस्टस-Bacillus pestis प्लेग वैसीलाई।
(प्लेग कृमि)

प्लेग का कृमि अत्यंत सूक्ष्मतर वानस्पतिक कृमि है जिस की आकृति रेत घड़ी के प्रकार की होती है (?) यदि इन की एक इञ्च लम्बी लाइन बनाई जाय तो १६००० हज़ार कृमियों से बनती है। ये कृमि भी दूसरे प्रकार के कृमियों की भान्ति विभक्त हो कर अपनी वृद्धि करते हैं अर्थात् एक कृमि पूर्णता को प्राप्त हो कर अपने मध्य भाग से दो टुकड़े हो जाता है इसी प्रकार दो से चार और चार से आठ और आठ से सोलह ऐसे घण्टों में लाखों की संख्या तक पहुँच जाते हैं। इससे पता लगाया जा सकता है कि यह कितनी सूक्ष्म और शीघ्रता से वृद्धि करने वाली स्थिति है।

प्लेग के कृमि न तो स्वयं अपने स्थान से हिल सकते हैं और न ही इन में गति करने की शक्ति होती है। जीवित शरीर के रुधिर के विना ये वायु में अधिक काल तक जीवित नहीं रह सकते। हाँ जीवित शरीर के रुधिर के अन्दर बहुत काल तक अपनी संतति को जारी रख सकते हैं। और कई प्रकार के शरीरों में लगातार परिवर्तित किये जाने पर भी इनको प्लेग उत्पादिका (घातक) शक्ति में न्यूनता नहीं होती। किसी शरीर से बाहिर जहां वायु पहुँच सकती हो अधिक से अधिक २४ घंटे तक जीवित रह सकते हैं। साधारणतया इन का जीवन २-३ घण्टे से अधिक नहीं होता है। अर्थात् इन का काम जीवित संतति उत्पन्न करना ही है। इनका नियत स्वभाव जीवित रहना और संतति उत्पन्न करना है। संतति उत्पन्न करना ही इनकी मृत्यु है।

अगर इन के जीवन काल में घातक उपाय न किये जावें तो यह कृमि रुधिर में प्रविष्ट होते ही बहुत ही शीघ्र क्रोड़ों अरबों की संख्या में बढ़ जाते हैं।

ये कृमि स्वयं किसी शरीर में प्रविष्ट नहीं हो सकते और न ही निरोग्य त्वचा में से होते हुए रुधिर में प्रवेश करने को इन में शक्ति होती है। अगर ये कृमि शरीर पर अपना मल त्याग करदें या मृत हो कर जब गलते हैं तो एक विशेष प्रकार का विष उत्पन्न होता है जो शरीर के प्रबन्ध को छिन्न भिन्न कर देता है। इस से ज्वर-शिर पीड़ा-अशान्ति-पिपासा आदि उत्पन्न हो जाते हैं।

शारीरिक ग्रन्थियों में शोथ का हो जाना उस शारीरिक युद्ध का फल है जो हर एक विजातीय वस्तु के शरीर में प्रविष्ट होने पर उस को शरीर से निकाल देने पर स्वयं स्वभाविक रूपसे होता रहता है।

(२) (चूहा—Rat)

इस की सब से बड़ी दो जातियां हैं। एक घरों में रहने वाली और दूसरी खेतों में रहने वाली कईवार खेतों के चूहे घरों में और घरों के चूहे अन्न के पकने पर खेतों में रहने लगते हैं। मनुष्य में प्लेग फैलाने का कारण ये घरेलू चूहे ही हैं। ये बहुधा मकानों की छतों, सन्दूकों के पीछे व नीचे अलमारियों के अन्दर तथा अन्धेरे में रहते हैं और वहीं पर बच्चे देते हैं। एक चूहा दो मास में युवा हो जाता है। एक वर्ष में वृद्ध। चूही बारा मास ही बच्चे देती है और एक बार पांच बच्चे होते हैं। अर्थात् एक जोड़ा चूहा एक वर्ष में अस्सी जोड़े उत्पन्न कर सकता है। चूहा स्वभाविक प्रकाश से घबराता है। जहां ये बहुत बढ़ जाते हैं वहां पर मनुष्यों से भी नहीं डरते।

चूहे बहुत साहसी, काम को बिगाड़ने वाले और चतुर होते हैं। विषैली गोलियों और पिञ्जरों आदि से थोड़े काल में भिज्ञ हो कर उन से बचने लगते हैं।

यह बात देखने में बहुधा आई है कि जितने मनुष्य जिस स्थान पर रहते हैं इससे दुगनी संख्या से अधिक चूहे वहां पाये जाते हैं।

मनुष्यों में प्लेग प्रकट होने से एक या दो सप्ताह पूर्व चूहों में प्लेग प्रकट होती है। चूहों में इस रोग के प्रकट होने से एक या दो सप्ताह पीछे मनुष्यों में फैल जाती है। चूहे अपने बिलों में बहुत मरते हैं बाहिर निकल कर थोड़े मरते हैं बहुधा निरोगी चूहे रोगी चूहों को छोड़ कर ऐसे स्थानों में चले जाते हैं जहां पर अभी यह रोग नहीं पहुंचा तथापि इस रोग का आरम्भ इन के रुधिर में ही होता है। (क्रमशः)

ग्राहकों से निवेदन

"आर्य" के ग्राहक महानुभावों से निवेदन है कि वे "आर्य कार्यालय" के साथ पत्र व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक-संख्या अवश्य लिखा करें अन्यथा विलम्ब से उत्तर मिलने पर उनकी कोई शिकायत नहीं सुनी जाएगी।

निवेदक—
व्यवस्थापक
"आर्य"

(बड़प्पन)

(ले० श्रीयुत प० मुक्तिराम जी उपाध्याय)

प्राची दिशा में देख उषा की रंगीली छटा
काली घटा ने आप लाली अपनाई है।
हरे हरे तरुवर बने हैं लाल लाल सारे
देखलो हिमालय ने चद्दर रंगाई है।
मुर्गे ओ हो हो और वाह वाह चिड़ियां करें
उठ उठ मधुर सब ने गीतिका सुनाई है।
राम ! गुण गावें अपनावें लोग कर्म जिन के
वे ही बड़े हैं बड़ी उनकी बड़ाई है। १।

खेत में गिराये और मिट्टी में मिलाये गये
डाल डाल खाद और नीर फिर सड़ाये हैं।
धूप से तपाये उगे, पशुओं से खाये गये
काट काट छांट छांट माली ने बढ़ाये हैं।
अब हम बढ़े तो दाढ़ी पकड़ लोग झूलन लगे
काट देह काढ दूध दवा हेतु, धाये हैं।
राम की सौगन्ध बड़ा बनना कठिन यारो
तब हम बड़े पेड़ बड़ के कहाये हैं। २।

टुकड़े कर देखो डाल पानी में निकालें खाल
चक्की में पीस दाल पिट्ठी बनाते हैं।
आग फिर जलाय तेल लेते तपाय और—
टिकियां बनाय उन्हें खूब ही पकाते हैं।
फिर भी निकाल उन्हें खट्टे दही में डाल
घाव प मिरच लाल, सांभर लगाते हैं।
राम ? है नहीं खेल इतनी विपत् झेल
तब ये उड़द बड़े लोक में कहाते हैं। ३।

दम में दयालुता और धीरता में वीरता का

शम में समानता का मेल कर डालिये।
प्रेम से प्रवीणता अरु वाणी से मधुरता को
सत्यता को ज्ञान से बस दूर मत टालिये।
छोड़ अधिकार के विकार को सुधार करो
चोखे विचार धार ओछे निकालिये।
राम! फिर बड़प्पन से छप्पन हज़ार आन
चरणों में धमकेंगे जैसे दिवालिये। ४।

———

स्वर्ग-संलाप

उपदेश

(ले०—श्रीयुत कविराज हेमराज वैद्य एम० ए० एम० लाहौर)

भर्ता देवो गुरुर्भर्ता धर्म्म तीर्थ व्रतानिच।
तस्मात् सर्वं परित्यज्य पतिमेकं भजेत्सती॥

सती साध्वी स्त्री का देवता, हर प्रकार के सुखों के साधनों को प्रकाशित करने वाला स्वामी देव है। तथा सब से बड़ा पूजा का पात्र व सम्पूर्ण पवित्र जीवन का उपदेष्टा गुरु भर्तादेव है। सब प्रकार के कर्तव्य कर्म्म जिन्हें धर्म्म जानकर किया जाता है वह भी भर्ता ही है। स्त्री का पवित्र परोपकारी धीर्य्यशाली बीरता संपन्न आदि उत्तम व श्रेष्ठतर जीवन के अवतीरण करने वाले जो तीर्थ हैं वह भी कन्ता देव ही है। निज व अपनी संतान वा सर्व जगत् के उपकारार्थ जीवन को बनाने के लिये जिन कठिन से कठिनतर साधन के धारण करने के लिये व्रतों को धारण किया जाता है इन सब से अधिकतर व्रत केवल मात्र प्राणाधार भर्ता ही है। जो स्त्रियें देवी देवताओं की पूजा करती फिरती हैं, लुण्डे मुण्डे साधु संतों को गुरु बनाकर उन से मंत्र लेती रहती हैं, कई प्रकार के मत मतान्त्रों में प्रविष्ट होने को उत्तम समझती हैं, हरिद्वार, प्रयागराज, काशी आदि तीर्थों की यात्रा व स्नान को मुक्ति के देने वाले जानकर भटकती रहती हैं, और कई २ दिन अन्न जल के बिना निराधार उपवासों को करती हैं यह उनका सब कुछ व्यर्थ है। इसलिये इन सब का त्याग करके स्त्री को केवल मात्र एक पति को ही सब कुछ समझना चाहिये।

हमारी प्यारी बहिनो ! पुत्रियो ! और माताओ ! शास्त्र के इस उपदेश में पति महिमा कितनी भारी वर्णन की गई है। पति की इतनी महिमा केवल मात्र बढ़ा कर ही नहीं की गई वास्तव में स्त्री का सर्वस्व पति ही है। पति का आधा शरीर स्त्री है। इसी हेतु से भारतवर्ष सदा संसार भर में पवित्र व उच्चस्थानी रहा है। भारतवर्ष की स्त्रियां सच्चे हृदय से निज पतिदेव को अपने प्राणों का आधार मृत्यु पर्य्यन्त समझती रही हैं और आजकल भी समझती हैं। इसी गौरव से आजकल की नई रोशनी के दिनों में जब यूरोपदेश की सभ्यता ने अवस्था को बहुत कुछ बिगाड़ दिया है तो भी आर्य्य स्त्रियां भारत के मुख को अपने पवित्र जीवनों से उज्ज्वल कर रही हैं।

जहाँ हम देखते हैं यूरोप, अमेरिका आदि ऐसे देशों में जहां सभ्यता का संपूर्ण राज्य अपने पूर्ण यौवन में उपस्थित माना जाता है वहां की महिलाएं छोटी२ बातों के कारण पति का त्याग कर देती हैं। कोई स्त्री पति के शिर के बालों को पसंद न करने से; कोई पति के वस्त्रों को अपनी इच्छा के अनुकूल न जान कर, कोई अधिक हंसने खेलने आदि के कारण छोड़ देती हैं। ऐसे २ अनेक विचित्र कारणों से पतियों का त्याग करती हैं जिन को भारत जननियें सुन २ कर हंसती हैं और इन लोगों की सभ्यता को पाश्विक सभ्यता समझती हैं नहीं २ पशुओं में भी जो सच्चा प्रेम होता है वह भी कुछ काल तक रहता है इनका पति पत्नी संबन्ध इतना काल भी नहीं रहता अभी थोड़े दिन की घटना है यूरोप देश के किसी स्थान पर एक विवाह हुआ जो दो तीन घंटों में होकर टूट भी गया। यह घटना ऐसे हुई।

एक धनिक पुरुष ने सैर करते समय एक महिला को देखा-देखते ही मोहित हो गया। उस स्त्री से विवाह की इच्छा प्रगट की जो उसने स्वीकार कर ली। दोनों गिरजा में पादरी के पास गए। पादरी ने दोनों का विवाह कर दिया। पति ने निजमित्रों को बहुत भारी ज़ियाफत दी और प्रसन्नता से स्त्री को मोटर में बैठा कर चल दिया। अभी थोड़ी दूर ही गया था कि उसके चित्त की अवस्था बिगड़ गई। उसने घर जाने के स्थान में नौकर को हुक्म दिया "मोटर अदालत में ले चलो" साथ ही उस स्त्री से कहा कि "इतने थोड़े काल में मुझे तुम्हारी चेष्टाएं नहीं भाई हैं इस लिये मैं तुझे अभी तलाक देता हूँ।" दोनों जज्ज के सम्मुख गये और तलाक स्वीकार करवा कर अपने २ घरों को चले गये। यह सब लीला दो तीन घंटों में समाप्त हो गई।

प्यारी पाठिकाओ ! यह है, आज कल के सभ्यता के ठेकेदारों की सभ्यता !!! भारत में पति पत्नी का सम्बन्ध विवाह काल से मृत्यु पर्य्यन्त एक रस बना रहता है। भारत की स्त्रियें पति की सेवा हर एक अवस्था में करना पुण्य कार्य्य समझती हैं। निपट-मूर्ख-निर्धन, रुग्न पति को भी सर्व प्रकार से प्रसन्न रखना अपना मुख्य कर्त्तव्य जानने वाली यदि कोई स्त्री जाति है तो वह भारत की ही है, देवियो ! अपने इस शुभ गुण को बनाये रक्खो जो विदेशी सभ्यता से इस में कुछ २ दोष आने लगा है उस का निराकरण करो और उपरोक्त श्लोक के अनुसार अपना जीवन बनाओ ताकि संसार भर में आप का मान बना रहे ॥

जापान के एक कपड़ा बनाने के कारखाने में एक पुरुष की घड़ी खोई गई। इस पर वहां के अध्यक्ष ने ३०० स्त्रियों की जो कि उस करखाने में नौकर थीं तलाशी ली। स्त्रियों ने इस अपमान और अन्याय के प्रति अपना असन्तोष प्रकट करने के लिये एकदम काम छोड़ दिया और यह निश्चय किया कि जब तक उन से क्षमा न मांगी जाएगी वे काम पर न जाएँगी।

इंगलैण्ड में इस वर्ष १०७ बैरिस्टर नए बने जिन में से ६ स्त्रियाँ हैं। इन में कुमारी बैन हैगे लाइर्न बर्मा निवासिन हैं।

लड़की के बेष में लड़का
४०० देकर विवाह

कराची के एक स्थानीय पत्र में प्रकाशित हुआ है कि एक बनिया अपनी शादी करना चाहता था। एक मारवाड़ी ने जब यह सुना तब अपने लड़के को लड़कियों जैसे कपड़े पहना कर एक बाबा की मारफत ५००) लेकर उस बनिए के साथ व्याह दिया। दलाली में १००) बाबा ने लिए और मारवाड़ी को ४००) मिले। लड़के को कह दिया गया था कि मौका मिलते ही वह भाग आवे पर बनिये ने हुश्यारी रखी और लड़का भाग नहीं सका। भेद खुलने पर अपने पड़ोसियों को साथ लेकर बनियां अपने सुसरालवालों की खोज में निकला। उन से किसी तरह ४००) तो वसूल हो गए परन्तु बाबा जी का कोई पता नहीं चला।

कन्याओं को यूनिवर्सिटी शिक्षा मत दो

(डा० मुथू की सम्मति)

डा० सी० मुथू एक अनुभवी भारतीय डाक्टर हैं । आप क्षय रोग के विशेषज्ञ हैं । आप प्रायः भारत के बाहर ही रहा करते हैं किन्तु कभी २ मातृभूमि के दर्शनार्थ भारत में आ जाया करते हैं। हाल ही में आप ने राजरोग की वृद्धि का कारण बतलाते हुए लिखा है कि यहां की स्त्रियाँ पश्चिमी ढंग से शिक्षा पा कर किताबी कीड़े बनती जाती हैं। पढ़ने लिखने में अपनी सारी शक्ति खर्च कर स्वास्थ्य खराब कर लेती हैं। फल स्वरूप इन के बच्चे गर्भ से ही क्षय रोग ले कर पैदा होते हैं। आप के मत से पुराने ख्याल की समझदार कन्या आधुनिक शिक्षा प्राप्त कन्या से कहीं अच्छी है क्योंकि उस में वर्तमान शिक्षा प्रणाली के घातक प्रभाव—ताश, जुआ सिगरेट, स्वारी आदि नहीं पड़ते। आप ने एक पत्र के प्रतिनिधि से कहा था कि आज कल की शिक्षिता स्त्रियों की मृत्यु संख्या बढ़ती जा रही है। इस के रोकने का उपाय पुराने विचारों का प्रचार ही है। तथा जब तक गृहस्थ न सुधरेंगे तब तक स्वराज्य-प्राप्ति आकाश पुष्प मात्र ही समझनी चाहिये ॥

झोली

खांड के पेड़

ब्रिटिश कोलम्बिया में अनेक ऐसे पेड़ हैं कि जिन से खांड प्राप्त होती है। यद्यपि वहां के आदिम निवासियों को इन पेड़ों का ज्ञान चिरकाल से था, परन्तु ब्रिटिश कोलम्बिया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डेविडसन ने अभी २ इन खांड के भण्डारों का पता लगाया है।

ये वृक्ष एक प्रकार के देवदारु (दयार) हैं जोकि खांड से लदे हुए ऐसे प्रतीत होते हैं मानो बरफ से ढँपे हुए हों ।

वृक्ष के तनों पर खांड छोटे २ बिन्दुओं के रूप में बनती है परन्तु शाखाओं के संगम स्थान पर यह बड़ी भारी मात्रा में एकत्र हो जाती है। दुर्भाग्य वश यह खांड इतनी मात्रा में नहीं मिलती कि घर के काम आसके। परन्तु इस में एक

ऐसा 'खाँडीय' द्रव्य मिलता है जो कितने ही रोगों में बड़े काम आता है इस का मूल्य ४००, रुपय प्रति सेर के लग भग है।

चाय

धीरे २ भारतीयों में चाय का व्यवहार बहुत बढ़ता जा रहा है। वास्तव में आज चाय ने मधुपर्क का स्थान ले लिया है। चाय का इतिहास तथा इस के गुणदोष जानना आवश्यक है।

चाय का रिवाज पहले चीन में था। ईसा के २७०० वर्ष पूर्व चीन में चाय का पानी की तरह व्यवहार होता था। चाय का प्रचार कैसे हुआ इस विषय में एक बहुत पुरानी कहानी प्रचलित है। "एक बौद्ध भिक्षु सिद्धि लाभ की आशा से भारतवर्ष से लेकर चीन तक परिभ्रमण करते थे। प्रार्थना और उपासना में अनेक निद्राविहीन रात्रियां बीतीं; पर अन्त में थकावट के कारण नींद आ ही गई। उनकी साधना में नींद के कारण अनिष्ट हुआ उसी समय उन्हों ने दोनों आंखों की पलकें काट कर फैंक दीं। जिस स्थान पर वे पलकें गिरीं वहां दो ताजे पौदे निकल आए—इन्हीं पौदों की पत्ती को जल में सिद्धकर सूंघने और पीने से नींद नहीं आती। इसी पौदे को चीनी लोग टे" अर्थात् चाय कहते हैं।

सन् १६०० ई० में जब अङ्गरेज भारत में आए उस समय आसाम में चाय होती थी। भारतवर्ष के बाज़ारों में चाय सन् ८१३ ई० में आई। यह चाय जापान और चीन से आती थी इस के बाद देखा गया कि यदि भारतवर्ष में चाय की खेती की जाए तो चीन और जापान को जो रुपया दिया जाता है वह बच जाए। उसी समय अंग्रेज़ों ने भी चाय पीना सीखा। सन् १८२४ ई० में ब्रूस साहब और उनके छोटे भाई आसाम से चाय के बीज ले आए बहुत रुपया खर्च करके चीन से चाय की खेती सिखलाने के लिए चीनी मज़दूर भी आए। उस समय तो चाय के गुणदोष कुछ भी मालूम नहीं थे। चाय के पीने में ही सुख था।

सन् १८३६ ई० में आसाम से विस्तृत भूमि लेकर "आसाम टी कम्पनी" की स्थापना हुई। इस के बाद सन् १८६० में चाय की खेती विशाल रूप से प्रारम्भ हुई और उसी समय से चाय के सम्बन्ध में गम्भीर गवेषणा भी शुरू हुई। धीरे२ चाय की सस्ती के साथ उस का घर घर में प्रचार भी बढ़ने लगा।

भारत सरीखे उष्ण प्रधान प्रदेश के निवासियों के लिए चाय का प्रयोग कैसा है; इस विषय में एक डाक्टर की निम्न सम्मति है:—

(१) चाय या काफी किसी दशा में हितकर नहीं। शरीर के लिए आवश्यक पोषक द्रव्यों का तो उस में लवमात्र भी नहीं। हाँ दूध और शक्कर जो इन्हें स्वादिष्ट बनाने के लिये मिलाए जाते हैं अलबत्ते शरीर पोषक हैं।

(२) चाय या काफी विषैले पदार्थ हैं अफीम, शराब और तम्बाकू की तरह एक बार इन का अभ्यास पड़ा कि फिर इन से कभी छुटकारा पाने की आशा नहीं। चाय या काफी के व्यसनी को जब तक चाय अथवा काफी न मिले तब तक उसे कल नहीं पड़ती और न किसी काम में मन ही लगता है।

(३) चाय या काफी कोई मामूली पेय पदार्थ नहीं। वे बड़ी प्रबल औषध हैं। हृदय, स्नायु दिमाग और पचनेन्द्रियों पर इन का बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। ये दोनों चीज़ें मादक हैं। मादक द्रव्य उत्तेजक होते हैं उन का प्रयोग किसी अवस्था में भी लाभकारक नहीं है। जो अपने आप को किसी काम के योग्य रखना चाहते हैं, जो अपनी मनोवृत्तियों को विकसित करना चाहते हैं उन्हें भूल कर भी चाय और काफी न पीना चाहिए।

(४) काफी के सेवन से मन्दाग्नि और विशेष कर स्नायु संबन्धी मन्दाग्नि हुए बिना नहीं रहती। स्नायु संबन्धी मन्दाग्नि को दूर करना साधारण काम नहीं है।

(५) चाय और काफी पीने वाले के सिर और पेट में दर्द हुआ करता है। हाँ, काफी और चाय से तात्कालिक उत्तेजना होती अवश्य है, परन्तु उस के बदले हमारे स्नायु और मस्तिष्क तन्तु ज्ञान शून्य हो जाते हैं।

ऋग्वेद में ओ३म् शब्द है।

ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आगत।

दाश्वांसो दाशुषः सुतम्॥ ऋग् म. ७ सूक्त ३ मं १.॥

इस मन्त्र का अर्थ यह है:—

विश्वे देवासः हे सकल विद्वानो

दाशुषः—सत्कार करने वाले मेरे गृह पर

सुतम्:—सोम रसयुक्त विविध प्रकार के पदार्थों को ग्रहण करने के लिए।

आगतः—(आप लोग कृपा करके) आवें (आप किस प्रकार के हैं)

ओमासः—ओम् ब्रह्म के निकट में आसः—बैठने वाले हैं अर्थात् ब्रह्म के तत्त्व को जानने वाले हैं पुनः चर्षणी धृतः—प्रजाओं को पोषण करने वाले हैं॥

क्रम के लिए पृष्ठ ४६ देखें

सम्पादकीय

अफ्रीका में प० बुद्धदेव

अफ्रीका ने प० बुद्धदेव को, प० बुद्धदेव ने अफ्रीका को वर लिया प्रतीत होता है। नैरोबी में आप का स्वागत बड़ी सजधज से हुआ। आपने व्याख्यानों की जनता पर मोहिनी बरसाई। स्वयं रोए और जनता को रुलाया। वेदना व्याख्यान दाता का जादू है और यहां सिरसे पैर तक वेदना हैं। एक विशेष सफलता, जिस का सेहरा आप ही के सिर है, वहाँ के समस्त दलों का एकीकरण है। पण्डित जी अपने पत्र में लिखते हैं:—'पुराने झगड़े इतिहास का रूप धारण कर चुके हैं'। भाई २ कब तक रुष्ट रह सकते थे। हमें तो उस रोष में भी प्यार की झाँकी होती थी। वह प्रेम का एक रंग था, यह दूसरा है। परमात्मा करे, यह रंग जमा रहे।

पण्डित जी आजकल दो कार्यों में विशेष शक्ति लगा रहे हैं—एक गुरुकुल की स्थापना, दूसरे वेद प्रचार निधि की आयोजना। दो हाथ हैं तो कार्य भी दो ही करेंगे। पण्डित जी से इससे अधिक भी संभव है। आपने लिखा है, 'यह पत्र पहुँचते तक भूमि का सौदा होलेगा।'

हम दूध के जलों को इस छाछ में भी सेंक प्रतीत होता है। विवश हैं, शीघ्र विश्वास नहीं करते। यहां मुख तक आई मिठाई छिन जाती रही है। हमारा संकेत हरद्वार गुरुकुल की ओर है। हां! अफ्रीका की बात और है। फिर नई वरयात्रा के स्वप्न सुहाने हैं। ईश्वर यह मिठास चिरस्थायी रखें।

नैरोबी के सौभाग्य पर शेष अफ्रीका को तो ईर्षा होती ही होगी, हमें भी होती है। बाट जोहती आँखों के तारे! कौन भावुक तेरा मतवाला नहीं? सब को तृप्त कर। हमें भी। और नहीं, लेखों द्वारा, कविताओं द्वारा।

श्री स्वा० वेदानन्द और प० भगवद्दत्त

कुछ समय से परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाश्यमान अष्टाध्यायी-भाष्य के संबन्ध में श्री स्वा० वेदानन्द जी तथा प० भगवद्दत्त जी में विवाद चल रहा है। स्वामी जी के लेख 'आर्य' में और पण्डित जी के 'आर्य जगत् में छपते रहे हैं। स्वामी जी का पक्ष है कि यह भाष्य ऋषिकृत नहीं। इस में उन्हों ने युक्तियां दी हैं। प० भगवद्दत्त जी ने इन का उत्तर क्या दिया है, इस पर हमें कुछ नहीं लिखना। 'आर्य जगत् की १ अक्तबर की संख्या

पूर्व सारी संख्याओं को मात कर गई है। 'जगत्' के संपादक महाशय भी जो अपने आप को 'पण्डित भगवद्दत्त के सहकारी संपादक' लिखते हैं, कभी २ संपादकीय टिप्पणियों में पण्डित जी की कमी पूरी कर देते हैं। अपने अन्तिम लेख में तो पण्डित जी ने केवल पुष्प वर्षा ही की है। संन्यासी को 'मुण्डी', 'कुटीचक' लिखने में अपना गौरव समझा है। किसी को अपनी युक्ति के बल से अपण्डित सिद्ध करना तो हमारी समझ में भी आता है, कुवाक्यों से अपना ही मुँह बिगड़ता है। किसी का क्या जाता है? लेखनीका मुँह पहिले ही काला होता है। लेखक अपने मुख को बचाए रखे, तो इस में उस की शोभा है, अस्तु। स्वामी जी से हम प्रार्थना करते हैं कि अब इस प्रसंग को यहीं रहने दें। उन्हों ने अपना कर्तव्य पूरा किया। शेष उत्तरदातृत्व परोपकारिणी का है। पुस्तक का मुद्रण अभी स्थगित हो जाना अच्छा है। विद्वानों की सम्मति लेकर आगे कार्य चलाना चाहिये।

वर्तमान अफ़ग़ानिस्तान

महा० जी. के. नरीमान एक पारसी भारतीय हैं जिन का नाम भारत के राजनैतिक घटना-चक्र से परिचित लोग जानते ही होंगे। आप अफ़गानिस्तान से अभी लौटे हैं। वहां के जश्न-इस्तिकलाल अर्थात् स्वाधीनतोत्सव में सम्मिलित होने गए थे। आप ने साप्ताहिक 'पीपल' में एक लेख प्रकाशित कराया है जिस के अन्त में उन्होंने यह विचार प्रकट किया है कि यदि बीस वर्ष और शान्ति पूर्वक कार्य करने का अवसर रहा तो अफ़गानिस्तान के अमीर महाशय हमारे अफ़गान भाइयों को हम से अधिक सुसंस्कृत और सहनशील बना लेंगे। आपने स्वयं देखा कि अफ़गानिस्तान से परदा धीरे २ उड़ रहा है। बहु विवाह की प्रथा का नीति पूर्वक निरोध किया जा रहा है। स्वयं अमीर की एक पत्नी है। ईद के दिन शाही मसजिद में बाजा बजता है। यह बात भारत के मुसल्मानों के विशेष ध्यान देने की है। जिन छात्रों को शिक्षार्थ यूरोप भेजा गया है, उन में कुछ हिन्दू भी हैं। पुराने बौद्ध चित्रों तथा मूर्तियों की रक्षा स्वयं मुसलमान सरकार कर रही है।

टर्की के पीछे अफ़गानिस्तान की नैतिक उन्नति के वृत्तान्त उत्साहजनक हैं। यदि इन समाचारों से भारतीय मुसल्मानों की भी आँख खुल जाए तो जानो भारत के भाग्य जागे।

प्रयाग राज में रामलीला का निरोध

जहां अफ़गानिस्तान की प्रगति इतनी सन्तोष-जनक है, वहां अपने भारतवर्ष का क्या हाल है? और तो और, प्रयाग राज में रामलीला की यात्रा पर बन्धन लगाने की चेष्टा की गई है। क्यों? वही

मसजिद के आगे बाजे का हौवा। श्री मदनमोहन मालवीय के सभापतित्व में प्रतिवाद प्रस्ताव पास हुआ। गवर्नर महोदय को तार दिया। उत्तर आया कि इस से पूर्व भी बन्धन रहा है। यात्रा का समय-विभाग ही ऐसा होता था कि मसजिद के आगे बाजा न आए। इस अज्ञात बन्धन की बात पर कौन विश्वास कर सकता है? अज्ञात को अज्ञात ही रहने देते। मसजिद के लिए बाजा एक भयानक स्वप्न है—यह समाचार ही बहुत पुराना नहीं। भारत के बाहर इस हौवे का प्रभाव ही नहीं पहुंचा। तो बन्धन क्या सरकार की त्रिकालज्ञता का परिणाम था? वाइसराय महोदय को तार दिया है। उन्हें स्मरण कराया है कि आप तो किसी समुदाय के उचित अधिकारों पर शान्ति-स्थापना के मिष से भी बलात्कार किये जाने के विरोधी हैं। लीजिये यहां स्पष्ट अत्याचार होरहा है। और नहीं, अपने वक्तृत्व का ही मान रखिये। आर्य जनता ने इस वर्ष त्यौहार मनाना स्थगित किया है। अधिकार-प्राप्ति का यह रास्ता नहीं। रास्ता एक ही है। देर में ग्रहण करो तो। अभी करो तो। वाइसराय का द्वार भी खटखटा लो। जातीय त्यौहारों का लाइसेंस अपने मन से ही लेना होगा। साहस है? कर डालो। नहीं है तो कोई और अनुज्ञा देने से रहा।

श्री प० धर्मभिक्षु जी का व्याख्यान-निरोध

नारोवाल के उत्सव में श्री प० धर्म भिक्षु जी पधारे। मैजिस्ट्रेट ने उन के व्याख्यान पर बन्धन यह लगाया कि इस में अन्य मतों के सम्बन्ध में कुछ न कहा जाय, क्योंकि १९२४ में भी पंडित जी नारोवाल पधारे थे और उस समय मुहम्मद साहब को 'गालियां' दी थीं। स्पष्ट शब्दों में यह क्यों न कह दिया कि इसलाम पर टिप्पण न करें? अन्य मतों से और अभिप्राय क्या? आज मुसल्मान सरकार की चहेती बीबी बन रहे हैं। उन्हें ख़ुश कर भारतीय राष्ट्रवादियों को नीचा दिखाना अभीष्ट है। समझ में नहीं आता कि जब मुहम्मद साहब का जीवन इतना मृदु है कि किसी उपदेशक की गर्म आलोचना मात्र से कुम्हला जाता है तो हमारे मुसल्मान भाई उसे घरेलू चर्चा की डब्बी ही में बन्द क्यों नहीं कर रखते? समालोचना के वायु मण्डल से बचाना उस की निर्बलता की स्वयं घोषणा करना है। जो बात प० धर्म भिक्षु के लाख व्याख्यानों से न हो, मुसल्मानों की असहन-शीलता से सहसा हो जाती है। बुद्धिमान् भांप लेते हैं, दाल में कुछ काला है। पण्डित जी इस अपमान-जनक बन्धन के साथ व्याख्यान क्योंकर दे सकते थे? अब मामला अकेले इस या उस व्याख्यान का नहीं रहा। सरकार की सारी नीति ही आर्य समाज के सम्बन्ध में असन्तोषकारिणी है। सरकार जितनी नई ठेसें लगायगी, उतना आर्य जनता सार्वदेशिक सभा द्वारा आदिष्ट [illegible]-त्याग के लिये

अधिक कटिबद्ध होगी। जनता को अभी आत्मसंयम से काम लेना चाहिये। हां! जब नेताओं का बुलावा आए, तो आव ताव देखे बिना आग में कूद जाना चाहिए। धर्म की अमरता का मार्ग यही है, सीता के सतीत्व की सिद्धि यही है—अग्निप्रवेश।

'रँगीला रसूल' और 'विचित्र जीवन'

पंजाब में 'रँगीलारसूल' के अभियोग को दो वर्ष से अधिक हो गये। अब संयुक्त प्रान्त में 'विचित्र जीवन' के अभियोग ने दो 'रँगीले रसूल' कर दिये हैं। इन अभियोगों से सरकारने इसलाम को लाभ पहुंचाया है अथवा हानि, यह देखना मुसलमानों का अपना काम है। 'रँगीलारसूल' ने मुहम्मद की जीवनी को परीक्षा की आँच पर रखा ही था। सरकार ने न्यायालय में उन कुत्सित घटनाओं को ला मानो उस कोमल विषय को लोक-समीक्षा की खुली भट्ठी में डाल दिया। प्रतीत यह होता है कि यद्यपि इस के विरुद्ध कभी २ धीमा २ प्रतिवाद भी हुआ है, परन्तु होश न गवर्नमेंट को आई है न मुसलमानों को। सरकार तो जो कर रही है, जानबूझ कर कर रही है, उसे आग सुलगाए रखनी है। हमारे मुसलमान भाइयों को सचेत होना चाहिये था। नहीं हुए, वे जानें।

हमें दो शब्द आर्य जनता से कहने हैं। संयुक्त प्रान्त की आ० प्र० नि० सभाने 'विचित्र जीवन' का अभियोग अपने हाथ में ले लिया है। पहिली ही पेशी में अनेक वकील कचहरी में पहुंचे। यू० पी० के पत्रों ने, वहां के नेताओं ने इस विषय में अपना उत्तरदातृत्व अनुभव किया है। अभियोग प० कालीचरण पर नहीं, आर्य समाज पर समझा गया है। यही वह नीतिज्ञता है जो सभाओं को जीवित रखती है, धर्मान्दोलनों को प्राण-रहित होने नहीं देती। पंजाब की स्थिति का यू० पी० की अवस्था से साम्मुख्य करते हैं तो लज्जा के मारे सिर झुक जाता है। अकेले म० राजपाल ने दो वर्ष जिस उत्साह और साहस से आर्य समाज के शत्रुओं का सामना किया है वह श्लाघ्य है। अभियोग चलाने वालों में से कई निजू रूप में म० राजपाल के मिलने जुलने वाले हैं। वह स्पष्ट कहते हैं—हमें राजपाल से वैर नहीं, 'मुहम्मद के निन्दक संप्रदाय' से है। उन्हें जिह्वा पर ताला लगाना है। किस की? इसलाम के समीक्षकों की। वह ताला चाहे राजपाल को दण्ड दिलाने से लगे चाहे किसी और को कारावास में डालने से। आर्य समाज को सोचना चाहिये—यह ताला लगवाना है या नहीं? अपने भुजबल से, धनबल से, जनबल से, धीरे २ गले का हार होते बन्धनों को तोड़ने ही में तो जीवन है।

समाज सचेत हो रहे हैं। यह अच्छा है। परन्तु कहीं सचेत होते २ ही रुग्ण को यमलोक न पहुंचाना। चिन्ह कुछ ऐसे ही है। धन भेजो, प्रस्तावों से क्या बनेगा?

मिलाप का मलार

तीन वर्ष से लाहौर आर्य समाज के उत्सव से मास दो मास पूर्व मिलाप का मलार गाया जाता है। वर्षाऋतु में कोयल पञ्चम स्वर में कू कू करती है। पपीहे पीहू २ कहते हैं। मेंडक जल के गढ़े के चारों ओर बैठे एक सुरताल से टर्राते हैं। सब ओर से मिलाप की ध्वनि सुनाई देती है। ऐसे समय आर्य समाज के क्षेत्र में संगठन का राग अलापा जाता है। हिन्दुओं से मिल रहे हो तो आर्य समाजियों से बैर क्यों है? भाई २ गले मिल जाओ। हम मिलाप के पक्षपाती हैं। मौसिमी मिलाप के नहीं—वास्तविक मिलाप के। वास्तविक मिलाप साधना चाहता है, गम्भीर मंत्रणा चाहता है, आचार विचार का सुधार चाहता है। मौसिमी मिलाप के लिये एक उत्सव का बलिदान पर्याप्त है। यह मौसिमी मिलाप भी यदि सारे प्रान्त की आवाज़ होता तो करने में इतनी हानि न थी। आर्य प्रतिनिधि सभा के गत अधिवेशन में एक प्रस्ताव द्वारा यह विषय विचारार्थ उपस्थित होने ही वाला था कि सभा के घोर विरोध की स्पष्ट संभावना को देख कर कई सज्जनों ने बीच में पड़ यह प्रस्ताव लौटवा दिया। इस में सब से अधिक अनुरोध श्रीराय रोशनलाल जीका था जो लाहौर आर्य समाज के प्रधान हैं। उन का प्रस्ताव था कि प्रान्त भर के कार्यकर्ताओं की रौंडटेबल कानफरेंस बुलाई जाए और उसमें भविष्य के लिये नीति निर्धारित हो। वह रौंडटेबल कांफरेंस अब तक नहीं हुई। कई कारणों से महात्मा दल की यह पुरानी नीति आ रही है कि कालेजी भाइयों के साथ मिल कर उत्सव नहीं करना। इस में प्रतिनिधिसभा का अक्तूबर १९१० का प्रस्ताव भी है। तद्यथा—

'सर्व सम्मति से निश्चय हुआ कि यह सभा जो इस सभा की संबन्धी समाजें हैं, उचित नहीं समझती कि कालेज पार्टी की जो समाजें हैं, उन के साथ मिल कर अपने वार्षिकोत्सव करें।.....'

लाहौर आर्य समाज का इस नीति को उल्लंघन करना सामाजिक नियमन्त्रणा का तिरस्कार है। लाहौर के भाई इधर तो यह दावा करते हैं कि उन का वार्षिक उत्सव प्रान्त भर का उत्सव है, उधर उस के मनाने की प्रणाली में एक मौलिक परिवर्त्तन करते हुए प्रान्त भर की आवाज़ की खुली अवहेलना करते हैं। क्या इसलिये कि नियमानुसार उन्हें इस उत्सव के आन्तरिक प्रबंन्ध का अनवच्छिन्न अधिकार है? स्मरण रखना चाहिये कि अधिकार कर्तव्य पालन के साधन होते हैं। लाहौर आर्य समाज के अधिकारियों का प्रान्त की ओर—यदि उनका वार्षिक मेला प्रान्तीय-उत्सव है तो—उत्तरदातृत्व है। तमाशा यह है कि सार्व-प्रान्तिक कार्य कार्ताओं की भी उतनी ही उपेक्षा हो रही है जितनी प्रान्तभर की आर्य जनता की।

लाहौर के अधिकारी महानुभाव कह सकते हैं कि नियमोपनियमों के अनुसार किसी वाह्य मनुष्य की मन्त्रणा लेने के लिये वे बाधित नहीं। उपनियमों में तो किसी वाह्य मनुष्य को, जिसे अधिकारी चाहें, सम्मति के लिये बुलाने का विधान है ही। नियमों का इतना कड़ा और संकुचित प्रयोग करना कि एक दो सम्मतियों के अधिकार के बल पर अपनी सर्वजन—विरोधिनी नीति को कार्य में ला ही कर छोड़ना नियमों पर भी अत्याचार है और सार्वजनिक संगठन पर भी बलात्कार। हमें स्मरण है कि इस मौसिमी मिलाप के प्रथम वर्ष समाज के प्रधान तथा मन्त्री महाशयों ने उपदेशक सभा को वचन दिया था कि आगे इस विषय का निश्चय करने से पूर्व उपदेशकों की सलाह ली जायगी। वर्तमान अधिकारियों ने अपने से पूर्व कार्य कर्त्ताओं के वचन की रत्ती भर पर्वा नहीं की, स्यात् इस लिये कि उपनियमों के अनुसार वे इस के लिये भी बाधित नहीं। यदि यह नीति राज्यों के व्यवहारों में वर्त्ती जाने लगे तो कोई राज्य एक दिन के लिये आगे न चल सके। व्यवस्थापक सभाओं की साख इसी में है कि वे अपने अधिकारियों के दिये वचनों का पालन करें। वे अधिकारी अब अधिकार पर हों या न।

हमारी समझ में लाहौर आर्य समाज अनीतियों पर तुला प्रतीत होता है। इन अनीतियों का फल स्पष्ट है। प्रान्त की जनता लाहौर के उत्सव से विमुख हो रही है। और मिलाप भी क्या है कि तीन दिन इकट्ठी सभाएं कर—जहां हम जानते हैं कि हमारी उन की रीति—नीति में आकाश पाताल का भेद है—फिर उत्सव का प्रधान भाग अलग २ जा मनाना? इस से किसी के विचार में हृदयों को एक किया जा सकता है तो वह भले ही उन्हें एक कर लिया करे। मिलाप होता हवाता नहीं। हां! अपने रंग में भंग हो जाता है। न जाने लाहौर के अधिकारी इस मुफ्त की आत्म—हानि में क्या लाभ समझते हैं?

विस्तीर्ण दृष्टि-बिन्दु

यह हुई लाहौर समाज की अनियन्त्रणा indiscipline को बात। हम इस की पर्वा न करें यदि किसी विस्तीर्ण सार्वजनिक उद्देश्य की सफलता में यह अनियन्त्रणा साधन हो जाए। वर्त्तमान अवस्था में मिलाप के गीत में इस लिये भी सार नहीं कि वह एक ओर का है। जब दूसरा इस के लिये उद्यत नहीं, तुम क्यों अपना मान—लाघव कर उस का द्वार खटखटाते हो। इस विचार में भी प्रश्न केवल नैतिक व्यवहार ही का होगा। हम इस से ऊंचा देखना चाहते हैं। हम कालेज वालों का बहिष्कार क्यों करते हैं? इस में मुख्य कारण है उन का मांस—भक्षण का प्रचार। आर्यप्रतिनिधिसभा की अन्तरङ्ग सभा ने

अपने $\frac{२६-६-८२}{११.१०.२५}$ के प्रस्ताव में इस कारण पर बल देते हुए लिखा है कि हमें मांस भक्षण आदि अनाचारों के विरुद्ध अपने तीव्र आन्दोलन को शिथिल न करना चाहिये। वहिष्कार इस आन्दोलन का चिरकाल से अवलम्बित प्रबल प्रकार है। मांस भक्षण के संबन्ध में पलचर भाइयों की नीति में आज कुछ परिवर्त्तन हुआ है तो यह कि जहां मिलाप से पहिले चुपके २ कार्य हो रहा था, आज प्रो० गोविन्दराम एम० ए० रावल-पिण्डी में, महता रामचन्द्र शास्त्री शिमले में और प्रो० बाली आर्य गज़ट में स्पष्ट मांस को क्रमशः वेदविहित, पण्डितजनसंजीवन, तथा रामकृष्ण सेवित वीर भोजन उद्घोषित कर चुके हैं। विपक्षियों ने देखा है, तुम्हारी मांस के विरुद्ध भावना निर्बल हो रही है, वह खुल खेले हैं। ऐसे समय मिलाप का हाथ बढ़ाना मांस भक्षण के प्रचार की प्रतिष्ठा करना है। आज अधिक भर्त्सना की आवश्यकता है। 'प्रवृत्तिरेषाभूतानाम्' के पक्षपाती ऋषिदयानन्द के अनुयायिओं के अतिरिक्त बहुत हैं। ऋषि दयानन्द के अनुयायिओं के मरण का वही दिन होगा जब वे संगठन के नाम पर निरपराध पशुओं के रक्त से रंगे हाथों को छाती से लगा उन्हें आत्मीयों के हाथ कह कर उनका सन्मान करेंगे। उस दिन दयानन्द का खून दयानन्दियों के हाथों होगा।

संगठन करो मुसल्मानों से भारत के स्वराज्य के लिये, हिन्दुओं से आर्य संस्कृति की रक्षा के लिये, आर्यों से आर्य सिद्धन्तों के लिये। जहां सिद्धन्तों का हनन हो, वहां संगठन क्या? और मौसिमी मिलाप तो इस संगठन का भी उपहास मात्र है। इस से विरोध बढ़ता, घटता नहीं। उत्सव की असफलता ऊपर की आय का काम दे जाती है।

वेद प्रतिपादित नियोग निधि

दोनों भाग!

पाठकों को विदित हो कि श्रीयुत प० भक्तराम जी ने एक ट्रेक्ट 'वेद प्रतिपादित नियोग विधि' नामक प्रचारार्थ मुफ़्त बांटने के लिए प्रकाशित कराया है। जो सज्जन उसे लेना चाहें वे -) एक आने का टिकट भेज कर 'आर्य कार्यालय' से मंगवा सकते हैं।

निवेदक
प्रबन्धकर्ता
"आर्य"

प्रचार वृत्तान्त

(श्रीयुत प० बनवारीलाल जी)

१७ भाद्र ८३ से १५ आश्विन ८३ तक

उपदेशकों के कार्य का व्योरा:—

१. पं० कृष्णजी—डगशाई उत्सव—कालका, जतोग, शिमला, सोलन, सिहाला, चन्डीगढ़, मनीमाजरा, धर्मपुर, अम्बाला छावनी, समराला।

२. पं० व्रतपाल जी--जैतो मंडी, फरीदकोट, नन्काना साहिब, जड़ांवाला, रामपुर उत्सव, शाहकोट मुज़फ्फगढ़, जतोई, अलीपुर, खानगढ़, मियां चन्नू उत्सव,

३. पं० गुरुदत्त जी—कालका उत्सव, खरड़, सरहिन्द, मोरंडा; मोगा, फिरोज़पुर छावनी, फिरोज़पुर शहर।

४. पं० मंगलदत्त जी—मनोमाजरा, कालका उत्सव, सोलन उत्सव, सरहिन्द, खन्ना, सिहाला, समराला, साहनेवाल, लुध्याना, फिलौर।

५. पं० सत्यदेवजी—डलहौज़ी, चमक, वटाला,

६, म० रामरखा भट—लाहौर।

७. पं० धर्मदत्त जी—मुजंग, अमृतसर, जौड़ा मलकवाल, कुंदियां, वांभुचरां खुशाब, भलवाल, सरगोधा

८, पं० रामस्वरूप जी—तावड़ू, करनाल, पानीपत, सफैदूं जींद, रोहाना, खरखोदा, घरौंडा।

९. पं० मुनिराज जी—बहावलपुर, बहावल नगर, खैरपुर, समासट्टा अहमदपुर शरकिया, उच, मियां चन्नू उत्सव,

यह महाशय बहावलपुर स्टेट की समाजों में कार्य करते हैं।

१० पं० विश्वनाथ जी—सरगोधा जहानावाद, डेरा बखशीयां भलवाल उत्सव, सिलांवाली, जहानावाद उत्सव—

११. पं० परमानन्दजी—कुलाची, टांक, बन्नू, लकी कमर मशानी; कालाबाग, कुन्दियां, वानभुचरां, खुशाव, भलकवाल, फुलखान, भेरा,

१२. पं० पूर्णचन्द जी—गुरुदासपुर, दोना नगर, इखलासपुर, जडांवाला रामपुर

सांगला, खेमकरण, तेजाकलां, रमदास, भंगालीमियांचन्नू, किला सोभासिंह, जुधोला,

१३. पं० दिवानचन्द जी—पसरूर, सयालकोट, गुड़ी, सहारण, धमथल, किला सोभासिंह, पीरोवाल, सानेवाली, गिल, माल पहादेग,

१४. पं० हरनारायणजी—खरखौदा, शाहदरा, मिडकौला, बढ़ा, चान्द, पलवल,

१५. पं० बृहद्बलजी—डलहौजी, लोहाली, तीस्सा, चम्मवां, इन्दौरा,

१६. पं० दलपति जी—डलहौजी, पोखरो, घलेल, तीस्सा, चमक, किला सोभासिंह।

१७. पं० यशपालजी स्नातकः—मियांचन्नू, मुलतान, जतोई उत्सव, अलीपुर, मुजफरगढ़, झंग, सरगोधा, गुजरात, सूचना कुंजाह,

सूचना

पं० व्रतपाल जी १२ आश्विन ८२ से सभा का कार्य छोड़ गये हैं।

म० रामकुमार जी १२ आश्विन ८३ से सभा के कार्य पर नियत किये गये।

भजनीक महाशयों का व्योरा

१ म० महीपाल जीः—जैतो, लाहौर गालमंडी, फगवाड़ा, जालन्धर, आदमपुर, करतारपुर, अलावलपुर, लुध्याना, फिलौर, परा।

म० दुनीचन्द जी—लालकुरती बाजार रावलपिंडी, कैमबलपुर, काला बाग, कुंदियां, वानभुचरां, खुशाब, भलवाल, फुलर्वान, भेरा, मलकवाल, सरगोधा, किला सोभा सिंह, हाफिजाबाद।

२ म० सन्तराम जी—मरी, रावलपिंडी (लाल कुरती) फतहजंग, मियांवाली, कुंदियां, वानभुचरां, भलवाल, सरगोधा, किला सोभा सिंह नारोवाला।

३ म० श्याम लाल जी - दोना नगर, इखलासपुर, वेरका, शाम नगर, खेमकरन, किला सोभासिंह, गोआ, जुधालां।

४ म० विद्याधर जी शर्म्मा—मसूरी, कालका, जतोग, शिमला, सोलन, कसौली, खन्ना, सिहाला, समराला, शाहपुर।

५ म० धर्मवीर जी -फगवाड़ा, लखपुर, खेमकरण, कसूर, मियां चन्नू, मखदूमपुर, तलम्बा।

६ म० बिहारीलाल जीः—कोटा, जड़ांवाला, चमराकपुर, जतोई, मुजफरगढ़, झंग, जहांनाबाद, सरगोधा, लालामूसा।

७ म० केसरचन्द्र जी—सानेहवाल, कालका, जतोग, शिमला, सोलन, जालन्धर, करतारपुर, मिंटगुमरी, ओकाड़ा, शेखूपुरा, ।

८ म० बृजलाल जीः—डलहौजी, चम्बा, घलेल, तीस्सा, पठानकोट, इन्दौरा, बटाला येकीबांगर ।

९ म० शालिग रामजीः—इलाका भद्रवाह जम्मू के ग्रामों में कार्य करते रहे ।

१० म० मोहनलाल जीः—खैरपुर, बहावलपुर, समासटा, जतोई, अलीपुर, खानगढ़, मियां चन्नूं, चक नं० ३९ मोंटगुमरी ।

———

आर्य्य समाजों के उत्सवों की सूची जो कि १७ भाद्रपद से १६ आश्विन ८३ तक हुए

१	आर्य्य समाज कालका	१९ से २१ तक	
२	" डलहौजी बैलून बाज़ार	१९ " २१ "	
३	" जतोग	२२ " २४ "	
४	कुमार सभा जडांवाला	२६ " २८ "	
५	आर्य्य समाज कुन्दिया	२६ " २८ "	
६	" शिमला	२६ " २८ "	
७	" रामपुर चक नम्बर ९४	२९ " ३१ "	
८	" सोलन	३० " १	आश्विन
९	" सिहाला	३० " २	"
१०	" भलवाल	२ " ४	"
११	" खेम करण	२ " ४	"
१२	" करतार पुर	३ " ५	"
१३	" चम्बा	३ " ५	"
१४	" जतोई	२ " ४	"
१५	" मियां चन्नू	९ " ११	"
१६	" सरगोधा	९ " ११	"
१७	" किला सोभासिंह	१२ " १४	"
१८	" झंग शहर	९ " ११	"
१९	" ओकाड़ा	९ " ११	

२०	"	जहानाबाद	१२ " १४	"
२१	"	खरखोदा	९ ११	
२२		कसौली	२ ४	

अक्तूबर मास में होने वाले उत्सव

आर्य समाज नौशहरा छावनी	१३—१५	अक्तूबर
गुरुकुल बठिण्डा	१४—१७	"
आर्य समाज दीनापुर (मुलतान)	१४—१६	"
" भिवानी	१६—१८	"
" नूरमहल (जालंधर)	१६—१८	"
" अम्बाला छावनी	२२—२४	"
" शकर गढ़ (गुरुदासपुर)	२२—२४	"
" रामामण्डो (पटियाला)	२२—२४	"
आर्य युवक समाज जालंधर	२२—२४	"
आर्य समाज शाहाबाद (करनाल)	२६—२८	"
" लायलपुर	२६—३१	"
" डिंगा (गुजरात)	२६—३१	"
" रावल पिण्डी सदर	२६—३१	"

पृष्ठ ३५ से आगे

यहां ओ३म् शब्द कितना स्पष्ट है। श्री सायणाचार्य तथा स्वामी दयानन्द ने "ओमास:" शब्द के अर्थ प्रजाओं के रक्षक तथा ओ३म् के निकट बैठने वाले ब्रह्मतत्त्ववित् विद्वान् के होते हैं ऐसे किए हैं। प्रजाओं को चाहिए कि ऐसे विद्वानों को अपने गृहों पर सत्कार से बुलावें॥

इस प्रकार ओ३म् शब्द ऋग्वेद में अति स्पष्ट आया है। अतः किसी को ऐसा संशय नहीं करना चाहिए कि ऋग्वेद में ओ३म् शब्द नहीं है।

(प० श्यामलाल दीक्षित शास्त्री)

॥ ओ३म् ॥

FRIENDS TRADING COMPANY, AMRITSAR.
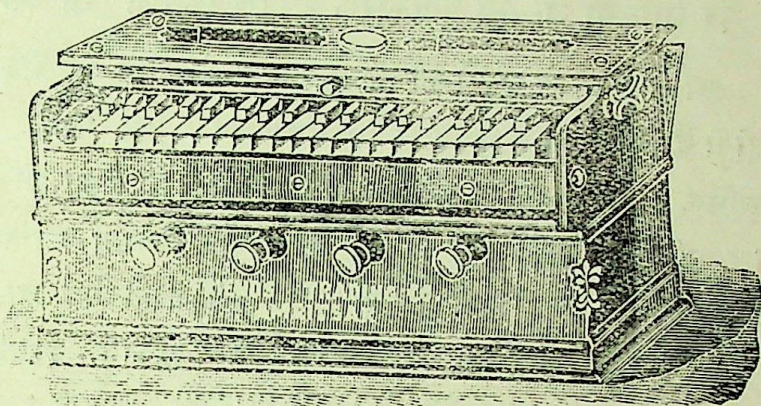
श्रीमान् जी नमस्ते !

हमने धार्मिक तथा कौमी सभाओं, समाजों तथा संस्थाओं के लिये एक विशेष प्रकार का हारमोनीयम हाथ से बजाने वाला डबल स्वर 'कृष्ण फ्ल्यूट" (Krishan Flute) त्यार कराया है, जोकि सुरीला, पायदार, खूब सूरत, खुशरंग और मज़बूत है । आप भी अपनी समाज, सभा, या संस्था के लिये एक बाजा मंगवा कर अपने उत्सवों की रौनक बढ़ाएं ।

डबल स्वर कीमत	सर्व साधारण से	३५)	धार्मिक व कौमी संस्थाओं से	३२)
,, ,, सफरी	,,	४२)	,, ,, ,,	४०)
सिंगल ,,	,,	२७)	,, ,, ,,	२५)
डबल पेटी (जर्मन)	,,	७५	,, ,, ,,	७०)
कैसरील डबल	,,	७०)	,, ,, ,,	६५)
,, सफरी	,,	७५)	,, ,, ,,	७०)
,, पेटी	,,	१२५)	,, ,, ,,	११५)
तबला जोड़ी (शीशम का)		२२)	,, ,, ,,	२१)

नोट—हर प्रकार की रबड़ की मोहरें, बलाक व पीतल की चपरासें आदि हम से सस्ती बनवाईये ।

भवदीय—

इंद्रजीत बी. ए.

मैनेजर फ्रैन्डस ट्रेडिंग कम्पनी,
अमृतसर.

आर्य ! आर्य !! आर्य !!!

में विज्ञापन देकर लाभ उठावें !

विज्ञापन के दर

	मासिक	वार्षिक
१ पृष्ठ	३)	३०)
½ ,,	१॥।)	१८)
¼ ,,	१)	१०)

विज्ञापन के नियम

१. 'आर्य' में अश्लील विज्ञापन नहीं छपेंगे।

२. छपाई पेशगी ली जाएगी।

३. कम से कम ½ पृष्ठ विज्ञापन छपाने वाले को 'आर्य' मुफ़्त मिलेगा।

प्रबंधकर्ता
'आर्य'

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा प्रकाशित पुस्तकें तथा ट्रैक्ट

ओ३म्कार निर्णय लेखक श्री पं० शिवशंकर जी काव्य तीर्थ	।=)
त्रिदेव निर्णय ,, ,, ,, ,, ,,	॥।)
वैदिक इतिहास निर्णय ,, ,, ,, ,,	१॥)

हिन्दी

वैदिक धर्म का महत्त्व	-)।
अग्नि सूक्त	=)
उत्तम ज्ञान	)॥
रोगजन्तु शास्त्र	-)॥

अंग्रेज़ी

Ideals of Education	-)॥
True pilgrims progress	-)॥

पताः—

मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा गुरुदत्तभवन लाहौर

वैदिक धर्म और हिन्दु संगठन का प्रबल समर्थक—

मार्तण्ड

संपादक राजरत्न आत्माराम जी (अमृतसरी) बड़ोदा ।

यह हिन्दी भाषा का एक उच्चकोटिका नया मासिक मई मास से निकलना आरम्भ हुआ है । वैदिक धर्म के सिद्धान्तों के तत्व को वैज्ञानिक तथा अनुसन्धान-पूर्वक दर्शाना और आर्य समाज के नानामण्डलों को संगठन के एक सूत्र में बांधने के उपाय दर्शाना आर्य समाजियों और सनातन धर्मियों के संगठन को प्रबल साधनों द्वारा दृढ़ करना और आर्य, बौद्ध, जैन, सिक्ख सनातनधर्मियों की जातीय ऐकता के कारणों को अनुसन्धान पूर्वक बताना तथा महान् हिन्दू जाति की संस्कृति के परम पोषक तथा सर्वमान्य वेदों के सरल भाषा में अनुवाद करते हुए वैज्ञानिक व्याख्यान सहित प्रकाश करना इस का उद्देश्य है । वार्षिक मू० २॥) नमूने की प्रति मुफ़्त, विज्ञापन छपाई का सर्वोत्तम साधन है।

पता:—वेदभाष्य कार्यालय आर्यकुमार आश्रम कारेलीबाग बड़ोदा ।

---

* आर्यमित्र का ऋष्यङ्क *

दीपावली के सुअवसर पर गत वर्षों की भांति इस वर्ष भी "आर्यमित्र का ऋष्यङ्क" बड़ी सजधज से निकलेगा। ललित लेखमाला, कलित कविताकुंज और चारुचित्रावली से यह अङ्क सर्वाङ्गसुन्दर बनाया जायगा। स्वयं ग्राहकता स्वीकार कीजिये और अपने इष्ट मित्रों को भी इसे अपनाने का आदेश दीजिये । नवीन ग्राहकों को अच्छा अवसर है, जो लोग मित्र का अग्रिम वार्षिक मूल्य ३॥) भेज देंगे उन्हें पांच आने के ऋष्यङ्क के अतिरिक्त साल भर तक मित्र पढ़ने को मिलेगा अङ्क की सुन्दरता देखने पर ही विदित होगी । मूल्य -) डाक व्यय -)

विनीत—मैनेजर-आर्यमित्र, आगरा ।

आर्य्यप्रातिनिधि सभा पंजाब गुरुदत्तभवन लाहौर।

ब्योरा आय व्यय मद्धे मास भाद्रपद १९८३ : १०२

निधि	बजट आय	इस मास की आय	इस वर्ष की आय	बजट व्यय	इस मास का व्यय	इस वर्ष का व्यय
प्रचार कार्य्यालय				६२०)	७५|||-)	५६१|≡)||
(वैदि)क पुस्तकालय	४००)	५०)	१५२|)	२५००)	१८८-)||	९४२|||=)
(प्रकाशन का)र्य	५०००)	१६२≡)	६०४||-)	५०००)	२८३|-)||	८८०||≡)४
(एक) आना निधि	२५००)	२||)	११० ||=)			
(फु)टकर	२००)	१२५)	१२८=)			
(उ)पदेशक वेतन				२१०८०)	१४१५||≡)८	६८८२|| =)||
(मा)र्ग व्यय				७०००)	५३६=)	२७८६-)|
(बी)मा जीवन				१७०)	-६|-)|||	७५|=)||
(वै)दिक कोष				३००)	१४||-)	१९६|||=)
योग		३३४||≡)	१०००|||-)		२६१२|)११	१२३२६||-)१
(वे)द प्रचार	२५६६५)	११२८|)|||	६१२६|||=)१०			
(मु)ख्य कार्यालय सभा				६६००)	४२५||)||	२३१२ ||)|
(द)शान्श	२५००)	२८|≡)||	१८९९)			
(वि)द्यालय निरीक्षण				१४६२)	७२=)||	३४८|||=)|||
(ले)खा निरीक्षक शुल्क				१००)		१३|||=)
योग		२८|≡)	१८९९)|		४९६||≡)	२६७५||-)
(ले)खराम स्मारक निधि	५००)		६२||)			
(उ)पदेशक वेतन				२२३४)	१६९||)	७८३||≡)१
(मा)र्ग व्यय				४००)	२३|||-)	१५२|-)३
(गु)ज़ारा विधवा पं० तुलसीराम				१२०)	१०)	५०)
,, ,, वज़ीरचन्द				९६)	८)	४०)
योग			६२||)		२१५||-)	१०२६)४
(सूद)र बैंक		१०८|-)४	२१७४४|||=)११		२६≡)	१३६||=)३
,, कर्ज़ा			१३||=)			
(आश्र)म आय व्यय		१४४)	२४७=)			१०७||-)२
(कि)राया मकान		४८)	९६)			
योग		३००|-)४	२२१०|||=)११		२६≡)	२४७||≡)७
(अ)मानत अन्य संस्थाय		१०१९)	४४३५|||-)५			७८१७)५
,, आर्यसमाजें		१६३≡)११	७८००||≡)४		१८२=)७	१५२८|≡ ७
,, विद्यार्थी आश्रम			२८)			४६०)
,, वैदिक पुस्तकालय						१०)
योग		[illegible]				

निधि	बजट आय	इस मास की आय	इस वर्ष की आय	बजट व्यय	इस मास का व्यय	इस व[र्ष] व्य[य]
वसीयत पं० पूर्णानन्द			१००)		५०)	२५
,, म० ओबीराम					२५)	१=)
,, म० सुचेतसिंह					७०-)	२६१।-
,, म० जींदा राम		॥।-)॥	॥।-)॥		३०)	२२०)
,, म० ईश्वरदास						७५)
,, म० रामशरणदास						१
,, स्वामी विद्यानन्द		१२००=)	१२००=)			
योग		१२००॥।≡)॥	१२००।॥≡)॥		१७५-)	६४
उपदेशक विद्यालय	११०००)	-११०६)	-६१६।≡)॥	११०००)	५५३॥=)।॥	२४०७।-
,, ,, स्थिर कोष			१११०)			
,, ,, शाला		२०००)	१००००)			
गुरुदत्त भवन आश्रम शाला		५०)	१६५)			
आर्य विद्यार्थी आश्रम	४३५०)	५०)	३८२-)	४३५०)	१७७=)	११७०।॥
दलितोद्धार	३८२०)	४२४-)॥।	९३३॥≡)॥	३८२०)	६५७।=)॥।	११६४।
राजपूतोद्धार			१७॥=)॥		२३५।-)	९५२
असाधारण निधि			६)			
शिक्षा समिति			४०)		३२-)१०	५४१॥-
प्रोवीडेण्ट		१२६।॥)८	६६७-)७			३६४।-
बोनस			६३॥)॥			५६६॥≡
अज्ञात निधि		१५०≡)।	४३६०।=)।	६०)		६०)
प्रेमदेवी होमकरणभंडार		२२६॥।=)।	२२६॥।=)॥			
रामचन्द्र स्मारक निधि					४६६=)।॥	४६६=
शताब्दी					-)	-)
योग		१६४४॥=)११	८८०७=)४		२१६२)१	७८७०।
गुरुकुल महानिधि			-२७०१७०॥-)७			४३०८
,, स्थिर छात्रवृत्ति			६८९५॥≡)			
,, अस्थिर ,,			१२८६॥=)			
,, उपाध्याय ,,			-१३४०॥≡)४			
,, अन्य दान			१०)			
कन्यागुरुकुलइन्द्रप्रस्थ			५०५२)			७८९१
योग			-२५८८६३॥≡)११			५०६७
सर्व योग		६१२४॥।=)५	-२०५३०४=)		५८६९॥≡)७	८५८२०
गत शेष		११७५७८७=)४	१४६७१६२॥=)११			
योग		११८१४१२-)॥।	१२६१८६२॥)७			
व्यय		५८६६॥≡)७	८५८२०=)५			
वर्तमान शेष		११७६०४२।=)२	११७६०४२।=)२			